हिन्दी गीतिनाट्य : एक साहित्यिक विवेचन

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी–एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत प्रबन्ध)

प्रस्तुतकर्ता:—

विष्णुदत्त द्विवेदी
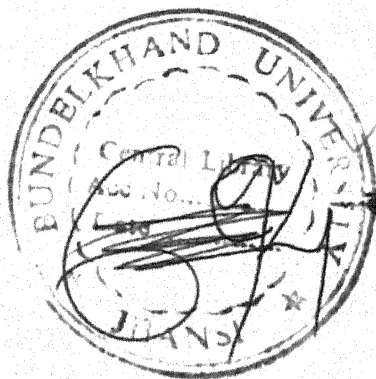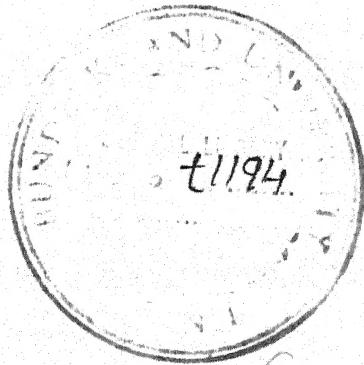
निर्देशक:—

डॉ० विश्वम्भर दयाल अवस्थी डी० लिट्०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा

हिन्दी गीतिनाट्य : एक साहित्यिक विवेचन

भूमिका

बाल्यकाल में एकाध नाटकों में भाग लेते समय यह नहीं सोचा था कि कभी इस पर मुझे कुछ लिखना पड़ सकता है। अभिनय करने की स्मृति नौटंकी एवं स्वांग देखने तथा आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होने वाले नाटकों को सुनकर एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने की दृष्टि पाकर, मेरे मन में नाट्य समीक्षा की जिस पद्धति का पल्लवन हुआ है, उसका परिणाम प्रस्तुत प्रबन्ध है।

आजमुझे बरबस वे पंक्तियाँ स्मरण आ रही हैं — जिसमें भरत ने कहा है कि नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या और कला समाहित है। इसीलिए नाटक काव्य की अपेक्षा अधिक रमणीय है और गीतिनाट्य तो ऐसा नाटक है जिसमें गीतितत्त्व और नाटकत्व का मणिकांचन संयोग है। प्रस्तुत प्रबन्ध के पूर्व अनेकानेक निबन्ध, प्रबन्ध, फुटकल लेख, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में विकीर्ण हैं जिनमें या तो सिद्धान्तों का डिमडिम घोष है या फिर परम्परागत पद्धति पर गीतिनाट्यों का इतिवृत्तात्मक विकास वर्णन। इसीलिए मैंने सिद्धान्त एवं व्यवहार में समन्वय कर काव्य और नाटक के मिश्रण से निष्पन्न नाट्य समीक्षा के आधार पर प्रस्तुत प्रबन्ध को लिखने का साहस किया है। इसके लिए मैंने इस प्रबन्ध को दो भागों में बाँटा है।

प्रथम भाग में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में गीतिनाट्य के वैशिष्ट्य का मूल्यांकन करते हुए काव्य-नाटक, काव्य-एकांकी, पद्य-नाटक, पद्य-एकांकी इत्यादि नामों में से गीतिनाट्य के नामकरण की सार्थकता पर विचार किया गया है, साथ ही अंग्रेजी तथा हिन्दी के विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं की समीक्षा की गयी है और गीतिनाट्य के स्वरूप निर्धारण हेतु भावनाट्य, पाठ्य-नाटक एवं नाट्य-काव्य से उसका अन्तर निरूपित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में गीतिनाट्यों के तत्वों का निरूपण है। मैंने पहले भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में प्राप्त नाटक के तत्वों का विश्लेषण किया है और यह विज्ञापित कराने का प्रयास किया है कि आज के वैज्ञानिक और मशीनरी युग में व्यक्ति के पास इतना समय नहीं है कि वह पुराने फार्मूलों, परम्परित रूप में प्रथित एवं प्रथित कथानकों, आदर्श चरित्र और सुष्ठु सुकुमार भाषा में वर्णित नाटकों के लिए समय दे सके। साथ ही ऐसे नवीन मापदण्डों की खोज की आवश्यकता थी जिससे उपन्यास कहानी एवं गीतिनाट्य की

समीक्षा में अन्तर किया जा सके। प्रस्तुत प्रबन्ध में कथावस्तु, पात्रों के चरित्र-चित्रण, भाव एवं रस पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व तथा शिल्प-विधान के लिए शब्द-सम्पदा मुहावरे, गुण अलंकार बिम्ब एवं प्रतीक विधान तथा संवाद योजना का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही रंगमंचोपयुक्त तत्वों का उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय में हिन्दी गीतिनाट्य के उद्भव विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, जिसमें लेखक की मान्यता यह रही है कि भले ही गीतिनाटकों की पृष्ठभूमि में जन-नाटक रहे हों, किन्तु उनका वर्तमान रूप पाश्चात्य गीतिनाट्य से प्रभावित है। हिन्दी में प्रकाशित गीतिनाट्यों की सूची प्रस्तुत कर आकार, कथावस्तु के क्षेत्र, प्रकृति, प्रसारण माध्यम वैचारिक प्रभावों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण शायद प्रथम बार हो रहा है। विकास क्रम की रूप रेखा प्रस्तुत करते हुए उसकी तीन स्थितियों का उल्लेख किया गया है — प्रारम्भिक काल — विकासकाल — समृद्धिकाल जिसमें इतिवृत्तात्मक पद्य-प्रधान गीतिनाट्य लेकर रेडियो से प्रसारित एवं रंगमंच में सफल गीतिनाट्यों का विवेचन नाट्यकार एवं रचनाओं के आधार पर किया गयाहै। यद्यपि इस वर्णन में नीरसता है, पत्रा-पंचांग जैसी वर्णनात्मकताका आश्रय लिया गया है किन्तु इसके सिवा कोई गति ही नहीं थी।

दूसरा भाग प्रमुख गीतिनाटकों केविवेचन से सम्बन्धित है। इसके लिए मैंने आठ अध्यायों की योजना की है —

प्रथम अध्याय कथावस्तु से संबंधित है, जिसमें करूणालय से लेकर अग्निलीक तक प्रमुख गीतिनाट्यों की कथावस्तु लिखी गयी है, साथ ही आधिकारिक एवं प्रासंगिक घटनाओं का विवेचन है एवं कथाप्रवाह, आकस्मिकता की दृष्टि से भी इनकी समीक्षा की गयी है।

द्वितीय अध्याय में पात्रों का चरित्र चित्रण है, जिसमें प्रमुख गीतिनाट्यों के पात्रों का उल्लेख कर स्त्री पुरूष के आधार पर उनका वर्गीकरण तथा पात्रों के गुणावगुण की दृष्टि से उनकी कोटियों का निर्धारण कर प्रमुख पात्रों का चरित्र अंकित किया गया है। इस चरित्रांकन में उनके क्रियाकलापों की आधार भूमि प्रस्तुत करते हुए मनोवैज्ञानिक भित्ति पर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया गया है।

तृतीय अध्याय भावबोध एवं रस निरूपण से सम्बन्धित है, जिसमें शृंगार वीर, करूण, हास्य, वीभत्स, अद्भुत, भयानक रौद्र, शान्त एवं वात्सल्य इत्यादि रसों के स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के उदाहरण गीतिनाट्यों से प्रस्तुत किए गये हैं और निष्कर्ष रूप में यह देखा गया है कि आलोच्य गीतिनाट्यों में शृंगार, वीर, शान्त, रौद्र रसों का अधिक उल्लेख हुआ है, हास्य रस उपेक्षित सा रहा है। निष्कर्ष रूप में लेखक ने

यह कहने का प्रयास किया है कि वर्तमान युग में मानव की भावनाएँ इतनी उलझी है कि उनके वर्णन में रसानुभूति तो होती है किन्तु रसनिष्पत्ति नहीं होती है।

चतुर्थ अध्याय अन्तर्द्वन्द्व से सम्बन्धित है जिसमें लेखक ने अन्तर्द्वन्द्व की पृष्ठभूमि उपस्थित करते हुए आलोच्य गीतिनाट्यों के पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व का निरूपण किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि बहिर्द्वन्द्व का प्रयोग आन्तरिक संघर्ष को तीव्र करने के लिए हुआ है। इस आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के प्रकाश में की गयी है। इड, इगो, एवं सुपर इगो, की महत्वपूर्ण भूमिका का निरूपण आलोच्य गीतिनाट्यों के सन्दर्भ में किया गया है।

पंचम अध्याय भाषा एवं संवाद योजना से सम्बन्धित है। भाषा विवेचन में मैंने आलोच्य गीतिनाट्यों की शब्द-सम्पदा, विदेशी शब्दों का प्रयोग एवं प्रयुक्त लोकोक्ति एवं मुहावरों का उल्लेख किया है। काव्यत्व निरूपण के लिए आलोच्य गीतिनाट्यों में प्राप्त काव्यगुण-अलंकार एवं भाषायिक सौन्दर्य की विवेचना की गयी है तथा लयात्मकता, बिम्बधर्मिता, गत्यात्मकता की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया गया है। संवादयोजना के अन्तर्गत कथावस्तु को विकसित करने वाले, पात्रों का चरित्र चित्रित करने वाले एवं संक्षिप्त, सरल, नाटकीय आरोहावरोह संयुक्त, काव्यात्मक संवादों का उल्लेख है। यत्र तत्र प्राप्त आकाशभाषित एवं स्वगत कथन के औचित्य की चर्चा है।

षष्ठ अध्याय गीतिनाट्यों में प्रयुक्त बिम्ब एवं प्रतीक विधान से सम्बन्धित है। जिसमें लेखक ने बिम्बों का वर्गीकरण कर स्रोतों, इन्द्रिय संवेदन एवं प्रकृति की दृष्टि से इनका विवेचन किया है। आलोच्य गीतिनाट्यों में प्रयुक्त प्रतीकों का वर्णन कर, नाट्यकारों के विपुल प्रतीकों के औचित्य की समीक्षा की गयी है, साथ ही यह बतलाया गया है कि नाट्यकार भाव सम्प्रेषण के लिए बिम्ब एवं प्रतीकों के प्रयोग में कहाँ तक सफल हुआ है।

सप्तम अध्याय अभिनेयता से सम्बन्धित है। आलोच्य गीतिनाट्यों की रंगमंच की दृष्टि से समीक्षा कीगयी है, जिसमें अनभिनेय एवं वर्जित दृश्यों की भी समीक्षा है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उपयुक्त रंगमंच के अभाव में नाट्यकारों ने रेडियो का आश्रय लिया है। बात यह है कि मंचोपयुक्त गीतिनाट्यों में संक्षिप्त एवं नाटकीय घटना, सीमित पात्र-योजना, सीधे सरल संवाद, चतुर्विध अभिनयों, पट परिवर्तन, मंच व्यवस्था इत्यादि का वृहत् उल्लेख होता है जिसका हिन्दी गीतिनाट्यों में अभाव है, इसीलिए हिन्दी के गीतिनाट्य मंच में सफल नहीं सिद्ध हुए। अन्धायुग और उत्तर प्रियदर्शी इसके अपवाद हैं।

अष्टम अध्याय-में उपसंहार के रूप में है जिसमें हिन्दी गीतिनाट्यों की उपलब्धि उसकी सीमा एवं सम्भावनाओं का उल्लेख है। लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि करूणालय से लेकर अग्निलीक तक की यात्रा असन्तोषजनक नहीं है। यद्यपि हिन्दी गीतिनाट्यों में काव्यत्व एवं नाट्यत्व का समन्वय नहीं हो पाया है तथापि हिन्दी गीतिनाट्य की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं। सिनेमा कीलोकप्रियता केकारण ये गीतिनाट्य उपेक्षित होते जा रहे हैं। इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है कि टेलीविजन केकारण हिन्दी के गीतिनाट्यों की लोकप्रियता पुनः स्थापित हो सकेगी।

शताधिक गीतिनाट्यों में विविधता है जिनका आकलन एक स्थान पर हुआ है अतः विषय की गम्भीरता एवं लेखक की अल्पज्ञता के कारण मौलिकता का दावा तो नहीं है फिर भी गीतिनाट्यों की समीक्षा पद्धति एवं तदनुरूप चिन्तन करते हुए वैज्ञानिक एवं सन्तुलित विवेचन करने का प्रयास किया गयाहै।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लिखने में अनेकानेक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गयी है जिनके लेखकों का मैं आभारी हूँ। डा0विश्वम्भर दयाल अवस्थी, डी0लिट्0 अध्यक्ष हिन्दी विभाग अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा का आद्य से लेकर इति तक निर्देशन प्राप्त हुआ है। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। डा0 बच्चन सिंह, डा0गिरिजाकुमार माथुर, डा0सिद्धनाथ कुमार, श्री जानकी-वल्लभ शास्त्री एवं डा0 द्वारका प्रसाद मित्तल, डी0लिट्0 अध्यक्ष हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी इत्यादि लब्ध प्रतिष्ठ समीक्षकों गीतिनाट्यकारों एवं विद्वानों के प्रति लेखक अपनी कृतज्ञता अर्पित करता है जिन्होंने इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में कठिनाइयों का निराकरण कर मुझे गौरवान्वित किया है। मैं अपने सम्बन्धी श्री युत शिवकरण पाण्डेय, हिन्दी विभाग केशरवानी महाविद्यालय जबलपुर तथा श्री हीरालाल यादव पुस्तकालयाध्यक्ष अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा का स्मरण करता हूँ क्योंकि उन्होंने अनेक गीतिनाट्यों को उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की। मेरे अग्रज डा0 वेदप्रकाश द्विवेदी, प्रवक्ता- हिन्दी विभाग, अतर्रा पोस्टग्रेजुएट, अतर्रा, ने मुझे साहित्य मर्म समझने का अवसर प्राप्त कराकर, नाट्य समीक्षा के लिएसन्तुलित दृष्टि दी है, जिसका परिणाम प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है। उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करना बहुत औपचारिक हो जायेगा। अन्त में "जे बिनु काज दाहिनें बायें" आने वाले लोगों का भी लेखक आभारी है।

निवेदक

विष्णुदत्त द्विवेदी

(विष्णुदत्त द्विवेदी)

हिन्दी गीतिनाट्य : एक साहित्यिक विवेचन

विषय-अनुक्रमणिका

भाग -1

प्रथम अध्याय

गीतिनाट्य परिभाषा, स्वरूप

अन्य विधाओं से अन्तर

प्रथम अध्याय

गीति नाट्य परिभाषा, स्वरूप एवं अन्य विधाओं से अन्तर

कवि अनुभूति-प्रवण-प्राणी है। उसके अन्तःस्थल में सुप्त अनुभूतियाँ तीव्र-प्रेरणा से तरलावस्था में आकर अभिव्यक्ति का मार्ग खोजती रहती हैं। यही अनुभूति जब अभिव्यक्ति बनती है, तब काव्य का जन्म होता है। प्रतिभा के संयोग से कवि काव्य में ऐसी अभि-व्यंजना-शक्ति उत्पन्न करता है जिसमें कवि एवं पाठक भाव-विभोर हो उठते हैं। कवि अपनी अभिव्यक्ति को पाठक तक सम्प्रेषित करने हेतु शब्द-अर्थ, छन्द या लय को माध्यम बनाता है। इन्हीं के संयोग में वैभिन्य होने के कारण अनुभूति विभिन्न काव्य-रूपों में प्रकट होती है।

काव्यानन्द एक एवं अखण्ड होता है, अतः काव्य का विभाजन कृत्रिम एवं अवैज्ञानिक है, किन्तु बोध-सौकर्य एवं अध्ययन - सौविध्य के लिए उसे कतिपय भागों में विभक्त किया जाता है। भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन, राजशेखर, मम्मट और विश्वनाथ ने विभिन्न आधारों पर काव्य का विभाजन किया है। संस्कृत में काव्य को दो भागों में विभक्त किया गया है — दृश्य और श्रव्य। श्रव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य और चम्पू रखे गये हैं। पद्य का वर्गी-करण बन्ध की दृष्टि से — प्रबन्ध और मुक्तक — दो प्रकार का किया गया है। वैसे वर्गीकरण के लिए प्रतिपाद्य वस्तु, बन्ध, प्रतिपादन प्रणाली, छन्द, अर्थ इत्यादि आधारों को स्वीकृत किया गया है किन्तु उक्त वर्गीकरण सर्वमान्य है। हिन्दी में बन्ध की दृष्टि से काव्य का विभा-जन स्वीकृत है. यहाँ काव्य को (1) प्रबन्ध, जिसमें महाकाव्य एवं खण्डकाव्य, (2) अबन्ध — जिसमें मुक्तक एवं गीतिकाव्य तथा (3) कथाबन्ध — जिसमें दो वर्गों का मिश्रण हो — तीन[1] भागों में विभक्त किया गया है।

1- काव्यरूपों के मूल-स्रोत और उनका विकास, डा० शकुन्तला दुबे, पृष्ठ संख्या 4।

इन्द्रिय सन्निकर्ष पर आधृत श्रव्य एवं दृश्य काव्य-रूपों में नाटक रम्य कहा गया है। बात यह है कि श्रव्य-काव्य में शब्दों के माध्यम से पाठकों के मन में मानसिक बिम्बों को उत्पन्न कर उन्हें रसमग्न किया जाता है, जबकि दृश्य काव्य में श्रवणेन्द्रिय एवं चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से मनोहारिता, ओजस्विता, सजीवता एवं प्रत्यक्षानुभवता उत्पन्न की जाती है। पात्रों की वेश-भूषा, उनका अंग-विक्षेप, आकृति, भाव-भंगिमाएँ, क्रियाओं का अनुकरण, अभिनय आदि देखकर तथा शब्दों का श्रवण कर सामाजिक भावमग्न हो जाता है, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं। सम्पूर्ण भावों, मानसिक स्थितियों के विविध रूपों को नेत्रों के सम्मुख घटित होते देखकर सामाजिक अपना अस्तित्व भूलकर आश्रय से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। रस की यही अवस्था नाटक की प्राथमिक विशेषता है, जो उसकी अनन्यता की द्योतक है।[1] ब्रह्मा से ऐसे ही खेल की कामना की गयी है, जिसमें दृश्य एवं श्रव्य का संयोग हो ——

"क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।"[2]

इस नाटक प्रकार के काव्य-रूप में सम्पूर्ण त्रैलोक्य के भावों का अनुकरण है ——

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।"[3]

चार वेदों से तत्व ग्रहण कर धर्म, अर्थ, यश, उपदेश करने वाले पंचम वेद नाट्य वेद की रचना हुई जिसमें संसार के भविष्य तक के कर्मों का दर्शन है, तथा जिसमें सभी शास्त्र, शिल्प का ज्ञान सम्मिलित होगा।[4] नाटक में भिन्न भिन्न रुचि के व्यक्तियों को समान रूप से आह्लादित करने की सामर्थ्य है। उसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसके द्वारा किसी भी देश की संस्कृति का सजीव उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक के वैशिष्ट्य का एक और कारण है कि यह सामूहिक कला है। इसमें सूत्रधार नट वेश-भूषा का निर्माता, पर्दा बनाने वाले, संगीतकार इत्यादि का सहयोग अपेक्षित है। इसमें कहीं धर्म है, कहीं

1- हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन—डा० गिरीश रस्तोगी, पृ० 17

2- नाट्यशास्त्र, भरत 1/11 3- वही 1/107 4- वही 1/115

क्रीड़ा है, कहीं अर्थ है, कहीं श्रम, कहीं हास्य है, तो कहीं युद्ध और कहीं काम है तो कहीं वध का वर्णन है —

"क्वचिद्धर्मः क्वचिद् क्रीड़ा क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः।
क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित्कामः क्वचिद्वधः॥"[1]

सारांश यह है कि नाटक एक समन्वित कला है और विधा है। एक ओर उसमें वास्तुकला और मूर्तिकला जैसी भव्यता और कारीगरी है। चित्रकला तथा संगीतकला जैसी बारीकी प्रत्यक्ष सौन्दर्य एवं तन्मयता होती है, तो दूसरी ओर उसमें महाकाव्य जैसी आदर्शपरता सांस्कृतिकता, उपन्यास जैसी बाहुल्यार्थता प्रगीत काव्यों जैसी भाव-परायणता, कहानी जैसी सूक्ष्मता, जिज्ञासा कौतूहल और उत्सुकता तथा सिनेमा जैसी वास्तविकता होती है।[2] इसीलिए नाटक सभी काव्य-रूपों से रमणीय कहा गया है।

प्रारम्भ में जिस कथाकाव्य काव्य की चर्चा की गयी है, उसे मिश्रकाव्य कहते हैं। इसमें दो विधाओं का संयोग होता है। गीतिनाट्य नाटक और गीति रूपों का समन्वय रूप है। अतः गीतिनाट्य की परिभाषा एवं उसका स्वरूप समझने के लिए नाटक एवं गीति का स्वरूप संक्षिप्त में समझ लेना अनावश्यक नहीं होगा।

भरत मुनि ने नाटक का लक्षण बताते हुए लिखा है कि नाटक वह काव्य है, जिसमें प्रख्यात विषय-वस्तु हो, प्रख्यात, उदात्त, राजकुलोत्पन्न अथवा दिव्य धीरोदात्तादि गुणों से युक्त नायक, नाना विभूति एवं ऋद्धियों सहित अंकों का प्रयोग हो। नाना रस एवं भावों से संकुल सुख-दुःखों से युक्त राजाओं का चरित्र ही नाटक है —

"प्रख्यात वस्तु विषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
राजर्षि वंश्य चरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥
नाना विभूति संयुतमृद्धि विलासादिभिर्गुणैश्चैव।

1- नाट्य शास्त्र, भरत 1/108
2- हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन, पृ0 24

अभिनव भरत के अनुसार किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर नाट्यकार द्वारा रचित रचना के अनुसार नाट्य-प्रयोक्ता द्वारा सिखाये हुए नट जब रंगपीठ पर अभिनय तथा संगीतादि के द्वारा रस उत्पन्न करके प्रेक्षकों का विनोद करते हैं तथा उन्हें उपदेश और मनःशान्ति प्रदान करते हैं तब उस प्रयोग को नाटक या रूपक कहते हैं।[1] पाश्चात्य विचारक अरस्तु का कथन है कि ट्रेजेडी उस व्यापार विशेष का अनुकरण है, जिसमें गम्भीरता और पूर्णता हो, जिसकी भाषा प्रत्येक प्रकार के कलात्मक अलंकारों से सुसज्जित हो और जिसमें अनेक विधायें भी पायी जाती हों, जिसकी शैली वर्णनात्मक न होकर क्रियात्मक हो, जो करुणा और भय का प्रदर्शन करके इन मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके। "ए ट्रेजेडी हैज इज दि इमिटेशन ऑफ एन एक्शन दैट इज सीरियस एण्ड आलसो एज हैविंग मैग्नीट्यूड कम्प्लीट इन इट्सेल्फ इन लैंग्वेज विद प्लेजेबुल एक्सेसॉरीज, ईच काइण्ड ब्राट इन सेपरेटली इन दि पार्ट्स ऑफ दि वर्क इन ए ड्रैमेटिक नॉट इन ए नैरेटिव फार्म विद इन्सीडेण्ट्स एराउजिंग पिटी एण्डफियर ह्वेयर विद टु एक्काम्प्लिश इट्स कैथारसिस ऑफ सच इमोशन्स।"[2] सार यह है कि (1) नाटक में एक कथावस्तु होनी चाहिए। (2) घटनाएँ इस प्रकार से विन्यस्त हों कि दर्शक के मन में कौतूहल बना रहे (3) संवादों के माध्यम से अभिनेता उनका अभिनय रंगमंच पर आसानी से कर सके। (4) अभिनय इतना मार्मिक हो जिससे दर्शकों का रसास्वादन हो सके।

'गीति काव्य' का संक्षिप्त परिचय जानना आवश्यक है। कहना नहीं होगा कि मनुष्य के अन्तस्तल में सुख-दुख परिस्थितियों के कारण अनेक मनोवेगों का जन्म होता रहता है। किसी क्षण-विशेष में ये मनोवेग तीव्रतम होते हैं, तभी क्षण-विशेष की अनुभूति को कवि कविता के द्वारा ध्वनित करता है। गीतिकाव्य की परिभाषा में डा० शकुन्तला दुबे इन्हीं

1- अभिनव नाट्य शास्त्र, पृ० 73

2- ऑन दि आर्ट ऑव पोएट्री, पृ० 35 (हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 33-34 पर उद्धृत)।

भावों को लिखा है —" गीतिकाव्य कवि के अन्तर्जगत की वह स्वतः प्रेरित तीव्रतम भावात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें विशिष्ट पदावली का सौन्दर्य अनुभूति के ऐक्य एवं संगीतात्मकता के योग से द्विगुणित होता है।"[1] डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने लिखा है —" गीतिकाव्य एक ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है, जिसमें कवि निजी अनुभूतियों का किसी एक भावदशा का प्रकाशन संगीत या लय पूर्ण कोमल पदावली में करता है।"[2] डा० राम — खेलावन पाण्डेय के अनुसार " कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को गीतिकाव्य कहते हैं।"[3] महादेवी वर्मा का कथन है — " सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[4] श्री जयशंकर प्रसाद के मत का उल्लेख डा० सच्चिदानन्द तिवारी ने इस प्रकार किया है —" गीतियों में छोटी-छोटी भावनाएँ एक धारा में केन्द्रित रहती हैं। जहाँ अन्तः सौन्दर्य व्यक्त करना होता है, वहाँ प्रबन्ध काव्य की समस्त शक्तियाँ असफल हो उठती हैं और अनुभूतियों का सफल प्रकाशन गीतकाव्य ही कर पाता है।"[5] आधुनिक युग में गीत अँग्रेजी के लिरिक(LYRIC) के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया गया है, जिसकी व्युत्पत्ति लायर से मानी गयी है। लायर एक वाद्-यन्त्र था किन्तु बाद में इसका अर्थ अनुभूतियों के तीव्र प्रकाशन से लिया गया है। पालग्रेव का कथन है —" लिरिक इज ए जनरल टर्म फार ऑल पोएट्री इन व्हिच इट इज आर इट कैन बी सपोज्ड टु बी सस्केप्टेबुल ऑव बीइंग संग टु दि एकम्पनीमेन्ट ऑव ए म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्ट"[6] अर्थात् सामान्य रूप से प्रत्येक उस कविता को गीत कहा जा सकता है जिसे वाद्-य यंत्र के साथ गाया जाय या गाया जा सके।

1- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० 286

2- काव्य शास्त्र मार्ग दर्शन- कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ० 209

3- वही, पृ० 208   4— साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 20

5- आधुनिक कविता में गीत तत्व, पृ० 14,

6- वही, पृ० संख्या 12 पर उद्धृत।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य कवि के भावलोक में उद्वेलित होते हुए मनोवेगों के तीव्रतम होने के उपरान्त, उसकी घनीभूत अनुभूति के फलस्वरूप बाहर निकली हुई अभिव्यंजना है।

नाटक और गीति के मिश्रण को हिन्दी में अनेक नामों से अभिहित किया गया है— पद्य-नाटक, पद्य-रूपक, काव्य-नाटक, काव्य-रूपक, काव्य-एकांकी, छन्दनाट्य, काव्य-नाट्य एवं गीतिनाट्य। इन नामों की सार्थकता पर विचार करना अभीष्ट है।

इन नामकरणों में नाटक एवं रूपक शब्द बहुत प्रयुक्त है अतः इनके सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित है। रूपक दृश्य काव्य की विधा है। रूपारोपात्तु रूपकम्" (साहित्य दर्पण ६/१) अर्थात् एक व्यक्ति का दूसरे में आरोप करने को रूपक कहते हैं। नाटक रूपक का ही एक भेद है किन्तु इधर आजकल रूपक और नाटक को समानार्थी कहा गया है।

सबसे पहले पद्य नाटक और पद्य एकांकी की सार्थकता पर विचार करें। एकांकी नाम तो इसलिए नहीं हो सकता है कि वह अनेकांकी भी होता है। साधारण दृष्टि से गीतिनाट्य का अभिप्राय उस नाटक से है जो पद्य-बद्ध हो। डा0 रामचरण महेन्द्र ने लिखा है कि इस वर्ग में वे एकांकी आते हैं जिनमें साधारणतः गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग किया गया है और संगीत, अभिनय इत्यादि को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया गया है।"[1] डा0 सिद्धनाथ कुमार इसेकाव्य-नाटक के साथ ही साथ पद्य नाटक का भी नाम देना चाहते हैं। छन्दोबद्ध होने के कारण काव्य नाटक को पद्य नाटक कहा जाता है, पर हमें स्मरण रखना है कि केवल छन्दोबद्धता के कारण ही कोई ऐसा नाटक नहीं हो जाता।[2] डा0 कुमार ने जिस सतर्कता की बात कही है वह अक्षरशः सत्य है, क्योंकि गद्य नाटक का पद्य रूपान्तर मात्र उसे गीतिनाट्य नहीं बना सकेगा। पद्य नाटक, पद्य रूपक नामों की व्यर्थता सिद्ध करते हुए डा0 कृष्ण सिंहल ने लिखा है "पद्य-नाटक या पद्य-रूपक काव्य

1- हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास, पृ0 376

2- हिन्दी एकांकी शिल्प विधि का विकास, पृ0 353-54

तत्व से विरहित भी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में इन नामों की व्यर्थता स्वतः सिद्ध है।"[1]

काव्यनाटक या काव्य एकांकी नाम डा0 सिद्धनाथ कुमार ने दिया है। उन्होंने काव्य और नाटक का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करते हुए लिखा है कि "भारतीय साहित्य के शास्त्र में तो नाटक को काव्य ही कहा गया है — वह दृश्य काव्य है। चूंकि प्राचीनकाल के नाटक काव्य-प्रधान होते हैं — काव्यमय होना उनका स्वभाव ही था, उनके लिए काव्य-नाटक शब्द की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रभाव से जब नाटक पूर्णतः गद्य-प्रधान होने लगे, तब काव्य को नाटकों में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए कवि-नाटककारों द्वारा एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 'काव्य-नाटक' शब्द इसी की देन है। इसके द्वारा नाटक की काव्यात्मकता की ओर विशेष रूप से संकेत करने का प्रयत्न किया गया है। ×× × × × फलतः इसे काव्य-नाटक कहना अधिक उचित होगा और लघु-काव्य-नाटक काव्य-एकांकी कहा जाना चाहिए।"[2] काव्य-नाटक या काव्य-एकांकी के नाम के औचित्य की समीक्षा के पूर्व लेखक द्वारा निरूपित काव्य-नाटक के स्वरूप की चर्चा आवश्यक है। डा0कुमार ने काव्य-नाटक के स्वरूप की विस्तृत चर्चा सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य-नाटक तथा हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास नामक पुस्तक के 'काव्य-एकांकी' नामक अध्याय में की है। सैद्धान्तिक विवेचन करने के पूर्व लेखक ने काव्य और नाटक को संगम स्थल कहकर अनुभूतियों के वर्णन को प्रामुख्य दिया है। उसने लिखा है "काव्य-नाटक काव्य और रूपकत्व का संगम-स्थल है। काव्य तत्व और नाटक तत्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप-विधान की सृष्टि कर देते हैं, जिसमें काव्यत्व के कारण मानव-जीवन के राग तत्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं। भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं। नाटक तत्व भी काव्य नाटक के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योग देता है।"[3] लेखक ने काव्य

1- हिन्दी गीति नाट्य, पृ0 6

2- हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ0 353-54

3- सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक, पृ0 13

नाटक के लिए भाव-प्रधान कथावस्तु की आवश्यकता पर बल दिया है। कथावस्तु पात्रों के अन्तर्जगत एवं बहिर्जगत का अंकन करने वाली होना चाहिए। 'नाटको में किसी न किसी कथा-वस्तु की अपेक्षा होती है, भले ही वह भाव-प्रधान हो। कथावस्तु के अभाव में नाटक की रचना सम्भव नहीं। इसीलिए काव्य नाटकों में कथावस्तु में कथावस्तु के माध्यम से हम बहि-र्जगत का भी चित्र देखते हैं। इस प्रकार काव्य-नाटकों में मनुष्य का अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन एक साथ ही चित्रित होता है।"[1] अन्य साहित्य रूपों से इसका वैशिष्ट्य बताते हुए लिखा है "काव्य नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है, जो उसे साहित्य के दूसरे स्वरूप-विधानों से पूर्णतः पृथक् कर देती है, यह है कि काव्य-नाटक में छन्दोबद्ध-लयपूर्ण और अलंकृत भाषा का व्यवहार किया जाता है।"[2] लेखक ने इसमें संघर्ष को प्रमुख स्थान दिया है। संघर्ष को दो भागों में बाँटकर उन्हें बहिर्जीवन के संघर्ष और अन्तर्जीवन का संघर्ष कहा है। लेखक ने इसमें द्वितीय श्रेणी के संघर्ष को अनिवार्य कहा है। "चूँकि काव्य नाटक मनुष्य के अन्तर्जीवन को ही मुख्यतः अपना विषय बनाता है। इसमें द्वितीय श्रेणी के संघर्ष को ही विशेष मूल्य है। अतः यह कहा जा सकता है कि जिन घटनाओं और स्थितियों में राग-तत्वों के संघर्ष के लिए विशेष अवकाश रहता है, वे ही काव्य-नाटकों के आधार हैं।"[3] काव्य नाटक के कथोपकथनों में छन्दबद्धता के सम्बन्ध में लेखक के विचार हैं कि " चूँकि काव्य नाटकों में भावनाओं अनु-भूतियों का ही अंकन प्रधान होता है, उसकी भाषा गद्य के सामान्य स्तर से ऊपर उठकर छन्दोबद्ध हो जाती है।"[4] काव्य नाटक की भाषा सरल ग्राह्य हो। इस सम्बन्ध में लेखक के विचार बहुत ही स्पष्ट हैं —" काव्य-नाटक की भाषा पर भी विचार करना आवश्यक है। नाटक की सबसे पहली विशेषता तो उसमें होनी चाहिए कि रंगमंच से चलकर प्रेक्षागृह में और रेडियो के स्टूडियों से चलकर श्रोताओं के घरों में सहज ही ग्राह्य हो। काव्य स्वान्तः -

---

1- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक पृ0 13

2- वही, पृ0 13-14 3- हिन्दी एकांकी की शिल्प-विधि का विकास, पृ0 355

4- हिन्दीएकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ0 356-57

सुखाय हो सकता है, काव्य-नाटक तो बहुजन सुखाय ही होगा और इसके लिए पहली शर्त है, भाषा की सहजता और बोध-गम्यता।"[1]

इस प्रकार हम देखें तो लेखक ने काव्य-नाटक के स्वरूप की चर्चा करते हुए उसके सभी पक्षों का निरूपण किया है। काव्य-एकांकी नाम तो उसके लघु आकार को द्योतित करता है। अतः यह नामकरण ठीक नहीं है। काव्य-नाटक नामकरण में अतिव्याप्ति दोष प्रतीत होता है क्योंकि काव्य के अन्तर्गत श्रव्य, दृश्य काव्य आ जाते हैं। कृष्ण सिंहल ने लिखा है — "काव्य-नाटक अथवा काव्य-रूपक में काव्य शब्द की व्याप्ति को देखते हुए इन नामों को भी बहुत समीचीन नहीं माना जा सकता है। काव्य एकांकी तो और भी भ्रामक है क्योंकि गीति-नाट्य एकांकी ही नहीं अनेकांकी भी होता है।"[2] गीतिनाट्य नाम डा० कुमार को स्वीकार्य सा है।[3]

आन्तरिक भावों के चित्रण की प्रधानता के कारण उदयशंकर भट्ट ने अपने गीतिनाट्यों को भाव-नाट्य कहा है जिसमें मानसिक उत्थान-पतन की अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है।" मन के विकारों को मनोभाव कहते हैं। दूसरे शब्दों में भाव मानसिक आवेग हैं। इनसे आन्तरिक सृष्टि का संचालन होता है। इन्हीं भावों का चित्रण भाव-नाटकों में है। इसी से मैंने इनकी संज्ञा भाव नाट्य दी है, गद्य की अपेक्षा पद्य में भावों के सूक्ष्म-चित्रण, कल्पना का योग तथा मर्मस्पर्शिता का अवसर अधिक रहता है।[4] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भावनाट्य में लेखक गद्य का प्रयोग भी कर सकता है। भावनाट्य के स्वरूप की चर्चा करते हुए लेखक ने वाचिक अथवा आंगिक अभिनय की अपेक्षा भावाभिनय की चारुता का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं —" ऐसे नाटकों में कथा-सौन्दर्य नहीं होता है, घटना चातुर्य भी नहीं होता किन्तु भावों की अन्विति होती है, उनका विस्तार होता है। एक वाक्य में संकेतमय एवं स्पष्ट भाव-विलास परिस्थिति से उत्पन्न मानस-उद्रेक, पल-पल में कल्पना के सहारे अनुभूति की

1- हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास, पृ0 359

2- हिन्दी गीतिनाट्य, पृ0 6 3- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक, पृ0 22

4- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ01

प्रौढ़ता, यही भाव-नाट्य का लक्षण कहा जा सकता है। × × × × × भाव-नाट्य एक प्रकार की मानसिक उथल-पुथल मचाने वाली भावधारा को लेकर चलता है और अपनी श्रृंखलाएँ लम्बे-लम्बे छोरों से जोड़ कर समन्विति को ग्रहण करता है। × × × × × कायिक व्यापार उसमें नहीं होते, यदि होते हैं तो बहुत थोड़े। केवल मानसिक चिन्तन का उसमें सतत् प्रदर्शन होता है।"[1] भावनाट्य में मानसिक विश्लेषण होता है अतः भट्ट ने उसमें लम्बे संवादों को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं —"भावनाट्य मानव के भाव-जगत से सम्बन्धित होने के कारण संवादों में उच्चस्तर का विशद मानसिक विश्लेषण करते हैं। × × × × × अतः भावनाट्यों या कल्पना प्रधान नाटकों में संवाद कभी-कभी लम्बे होने स्वाभाविक हैं।"[2] उदयशंकर भट्ट ने भाव-नाट्य के प्रदर्शन के लिए विशेष प्रकार के रंगमंच की अपेक्षा की है। वे लिखते हैं —" नाटक शब्द का सम्बन्ध ही नाट्य-अभिनन्दन से है। ये भावनाट्य रंगमंच पर सफलता के साथ खेले जा सकते हैं। पर इनके लिए इनके उपयुक्त रंगमंच तथा उस स्तर के भावुकता-प्रवण दर्शक हों। भावना जन साधारण की वस्तु नहीं अतः भावनाट्य सामान्य जन समूह के समक्ष नहीं खेला जा सकता।"[3] इस प्रकार भट्ट जी ने इसके सैद्धान्तिक पक्ष का अच्छा विवेचन किया है। डा० — रामचरण महेन्द्र भी भावनाट्य के पक्ष में हैं। वे लिखते हैं —" भावनाट्य के अन्तर्गत वे रचनाएँ रखी जा सकती हैं, जिनमें कार्य की अपेक्षा भावमयता, अनुभूति की तरलता और पात्रों का आन्तरिक संघर्ष मिलता है। बाह्य परिस्थितियों का संघर्ष यदि होगा भी तो उसका प्रयोग आन्तरिक संघर्ष को तीव्रतर बनाने के लिए ही होगा। भाव नाट्य वे रूपकी हैं जो पात्रों के आन्तरिक संघर्षों से अनुप्राणित होकर बाह्य जगत में अपना मानस रूप स्थापित करते हैं।"[4] गीतिनाट्य और भावनाट्य का अन्तर कुछ आलोचक को स्पष्ट नहीं हैं। उदय शंकर भट्ट अपने नाटक राधा को भाव नाट्य कहते हैं, जबकि डा० नगेन्द्र जैसे आलोचक गीतिनाट्य कहकर उसकी आलोचना करते हैं।[5] इसी तरह भट्ट जी अपने विश्वामित्र नाटक को गीतिनाट्य कहते

1- राधा, भूमिका, पृ० 6 2— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ० 2

3- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ०2 4— हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास, पृ0363

5- आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 120

हैं, जबकि रामचरण महेन्द्र उसे भावनाट्य मानते हैं।[1] गीतिनाट्य और भावनाट्य की एकता के सम्बन्ध में डा0 नगेन्द्र का कथन है कि गीतिनाट्य से ही बहुत कुछ मिलते-जुलते कतिपय अन्य नाटक हिन्दी में हैं, जिन्हें हम आसानी से भावनाट्य कह सकते हैं। इन दोनों की आत्मा एक ही है; अर्थात् ये गीतिप्राण हैं, इनमें घटना की जटिलता नहीं है, भावना की सरलता है। परन्तु माध्यम भिन्न है। गीतिनाट्य सर्वथा कवितावद्ध होता है, भावनाट्य का माध्यम गद्य होता है।[2] इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि भावनाट्य तथा गीतिनाट्य विभेदक धर्म गद्य अथवा पद्य है। तत्वतः ये दोनों एक ही हैं। गीतिनाट्य और भावनाट्य का अन्तर राम-चरण महेन्द्र ने इन शब्दों से किया है —" भावनाट्य गीतिनाट्य से भिन्न है क्योंकि गीति-नाट्य में स्वर और गेय तत्वों का प्राधान्य होने के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उतने सुचारू रूप से अभिव्यक्त नहीं हो पाता जितना कि भावनाट्य में। भावनाट्य में सदैव मनोवेग एक तरंग की भाँति वाणी से अभिव्यक्त होते हैं और आंगिक विकार तदनुरूप अभिनय करते चलते हैं। इसीलिए भावनाट्यों में प्रतीकों का होना आवश्यक है, जितनी प्रतीकों द्वारा तीव्र अभि-व्यक्ति होगी, उतनी ही वह भावनाट्य अधिक सफल होगा।[3]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भावनाट्य एवं गीतिनाट्य का विभेदक रूप या तो गद्य है, या प्रतीक-विधान। किन्तु यह स्मरणीय है कि गीतिनाट्य में गद्य का प्रयोग नहीं होता है। रंगमंचीय संकेतों के अतिरिक्त सम्पूर्ण वार्तालाप पद्य में ही होगा। मैं समझता हूँ कि भावनाट्य एवं गीतिनाट्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है। क्योंकि स्वयं उदय शंकर उसे कभी गीतिनाट्य एवं कभी भावनाट्य कहते हैं। अतः वह प्रयोग के आधार पर गीतिनाट्य नाम अधिक सार्थक है।

गीतिनाट्य के लिए छन्द नाट्य का प्रयोग सुमित्रानन्दन पंत ने किया है। यह नाम रेडियो की दृष्टि में रखकर किया है। इसके सैद्धान्तिक पक्ष का उद्घाटन बड़ी सफलता

1- हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास, पृ0 365

2- आधुनिक हिन्दी नाटक पृ0109   3- हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास, पृ0 364-65

से किया है। इसके स्वरूप की व्याख्या पंत ने इस प्रकार की है —" साधारणतः रेडियो नाटक तथा रूपकों की जो विशेषता होती है और उनके लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता है, वही सब विशेषताएँ तथा उपकरण छन्दनाट्य की रचना तथा उसके प्रस्तुतीकरण के लिए भी चाहिए। किन्तु छन्द तथा गीतिनाट्य में मेरी दृष्टि में रेडियो नाटक और भी परिपूर्ण होकर निखर उठता है या उसे निखर उठना चाहिए।"[1] इस प्रकार पंत जी की दृष्टि में छन्दनाट्य तथा गीतिनाट्य में किंचित् अन्तर है। छन्दनाट्य में लय तो विद्यमान रहती है किन्तु उसमें गेयता होना अनिवार्य नहीं है। छन्दनाट्य के स्वरूप जानने हेतु पंत द्वारा व्यक्त विचार जानना परमावश्यक है। छन्दनाट्य की कथावस्तु के सम्बन्ध में उनका मत है कि "छन्दनाट्य की सफलता के लिए मुख्य उपकरण विषय और उसका चुनाव है। विषय ऐसा होना चाहिए, जिसमें अधिक मार्मिकता, गहराई, ऊँचाई या व्यापकता हो, जिसमें भावना की शक्ति और उड़ान के लिए स्थान हो, जो काव्य की भूमि पर अवतरित किये जाने योग्य हो। वैसे पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, बौद्धिक, काल्पनिक, घटनात्मक आदि सभी विषयों पर छन्दनाट्य सफलता पूर्वक लिखे जा सकते हैं, लिखे गये हैं, पर उन सभी नाटकों में ऊपर कहे हुए गुणों का रहना उनकी शक्ति प्रेषणीयता तथा सफलता की वृद्धि करता है।"[2] उन्हें छन्दनाट्य में संघर्ष की अवस्थिति भी स्वीकार है। वे लिखते हैं — "छन्दनाट्य में मार्मिक संघर्ष — चाहे वह भावमूलक हो या समस्यामूलक — होना नितान्त आवश्यक हो, जिससे मानव भावना और विचारों का मन्थन उनका आरोह-अवरोह श्रोता के हृदय को स्पर्श कर सके।"[3] पात्रों के सम्बन्ध में पंत जी का विचार है कि —" पात्रों की संख्या भी छन्दनाट्य में कम ही रहनी चाहिए। मुख्य पात्र का व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए और विभिन्न पात्रों में वैचित्र्य या विरोध भी काफी उभरा, निखरा तथा स्पष्ट होना चाहिए।[4] छन्दनाट्य के संवादगत वैशिष्ट्य का निरूपण करते हुए उन्होंने कहा है —"छन्दनाट्य के संलाप छोटे और चुभते हुए हों, भावों और विचारों की प्रेषणीयता के साथ ही यदि

1- शिल्प और दर्शन, पृ0 296

2 से 4 :- शिल्प और दर्शन, क्रमशः पृ0 296, 296, 297

उनमें उक्ति-वैचित्र्य, स्वाभाविकता तथा सरसता हो तो वे मर्म को स्पर्श करते हैं। × × × लम्बे-लम्बे संलाप जिनमें जटिल तर्क या भाषण हों श्रोताओं के मन को विरक्त कर देते हैं।"[1] भाषा के सम्बन्ध में पंत जी का मत है कि छन्दनाट्य की भाषा दुर्बोध्य नहीं होना चाहिए। वे लिखते हैं —" भाषा की सरलता तो उनका अनिवार्य गुण है, जितनी ही कठिन विषय या गूढ़ समस्या हो उतनी ही सरल, सीधी भाषा द्वारा उसे प्रस्तुत करना आवश्यक है।"[2] छन्दनाट्य में वे ही छन्द प्रयुक्त होने चाहिए जिनमें प्रवाह हो और जिन्हें सुविधापूर्वक खण्डों में विभक्त किया जा सके। वे कहते हैं —"छन्दनाट्य के लिए छन्दों का सम्यक् चुनाव अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे छन्द होने चाहिए जिनकी गति में प्रवाह और वेग हो, जो बहुत मन्थर न हों जो छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त किये जा सकें और जिनके अन्त में गुरू- लघु मात्राएँ यथा-सम्भव न हों।"[3] पंत जी ने छन्दनाट्य के लिए संगीत का प्रयोग उचित माना है। संगीत में छन्दनाट्य के प्राण हैं। संगीत का प्रयोग छन्दनाट्य के प्रभाववर्धन, उसकी रोचकता तथा अर्थ प्रस्फुटन के लिए अत्यावश्यक है।"[4] संगीत की भाँति ध्वनि प्रभाव को छन्दनाट्य का आवश्यक अंग मानकर उसकी उपयोगिता पर बल दिया है।[5] सारांश यह है कि कथावस्तु मन को झक-झोरने वाली हो, समस्या सांस्कृतिक तथा गम्भीरतम , रागात्मक महत्व की होनी चाहिए। उसमें मानव भावनाओं तथा विचारों का मन्थन अत्यन्त वास्तविक तथा हृदय स्पर्शी होना अनि-वार्य है। भाषा की क्लिष्टता प्रबुद्ध श्रोताओं के लिए कोई अर्थ नहीं रखती। वैसे भी अगर अभिनेता एवं पात्रगण अपने को नाद-विधान का अंग बनाकर नाटक के उद्देश्य से सच्ची सहा-नुभूति रखकर उसमें तन्मयता के साथ डूबकर उसे मंच पर उपस्थित कर सकें तो उसकी सफ-लता असंदिग्ध है।[6] वैसे पंत जी ने अनेक स्थानों पर छन्दनाट्य को गीतिनाट्य ही कहा है। छन्दनाट्य एवं गीतिनाट्य में कोई अन्तर भी नहीं है अतः इसका सार्थक नाम गीतिनाट्य ही होना चाहिए।

---

1 से 5 तक :- शिल्प और दर्शन, क्रमशः पृष्ठसंख्या 297, 297, 297, 298, 298

6- नाट्यसेतु, पंत, पृ0 5

जहाँ तक इस नाम के बहुप्रचलित होने का सम्बन्ध है, गीतिनाट्य ही ऐसा नाम है, जिसे प्रायः गीतिनाट्यकार, आलोचक, सभी किसी न किसी रूप में उल्लिखित करते हैं। जिस काव्य में गीतितत्व जितना ही अधिक होगा काव्यत्व की मात्रा भी उतनी ही होगी। साहित्य के स्वरूप, नामकरण की व्यापकता तथा अधिक प्रचलन की दृष्टि से गीतिनाट्य नाम ही सर्वाधिक सार्थक प्रतीत होता है।

डा0 शकुन्तला दुबे ने गीतिनाट्य की परिभाषा इस प्रकार की है —" जब कवि दृश्य काव्य का सहारा लेकर गीतात्मक रूप में अपनी अनुभूति को संजोता है, तब उस बाह्य अभिव्यंजना कोगीतिनाट्य की संज्ञा दी जाती है।"[1] विद्वान् लेखिका ने इस परिभाषा में दृश्य काव्यत्व, गीतात्मकता एवं अनुभूति की व्यंजना का उल्लेख किया है। डा0रामचरण महेन्द्र गीतिनाट्य के सम्बन्ध में लिखते हैं —" गीतिनाट्य का तात्पर्य है वह रचना, जिसमें गीत अधिक हों, या वह नाटक जो केवल गीतों पर आधारित हो, जिसमें गेय छन्दों का प्राधान्य हो। गीतिनाट्यों में प्रचुर काव्य-सौष्ठव तथा गेय तत्व रहना चाहिए। कवित्व उसका प्राण है। इसमें संगीत भी रहता है।[2] विद्वान् समीक्षक ने गीतिनाट्य में गीतों का प्राचुर्य, कवित्व, संगीत, गेय छन्दों की अनिवार्यता पर बल दिया है। डा0 नगेन्द्र गीतिनाट्य की परिभाषा इस प्रकार करते हैं —" गीतिनाट्य से साधारणतः तात्पर्य है – पद्यबद्ध नाटक का। परन्तु गीतिनाट्य के लिए यही पर्याप्त नहीं है। उसका माध्यम गद्य न होकर केवल पद्य हो। उसके लिए भावमयता अनिवार्य है। गीतितत्व में भावना की प्रमुखता है। इसीलिए गीतिनाट्य में कार्य की अपेक्षा भाव का महत्व अधिक है।"[3] तलस्पर्शी समीक्षक ने गीतिनाट्य में पद्य-विधान के साथ भाव प्रवणता को प्रामुख्य दिया है। डा0 नगेन्द्र इसे रूपक का एक भेद मानकर इसमें भावना के प्राबल्य को प्रामुख्य दिया है। वे लिखते हैं —"गीतिनाट्य रूपक का ही एक भेद है, जिसका प्राणतत्व है – भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।[4]

1- काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, पृ0 534
2- हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार—पृ0 75
3- आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 88 4— आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 95

इसी तरह के विचार डा० गिरीश रस्तोगी ने व्यक्त किया है। वे लिखते हैं —" साधारण दृष्टि से गीतिनाट्य का अभिप्राय उस नाटक से है, जो गद्य में विरचित न होकर पद्यबद्ध हो किन्तु केवल पद्यबद्ध होने से ही उसे गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसी नयी विधा है, जिसमें गीतितत्व होने के साथ-साथ भावना की प्रमुखता होती है।"[1] नाट्य समीक्षक ने पद्यबद्धता, गीतिमयता एवं भावना का उल्लेख किया है। डा० शान्ति मलिक गीतिनाट्य के स्वरूप की चर्चा करती हुई लिखती हैं —" साधारण रूप से पद्यबद्ध नाटकों को गीतिनाट्य की संज्ञा दी जाती है, किन्तु इनके लिए पद्य की अनिवार्यता के साथ साथ भावमयता रसात्मकता एवं अभिव्यक्ति में नाटकीयता भी आवश्यक है।"[2] लेखिका ने उक्त परिभाषा में पद्यबद्धता, भावमयता, रसात्मकता एवं नाटकीयता इत्यादि तत्वों को स्वीकृति दी है। इसके शिल्पविधि के विकास सूत्रों का उल्लेख करती हुई लेखिका ने लिखा है —" इन गीति रचयिताओं ने अपने ही मौलिक विधान, छन्दों एवं अपनी ही लय तथा स्वर संगति में नाटक के सूत्र फैलाये हैं। इनमें पात्रों की विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्थितियों में भावावेगों की तीव्रता और गहनता, लय-वैविध्य द्वारा सुन्दर रूप से प्रकट होती है। इनमें वैयक्तिकता की बड़ी ही सुन्दर सृष्टि हुई है। इन रचनाओं में दिये गये रंग-संकेत एवं ध्वनि-प्रभाव नाटकीय सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं।[3]

उदयशंकर भट्ट ने गीतिनाट्य का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। सामान्यतया उन्होंने पद्यबद्ध नाट्य रचनाओं को गीतिनाट्य की संज्ञा से अभिहित किया है। उनका विश्वास है कि गीतिनाट्य की विशिष्टता मानसिक अथवा आन्तरिक क्रिया से संश्लिष्ट होने में अर्थात् उसमें बाह्य क्रिया अथवा गति का अभाव रहता है। वे लिखते हैं —"कविताबद्ध नाटकों को इतिहास में गीतिनाट्य की संज्ञा दी गयी है। इन नाटकों में मानव के हृदय के संचारीभाव

1- हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन, पृ० 146

2- हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० 447

3- हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० 458

का अभिव्यक्तिकरण होता है। क्रिया इनमें है पर सामान्य नाटकों की भाँति नहीं। इसमें क्रिया मानसिक है। इसी से भावों का उत्थान-पतन होता है, जहाँ गीति पद्य में स्वरस भावों का संचालन होता है, उसे गीतिनाट्य कहते हैं।"[1] भट्ट जी ने पद्यबद्ध नाटकों को गीतिनाट्य कहने का प्रयास अन्यत्र भी किया है।[2]

पाश्चात्य साहित्य में गीति-नाट्य पर जम कर विचार हुआ है। वहाँ इस प्रकार की रचनाओं के तीन नाम बहु-प्रचलित हैं —

(1) ड्रैमेटिक पोयम्स(Dramatic Poems)नाट्य कविता

(2)क्लोजेट ड्रामा(Closet Drama)पाठ्य नाटक

(3)पोयटिक ड्रामा(Poetic Drama)गीतिनाट्य

इन नामों में साम्य अवश्य है, किन्तु उनके रचना-विधान में पर्याप्त अन्तर है। नाट्य कविता के सम्बन्ध में डा0 श्रीपति त्रिपाठी ने लिखा है —" नाट्य-कविता में काव्यतत्व प्रधान होता है। उसका ढाँचा नाटकीय हो सकता है, अर्थात् उसमें संवाद पद्य में होते हैं, परन्तु उसका आनन्द पढ़कर या सुनकर ही उठाया जा सकता है। अभिनय की गुंजाइश उसमें नहीं है। उसमें संवादों के द्वारा घटना और परिस्थिति का विकास होता है और चरित्र काल्पनिक होते हैं। सारांश यह है कि उसका बाहरी ढ़ाँचा नाटकीय होता है परन्तु प्रधानता उसमें रहती है काव्यतत्व की।"[3] विहंगम दृष्टि डालने पर, गीतिनाट्य और नाट्य कविता में बहुत साम्य प्रतीत होता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों में बहुत अन्तर दिखायी देता है क्योंकि गीतिनाट्य का मूलाधार नाटक है गीतितत्व उसमें गौण है, जबकि नाट्य कविता में काव्यत्व का प्राधान्य है, नाट्यत्व गौण। मून सिंहल ने लिखा है —"गीति-नाट्य मुख्यतः नाटक है अतएव उसका पूरा गठन (स्ट्रक्चर) नाटकीय होता है। दूसरी ओर

1-विश्वामित्र और दो भावनाट्य, भूमिका, पृ0।

2- अशोक वन-बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य- भूमिका, पृ0 क एवं ग

3- हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ0 345

नाट्य कविता तत्वतः काव्य है, अतः उसका रूप-विन्यास काव्यात्मक होता है। दोनों में ही नाट्य-तत्व और काव्य-तत्व की समानता होते हुए भी अत्यधिक असमानता है। गीतिनाट्य में कविता सहायक के रूप में आती है, स्वामी के रूप में नहीं। उसकी कथावस्तु , चरित्र आदि के अनुसार वह अपने आप को ढालती रहती है। इसके विपरीत नाट्य-कविता में कविता स्वामी बनकर आती है और नाटक सहायक।[1] साथ ही यह भी स्मरणीय है कि कोई भी नाटक पद्य मात्र लिखने से गीतिनाट्य का स्वरूप नहीं ले सकेगा। क्योंकि नाट्य कविता में चरित्र का विकास नहीं होता, उसमें कथोपकथन विशिष्ट साहित्यिक स्तर के ही होते हैं, उसमें रंग-निर्देश , पात्रों के गमनागमन का उल्लेख नहीं होता है। जबकि गीतिनाट्य में नाट्यतत्व के साथ काव्यतत्व का सामंजस्य रहता है, जिसमें भावात्मक प्रधान कथानक, चरित्र-चित्रण, प्रवाह-पूर्ण लययुक्त छन्दोबद्ध संवाद तथा रंग-संकेत, का उल्लेख होता है।

पाठ्य-नाटकों की रचना गोष्ठी इत्यादि में पढ़ने के लिए की जाती है। इस सम्बन्ध में डा0 श्रीपति त्रिपाठी का कथन है कि पाठ्य नाटक ऐसे नाटकों को कहते हैं जो किसी छोटी गोष्ठी में पढ़ने के लिए ही बनाये गये हैं। अभिनय के तत्व उसमें नहीं मिलते हैं। × × × × × इनकी शैली ही अभिनय की कमी को पूरा कर देती है। इसकी शैली अलंकृत भावपक्ष की प्रबलता तथा कार्य-व्यापार में शिथिलता लिए होती है।"[2] पाठ्य नाटक के स्वरूप को देखते हुए यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि गीतिनाट्य अपने स्वरूप में इससे नितान्त भिन्न है। एफ0डब्लू बेण्डर गीतिनाट्य के स्वरूप को बताते हुए उसे नाट्यकविता एवं पाठ्यनाटक से भिन्न कहा है। वे लिखते हैं —" दि पोयटिक ड्रामा दैन डिस्टिंक्टली डिफ- एण्ड इज नाइदर दि क्लोजेट ड्रामा नॉर दि ड्रैमेटिक पोयम। इट इज ए मी पोयटिक एण्ड ड्रैमेटिक वेव टु फार्म एण्ड कन्टेन्ट इन एक्टिंग को इन वर्स पजेसिंग दि ब्यूटी एण्ड आथ-ऐंटिसिटी विच वी एसोसियेट विद पोयट्री एट इट्स बेस्ट। दि ट्रू पोयटिक को इज नॉट मेय-

---

1- हिन्दी गीति-नाट्य, पृ0 81-82

2- हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ0 345

रली स्टफ्ड विद वर्स। इट इज वन इन व्हिच दि वर्स इज एन एसेन्शियल एण्ड इन्विटेबुल ओवर फ्लोइंग ऑव दि प्लेराइट्स थाट। इट मस्ट काल सो फार पोयेटिक फार ड्रैमेटिक टैलेण्ट वाई हार्ड स्टडी एण्ड जनरली बाई लांग प्रैक्टिस।"[1] अर्थात् सीमित ढंग से परिभाषित करने पर गीतिनाट्य न तो पाठ्य-नाटक है और न ही नाटकीय काव्य है। यह एक ऐसा नाटक है जो अपने रूप-विधान एवं विषय वस्तु के अनुसार काव्यमय तथा नाटकीय समानरूप से है तथा छन्दोबद्ध ऐसा अभिनेय नाटक है, जिसका सौन्दर्य एवं आदर्श उत्कृष्ट कविता के साथ सम्बद्ध करने में है। एक वास्तविक गीतिनाट्य में छन्द बलात् नहीं ठूंसे जाते हैं, इसमें छन्द नाटककार की उद्वेलित भावनाओं का आवश्यक एवं अवश्यम्भावी साधन है। एक नाटकीय प्रतिभा के लिए काव्य व रंगमंचीय होना आवश्यक है जिसे कठिन अध्ययन एवं दीर्घाभ्यास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नाटक यदि अन्य साहित्य रूपों में रमणीय है तो गीतिनाट्य नाट्यों में भी रमणीय है। क्योंकि गीतिनाट्य की यह विशेषता है कि वह एक समय दो स्तरों पर क्रिया करता है, एक वह ऐसी मानवीय आकृतियों को उपस्थित करता है जो एक साथ देखी भी जा सकती है और जिनसे विश्वजनीन सत्य की झांकी भी मिल सकती है। "इट इज कैरेक्टिरिस्टिक ऑव पोयटिक ड्रामा टु मूव ऑन टू प्लेन्स एटवन्स टु प्रेजेन्ट ह्यूमन फिगर्स दैट कैन साइमल्टेनियसली बी सीन एण्ड सीन थ्रू।"[2] गीतिनाट्य की महत्ता का एक और स्पष्ट कारण यह है कि उसमें कवित्व शक्ति का ऐसा अनूठा मिश्रण रहता है, जिससे दर्शक नाटकीय पात्रों से तादात्म्य कर आनन्द तो उठाता ही है, साथ में उसे काव्यत्व का रसास्वादन भी करने को मिलता है। हार्ली ग्रेनविल बर्कर का कथन है कि ——
"व्हाट वी मे जस्टीफाइब्ली काल ए न्यू पोयटिक ड्रामा फ्रीड फ्राम मेयर फार्मूला ईक्वली एण्ड एक्टीव्हली बैलेंस बीच एन ड्रामा एण्ड पोयट्री।"[3]

1- स्कोप एस्पेक्ट ऑव माडर्न ड्रामा, पृ0 379 'आलोचना' नाटकांक' पृ0 86 पर उद्धृत)
2- पर्स ड्रामा- क्रिस्टोफर हिक्सी-पृ05 (हिन्दी गीतिनाट्य -सिद्दल पृ0 19)
3- ऑन पोयट्री इन ड्रामा-पृ013

काव्य और नाटकों के मिश्रण के कारण गीतिनाट्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डा0सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है कि "काव्य नाटक काव्यत्व और रूपकत्व का संगमस्थल है। काव्य तत्व और नाटक तत्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप-विधान की सृष्टि कर देते हैं, जिसमें काव्यत्व के कारण मानव-जीवन के राग-तत्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं, भाव - नाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं।"[1] पाश्चात्य साहित्य में गीति-नाटकों को सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा गया है। इस सम्बन्ध में जीन्स साहब के शब्द उल्लेखनीय हैं -"दि ग्रेटेस्ट एक्जाम्पुल्स ऑव ड्रामा आर पोएटिक ड्रामा एण्ड दि हाईएस्ट स्कूल्स ऑव ड्रामा आर एण्ड मस्ट एवर बी स्कूल्स ऑव पोएटिक ड्रामा।"[2]

गीतिनाट्य में बाह्य चरित्र, बहिर्जीवन और उथली घटनाओं का अभाव रहता है अतः यह जीवन की अतल गहराइयों में डूबी हुई उन गहन शक्तियों आन्तरिक प्रवृत्तियों पर जोर देता है, जो जीवन के लिए प्रेरणाप्रद होती हैं। इसके लिए गीतिनाट्यकार भावात्मक कथावस्तु को स्वीकार कर उन घटनाओं का सृजन, करता है, जिसमें नाटकीयता के साथ जीवन के सघन क्षणों की अभिव्यक्ति होती है। गीतिनाट्यकार विभिन्न क्षेत्रों से कथावस्तु ग्रहण कर सकता है किन्तु उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र पौराणिक है, जो अपनी सीमा में हमारे गहरे अन्तस्तल को स्पर्श करता है। चूँकि गीतिनाट्य में भावात्मकता के प्राधान्य के कारण मानवमन की रागात्मक अनुभूतियों, विचारों, भावनाओं का आधिक्य है अतः इसमें ऐसे पात्रों की कल्पना की जाती है, जो हमारे मन के अनुकूल होते हैं। उनमें आन्तरिक संघर्ष का प्राबल्य रहता है। उनके अन्तर्मन के तनाव का गीतिनाट्यकार इस कुशलता से उद्घाटित करता है कि वे हमारे बहुत समीप प्रतीत होते हैं क्योंकि गीतिनाट्यकार ऐसी कथावस्तु एवं पात्रों का चयन करता है जिससे आधुनिक जीवन के मूल्यों का उद्घाटन हो सके। अनास्था का द्वन्द्व, मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक पतन के कारण आज का मानव मोह, भटकाव, द्वन्द्व, नैराश्य, एवं तनाव से

1- सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य-नाटक, पृ0 13

2- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त-भाग2 डा0गोविन्द त्रिगुणायत, पृ0 300 पर उद्धृत।

असम्पृक्त प्रतीत होता है। गीतिनाट्य में पद्यात्मक संवाद प्रयुक्त होते हैं क्योंकि इसमें जिस भावात्मक जीवन की झाँकी अंकित की जाती है वह गद्य के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं हो सकती। मानव मन की उत्तेजना प्रधान भावनाएँ लयात्मक रूप में ही प्रकट होती हैं। ये पद्यात्मक संवाद सजीव एवं स्वाभाविक होते हैं। शब्दावली दैनिक जीवन के व्यवहारोपयोगी होती है। लय और टोन के उतार-चढ़ाव से जहाँ प्रवाहमयता उत्पन्न की जाती है, वहीं उसमें नाटकीयता उत्पन्न करने का पूरा प्रयास किया जाता है। इसमें तुकान्त, अतुकान्त, मुक्त छन्दों का प्रयोग किया जाता है। भावानुकूल शब्द-योजना, मुहावरे इत्यादि का ऐसा उपयोग किया जाता है, जिससे दर्शक के मन में अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न हो सके। बिम्बों की ऐसी योजना की जाती है कि वे एक ओर विषय को मूर्त और ग्राह्य बना सके तथा पाठकों, दर्शकों एवं श्रोताओं की सूक्ष्म भावनाओं को उत्तेजित कर उन्हे रसमग्न कर सकें। अलंकार एवं प्रतीक-विधान से गीतिनाट्यकार पाठकों एवं श्रोताओं की ऐन्द्रियानुभूति को जाग्रत कर उनके भावों को रूपायित करता है। गीतिनाट्यकार अपने गीतिनाट्य को रंगमंच पर सफल बनाने के लिए आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक अभिनयों का उल्लेख यथावसर करता है तथा रंग-भूमि, प्रकाश, पर्दे, ध्वनि योजना इत्यादि की योजना करता है। उसे रेडियो में प्रसारित करने योग्य बनाने हेतु वह टोन, एवं ऐसी ध्वनि योजना की व्यवस्था करता है जिससे वह अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कर सके। सार यह है कि गीतिनाट्य काव्य एवं नाटक के मिश्रण से ऐसा साहित्य रूप उत्पन्न हुआ है जो अपने आप में सभी विधाओं से रमणीय एवं श्रेष्ठ है तथा आज के युग के अनुकूल भी है।

द्वितीय अध्याय

गीतिनाट्य के तत्व

द्वितीय अध्याय

' गीतिनाट्य के तत्व'

प्रथम अध्याय में गीतिनाट्य के 'स्वरूप' की चर्चा करते हुए हमने यह देखा है कि गीतिनाट्य गीति एवं नाटक का सम्मिश्रण है अतः इसमें गीति एवं नाटकों के तत्वों का समन्वय होना आश्चर्यजनक नहीं है। गीति तत्व आदिकाल से मानव के सुख-दुःखों उसके वैयक्तिक भावों, संवेगों की सहज अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। इसकी परिभाषा एवं इसके तत्वों के सम्बन्ध में बहुत विवाद होने पर भी इतना तो लिखा ही जा सकता है कि गीतिकाव्य स्वतन्त्र पद-रचना है, जिसमें व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार से होती है कि वह सम्पूर्ण मानव-हृदय की कोमलानुभूतियों का प्रतिनिधित्व कर सके, साथ ही इसमें भावों की संक्षिप्तता, उसमें संगीतात्मकता होती है। कुल मिलाकर गीतिकाव्य के तत्वों में से गेयता, व्यक्तित्व, भाव-प्रवणता, रागात्मक अन्विति, एवं प्रभावमयी शैली इत्यादि को स्वीकार किया जा सकता है। गीतिनाट्य में गीतिकाव्य के उक्त तत्वों में से गेयता, व्यक्तित्व की प्रधानता, भाव-प्रवणता, संगीतात्मकता एवं प्रभावमयी शैली का समन्वय है। चूंकि इसमें नाटक के तत्वों का समावेश है अतः उनका उल्लेख करना अत्यावश्यक है।

भारतीय नाट्य शास्त्र में वस्तु, रस, नेता[1] को नाटक के भेदक तत्वों को स्वीकार किया गया है। दूसरी ओर पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों ने नाटकों के छः तत्व - कथानक, चरित्र, पदावली, विचारतत्व, संगीत तथा दृश्य विधान[2] या कथावस्तु, चरित्र, संवाद, देशकाल, भाषा-शैली और उद्देश्य को स्वीकार किया है। यहाँ ध्यातव्य है कि वस्तु, चरित्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य तत्वों के आधार पर उपन्यास, कहानी नाटकों की समीक्षा की जाती है तो, इनमें अन्तर ही क्या रह गया? तीनों का पृथकत्व किस मानदण्ड के आधार पर सिद्ध किया जाय। गीतिनाट्य में नाटक के इन्हीं तत्वों को समीक्षा का मापदण्ड बनाया जाता है अतः नाटक और गीतिनाट्य के अन्तर को पहिचानना कठिन हो जाता है। इसलिए आवश्यक यह है कि गीतिनाट्यकारों द्वारा उल्लेखित तत्वों में से उनकी समीक्षा का आधार बनाया जाय।

1-दशरूपक-धनंजय, 2-अरिस्टॉटल-थ्योरी ऑव पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट-एस०एच०बुचर, पृ० 25

उदय शंकर भट्ट, सुमित्रानन्दन पंत, सिद्धनाथ कुमार ने गीतिनाट्य के सैद्धान्तिक पक्षों का विवेचन किया है। उदयशंकर भट्ट ने गीतिनाट्य के तत्वों का उल्लेख करते हुए पद्यबद्धता, कथावस्तु, सरस भावों का संचालन, आन्तरिक संघर्ष,[1] सीमित पात्र[2] समयानुसार लघु एवं दीर्घ संवाद,[3] एवं अभिनेयता[4] की स्वीकृति दी है। सुमित्रानन्दन पंत गीतिनाट्य को छन्दनाट्य कहकर उसे रेडियो की सामर्थ्य, सीमा से सम्बद्ध करते हैं। तत्वों की दृष्टि से उन्होंने मार्मिक, व्यापक कथावस्तु,[5] संघर्ष[6] मानवीय एवं सजीव व्यक्तित्व[7] सम्पन्न सीमित पात्र, छोटे, चुस्ती उक्तिवैचित्र्य युक्त स्वाभाविक सरस संवाद,[8] सरल-सीधी भाषा,[9] प्रवाह युक्त छन्द चाहे वह मात्रिक हों या मुक्त छन्द,[10] संगीत,[11] ध्वनि प्रभाव,[12] अभिनेयता[13] इत्यादि का उल्लेख किया है। सिद्धनाथ कुमार कथावस्तु अन्तर्जीवन एवं बहिर्जीवन,[14] छन्द, अलंकृत भाषा के साथ संवाद, पात्र,[15] इत्यादि तत्व स्वीकार करते हैं। आलोचकों में डा0नगेन्द्र ने पद्यबद्धता, भावमयता, आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष[16] का उल्लेख किया है। डा0सिद्धनाथ कुमार गीतिनाट्य में काव्यत्व और नाटकत्व का मिश्रण मानकर उसमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, अन्तर्जीवन एवं बहिर्जगत, संघर्ष छन्द पद्यबद्धता, भाषा,शैली तत्व मानते हैं।[17] सार यह है कि गीतिनाट्य में कथावस्तु हो, पात्रों के चरित्र-चित्रण में उनके अन्तर्द्वन्द्व का निरूपण किया जाय, संवाद पद्यबद्ध हो, भाषा-शैली सरल, स्वाभाविक, बिम्बमयी हो, जिसमें बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति को सरल बनाया गया हो, तथा जिसे रंगमंच पर सरलता से उपस्थित किया जा सके या जिसका प्रसारण रेडियो से हो सके।

1- विश्वामित्रऔर दो भावनाट्य, पृ0 1   2- वही पृ0 6   3- विश्वामित्र एवं दो भावनाट्य पृ02

4-विश्वामित्र एवं0, पृ02

5 से 13 तक :- शिल्प और दर्शन पृ0 क्रमश:--296, 296, 297, 297, 297, 297, 298, 298, 299

14-15 :- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक, पृ0 13, 14

16:- आधुनिक हिन्दी नाटक पृ0 88,   17:-हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, पृ0 354-359

(1) कथावस्तु :—

कथावस्तु काव्य का शरीर माना गया है। रस को प्रस्फुटित करने तथा चरित्रों को प्रस्तुत करने में कथावस्तु का विशेष महत्व है। भारतीय नाट्यशास्त्रियों ने इस पर विस्तृत विवेचन किया है। कथावस्तु के लिए प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र-[1]भेद उल्लिखित है। कथावस्तु को आधिकारिक एवं प्रासंगिक [2] दो भागों में विभक्त किया गया है। रंगमंच की दृष्टि से दृश्य एवं सूच्य[3] कथावस्तु कही गयी है। सूच्य अंशों को विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार तथा अंकमुख [4] इत्यादि विधियों से प्रदर्शित किया जाता है। कार्य की दृष्टि से कथावस्तु को आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम [5] इत्यादि पाँच अवस्थाओं, पाँच अर्थ-प्रकृतियों — बीज, पताका, प्रकरी, बिन्दु, कार्य [6] तथा उनके संयोग से पाँच सन्धियों [7] — मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण में विभक्त किया गया है। इन सन्धियों के अंगों का विस्तृत विवेचन किया गया है — जैसे मुख सन्धि के बारह अंग — उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद, करण और भेद, प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग विलास, परिसर्प, विधूत, तापन, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, विरोध, पर्युपासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार, गर्भ सन्धि के भी तेरह अंग — अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, प्रार्थना, क्षिप्ति, त्रोटक, अधिबल, उद्वेग तथा विद्रव, विमर्श सन्धि के 13 अंग — अपवाद, सम्फेट, अभिद्रव, शक्ति, व्यवसाय, प्रसंग, द्युति, खेद, निषेधन, विरोधन, आदान, छादन और प्ररोचना, निर्वहण सन्धि के 14 अंग — सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, कृति, प्रसाद, आनन्द, समय, उपगूहन, भाषण, पूर्ववाक्य, काव्यसंहार और प्रशस्ति हैं। इन अंगों की योजना से अवांछनीय प्रसंगों का गोपन मर्मस्पर्शी अंशों की अवतारणा, चमत्कार का प्रदुर्भाव एवं कथा का विकास सरलता से हो सकता है। इन अंगों का उपयोग रस की दृष्टि से होना चाहिए।[8]

1- दशरूपक, 1/15
2- वही, 1/11
3- वही, 1/16
4- साहित्यदर्पण, 6/54
5- दशरूपक 1/19
6- नाट्यदर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र 1/28
7- नाट्यशास्त्र, 19/1
8- साहित्यदर्पण

पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू का नाम स्मरणीय है। उसने कथावस्तु को त्रासदी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है। कथा के चयन के आधारों में से उसने दन्तकथा मूलक कल्पनामूलक एवं इतिहासमूलक को स्वीकृति दी है। कथा को सरल तथा जटिल दो भागों में विभक्त किया है।[1] जटिल कथानक के प्रमुख तीन अंग — महान त्रुटि(Hamartea) स्थिति-विपर्यय(Peripety) तथा अभिज्ञान (Discovery) माने गये हैं। कथावस्तु के चार संगठक तत्व माने हैं — प्रस्तावना (Prologue) उपाख्यान(Episode) उपसंहार (Exode) वृन्दगान(Chorus)[2] इसके साथ पूर्णता, एकता, सम्भाव्यता, कौतूहल स्वाभाविकता इत्यादि विशेषताएँ अरस्तू ने स्वीकार की हैं। कुछ नाट्य आचार्य ने कथावस्तु की पाँच अवस्थाओं का उल्लेख किया है — प्रारम्भिक अवस्था(Exposition) संघर्ष का विकास (Rising Action) चरम सीमा (Crisis) संघर्ष का ह्रास(Falling Action या) उपसंहार(Catastrophe)[3]। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देश में आवश्यकतानुसार नाट्य रूढ़ियों का निर्माण होता है। समयानुसार इन मानदण्डों में परिवर्तन होता रहता है। कहना नहीं होगा कि नाटक में दर्शकों का सर्वाधिक महत्व है, अतः वर्तमान युग में नवीन प्रयोग होने के कारण नाट्य-साहित्य में प्राचीन रूढ़ियों का सर्वथा बहिष्कार किया गया है क्योंकि नाट्यकार पुरातन शिल्प-परम्पराओं से आबद्ध होकर जन भावनाओं के साथ न्याय नहीं कर सकता। नाट्यकार स्रष्टा एवं द्रष्टा दोनों होता है। वह दर्शकों की रुचि के अनुकूल कथावस्तु में रूढ़ियों का उपयोग करता था।

गीतिनाट्य नयी विधा होने के कारण इसमें प्राचीन रूढ़ियों का तिरस्कार किया गया है। इसमें कथावस्तु की अनिवार्यता का उल्लेख सभी नाट्यकारों एवं नाट्य समीक्षकों ने की है।

1- अरिस्टाटेल्स थ्योरी आव पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट — बुचर, पृ0 39

2- वही, पृ0 43 3- पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त- डा0शान्तिस्वरूप गुप्त, पृ0285

डा०सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है —"नाटकों में किसी न किसी कथावस्तु की अपेक्षा होती है, भले ही काव्य-प्रधान हो। कथावस्तु के अभाव में नाटक की रचना सम्भव नहीं इसलिए काव्य नाटकों में कथावस्तु के माध्यम से हम व्यक्तिगत का भी चित्र देखते हैं।[1] यह अतर्क्य है सिद्धान्त है कि गीतिनाट्य के लिए किसी न किसी घटना-क्रम की उपस्थिति अनिवार्य है किन्तु जीवन की प्रत्येक घटनाएँ दर्शकों की संवेदनाएँ जाग्रत नहीं कर सकती हैं अतः गीति-नाट्यकार पौराणिक क्षेत्रों से या अतीत की स्वर्णिम घटनाओं का चयन करता है। यद्यपि कथा-वस्तु के लिए ऐसा कोई बन्धन नहीं है कि वह किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित हो। गीतिनाट्यकार समाज, पुराण, इतिहास, राजनीति — के क्षेत्रों से या कल्पना प्रसूत घटनाओं का विन्यास कर सकता है। आज का जीवन इतना जटिल एवं घटनापूर्ण हो गया है जिससे सजग कलाकार को अपने जीवनगत अनुभवों से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है किन्तु अधिकांश गीतिनाट्यों की कथावस्तु पौराणिक क्षेत्रों से गृहीत है। बात यह है कि आधुनिक काल मूल्यों के विघटन तथा बुद्धि-प्रधान होने के कारण काव्य-जगत के लिए अनुपयुक्त है और गीतिनाट्य का विधानक भावप्रधान है। इसमें उन घटनाओं को विन्यस्त किया जाता है, जो भावा-त्मक होने के कारण हमारे अन्तस्तल को प्रभावित कर सकती हैं। रोनाल्ड पीकक का सुविचारित मत है कि पौराणिक कथाएँ स्वाभाविक रूप से काव्यात्मक हैं अतः उन पर आधृत नाटक भी काव्यात्मक होंगे —"मिथ्स बिइंग आर नेचुरली पोयटिक दि प्लेज बेस्ड आन देम टेण्ड टु बी पोयटिक।"[2] इसी तरह जे० आवनेका ने गीतिनाट्य की कथावस्तु के लिए पौराणिक कथाओं को स्वीकार किया है —" दि टेक्चर आव पोयटिक ड्रामा इन वर्स इट्स सब्टेल एनालिसिस।[3]

1- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य-नाटक, पृ० 13

2- दि आर्ट आव ड्रामा, पृ० 234 (हिन्दी गीतिनाट्य-कुसुम सिंहल पृ० 54 पर उद्धृत)

3- एन असेसमेन्ट आव ट्वेन्टियथ सेंचुरी लिटरेचर, पृ० 158 (उद्धृत हिन्दी गीतिनाट्य — पृ० 53)

तात्पर्य यह है कि पौराणिक कथाएँ हमारे मन की कोमल भावनाओं को उत्तेजित करने में पूर्ण समर्थ होने के कारण गीतिनाट्य के विषय के लिए उपयुक्त क्षेत्र हो सकती है। गीतिनाट्य में पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं का प्रयोग वर्तमान जीवन की वास्तविकता को उभारने के लिए ही किया जाना चाहिए। अतीत की ओट से शाश्वत मानव-जीवन की व्याख्या करना एवं आधुनिक युग की समस्याएँ सुलझा कर उसे नयी जीवन दृष्टि देना ही गीतिनाट्य के लिए श्रेयस्कर है। इसमें अतीत अतीतमात्र के लिए प्रिय न होकर तत्कालीन चरित्रों, घटनाओं और परिस्थितियों में नूतनता एवं आधुनिकता का पुट देकर युगीन मानव-जीवन की गम्भीर व्यंजना करना अपेक्षित है। अतीत की कथावस्तु को प्रतीकों के सूत्रों में पिरोकर जहाँ एक ओर वर्तमान युग की समस्याएँ प्रभावोत्पादक रूप में सुगमता से प्रस्तुत की जा सकती हैं, वहीं दूसरी ओर इससे कलात्मकता के साथ ही भावोत्तेजन(पोयटिक इण्टेन्सिफिकेशन) की भी अधिक सम्भावना बढ़ जाती है।[1] हिन्दी गीतिनाट्य में पौराणिक क्षेत्रों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक- काल्पनिक क्षेत्रों से भी विषयवस्तु का चयन हुआ है।

वस्तु विन्यास की दृष्टि से गीतिनाट्यकार विषयवस्तु की सम्यक् योजना, व्यापारान्विति और प्रवाहमयता की ओर विशेष सजग रहता है क्योंकि कथा विस्तार करते समय उपकथाओं में ऐक्य स्थापित करना कठिन कार्य है। यदि प्रासंगिक कथाओं को प्राचुर्य देकर विस्तृत वर्णन किया गया, तो कथा-प्रवाह में व्याघात उत्पन्न हो जायेगा और उसकी अन्विति मनोनुकूल प्रभाव नहीं डाल सकेगी। व्यापारान्विति के लिए गीतिनाट्यकार को उन घटनाओं की योजना करनी चाहिए, जिन पर दर्शक या पाठक विश्वास कर सकें। यद्यपि गीतिनाट्य में कथा का बाहुल्य नहीं होता है फिर भी वर्णित घटनाओं में श्रृंखलाबद्धता अनिवार्य है। डा०शान्ति मलिक नाटक के सिद्धान्त पक्षों का विवेचन करती हुई घटनाओं की सुसम्बद्धता के सम्बन्ध में लिखती हैं —" श्रृंखलाबद्ध रूप में उपस्थित करने का तात्पर्य यह है कि घटनाओं का क्रम नियमित

1- हिन्दी गीतिनाट्य, पृ० 35

और सुसम्बद्ध हो, अर्थात् घटनाएँ परस्पर कारण-कार्य और क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में अभिन्न रूप से बँधी हुई हों। इस प्रकार जब प्रत्येक घटना और क्रिया एक क्रमिक सूत्र में अपेक्षित ढंग से गुम्फित होगी अथवा आगे आने वाली कड़ी पहले से पूर्णतया जुड़ी हुई होगी, तो नाटक में अनिवार्य रूप से रचनागत परिपूर्ति, सन्तुलन एवं सौष्ठव आने के साथ नाटकीय गति में आरोह-अवरोह की स्वाभाविकता तथा नाटक की प्रभावान्विति में सघनता प्रगाढ़ता एवं प्रभविष्णुता स्वयमेव आ जायेगी।"[1] इसी प्रकार ए० निकोल ने शृंखलाबद्ध घटनाओं पर जोर देते हुए लिखा है —" आव आल दीज पार्टस दि मोस्ट इम्पार्टेण्ट इज दि काम्बिनेशन आव इन्सीडेण्ट्स।[2] कथावस्तु में गतिशीलता के लिए गीतिनाट्यकार को अंक और दृश्यों में सन्तुलन बनाये रखना चाहिए क्योंकि अनावश्यक दृश्य-योजना से कथा-प्रवाह मंद हो जाता है। दृश्य-परिवर्तन शीघ्र नहीं होना चाहिए। विवरण-प्रधान दृश्य गीतिनाट्य में अनावश्यक प्रतीत होते हैं। इस प्रकार सन्तुलित क्रमबद्ध, सुनियोजित क्रिया-व्यापार से कथावस्तु में सजीवता, नाटकीयता, प्रभावमयता, एवं मर्मस्पर्शिता आती है जिससे दर्शकों का मन सहज ही आकृष्ट हो जाता है। कथावस्तु में मार्मिकता, भावगाम्भीर्य, भावोद्वेलन, काव्यमयता इत्यादि अपेक्षित गुणों का उल्लेख सुमित्रानन्दन पंत ने किया है —" छन्द नाट्य की सफलता के लिए मुख्य उपकरण विषय और उसका चुनाव है। विषय ऐसा होना चाहिए जिसमें अधिक मार्मिकता, गहराई ऊँचाई या व्यापकता हो, जिसमें भावना की शक्ति और उड़ान के लिए स्थान हो, जो काव्य की भूमिपर अवतरित किये जाने योग्य हो।"[3] गीतिनाट्य की कथावस्तु की महत्ता, उसकी योजना एवं उसके गुणों का उल्लेख कृष्ण-सिंहल ने इस प्रकार किया है —" गीतिनाट्य की सफलता के लिए उसकी विषयवस्तु से भी महत्वपूर्ण है उसकी योजना। वास्तविक प्राण-प्रतिष्ठा रचना-तंत्र पर अधिकार, भाव-विचार की गम्भीरता तथा लक्ष्य की स्पष्टता पर निर्भर है। रसोत्पत्ति की दृष्टि से वस्तु का पुष्ट संगठन,

---

1- हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ0 313

2- थ्योरी आव ड्रामा, पृ0 71

3- शिल्प और दर्शन, पृ0 296

सुस्थिर घटना-क्रम, स्थापन, कथासूत्रों एवं क्रिया-व्यापारों में सुसम्बद्धता महत्वपूर्ण है। साथ ही इनके कारण गीतिनाट्य की प्रभावान्विति में सघनता एवं पूर्णता आ जाती है। सम्पूर्ण कथानक एक निश्चित केन्द्र पर आधारित सर्वत्र सन्तुलित एवं सामंजस्य से पूर्ण होना चाहिए। साथ ही कथा तत्व में औत्सुक्य और आकर्षण की योजना करके उसे अत्यन्त सरस और प्रभावोत्पादक रूप में रखा जाना अपेक्षित है। कथावस्तु की ऐसी सजावट होनी चाहिए कि नाटकीय कुतूहल प्रारम्भ से अन्त तक बना रहे और चरित्र-सृष्टि की सफलता में सिद्धि प्राप्त हो सके। अन्त में गीतिनाट्य में एक ही नाटकीय प्रभाव (सिंगल्नेस आव इफेक्ट) का होना अपेक्षित है, क्योंकि गीतिनाट्य में कथावस्तु के सौन्दर्य की अपेक्षा उसके आधार पर की गयी भावाभिव्यंजना पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है।"[1]

<u>पात्रों का चरित्र-चित्रण :—</u>

संस्कृत नाट्यशास्त्र में कथावस्तु के उपरान्त पात्रों के चरित्र-चित्रण को ही महत्व दिया गया है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त नेता शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि नेता दो अर्थों को द्योतित करता है —(1) नाटक के मुख्य पात्र के अर्थ में तथा सामान्य रूप में पात्रों के अर्थ में।[2] नायक के स्वरूप की चर्चा करते हुए धनंजय का कथन है कि नाटक का फल अधिकार है और उसे प्राप्त करने वाला अधिकारी पात्र इसी को नेता कहा जाता है।[3] विश्वनाथ ने नायक को सम्पूर्ण कार्य-व्यापार की आत्मा तथा मुख्य रस का आलम्बन स्वीकार किया है।[4] इसी तरह से राम चन्द्र गुण चन्द्र का कथन है कि प्रधान फल को प्राप्त करने वाला व्यसन-रहित मुख्य नायक है 'प्रधान फल सम्पन्नोऽव्यसनी मुख्य नायकः।'[5] तात्पर्य यह है कि मुख्य रस का आश्रय, फल का भोक्ता श्रेष्ठ गुण सम्पन्न नायक कहलाता है। नायक के गुणों की चर्चा करते हुए उसे विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, रक्तलोक, शुचि, वाग्मी, रूढ़वंश, स्थिर

1- हिन्दी गीतिनाट्य, पृ0 50
2- भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक 47
3- दशरूपक 1/12
4- साहित्यदर्पण, 3/29
5- नाट्य दर्पण 4/160

युवा, बुद्धिमान, प्रज्ञावान, स्मृति-सम्पन्न, दृढ़ तेजस्वी, धार्मिक उदार, लालित्य युक्त कुशल कहा गया है।[1] नायक के भेदों के सम्बन्ध में सभी आचार्य एकमत से धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा धीर-प्रशान्त का उल्लेख करते हैं।[2] इनके गुणों की विस्तृत चर्चा संस्कृत साहित्य में की गयी है जिसका उल्लेख यहाँ अनावश्यक प्रतीत है। नायक के सहायक तथा प्रतिनायकों की भी चर्चा नाट्यशास्त्र में हुई है।

भारतीय नाट्यशास्त्र में नायक की प्रेयसी या पत्नी को नायिका कहा गया है। भरत ने नयिका के चार प्रकार — दिव्या, नृप-पत्नी, कुलस्त्री, और गणिका बताये हैं, किन्तु धनंजय[3] ने स्वकीया, परकीया और सामान्य तीन प्रकारों का उल्लेख किया है।स्वकीया के अवस्थानुसार तीन भेद मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा एवं मध्या और प्रगल्भा के तीन-तीन भेद और है — धीरा, धीराधीरा और अधीरा। ज्येष्ठा, कनिष्ठा, भी भेद उल्लिखित हैं। अवस्था, व्यवहार के अनुसार स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खण्डिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका और अभिसारिका इत्यादि आठ भेद कहे गये हैं। इनकी स्वाभाविक विशेषताओं (अलंकार) की संख्या अट्ठाइस बतायी गयी है। इनके सहायिकाओं की संख्या का वर्णन धनंजय ने किया है।[4]

पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक के नायक पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनका नायक आदर्शवाद के कठघरे में बन्द नहीं है। वह सुख-दुःख, जय-पराजय, मानापमान को भोग करता हुआ यथार्थ के धरातल पर स्थित है। अरस्तू ने नायक को उच्च कुलीन, उदात्त गुणों से युक्त कहा है। त्रासदी का कार्य त्रास और करूणा जाग्रत करना है अतः नायक ऐसा होना चाहिए जिसके कृतित्व को देखकर या पढ़कर हमारे मन में ये दोनों भाव जाग्रत हों। अरस्तू का कथन है कि नायक पूर्णतः निर्दोष न हो, उसमें कोई न कोई दुर्बलता (हैमर्शिया) अवश्य रहती है।[5] उसने नायक के चार उपबन्ध माने हैं — भद्र (गुडनेस) औचित्य (प्राप्रिइटी) जीवन के अनुकूल (ट्रु

1- दशरूपक 2/1-2   2-साहित्यदर्पण 3/30दशरूपक2/3, नाट्यदर्पण 1/6

3- दशरूपक 2/15   4- दशरूपक 2/29

5- अरिस्टाटल्स थ्योरी आव पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट्स-एस0एच0बुचर — पृ0 310

लाइफ) एकरूपता(कन्सिसटेन्सी)[1] अरस्तु द्वारा नायक के उल्लिखित गुणों- गम्भीरता, सुरत कुलीनता, मर्यादमता तथा व्यवहार कुशलता को परवर्ती सभी नाट्य समीक्षकों ने स्वीकार कियाहै।

उपर्युक्त विवेचन से यह पता चलता है कि नाटकों में चरित्र का अत्यधिक महत्व है। नाटककार पात्रों के क्रियात्मक घात-प्रतिघात से कथावस्तु को विकसित करता है। दूसरी ओर वस्तुजन्य स्थितियों से पात्रों का चरित्र और प्रकाशित होता है। अतः कथानक और चरित्र में पूर्ण सामंजस्य होना आवश्यक है।

गीतिनाट्य के पात्र अन्यनाटकों से विशिष्ट स्थान रखते हैं क्योंकि गद्यनाट्क में घटनाओं के उत्तरस्पद्भाव के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, जबकि गीतिनाट्य में उतना नहीं मिल पाता। गीतिनाट्य में बाह्यसंघर्ष की अपेक्षा मानसिक संघर्ष का चित्रण प्रमुख रहता है। इस सीमित साधन से ही नाट्क के अन्य तत्व संवाद, शैली, देशकाल, वातावरण इत्यादि को चित्रित किया जाता है अतः सफल गीतिनाट्यकार ही ऐसे पात्रों की अवतारणा करने में सफल हो सकता है जो दर्शकों को आकृष्ट कर सकते हैं। आज के गीतिनाट्य या नाटकों के नायक उच्च-कुलोद्भव धीरोदात्त नहीं हो सकते तथा नाट्य शास्त्र में वर्णित सीमित नायिकाएँ पात्री नहीं बन सकती क्योंकि रूढिबद्धता के कारण वे अतिमानव हो गये हैं, जबकि वर्तमान परिस्थितियों में प्रत्येक पात्र सफलताओं एवं अवगुणों का मिश्रण दिखायी देता है।

गीतिनाट्यों के पात्र पौराणिक होने के कारण भावप्रधान होते हैं अतः वे पात्र अपने मूलरूप में नहीं अवतरित होते। नाट्यकार परिस्थितियों, विचारों के अनुरूप इनके व्यक्तित्व में अन्यान्य पक्षों का आरोप कर यथानुरूप उपस्थित करने का प्रयास करता है। बात यह है कि आज का मनुष्य अपने को आवरण में आच्छादितकिये रहता है। बनावटी प्रदर्शन के कारण उसे अपनी मानसिक व्यथाओं को प्रच्छन्न रखना पड़ता है। इसके कारण उसके वास्तविक चरित्र का उद्घाटन करना न तो सम्भव ही है न ही आवश्यकयुक्त है। अतः गीतिनाट्यकार पात्रों के वास्तविक स्वरूप के दिग्दर्शन कराने हेतु वह तथाकथित आवरण हटा देता है, इसके लिए वह वरती-करण तथा अतिरंजना का सहारा लेता है। एबरक्राम्बी के अनुसार इन पद्धतियों से पात्रों के कथन एवं घटनाएँ हैं जीवन की वास्तविक प्रवृत्तियाँ, दैनिक जीवनगत वार्तालापों और क्रिया व्यापारों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दिखायी देने लगती है। वह लिखता है —" दे आर करैक्टर्स विद कम्पेयर्ड विद अवर्स देय अण्डरगान ए सरटेन पावरफुल सिम्प्लीफिकेशन एण्ड इकोनेशन

1- अरिस्टाटल्स थ्योरी आव पोयट्री एण्ड फाइन आर्टस- एस0एच0बुचर, पृ0310

दो दैट दि प्राइमरी इम्पल्स ऑफ पीड् आर इन्फिनिटली मोर इम्पोर्टेन्ट इन ड्रामा दैन टु एण्ड से दैन इन दि स्पीच एण्ड स्क्वायर आव एक्युअली ऑफर्स।"[1] सरलीकरण के द्वारा गीतिनाट्यकार अपने पात्र इस रूप में उपस्थित करता है, कि उनका असाधारण व्यक्तित्व विलुप्त हो जाता है। और साधारण होने के कारण हमारे रागात्मक मनोवृत्तियों के समीप पहुँच जाते हैं। भगवती चरण वर्मा की तारा एवं उदयशंकर भट्ट के विश्वामित्र एवं मत्स्यगन्धा सरलीकरण के उदाहरण है जो अपने असाधारण और अव्यक्त गुणों से मुक्त होकर अपने मूल वृत्तियों के अधिक समीप पहुँचने के कारण बहुत ही आकर्षक पात्र बन गये हैं। कभी कभी किसी पात्र में कुछ विशेष गुणों को उपस्थित करने के लिए गीतिनाट्यकार अतिरंजना पद्धति का आश्रय लेता है — संशय की एक रात में राम, विभीषण, अग्निलीक में सीता, एककण्ठ विषपायी में शंकर का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि प्रजापुरुष के प्रतीक रूप में राम, खण्डित, व्यक्तित्व वाला विभीषण, विद्रोहिणी सीता एवं क्रोधी शंकर के जिन पक्षों को उद्घाटित किया गया है, वे अपनी विशेषताओं के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

यहाँ यह विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है कि गीतिनाट्यों में पात्रों के अन्तर्जीवन का अधिक चित्रण होता है। अतः गीतिनाट्यकार को यह ध्यान में रखना चाहिए कि पात्रों की मानसिक स्थितियों के उतार - चढ़ाव का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण हो। कृष्ण सिंहल ने लिखा है —" पात्र-सृष्टि और सफल चरित्र-चित्रण के लिए उसको जीवन के अन्तरंग का व्यापक अनुभव- सूक्ष्म-पर्यवेक्षण शक्ति, मानव जीवन का गहन अध्ययन और मनोविज्ञान की गहराई का समवेत ज्ञान होना आवश्यक है। तभी वह अपने पात्रों को जीवन प्रदान कर सकता है।"[2] कहना नहीं होगा कि पात्र गीतिनाट्य के प्राण है अतः उनका विश्वसनीय, यथार्थ स्वाभाविक एवं सजीव चित्रांकन होना चाहिए। यह कार्य तभी सम्भव होगा जब उसके पात्र लौकिक धरातल से अवतरित हों तब उनके सुख-दुख द्वन्द्वों का वर्णन हो। उनके उत्थान-पतन का कारण मनोविज्ञान सम्मत हो। गीतिनाट्यकार पात्रों के अन्तर्मन में प्रविष्ट होकर उनके क्रिया कलापों को नाटकीय बनाते हुए उन्हें वास्तविक चरित्रों से जोड़ देता है। बार्कर का यह कथन बहुत ही सटीक है —" इफ आइडियाज एण्ड इमोशन्स आर टु बी मेड ड्रैमेटिकली कन्विन्सिंग दे मस्ट बी आइडेन्टिफाइड विद करेक्टर एण्ड डिफिनिट इनफ टु स्टैण्ड दि प्रूफ आव एक्शन।"[3]

1- दुवेन्टियथ सेंचुरी क्रिटिकल एसे — एस०एन०वर प्रोम्पी, पृ० 254
2- हिन्दी गीतिनाट्य —पृ० 61
3- आन पोयट्री इन ड्रामा- एच०जी०बार्कर-पृ० 39

गीतिनाट्य में पात्रों की संख्या भी कम होनी चाहिए जिससे उनके अन्तर्द्वन्द्व का निरूपण हो सके। एक मुख्य पात्र हो, शेष पात्र उसको सजीव बनाने के लिए अवतरित हों। रेडियो के माध्यम से चेतन पात्रों के अतिरिक्त जड़ पात्रों को भी मुखरित किया जा सकता है।

रस :—

भारतीय आचार्यों के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं संचारियों की समन्वित संचेतना के आधार पर रस निष्पत्ति होती है। किसी भावनाप्रधान कवि की रचना में विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों की यह राशि बलपूर्वक एक स्थान पर नहीं बैठायी जाती वरन् इस सम्पूर्ण उपचार के पीछे कवि की सूक्ष्म एवं गहन काव्यात्मक अनुभूति का एक ऐसा अकुंठित तथा स्वाभाविक स्रोत प्रवाहित होता है, जो सहृदयों को भावनिमग्न करा देने में समर्थ होता है। गीतिनाट्यों में प्राप्त रस स्वरूप की चर्चा के लिए यहाँ यह आवश्यक है कि उसके सैद्धान्तिक पक्ष का संक्षिप्त निरूपण कर लिया जाय।

रस के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक आचार्य भरत ने ही विवेचन किया है। उन्होंने रस का प्रयोग नाट्य के प्रसंग में किया था क्योंकि उनके विचारानुसार रस वस्तुगत था किन्तु परवर्ती आचार्यों — भट्टनायक, अभिनव गुप्त आदि ने इसे सहृदयगत माना और रस आस्वाद्य के स्थान पर आस्वाद बन गया और इसकी स्थिति नाटक के अतिरिक्त काव्य में भी मानी गयी है। डा० नगेन्द्र का मत इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है —"ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ भी हो, भरत का आशय जो भी रहा हो, भारतीय साहित्य एवं साहित्यशास्त्र में अभिनव प्रतिपादित आस्वादपरक रूप ही मान्य हुआ। विषयगत अर्थ अर्थात् भरत का अभीष्ट रस के स्थान काव्य का वाचक बन गया।"[1] भरत ने विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस — निष्पत्ति का उल्लेख किया है। वाणी और अंगों के आश्रित अनेक अर्थों का विभावन कराने वाले विभाव कहलाते हैं।[2] ये दो प्रकार के होते हैं — आलम्बन तथा उद्दीपन। चित्तवृत्ति-विशेष के विषयभूत विभाव को आलम्बन कहते हैं, अतएव इसे विषय भी कह सकते हैं। निमित्तरूप सामग्री जिससे जाग्रत भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है, उद्दीपन विभाव कहलाती है।[3] आचार्य विश्वनाथ[4] के अनुसार हृदय में उद्बुद्ध रत्यादि भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले लौकिक व्यापारों का नाम अनुभाव है। कायिक, वाचिक, मानसिक और सात्विक चार प्रकार के अनुभाव हैं।

1- रससिद्धान्त- पृ० 85 2— नाट्यशास्त्र— भरत , 7/4

3- रस-सिद्धान्त : स्वरूप-विश्लेषण— डा०आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृ० 18

4- साहित्यदर्पण, 3/132

जिस प्रकार समुद्र में तरंगे उत्पन्न होकर उसी में विलीन होती रहती है, उसी प्रकार रत्यादि स्थायीभाव में जो उत्पन्न और नष्ट होते हैं, उन्हें ही व्यभिचारी भाव कहा जाता है।[1] इनकी संख्या तैंतीस मानी गयी है। यद्यपि भरत ने रस के मूलाधार स्थायीभाव का उल्लेख नहीं किया है, तथापि स्थायी का महत्व रस निष्पत्ति में अक्षुण्ण है क्योंकि वही रस का मूल है। धनंजय ने स्थायी की परिभाषा इस प्रकार की है " विरोधी अथवा अविरोधी भावों से जिसका प्रवाह विच्छिन्न न हो तथा जो अन्य भावों को आत्मसात् कर ले उसे स्थायीभाव कहते हैं।[2] स्थायीभावों की संख्या पर पर्याप्त विवाद है सर्वमान्य स्थायीभाव निम्न हैं — रति, शोक उत्साह, हास, जुगुप्सा, आश्चर्य, भय, क्रोध, निर्वेद(शम) और इन्हीं के आधार पर श्रृंगार, करुण वीर, हास्य, वीभत्स, अद्भुत, भयानक, रौद्र, शान्त माने गये हैं। आज वत्सल रस की भी प्रतिष्ठा हो गयी है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि आज मान्यताओं के परिवर्तन के कारण रस-सिद्धान्त सम्बन्धी हमारा दृष्टिकोण भी बदल गया है। आज के काव्य, या नाटकों में रस-प्राप्ति अन्तिम उद्देश्य नहीं रह गया है। पहिले के नाटकों में बंधी बंधायी परिस्थितियाँ, आदर्शों की सीमा में आबद्ध नायकों पर आधृत कथावस्तु रसोत्पत्ति में सहायक होती थी किन्तु आज उसमें जीवन की उलझी- जटिल बौद्धिक समस्याओं का चित्रण प्रमुख हो गया है जिसके कारण रस-सिद्धान्त के मानदण्ड खरे नहीं उतर पा रहे हैं। गीतिनाट्यों में तो आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष चिन्तन का प्रामुख्य है अतः दर्शक को पूर्णतया रस-निमग्न करा सकने में ये मनोभाव असमर्थ से हैं।

<u>संघर्ष :—</u>

द्वन्द्व या संघर्ष का गीतिनाट्य में महत्वपूर्ण स्थान है। गीतिनाट्य में नाटकीयता लाने के लिए द्वन्द्व का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए निकल यह मानते हैं कि नाटकों की उत्पत्ति द्वन्द्व से होती है। संघर्ष ही नाटक की प्राथमिक शक्ति है —— आल ड्रामा एराइजेज आउट आव कानफ्लिक्ट---कानफ्लिक्ट इज दि प्राइमरी फोर्स इन आल ड्रामा।[3] गद्य नाटक में बहिर्जगत से सम्बन्धित संघर्ष के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, किन्तु गीतिनाट्य में बहिर्द्वन्द्व की अपेक्षा अन्तःसंघर्ष को प्रामुख्य दिया जाता है। सुमित्रानन्दन का विचार है कि

1- दशरूपक, 4/7

2- दशरूपक, 4/34

3- दि थ्योरी आव ड्रामा, निकल(हिन्दी गीतिनाट्य कृष्ण सिंहल, पृ040 में उद्धृत।

"छन्दनाट्य में मार्मिक संघर्ष चाहे वह भावमूलक हो या समस्यामूलक होना नितान्त आवश्यक है। जिससे मानव-भावना और विचारों का मन्थन, उनका आरोह-अवरोह श्रोता के हृदय को स्पर्श कर सके।"[1] इसी तरह उदय शंकर भट्ट ने संघर्ष के सम्बन्ध में लिखा है —"कायिक व्यापार उसमें नहीं होते हैं, तो बहुत थोड़े। केवल मानसिक चिन्तन का उसमें सतत प्रदर्शन होता है। × × × ऐसे नाटकों में पात्र भी बहुत नहीं होते किन्तु होता है पात्रों का अन्तस्तल से उठने वाला सीधा सादा संघर्ष।[2] संघर्ष तत्व की अनिवार्यता के सम्बन्ध में डा0 नगेन्द्र ने भी लिखा है —" भावना का प्राधान्य होने के कारण गीतिनाट्य में संघर्ष स्वभावतः बाह्य न होकर आन्तरिक होता है — अर्थात् मन की एक भावना का दूसरी भावना के विरुद्ध संघर्ष ही यहाँ मिलेगा।"[3] तात्पर्य यह है कि गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व अथवा भावों एवं विचारों का घात-प्रतिघात रहता है। संघर्ष की योजना इसलिए की जाती है कि सामाजिक कथाविषय में अधिक रूचि ले सकें तथा मानव की चित्त-वृत्तियों के उतार-चढ़ाव से परिचित हो सकें। कथावस्तु को पूर्णोत्कर्ष एवं प्रभाव-गरिमा के लिए किसी न किसी प्रकार के आन्तरिक संघर्ष की उपस्थिति अनिवार्य है।

संघर्ष में दो विरोधी शक्तियों में परस्पर द्वन्द्व और विरोध होता है और ये विरोधी शक्तियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं — बहिर्जीवन से सम्बद्ध और अन्तर्जीवन से सम्बद्ध। बहिर्जीवन के द्वन्द्व हमारे जीवन और जगत के बाह्य क्रिया-व्यापारों में मिलते हैं। इनमें दो अथवा अनेक विरोधी भौतिक शक्तियों अथवा परिस्थितियों में परस्पर संघर्ष होता है। एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति का, किसी एक अथवा अनेक व्यक्तियों के साथ समाज का, एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग का अथवा पुरूष-वर्ग के साथ स्त्री-वर्ग का संघर्ष होता है। दूसरी ओर अन्तर्जीवन के द्वन्द्व मानसिक विचारों, भावों और अनुभूतियों पर केन्द्रित होते हैं। वे दो परस्पर विरोधी भौतिक परिस्थितियों अथवा दो विरोधी व्यक्तियों के संघर्ष नहीं होते हैं, ये किसी एक स्त्री अथवा पुरूष के मस्तिष्क अथवा मन के अन्दर उठ रहे दो विरोधी भावों अथवा विचारों में होते हैं। हमारे चेतन और अचेतन मन में प्रायः परस्पर विरोधी भाव उठते हैं। उद्दाम यौन-वृत्तियों और नैतिक आदर्शों कर्तव्य और प्रेम क्रूरता और दया, स्वार्थ और त्याग सत्य और असत्य, आशा और निराशा, इच्छा और अनिच्छा आदि परस्पर विरोधी मानसिक वृत्तियों में द्वन्द्व होता है।[4] आन्तरिक संघर्ष को उद्दीप्त करने के लिए ही बहिर्द्वन्द्व का

1- शिल्प और दर्शन — पृ0 296

2- राधा, पृ0 6 3- आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 88

4- हिन्दी गीतिनाट्य, पूरन सिंहल, पृ0 44

वर्णन होता । डा० दशरथ ओझा ने लिखा है —" गीतिनाट्य में बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है। नाटक में भौतिक - युद्ध आन्तरिक संघर्ष को उद्दीप्त करने के लिए रखा जाता है।"[1]

संवाद एवं भाषा शैली :—

भाषा-शैली तत्व संवाद में ही अन्तर्निहित रहता है क्योंकि संवादों का माध्यम भाषा ही है। अतः पहिले संवादों के सम्बन्ध में विवेचन किया जा रहा है।

संवाद नाटक का मुख्य तत्व है। संवादों में ही नाट्य कला के बीज बोये गये हैं। उदय शंकर भट्ट का कथन है कि 'संवाद नाटक की सीढ़ी है, जिस पर चढ़ कर पात्र अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। एक तरह से यों कहना चाहिए कि नाटक की सफलता उसकी संवाद-प्रौढ़ता है।"[2] संवादों के माध्यम से ही नाटककार कथावस्तु को विकसित करता है, पात्रों के चरित्रगत विशेषताओं को उद्घाटित कर उनके अन्तर्द्वन्द्व को प्रदर्शित करता है, देश-काल वातावरण को विश्वसनीय बनाता है और उद्देश्य की अभिव्यक्ति करता है।

भारतीय आचार्यों ने नाटकीय संवादों के तीन भेद किये हैं — सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य।[3] जो संवाद सबके सुनने के योग्य हों उसे सर्वश्राव्य कहते हैं। जो संवाद पात्रों के सुनने के लिए न प्रयुक्त हों किन्तु उन्हें दर्शक भली भाँति सुन सकें वे संवाद अश्राव्य कहलाते हैं। इसी को स्वगत कथन कहते हैं। नियत श्राव्य संवाद का वह भेद है, जिसमें एक पात्र अन्य पात्रों से विमुख होकर एक अथवा दो पात्रों से गुप्त मंत्रणा करता है जिसे दर्शक तो सुन लेते हैं किन्तु मंच पर उपस्थित अन्य पात्र उसे न सुनने का नाट्य करता है। इसके दो भेद हैं —(1)अपवारित- इसमें जिस पात्र से बात से छिपानी हो उसकी ओर मुँह फेर कर बात की जाती है।(2) जनान्तिक — इसमें तीन अँगुलियों(अँगूठा एवं कनिष्ठा को छोड़कर) की ओट में एक या दो पात्रों को छोड़कर अन्य पात्रों से कथोपकथन होता है। इसके सम्बन्ध में डा०दशरथ ओझा का मन्तव्य है कि संस्कृत नाटकों की यह जनान्तिक शैली आज नितान्त असंगत मानी जाती है। सफल नाटककार इसका प्रयोग करना अनुचित समझता है।[4] इसके अतिरिक्त संवादों का एक और प्रकार है जिसे आकाश-भाषित कहा जाता है, जिसमें पात्र इस प्रकार अभिनय करता है मानो वह आकाश स्थित किसी व्यक्ति से वार्तालाप करता हो। प्राचीन काल में स्वगत की ? नियत श्राव्य और अश्राव्य पद्धति को संस्कृत नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान मिला था क्योंकि इसमें

1-हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ0 295

2-माधुरी, नव0 1938 पृ0 48 3- साहित्य दर्पण, 6/137-40

4- हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ0 271

अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं थी किन्तु आगे चलकर ये नाट्य रूढ़ियाँ दर्शकों में अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में असमर्थ होने लगीं अतः उन्हें आज अस्वीकार किया जा रहा है। डा०सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है —" प्रत्येक युग में कुछ ऐसी नाट्य रूढ़ियाँ होती हैं, जिन्हें नाटककार और दर्शक दोनों ही स्वीकार करते हैं। ये नाट्य-रूढ़ियाँ एक प्रकार से दर्शकों और नाटककारों के बीच समझौते हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकों में स्वगत कथन और आकाश-भाषित होते थे। ये न नाटककार को अस्वाभाविक लगते थे न दर्शक को। दोनों ने उसे स्वीकार कर लिया था। आज वह समझौता भंग हो गया है।"[1]

पिछले पृष्ठों में निरूपित कर चुके हैं कि गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व का प्रमुख तत्व है, जिसका दिग्दर्शन स्वगत-भाषण से ही सम्भव है अतः संवादों के इस प्रकार का सैद्धान्तिक निरूपण यहाँ अनुचित नहीं होगा। स्वगत भाषण के समय पात्र एकाकी होता है और वह धीरे-धीरे विचारमग्नावस्था में स्वयं कुछ कहता जाता है। इससे अपने मन के रहस्य, आन्तरिक भाव-विचारों को अभिव्यक्त करता है। संस्कृत नाटकों में वह बहुत देर तक रंगमंच पर उपस्थित रहता था जिसके कारण अभिनय दुर्बल पड़ जाता है। एकाकी पात्र का रंगमंच पर बहुत देर तक रहना अस्वाभाविक एवं हास्यास्पद लगता है, जिसके कारण आधुनिक नाट्यकार इसके विरुद्ध हैं। श्री देवेन्द्र नाथ शुक्ल का कथन है कि आजकल के पाश्चात्य रियलिस्ट स्कूल के नाट्यकारों ने स्वगत भाषण की तो एक प्रकार से प्रथा ही उठा दी है, और यह सर्वथा उचित भी है।"[2] रामचन्द्र टण्डन के विचार भी इस सम्बन्ध में पठनीय है —" स्वगत उक्ति नाटक की परम्परागत वस्तु अवश्य है परन्तु है अस्वाभाविक। अतएव उसे उड़ा देना ही अच्छा है।"[3] श्री रामकुमार वर्मा ने परम्परानुमोदित स्वगतोक्ति को निरर्थक प्रलाप की संज्ञा देते हुए लिखा है कि स्वगत कथन हिन्दी नाटकों की पैतृक सम्पत्ति रहने पर भी अब काम की चीज नहीं है। यह नितान्त अस्वाभाविक है कि कोई व्यक्ति अपने आप ही बोलता हुआ चला जाय। न उसके साथ आदमी हैं न वह स्वयं आदमियों के साथ है, किन्तु वह जो मन में आता है बोलता चला जाता है, ऐसी स्थिति में या तो हम उसे पागल कहेंगे या शराबी या अफीमची।"[4] लक्ष्मीनारायण मिश्र स्वगतोक्ति की अपेक्षा मूक-अभिनय को प्राथमिकता देते हैं —" मैंने स्वगत की प्रणाली को अस्वाभाविक समझकर छोड़ दिया है। पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तियों को व्यक्त करने में जितना सहायक मूक-अभिनय होता है उतना स्वगत नहीं। × × × स्वगत की इस

हिन्दी एकांकी शिल्प-विधि का विकास, पृ० 28 4- साहित्य समालोचना, पृ०142-43

2- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 10 अंक 3 पृ० 382

3- साहित्य-समालोचक शिविर बसन्त सं० 1982-83 पृ05

प्रकार की शब्दावली जीवन के साथ मेल नहीं खाती। जहाँ कहीं स्वगत ऐसी वस्तु की जरूरत पड़ी है, मैंने मूक अभिनय से काम लिया है, इसलिए कि ऐसी वस्तु जीवन में प्रायः मिला करती है, लेकिन स्वगत ऐसी वस्तु तो नितान्त अस्वाभाविक है।[1]

पाश्चात्य नाट्यकारों ने भी अन्य पात्रों की उपस्थिति में स्वगत-कथन को रंग-मंच की दृष्टि से कृत्रिम मानकर इस पद्धति का विरोध किया है। फ्रेड बी० मिलेट और जिराल्ड एड्स बेण्टले ने लिखा है —" टु अस दि अबेन्डन्स टु दि एसाइड आर मोर आबियस दैन इट्स एडवान्टेज।× × × × वी एक्सेप्ट अवर ड्रैमेटिस्ट्स टु यूज मोर सब्टेल मीन्स आव कन्वेइंग टु अस दियर करैक्टर्स इनर मेण्टल एण्ड इमोशनल लाइफ।[2] ए०निकॉल भी स्वगत-कथन को कृत्रिम मानता है —" फार एन एक्टर टु माउथ आउट ए सोलिलोक्यू इन ए लार्ज थियेटर फ्राम बिहाइण्ड दि फुट लाइट्स सो दैट हिज वर्ड्स मे कैरी टु दि गैलरीज इज ग्रोसली आर्टीफिशियल।"[3] किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्वगत कथन आपने-आप में बिल्कुल ही तिरस्करणीय है। इसके माध्यम से पात्रों के मन के रहस्यों को जाना जा सकता है और गीति-नाट्य उसके अन्तर्मन को ही उद्घाटित करता है अतः स्वगत-कथन के बिना उसका काम ही नहीं चलेगा। सेठ गोविन्ददास ने लिखा है —" आत्माख्य स्वाभाविक तरीके से लिखा जा सकता है और उसके बिना कुछ आन्तरिक भावों एवं अन्तद्वन्द्व का ठीक प्रकाश कठिन ही नहीं असम्भव है।"[4] इसी तरह उदयशंकर भट्ट ने मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व के लिए स्वगत के उपयोग की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है —" पहले मैं स्वगत में विश्वास नहीं रखता था अब मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करने के लिए उसका उपयोग करता हूँ।"[5] अतः निष्कर्ष रूप में इतना तो स्वीकार किया जा सकता है कि अन्य पात्रों की उपस्थिति में एक पात्र का बड़-बड़ाना, अच्छा नहीं लगता है किन्तु एकाकी अपने मन के रहस्यों, गुत्थियों का उद्घाटन बहुत स्वाभाविक है।

कहना नहीं होगा कि गीतिनाट्य में पद्यबद्धता और काव्यमयता अनिवार्य कही गयी है। अतः गीतिनाट्य में काव्यत्व के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवेचन समीचीन होगा।

1- मुक्ति का रहस्य मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ? पृ० 25-26

2- दि आर्ट आफ ड्रामा, पृ० 211

3- ब्रिटिश ड्रामा, पृ० 69

4- गरीबी या अमीरी, पृ० 6

5- राष्ट्रवाणी- अगस्त 1953, पृ० 610

भाषा :—

गद्य और पद्य भाषा के दो रूप हैं, जो काव्य-विधाओं से जुड़ गये हैं। महाकाव्य, खण्डकाव्य मुक्तक में पद्य अथवा कविता का प्रयोग हुआ तो उपन्यास, कहानीनिबन्ध इत्यादि में गद्य का। किन्तु नाटक में गद्य-पद्य का यह अन्तर व्यर्थ कहा गया है। पीकॉक का कथन है —" इन दिस कनेक्शन वी मे एडड इन आर्डर टु क्लियर अप दि कोश्चन फ्राम दि स्टार्ट दैट दि कस्टमरी, अपोजिशन बिटवीन प्रोज एण्ड पोयट्री इज रियली इनेप्ट व्हेन अप्लाइड टु द्रामा।"[1] बात यह है कि नाटक में गद्य-पद्य दोनों प्रयुक्त हो सकते हैं। उसके जहाँ कुछ स्थल गद्यमय होते हैं वहीं अनुभूति की प्रखरता की अभिव्यक्ति के लिए काव्यमयता की भी आवश्यकता होती है। कृष्ण सिंहल ने लिखा है —" यह निर्विवाद सत्य है कि नाटक के कुछ स्थल जब अपनी विशिष्टताओं एवं आन्तरिक गुणों के कारण कविता के प्रयोग की माँग करते हैं तो अन्य स्थल कुछ अन्य विशेषताओं के कारण गद्य के प्रयोग की। जब अनुभूति की प्रबलता, भावलोक की तीव्रता एवं आन्तरिक जगत् की सामान्य मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति का प्रश्न आता है, तो भाषा और शैली स्वभावतः कविता की ओर झुकने लगती है।"[2] यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आन्तरिक मनोवृत्तियों को कविता के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है। गीतिनाट्य में अन्तर्जगत का ही निरूपण होता है, अतः यदि उसकी अभिव्यक्ति गद्य में की गयी तो गीतिनाट्यकार को गद्य की रूक्षता का परिष्कार कर उसे काव्यात्मक बनाना होगा। रोनाल्ड पीकॉक का यह विचार सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है कि अन्तर्जगत के गम्भीर भावावेग को प्रकट करने के लिए कविता की वाणी लयात्मक भाषा ही उपयुक्त माध्यम है। "इन्टेन्स इमोशन्स सीक एन आउटलेट इन हाइटेण्ड स्पीच, एण्ड इन दिस रिस्पेक्ट दोज रिद्मण्ड दि फिगरेटिव लैंग्वेज एप्रोप्रियेट इन वर्स ग्रेटर इन्टेन्सिटी।"[3] टी०एस० ने भी इस कथन को सत्य माना है कि कविता में ही भावावेग क्षणों की अभिव्यक्ति की जा सकती है —"इट विल ओनली बी पोयट्री व्हेन दि ड्रैमेटिक-सिचुएशन हैज रीच्ड सच ए प्वाइन्ट आफ इन्टेन्सिटी दैट पोयट्री बिकम्स दि नेचुरल अटरन्स बिकाज दैन इट इज दि ओनली लैंग्वेज इन विच इमोशन्स केन

1- दि आर्ट आफ ड्रामा, पृ० 216

2- हिन्दी गीतिनाट्य, पृ० 35

3- दि आर्ट आफ ड्रामा, पृ० 223

दी एक्सप्रेस्ड एट आल।"[1] भावोद्वेलन का तीव्र वेग का भार कविता की लय ही सहन कर सकतीहै। टी०एस० इलियट के कथन को मूल सिंहल ने उद्धृत करके यह कहने का प्रयास किया है कि अन्तर्जगत की शक्तिशाली भावनाएँ और तीव्र मानसिक स्थितियाँ लयात्मक भाषा में आने का प्रयास करती है।" दि ह्यूमन सोल इन इनटेन्स इमोशंस स्ट्राइवस टु एक्सप्रेस इट्सेल्फ इन वर्स। अर्थात् मानव आत्मा का यह स्वभाव है कि तीव्रतम भावावेग के क्षणों में वह स्वयं को पद्य में अभिव्यक्ति देने का प्रयास करती है।[2] सारांश यह है कि गीतिनाट्य की कथा सघन क्षणों की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है, उसके पात्र काव्यमय है, अन्तर्जगत के प्रखर भावावेग का उसमें वर्णन है, अतः भाषा का कवितावद्ध होना या पद्यात्मक लयात्मक होना अस्वाभाविक नहीं लगता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि पर गीतिनाट्य की भाषाशैली पर विचार करने के लिए उपयुक्त मानदण्डों की खोज आवश्यक है। शब्द-सौष्ठव(तत्सम, विदेशी) मुहावरे, गुण, अलंकार, छन्द बिम्ब, प्रतीक, योजना पर संक्षिप्त सैद्धान्तिक विवेचन अनिवार्य है। इन्हीं मानदण्डों के आधार पर हिन्दी के गीतिनाट्यों का तुलनात्मक विवेचन अधिक उपयुक्त होगा।

अभिनेयता :—

नाटक रंगमंच से सम्बद्ध है। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि अभिनेयता नाटक का अनिवार्य अंग है। यदि नाटक नाट्यप्रदर्शन से दूर होता गया तो वह मात्र कहानी- उपन्यास ही होगा। रंगमंच ही उसका अन्य साहित्य-रूपों से मुख्य विभेदक धर्म है। नाटक में अभिनेयता के महत्व के सम्बन्ध में डा० शान्ति मलिक ने लिखा है —"निःसन्देह समूचे संसार के समस्त प्रकारों में नाटक ही ऐसा साहित्य प्रकार है, जो अभिनीत होने के समय ही अपने पूर्ण वैभव में प्रस्तुत होता है। इसी के द्वारा प्रेक्षकगण अपनी कल्पना पर बिना बल दिए पात्रों की वेश-भूषा, वार्तालापों और हाव-भावों से वास्तविकता का आभास पाने के साथ साथ अनेक बातों को समझ जाते हैं। वास्तव में नाटक की सफलता इसी में है कि वह प्रच्छन्न और वेशान्तरित कल्पनात्मक सत्ता को प्रत्यक्ष एवं मूर्तिमान अर्थात् चाक्षुष कर दे। इसीलिए कहा जा सकता है कि यदि नाटक साहित्य का बलिष्ठ एवं स्वस्थ अंग होना चाहता है तो उसे रंगमंच का आश्रय ग्रहण करना ही होगा।[3] अनेक नाटककारों ने नाटक को अभिनेय रचना माना है। बद्रीनाथ भट्ट ने लिखा है —"नाटक देखने की चीज है, काव्य की तरह पढ़ने की नहीं। इस बात को सभी जानते हैं अतएव जो नाटक जितनी सफलता पूर्वक खेला जा सके वह उतना ही अच्छा है। पर इधर हमारे यहाँ बहुत दिनों से नाटक खेलने की प्रथा के उठ जाने के कारण हम लोग

1-सिलेक्टेड प्रोज, पृ070 2-ए डायलाग आन ड्रेमैटिक पोयट्री(हिन्दी गीतिनाट्य, पृ065 में उद्धृत)
3- हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ0 526

नाटक को पढ़कर उसके असली आनन्द को प्राप्त करने का व्यर्थ प्रयत्न करने के आदी हो गये हैं।[1] डा० रामकुमार वर्मा का अभिमत है कि यदि नाटक प्राण है, तो रंगमंच उसका शरीर। बिना शरीर के प्राण की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती।[2] सेठ गोविन्ददास ने लिखा है —
" जो नाटक रंगमंच पर नहीं खेले जा सकते और नाटक की टेकनीक के अनुसार लिखे जायें वे भी नाटक की संज्ञा में आते हैं, परन्तु जो नाटक रंगमंच पर भी सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं, वे ही सच्चे नाटक हैं।"[3] डा० लक्ष्मी नारायण ने भी नाटक को रंगमंच से ही सम्पूर्ण माना है।[4] डा० विष्णुकान्त शास्त्री ने कहा है कि नाटक को पढ़कर और देखकर जो प्रभाव उत्पन्न होगा, वह सदा भिन्न-भिन्न होगा। "नाटक का सर्जन वस्तुतः केवल नाटककार नहीं, बल्कि नाटककार, नाट्य-प्रयोक्ता, रंग-शिल्पी, एवं दर्शक मिलकर करते हैं। x x x इसी से यह बात भी निकलती है कि नाटक को केवल पढ़कर की गयी आलोचना एकांगी और अपूर्ण है। नाटक के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत रूप से ही सही बात उसका सफल मंचन देखकर ही कही जा सकती है।"[5] पाश्चात्य नाट्य समीक्षकों ने भी रंगमंच की अनिवार्यता पर बल दिया है। निकल के मतानुसार नाटक केवल लिखित वस्तु नहीं है, उसकी समृद्धि रंगमंच के विकास पर निर्भर करती है —" बट ड्रामा इ इज आव कोर्स नाट मेयरली बिंग आव रायटिंग एण्ड इट्स फ्लौरिशिंग डिपेण्डस एज लार्जली आन दि डेवलपमेण्ट आव स्यूटेबुल थियेट्रिकल फार्म्स एज आन दि एचीव-मेण्ट आव एन एप्रोप्रियेट लिटरेरी स्टाइल।"[6] डोनाल्ड विल्सन की मान्यता है कि नाटक की रचना अभिनय के निमित्त की जाती है। वास्तव में जब तक उसका अभिनय न हो तब तक उसे नाटक की संज्ञा नहीं दी जा सकती।" ए प्ले इज रिटेन टु बी परफार्म्ड। इन फैक्ट इट इज नाट ए प्ले अन्टिल इट हैज बीन परफार्म्ड।"[7] इसी तरह से जे०डब्लू० मैरिट ने प्रस्तुतीकरण को प्राथमिकता देकर रंगमंच की अनिवार्यता को स्वीकार किया है —" ए ग्री प्ले रिक्वायर्स प्रोडक्शन दैट इज इट रिक्वायर्स एप्रोप्रियेट स्टेज सेटिंग एण्ड कास्ट्यूम, माडर्न आर हिस्टारिकल आर मेयरली फैन्टास्टिक एज दि केस मे डिमाण्ड।"[8] तात्पर्य यह है कि रंगमंच यह स्वाभाव

1- सरस्वती, जून, 1915 पृ0 324,
2- दीपदान, पृ0 18
3- नाट्यकला मीमांसा, पृ0 57
नटरंग अंक, 7 पृ0 5
5-नटरंग- अंक 6 पृ0 45
6- वर्ल्ड ड्रामा, पृ0 932
7— टेलीविजन की रायटर- भूमिका, पृ0ब
8— दि थियेटर, पृ0 172

माध्यम है जो नाटक को अन्य साहित्यिक विधाओं से पृथक कर उसे रमणीयता प्रदान करता है, साथ ही साथ प्रेक्षक समूह को घटनाओं का प्रत्यक्ष परिचय, पात्रों के अन्तर्मन से सम्बन्धित विचारों भावूय क्रियाकलापों को बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत उन्हें रस दशा में आप्लावित करता है।

नाटक को रंगमंचोपयुक्त बनाने के लिए नाटककार को निम्न तथ्य ध्यान में रखना चाहिए।[1]

(1) नाटक की कथावस्तु में प्रवाह, कौतूहल का समावेश, कार्यव्यापार की तीव्रता उसे रंगमंच पर अधिक आकर्षक बनाता है। अतः उपयुक्त नाटकीय स्थिति का चुनाव करके उसकी गति चरम-सीमा की ओर जानी चाहिए ताकि दर्शक विस्मय-विमुग्ध हुए अभिनीत दृश्यों को देखता रहे।

(2) नाटक के अन्तर्गत पात्रों की भीड़ कम हो ताकि रंगमंच पर वे सुविधापूर्वक अभिनय कर सके और दर्शक भी उन पात्रों में अपना मन रमा सकें। रंगमंच पर पात्रों की भीड़ दृश्य का आकर्षण घटा देती है। प्रत्येक पात्र अपने आप में सक्रिय, स्फूर्तिमय और सजीव रहे। बहुधा नाटकों में एक दो पात्र तो बहुत सक्रिय होते हैं किन्तु अन्य गौण पात्र निष्क्रिय से देर तक रंगमंच पर एकाध वाक्य बोलते हैं खड़े रहते हैं। यह अभिनय की प्रभावशीलता में बाधक सिद्ध होता है।

(3) नाटक के संवाद छोटे, क्षिप्र, चलती और चुस्त भाषा में प्रवाहमान होने चाहिए जिनके उच्चारण में अभिनय कुशलता का लाभ उठाया जा सके। लम्बे संस्कृत-गर्भित, भावात्मक संवाद बोझिल होने के कारण स्वाभाविक नहीं लगते।

(4) अभिनय की दृष्टि से नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है दृश्य-विधान। दृश्य की शिथिलता नाटक को रंगमंच पर पूर्णतः प्रभावहीन बना देती है अतः दृश्य, विधान ऐसा होना चाहिए जो रंगमंच की सीमाओं में सरलतापूर्वक प्रस्तुत भी किया जा सके और परिवर्तित भी। भारतीय आचार्यों ने रसास्वाद तथा अभिनय में बाधक तत्वों का उल्लेख कर उन्हें अप्रदर्शनीय माना है। दूराह्वान, वध, युद्ध राज्य देशादि विप्लव, विवाह भोजन, मृत्यु, दन्तच्छेद, नखच्छेद, आदि दृश्यों का बहिष्कार किया है।

> दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादि विप्लवः।
> विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्युरतं तथा।
> दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद् व्रीडा करं च यत्।
> शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम्।
> स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नाति विस्तरः ॥[2]

1- हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन- डा0 गिरीश रस्तोगी, पृ0 57-58

2- साहित्य दर्पण

नाटककार को दृश्यों के विभाजन के सन्तुलन के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। दृश्य इस प्रकार के हों, जिससे दर्शक का मन आकृष्ट रहे। प्रारम्भ के दृश्य बड़े हों तथा क्रमानुसार छोटे होते जाना चाहिए। दृश्यों का क्रम कथावस्तु के अनुरूप हो। दृश्यों की सजावट का उल्लेख नाटक में अपेक्षित है। इससे वातावरण को सजीव बनाया जाता है।

दृश्यों को प्रदर्शित करने के लिए रंगमंच या मण्डप की आवश्यकता होती है। नाट्यशास्त्र में इसका विस्तृत वर्णन है। उन्होंने विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र नाट्य गृहों का उल्लेख किया है। इनके माप श्रेष्ठ, मध्यम तथा अवर तीन प्रकार के हैं।[1] इन सबकी लम्बाई चौड़ाई का विस्तार से वर्णन नाट्य शास्त्र में हुआ है। दर्शकों के लिए बैठने का स्थान, नेपथ्य गृह, रंगशीर्ष, रंगपीठ सभी का स्थान निश्चित रहता था। वेष-भूषा, सजावट, चित्रकारी, प्रकाश, ध्वनि संगीत की भी व्यवस्था रंगमंच के अनुरूप होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सात्विक, वाचिक, आंगिक एवं आहार्य अभिनयों का उल्लेख किया जाना चाहिए।[2]

1- नाट्य शास्त्र 2/8

2- नाट्यशास्त्र, 6/24

तृतीय अध्याय

गीतिनाट्य : उद्भव विकास

तृतीय अध्याय

गीतिनाट्य : उद्भव एवं विकास

पिछले अध्याय से यह स्पष्ट हो गया कि गीतिनाट्य की अपनी एक साहित्यिक विधा है, जो एक तरफ गद्य नाट्य से तथा दूसरीतरफ नाट्य काव्य से अलग अपना अस्तित्व रखती है। चूंकि इसमें संवाद पद्यात्मक होते हैं, अतः गीतिनाट्य का प्रारम्भ कुछ विद्वान वेदों से मानते हैं। जबकि इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है किगीतिनाट्य मत्मूलाधार अन्तर्द्वन्द्व है, जिसका प्रेरणा स्रोत पाश्चात्य साहित्य है फिर भी गीतिनाट्य की पृष्ठभूमि में भारतीय नाट्य परम्परा का अपना महत्व है, जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। बात यह है कि मानव आत्मा भावावेश कीअवस्था में गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग करती है, भारत में नाटकों का प्रादुर्भाव ही सर्वप्रथम हुआ है अतः यहाँ नाटकों में गद्य की अपेक्षा काव्यत्व का प्राधान्य अधिक है। भास, कालिदास तथा उनके परवर्ती भवभूति इत्यादि श्रेष्ठ नाट्यकारों की नाट्य रचनाओं में नाटकत्व और काव्यत्व का जो संगम है, वही उसेअभिनव सौन्दर्य प्रदान करता है। कथावस्तु का निर्देश आशीर्वाद, नमस्कार, आदेश इत्यादि मेंगद्य का प्रयोग हुआ है जिसकी मात्रा भी अत्यल्प है अतः यदि इन्हें गीतिनाट्य कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी परम्परा का विकासहिन्दी में हुआ है। वहाँ पद्यबद्ध नाटक कम काव्य ज्यादा लिखे गए हैं। बात यह है है कि जब नाटकों की परम्परा जिस समय साहित्य में प्रविष्ट हुई, उस समय अनेक साहित्यकार इसकी ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने ऐसे नाटकों की रचना की जिनमें गद्य कम काव्य अधिक है जैसे विज्ञान गीता(केशवदास) करुणाभरण, हनुमन्नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय(जसवंत सिंह) इत्यादि।

रास और गीतिनाट्य :—

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि गीतिनाटकों का विकास रास से हुआ है। डा० दशरथ ओझा का कथन है कि "रास, गीतिनाट्य तेरहवीं शताब्दी में विरचित होने लगे थे।xxxxx इसी रास का विकसित रूप आज गीतिनाटकों में देख रहे हैं।[1]

डा०दशरथ ओझा की उपपत्ति यह रही है कि संस्कृत के नाटक जनभाषा से भिन्न होने के कारण वे सामान्य व्यक्तियों को रसास्वादन कराने में अक्षम थे। अतः जनभाषा में लिखे गये जाने वाले नाटकों की परम्परा प्रचलित हुई, जिन्हें स्वांग, रास, नौटंकी, भाँड़

1-हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा०दशरथ ओझा, पृ० 70-78

बंगला में यात्रा, विदेशिया इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। यह निर्विवाद है कि जैनाचार्य, धर्मप्रचारार्थ जन-भाषा का प्रयोग करते थे और उनका वासस्थान राजस्थान रहा है अतः रासो का निर्माण राजस्थानी भाषा में हुआ है। जैनाचार्य शृंगार और संगीत नृत्य से पराङ्मुख थे अतः उनके रास आगे चलकर श्रव्य ही रह गए और अजैन परम्परा में लिखित रास जिनमें नृत्य गीत, संगीत इत्यादि का प्राधान्य था, विकसित होते रहे और सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण-भक्त आचार्यों ने इसे विकसित किया। वल्लभाचार्य और हरिहितवंश, ध्रुवदास इत्यादि महात्माओं ने कृष्ण को नायक बनाकर अनेक रास लिखे और इनका अभिनय भी होता रहा है।

यहाँ गीतिनाट्य का उद्भव रास से मानने के पूर्व यह देखना अनिवार्य है कि रास किसे कहते हैं, उसका स्वरूप क्या है? रास की उत्पत्ति विवाद का विषय है अतः उसका विवेचन यहाँ अनपेक्षित है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि एक तरफ रास, रस का बहुवचन है, तो दूसरी तरफ संगीतादि से रस उत्पन्न करने की क्षमता होने के कारण रास है। तीसरी तरफ पशु-पालक नृत्य के बीच में रव करने के कारण इसे रास कहा जाता है तो चौथी मान्यता है कि स्त्री-पुरुष मण्डलमें नृत्य करने के कारण यह रास कहलाता है। कुछ लोग राधा लीला से रास को विकसित मानते हैं तो कुछ रहस्य लीला से। तात्पर्य यह है कि रास की उत्पत्ति चाहे जिस शब्द से हुई हो किन्तु उसकी विशेषताओं के संबंध में कोई भ्रान्ति नहीं है। डा0 दशरथ ओझा केअनुसार "सम्पूर्ण नाटक छन्दोबद्ध एवं गेय है, जिसमें गद्यभाग उपेक्षित है जिसके पात्र आद्यन्त रंगमंच में उपस्थित रहते हैं। नृत्य और गीतों पर सारा नाटक आधृत है जिसमें मंगलाचरण, प्रशस्ति पाठ, स्वांग नाटकों के सदृश हैं तथा अन्त में फलश्रुति होती है। दृश्य पट परिवर्तन रहित होते हैं भाषा में तद्भव एवं देशज शब्दों का बाहुल्य होता है।"[1]

संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में रासक का उल्लेख है, जिसे उपरूपक कहा गया है। विश्वनाथ के अनुसार इसमें पाँच पात्र एक अंक, मुख और निर्वहण सन्धि, कैशिकी और भारती वृत्तियाँ, सूत्रधार रहित, नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख, उत्तरोत्तर उदात्त-भाव की अभिव्यक्ति होती है।[2]

इसी तरह से नाट्य रासक का भी लक्षण दिया गया है- इसमें एक अंक, नायक उदात्त और पीठ मर्द, हास्य रस, नायिका वासक सज्जा, मुख और निर्वहण सन्धि होती है।[3]

1- हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ0 118-119 2- साहित्यदर्पण 6/288-90

3- साहित्य दर्पण, 6/266-69

तात्पर्य यह है कि रास परम्परा एवं शास्त्रीय लक्षणों को देखकर इतना तो कहा जा सकता है कि गीतिनाट्य का उद्भव भले ही इनसे न हुआ हो, किन्तु हिन्दी गीतिनाट्य इस परम्परा से प्रभावित बहुत हैं।

पाश्चात्य गीतिनाट्य परम्परा और हिन्दी गीतिनाट्य :—

यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि विश्व में सर्वप्रथम साहित्य पद्य में लिखा जाता रहा है – यूनान, जर्मन आदि देशों के प्रारम्भिक नाटक भी काव्यात्मक रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में नाटक एवं काव्य का संबंध अतिप्राचीन है। शेक्सपियर, मार्लो आदि नाटककार इसके उदाहरण हैं। इनकी रचनाओं को गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ऐसी रचनाएं लिखने का प्रयास किया है जिनमें नाटकीयता थी। आगे चलकर जब स्वच्छन्दतावाद की भावुकता एवं गीतात्मकता का विरोध हुआ तो यथार्थवादी नाटक सामने आये जिनमें बर्नार्ड शा एवं इब्सन प्रमुख हुए। इन्होंने बौद्धिकता को प्रामुख्य दिया किन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब बौद्धिकता का ह्रास होने लगा। नाटक जो मनोरंजन की वस्तु थी, उसमें वही यंत्रणाएं दिखायी जाने लगी थी, जिसे दर्शक अपने वास्तविक जीवन में अनुभव कर रहा था, इससे उसकी कुण्ठाएं बढ़ती गयीं परिणामस्वरूप सिनेमा विकास होने के साथ ही साथ बौद्धिक नाटक पतित होने लगे। इसका लाभ गीतिनाट्यों को मिला। टी०एस०इलियट, ऑडेन, क्रिस्टोफर, स्टीफेन, स्पेण्डर आदि नाट्यकारों ने सफलतापूर्वक गीतिनाट्यों की रचना की है। इस प्रकार सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों रूप से अंग्रेजी के गीतिनाट्य पर्याप्त समृद्ध हैं। इन गीतिनाट्यों का प्रभाव हिन्दी गीतिनाट्यों पर निश्चित रूप से पड़ा है। अन्तःसंघर्ष, युग सापेक्षता तथा शैली की दृष्टि से हिन्दी गीतिनाट्य पाश्चात्य गीतिनाट्य का ऋणी रहेगा। कहना नहीं होगा कि हिन्दी गीतिनाट्य को भारतीय जननाटक–रास तथा पाश्चात्य गीतिनाट्यों से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है।

हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य :—

पूर्व पृष्ठों में यह लिखा जा चुका है कि गीतिनाट्य आधुनिक विधा है अतः रास से प्रभावित एवं पद्यबहुल नाटकों (काव्य) गीतिनाट्यों की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। आधुनिक काल में रचित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'चन्द्रावली नाटिका' को कुछ लोग प्रथम गीतिनाट्य स्वीकार करते हैं किन्तु मैं समझता हूं कि प्रथम गीतिनाट्य होने का श्रेय करुणालय' (प्रसाद) को है क्योंकि 'चन्द्रावली' में जहाँ एक ओर काव्यमयता है, नाटकीयता है, वहीं दूसरी ओर उसमें गद्य का बाहुल्य है। अतः इसे नाटक ही कहा जायेगा। जैसे कि संस्कृत

के और प्रसाद के अन्य गद्य नाटक हैं। डा० कृष्ण सिंहल डा० बच्चनसिंह तथा लब्धप्रतिष्ठ सभी नाट्य समीक्षकों ने करुणालय को ही प्रथम गीतिनाट्य माना है। तब से लेकर शताधिक गीतिनाट्य लिखे जा चुके हैं जिनकी सूची निम्न है —

गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल	गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल
करुणालय	जयशंकर प्रसाद	1909	मगधमहिमा	दिनकर	1009
लीला	मैथिलीशरण गुप्त	1921	कृष्णाकुमारी	सियारामशरण	1921
अनघ	गुप्त	1925	रेणुका	मंगलप्रसाद	1927
पंचवटी प्रसंग	निराला	1929	स्वर्णविहान	हरिकृष्णप्रेमी	1930
धूपछाँह	आरसीप्रसाद	1930	पृथ्वीराज	यशवन्तसिंह	1930
तारा	भगवतीचरणवर्मा	1932	मत्स्यगन्धा	उदयशंकरभट्ट	1937
विश्वामित्र	उदयशंकरभट्ट	1938	शिल्पी	पंत	1940
ध्वंसावशेष	पंत	1940	अप्सरा	पंत	1940
मदनिका	आरसीप्रसाद	1941	राधा	उदयशंकरभट्ट	1941
उन्मुक्त	सियारामशरण	1943	कालदहन	केदारनाथप्रभात	1945
द्रौपदी	भगवतीचरणवर्मा	1945	संवर्त	प्रभात	1945
कर्ण	वर्मा	1945	स्नेह या स्वर्ग,	गोविन्ददास	1946
एकला चलो रे	उदयशंकरभट्ट	1948	मांस का विद्रोह	रामसिंहासन	1949
मेघदूत	भट्ट	1950	स्वप्नसाकार हुआ	आरसीप्रसाद	
मधुकर श्याम हमारे चोर	आरसीप्रसाद		कचदेवयानी	आरसीप्रसाद	1950
मधुर मधुर मेरे दीपक	"		श्यामसलोना	आरसीप्रसाद	
इन्द्र धनुष	"	1950	वर्षामंगल	आरसीप्रसाद	
ऋतुराज	"		आदि कवि की प्रेरणा,	"	
अहिंसा परमोधर्मः	"		समर्पण के बेला में	"	
जब धरती पर स्वप्न उतरते	"		निमि	"	1950
विक्रमोर्वशी	उदयशंकरभट्ट	1950	कालिदास	उदयशंकर	1950
राजापरीक्षित	गौरीशंकर	1950	हिमालय का संदेश	दिनकर	1950
विद्युतवसना	पंत	1950	शुभ्र पुरुष	पंत	1950
उत्तरशती	पंत	1950	मदनदहन	उदयशंकर	1950
मेघदूत	पंत	1951	रजतशिखर	पंत	1951

गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल	गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल
फूलों का देश	पंत	1951	शरदचेतना	पंत	1951
शकुन्तला	पंत	1951	मिलनयामिनी	हंसकुमारतिवारी	1951
मेघदूत	हंसकुमारतिवारी	1951	कचदेवयानी	वही	1951
पुजारिन	हंसकुमारतिवारी	1951	सर्वोदय	केदारनाथमिश्र	1951
अंगुलिमाल	केदारनाथ मिश्र	1951	मानव निश्चय ही लौटेगा	वही	1951
कवि	सिद्धनाथकुमार	1951	महाकाल	भगवतीचरणवर्मा	1952
विन्ध्याचल	प्रभाकरमाचवे	1954	अन्धायुग	धर्मवीरभारती	1954
सृष्टि का आखिरी आदमी	भारती	1954	सृष्टि की सांझ	सिद्धनाथकुमार	1954
लौहदेवता	सिद्धनाथ	1954	संघर्ष	सिद्धनाथकुमार	1954
विकलांगों का देश	वही	वही	रामगिरि	प्रभाकर माचवे	1955
सेतुबन्ध	भारतभूषणअग्रवाल	1955	मिलनतीर्थ	भारतभूषण	1955
शान्तिपथ	वही	वही	बादलों का शाप	सिद्धनाथ	1955
वातायनखोलो	सिद्धनाथ		गाँधी की नोआखाली यात्रा,	वही,	
पूर्णिमा का अन्धकार	मदनवात्स्यायन	1957	सौवर्ण	पंत	1957
इन्दुमती	गिरिजाकुमार	1955	धराद्वीप	गिरिजाकुमार	1955
वृन्दावन	प्रफुल्लचन्द्र	1955	बहुरंगकाव्य	सीतारामचतु0	1956
स्वप्न-सत्य	पंत	1957	दिग्विजय	पंत	1957
अशोकवनबन्दिनी	उदयशंकरभट्ट	1958	अश्वत्थामा	उदयशंकर	1958
गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण	वही	1958	सन्ततुलसीदास	वही	1958
पाषाणी	जानकीवल्लभ	1958	उर्वशी	जानकीवल्लभ	1958
वासन्ती	जानकीवल्लभ	1958	गंगावतरण	जानकीवल्लभ	1958
मंजरी	जानकीवल्लभ	1958	तमसा	जानकीवल्लभ	1958
मदनदहन	जानकीवल्लभ	1958	उर्वशीमानभंग	जानकीवल्लभ	1958
गोपा	जानकीमहेंद्र	1958	शापमुक्ति	जानकीवल्लभ	1958
आदमी	जानकीवल्लभ	1958	पांचाली	जानकीवल्लभ	1958
सुहाग-सरोवर	लक्ष्मीनारायणलाल	1960	कल्पान्तर	गिरिजाकुमार	
दंगा	गिरिजाकुमार		राम	गिरिजाकुमार	

गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल	गीतिनाट्य का नाम	रचनाकार	रचनाकाल
व्यक्तिमुक्ति	गिरिजाकुमार		अमर है आलोक	गिरिजाकुमार	
दीपशिखा	गिरिजाकुमार		नींद के देश में	गिरिजाकुमार	
स्वर्णश्री	गिरिजाकुमार		कजरारे बादल	विन्ध्याचल प्रसाद	
झूम रहा वृन्दावन	विन्ध्याचलप्रसाद		पहली बूँद	वही	
अनुराग का रंग	वही	न	नहुषनिपात	उदयशंकर	1961
गान्धी या रामराज्य	उदयशंकर		अमरअर्चना	वही	
हिमालय के शिखर	उदयशंकर		उर्वशी	दिनकर	1961
संशय की एक रात	नरेश मेहता	1962	एककण्ठविषपायी	दुष्यन्तकुमार	1963
उत्तरजय	नरेन्द्र शर्मा	1964	अग्निदेवता	नरेशमेहता	1964
योगनिद्रा	कृष्णनन्दनपीयूष	1967	उत्तरप्रियदर्शी	अज्ञेय	1965
इरावती	जानकीवल्लभ	1973	अग्निलीक	भारतभूषण	1976

इनके अतिरिक्त अनेक पद्यबद्ध काव्य लिखे गये हैं, जिन्हें विद्वानों ने गीतिनाट्य की संज्ञा दी है। मैं समझता हूँ कि उनमें नाटकीयता क्षीण है, या फिर बीच बीच में गद्य दिया गया है अतः वे या तो काव्य हैं, या नाट्य-काव्य कहे जा सकते हैं — जैसे — संगीत हरिश्चन्द्र नाटक(कन्हैयालाल) शकुन्तला नाटक(गणेशप्रसाद), कृष्णकेलिमाला(नन्दीपति), संगीत शाकुन्तल(प्रतापनारायणमिश्र), श्रीकृष्ण-सुदामा; चित्रलेखा, देवदासी, शाहजहाँ, (महेशचन्द्र प्रसाद), इन्दर सभा(मदारीलाल) शिवविवाह नाटक(रामगुलामलाल), रामलीलाप्रभाकर (रूपनारायण सिंह), संगीत रूप बसन्त(लाला गुलाब सिंह), माधवकाम कन्दला(शालिग्राम वैश्य) इत्यादि। अतः इनको छोड़कर शेष सूची पर विचार करना होगा।

शताधिक गीतिनाट्यों का वर्गीकरण दुस्साध्य है। इनमें से कुछ वर्गीकरण के आधार निम्न हैं —

<u>(1)आकार के आधार पर</u> :— कुछ गीतिनाट्य एकांकी और छोटे हैं — जैसे सृष्टि का आखिरी आदमी, सृष्टि की साँझ, इन्दुमती, मदन दहन, इत्यादि कुछ बड़े गीतिनाट्य हैं जैसे — स्नेह या स्वर्ग, अन्धायुग, उर्वशी, सूखा सरोवर एककण्ठ विषपायी।

<u>(2)कथाक्षेत्र के आधार पर</u> :— गीतिनाट्यकारों ने विभिन्न क्षेत्रों से कथा का चयन किया है। (क) पौराणिक — करूणालय, सीता, पंचवटी प्रसंग, तारा, मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र, राधा, द्रौपदी, कर्ण, कचदेवयानी, राजा परीक्षित, मदन दहन, अन्धायुग, अशोक वनबन्दिनी

पाषाणी, उर्वशी, राम इत्यादि। (ख) सांस्कृतिक — स्नेह या स्वर्ग, मेघदूत, कालिदास, मिलन यामिनी, अंगुलिमाल, इन्दुमती, सन्ततुलसीदास, मंजरी।

(ग) काल्पनिक — धूपछाँह, शिल्पी, आशोक, अप्सरा, उन्मुक्त, हिमालय का सन्देश, विद्युत वसना, रजत-शिखर, कवि, महाकाल, लौहदेवता, संघर्ष, सौवर्ण, स्वप्न-सत्य, वासन्ती।

(घ) ऐतिहासिक — कृष्णाकुमारी, पृथ्वीराज, स्वर्ण-विहान, मौस का विद्रोह, अहिंसा परमोधर्मः शुभ्रपुरुष, उत्तरशती, गाँधी की नोआखाली यात्रा, स्वर्ण श्री, इरावती।

<u>(3) आधुनिक मूल्यों की अभिव्यक्ति करने वाले :—</u>

शिल्पी, कालदहन, रजतशिखर, स्वर्णोदय, अंधायुग, सृष्टि की साँझ, लौहदेवता, सौवर्ण, दंगा, एककण्ठविषपायी, संशय की एक रात, सूखा सरोवर,।

<u>(4) प्रकृति के आधार पर</u> :—(क) इतिवृत्त प्रधान गीतिनाट्य — करूणालय, लीला, अनघ, स्वर्ण विहान, उन्मुक्त, द्रौपदी, कर्ण, स्नेह या स्वर्ग।

<u>(ख) अनाटकीय काव्य</u> :— पंचवटी, प्रसंग, मगध-महिमा, विद्युतवसना, शुभ्र पुरुष फूलों का देश महाकाल, मिलनतीर्थ, शान्तिपथ।

<u>(ग) गीतितत्व प्रधान गीतिनाट्य</u> :— तारा, मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र, मदनिका, विश्वामित्र, धूपछाँह, उर्वशी (दिनकर) इरावती।

<u>(घ) श्रव्य (रेडियो) गीतिनाट्य</u> :— रजत-शिखर, शिल्पी, आशोक, द्रौपदी, कर्ण, मेघदूत, (पंत, भट्ट, हंसकुमार) इत्यादि तथा आरसी प्रसाद सिंह के सभी गीतिनाट्य, दंगा, राम, व्यक्तिमुक्त, अमर है आलोक, दीपशिखा, कजरारे बादल, शमागिरि इत्यादि।

<u>(ङ) रंगमंच सापेक्ष गीतिनाट्य</u> :— अन्धायुग, सूखासरोवर, एककण्ठ विषपायी, उत्तरप्रियदर्शी।

<u>(5) साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार वर्गीकरण</u> (1) द्विवेदी युग — करूणालय, मगधमहिमा, लीला, कृष्णाकुमारी (2) छायावादयुगीन — पंचवटी, प्रसंग, धूपछाँह, तारा, मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र (3) प्रगतिवादयुगीन — शिल्पी, आशोक, अप्सरा, मदनिका, राधा, उन्मुक्त।

(4) प्रयोगवादयुगीन — कालदहन, द्रौपदी, संवर्त, कर्ण, स्नेह, या स्वर्ग, से लेकर विन्ध्याचल (प्रभाकर माचवे) तक। (5) नयी कविता — अंधायुग से लेकर अग्निलीक तक आदि।

<u>हिन्दी गीतिनाट्यों का विकास :—</u>

हिन्दी गीतिनाट्यों का विकास क्रम तीन स्थितियों में दिखायी देता है। (1) आरम्भिक काल (2) विकास काल (3) समृद्धिकाल। क्रमशः इन्हीं क्रम से हिन्दी गीतिनाट्यों का विकासक्रम दिखाया जा रहा है —

(1) आरम्भिक काल :—— (प्रारम्भ से सन् 1940 तक)

कहना नहीं होगा कि पाश्चात्य गीतिनाट्य एवं बंगला के प्रभाव से हिन्दी गीतिनाट्यों का प्रारम्भ हुआ जिसमें संस्कृत से विकसित होती हुई उस नाट्य परम्परा का विशेष हाथ है जिसे हम गीतबहुल गद्यनाटक या राजस्थानी रास परम्परा का विकसित रूप कहते हैं।

यह युग अस्थिरता का युग था देश में ब्रिटिश शासन के उच्छेद के लिए अनेक प्रकार के प्रयास हो रहे थे। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, क्षेत्र में जो पुनर्जागरण हो रहा था उसका प्रभाव हिन्दी गीतिनाटकों पर पड़ा है।

इस युग के गीतिनाट्यों के विषय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से गृहीत हैं। जैसे— पौराणिक, ऐतिहासिक काल्पनिक। करुणालय में शुनःशेफ का आख्यान, लीला में राम की बाल लीलाएँ पंचवटी प्रसंग में शूर्पणखा प्रसंग तारा में तारा के पतन एवं पाप-पुण्य की व्याख्या एवं मत्स्यगन्धा में मत्स्यगन्धा की कामना की घटनाएँ विन्यस्त हैं। मगधमहिमा-पृथ्वीराज ऐतिहासिक है। अनघ में मघ के माध्यम से गाँधी जी के अछूतोद्धार एवं ग्राम सेवा का वर्णन है। स्वर्ण विहान में अहिंसा की विजय एवं राष्ट्रीय जागरण का वर्णन है। रूपहीन मानव जीवन के परिवर्तन हास-अश्रु विचार विलास पर आधृत है। इन नाटकों की कथावस्तु सरस, कार्य व्यापार बहुत गतिशील नहीं है। साधु, तपस्वी, अभिमानी, वीर, कामी, प्रायः सभी प्रकृति के पात्रों का प्रयोग है। छोटे लम्बे संवाद, स्वगत कथन, सरल सीधी प्रवाहमयी आलंकारिक भाषा है। यत्रतत्र रंगमंचोपयुक्त साधनों का उल्लेख है। सारतः यह कहा जा सकता है कि आरम्भिक काल के गीतिनाट्य इतिवृत्तात्मक, पद्यप्रधान गीतिनाट्य हैं।

(2) विकासकाल :—— (सन् 1940 से 1952 तक)

इस युग तक आते गीतिनाट्यों को रेडियो का आश्रय मिल गया था अतः इसकी पूर्व सीमा 1940 रखी है; और अन्धायुग हिन्दी गीतिनाट्य का प्रकाश स्तम्भ है, अतः उसके पहले के समय को अपर सीमा मानी गयी है। इसके पूर्वार्द्ध में देश को स्वातंत्र्य कराने में हिंसक अहिंसक प्रयत्न तथा उत्तरार्द्ध में स्वतंत्रता देश विभाजन, विस्थापितों की समस्या, सामाजिक क्षेत्र में ऊँच-नीच की भावना, छुआछूत तथा धार्मिक क्षेत्र में मिथ्याडम्बरों का बोलबाला था। प्रगतिवाद से लेकर प्रयोगवाद तक की साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रभाव इन गीतिनाट्यों में पड़ा है। इस युग के गीतिनाट्यकारों में पंत, आरसीप्रसाद सिंह, उदयशंकर भट्ट, केदारनाथ मिश्र, भगवती चरण वर्मा, गौरीशंकर, दिनकर और हंसकुमार तिवारी तथा सिद्धनाथ कुमार है। पंत के गीतिनाट्य काल्पनिक और प्रतीकात्मक हैं जिनमें वर्तमान की समस्याएँ चित्रित की गयी हैं।

शिल्पी कलाकार के आन्तरिक संघर्ष को जनक्षोभ में विश्वयुद्ध के भयंकर परिणाम, रजतशिखर में मनुष्य की अन्तश्चेतना के साथ मानव विकास की रूपरेखा अंकित है। विद्युतवसना में स्वाधीन भारत का उल्लास तथा शुभ्र पुरूष में महात्मागान्धी को गीतिनाट्य का विषय बनाया गया। आरसीप्रसाद सिंह के गीतिनाट्य सामाजिक पौराणिक और समसामयिक समस्याओं से संबंधित हैं। मन्दाकिनी में मानव जीवन के हास-अश्रु प्रेम विलास का चित्रण है। कृष्ण की कथा को लेकर मधुकर श्याम हमारे चोर लिखा गया है। 'देवयानी' में शुक्राचार्य की पुत्री एवं बृहस्पति पुत्र कच के प्रेम प्रसंग का वर्णन है। वर्षामंगल में धान से नयी फसल से प्रेरित उल्लास को अंकित किया गया है। ऋतुराज में वसन्तागम में मानवीय चेतना के विकास का वर्णन है। उन्मुक्त में काल्पनिक द्वीपों में युद्ध की विभीषिका तथा अहिंसा के महत्व से संबंधित घटनाएँ विन्यस्त हैं। अंगुलिमाल में उसके हृदय परिवर्तन की घटना विन्यस्त है। काल दहन संवर्त एवं स्वर्णोदय आधुनिक जीवन की समस्याओं को चित्रित करने वाले प्रतीकात्मक गीतिनाट्य हैं। स्नेह या स्वर्ग में प्रेम या भौतिक आकर्षण के द्वन्द्व की घटना वर्णित है। द्रौपदी और कर्ण संबंधित व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु बनाकर महाभारत में वर्णित घटनाओं का पिष्टपेषण नए ढंग से किया गया है। महाकाल असीम शक्ति का प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। मसि का विद्रोह में गान्धी जी की अहिंसा को आधार बनाकर अनेक प्रतीकात्मक घटनाओं का वर्णन किया गया है। राधा में विवाहिता राधा के परकीया प्रेम का वर्णन है। एकला चलो रे में गान्धी जी की नोआखाली की यात्रा को विषय बनाया गया है। मेघदूत और कालिदास में मेघ का दौत्य कर्म तथा कवि की जीवनी एवं उसकी कृतियों में अंकित घटनाओं का वर्णन है। राजा परीक्षित में भगवतोक्त कथा का वर्णन है एवं हिमालय का संदेश में दिनकर ने विश्वशान्ति का उपदेश एवं हिमालय की महत्ता बतायी है। शकुन्तला और मेघदूत कालिदास के ग्रन्थों पर आधारित हैं। मिलन-यामिनी बौद्ध भिक्षु एवं वासवदत्ता के प्रेम और त्याग की घटनाएँ हैं।

सार यह है कि इस युग के गीतिनाट्य विकासोन्मुख रहे हैं। पौराणिक, सामाजिक ऐतिहासिक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं काल्पनिक क्षेत्रों से विषय वस्तु का चयन किया गया है। घटनाओं में युगीन अभिव्यक्ति के साथ, भविष्य के लिए सुखद संदेश निहित है। कथाप्रवाह सरल, गतिशील एवं प्रभावोत्पादक है। द्रौपदी कर्ण एवं महाकाल की घटनाएँ बहुत सूक्ष्म हैं। पंत के सभी गीतिनाट्यों की कथा जटिल एवं वर्णनात्मक है। इस युग के पात्रों में मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं का समावेश किया गया है। जड़ पात्रों को भी सजीव बनाया गया है। पात्रों की आन्तरिक मनोवृत्ति के उद्घाटन के लिए स्वगत कथन का आश्रय लिया गया है। पात्रों की भीड़ नहीं

लगायी गयी, आदर्श यथार्थ छोटे, बड़े त्यागी, विलासी, सभी पात्र प्रयुक्त हैं। इस काल के गीतिनाट्यों में छोटे बड़े दोनों संवाद प्रयुक्त हैं। मत्स्यगन्धा, द्रौपदी, कचदेवयानी, के संवाद छोटे तथा पंत के गीतिनाट्यों के संवाद लम्बे हैं। रंगमंच की दृष्टि से अनेक रचनाएँ असफल हैं। इस युग की रचनाएँ रेडियो से प्रसारित होने के लिए लिखी गयी हैं। अतः उनमें नाट्यत्व और काव्यत्व का निर्वाह कम ही हुआ है। आश्चर्य की बात तो यह है कि पंत और उदयशंकर भट्ट ने गीतिनाट्यों के सिद्धान्तों का निरूपण जितनी सजगता से किया है गीतिनाट्य लिखने में उन सिद्धान्तों की पूर्ण अवहेलना है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि रेडियो की दृष्टिसे ये गीतिनाट्य सफल हैं। इतिवृत्त पद्यात्मकता से निकल कर इस युग में वास्तविक रूप के गीतिनाट्य लिखे गए हैं।

(3)समृद्धिकाल :—— (1952 से अब तक)

हिन्दी गीतिनाट्य के क्षेत्र में उदयशंकर भट्ट एवं धर्मवीर भारती दो प्रतिभा सम्पन्न नाट्यकार विश्रुत हुए हैं। यदि उदयशंकर भट्ट ने इस विधा को पल्लवित तथा पुष्पित किया है तो धर्मवीर भारती ने इसे फल युक्त किया है। मनोहर रूपविधान, मनोवैज्ञानिक सजीव चरित्र सृष्टि, क्षिप्र, संवाद काव्यत्व, अलंकृत शैली से युक्त अन्धायुग, रंगमंच एवं रेडियो के लिए गौरव की वस्तु है। विकास काल में रेडियो तथा पाश्चात्य साहित्य के आलोड़न विलोड़न का अवसर भी नाट्यकारों को प्राप्त हुआ है किन्तु उसका लाभ गीतिनाट्यकार नहीं उठा सके। बात यह है कि पाश्चात्य गीतिनाट्यों के अनुरूप रंगमंच तथा अतः उनका अभिनय होता रहा जिससे नाट्यकार को उसके दोषों का पता चलता रहा। किन्तु हिन्दी में अव्यवसायिक रंगमंच अविकसित था अतः नाट्यकारों को रेडियो का आश्रय लेना पड़ा। इस समृद्धिकाल में अनेक साहित्यिक रूचि के रंगमंच की स्थापना हुई, जिसमें लघुनाटक तथा गीतिनाटकों का मंचन सफलतापूर्वक हुआ है। अतः इस युग के अधिकांश गीतिनाट्यकारों ने रंगमंच का भी ध्यान रखा है। इस युग के नाट्यकारों में प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, सिद्धनाथ कुमार, भारतभूषण, गिरिजाकुमार माथुर, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, पंत, उदयशंकर भट्ट, जानकीवल्लभ शास्त्री, दिनकर, नरेशमेहता और अज्ञेय, लक्ष्मीनारायण लाल प्रमुख गीतिनाट्यकार हैं।

विन्ध्याचल और रामगिरि में पर्वतों के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालने के लिए तत्सम्बन्धित विश्रुत घटनाओं का चयन किया गया है। अन्धायुग में महाभारत की घटनाओं को युगीन हिंसा, कुण्ठा, निराशा एवं भय का वातावरण में प्रस्तुत किया गया है। सिद्धनाथ कुमार ने सामाजिक क्षेत्र के आन्तरिक संघर्ष को व्यक्त करने वाले प्रतीकात्मक गीतिनाट्यों

की रचना की है। सृष्टि की साँझ में युद्धोपरान्त निर्माण की भूमिका का वर्णन है। लौहदेवता में यान्त्रिकता का अभिशाप है, संघर्ष में, कलाकार की आन्तरिक व्यथा एवं विफलताओं के देश में, आधुनिक सामाजिक अव्यवस्था का अंकन है। बादलों का शाप सामाजिक एवं आर्थिक विषमता के चित्र उपस्थित करता है। वातायन खोलो में आधुनिक व्यस्त मानव की उद्दाम कामनाओं का संकेत है। गान्धी जी की नोआखाली की यात्रा, ऐतिहासिक गीतिनाट्य है। भारत भूषण ने सांस्कृतिक एवं पौराणिक गीतिनाट्यों की रचना की है। मिलन तीर्थ, शान्तिदूत एवं सेतु बन्ध में वैवस्वत मनु से लेकर गान्धी जी तक की घटनाओं का आकलन कर भारत महिमा का गायन है। अग्निलीक में सीता के पृथ्वी प्रवेश की घटना वर्णित है। गिरिजाकुमार माथुर विश्रुत एवं सफल गीतिनाट्यकार हैं उन्होंने पौराणिक वैज्ञानिक एवं आधुनिक समसामयिक क्षेत्रों से ग्र गीतिनाट्यों की रचना की है। इन्दुमती, कालिदास के रघुवंश पर आधारित है। कल्पान्तर अणु युद्ध की समस्या एवं दंगा भारत विभाजन की घटनाओं पर आधारित है। राम में राम कथा के उत्तरार्ध की घटनाओं में ब्राह्मणपुत्र की मृत्यु एवं राम द्वारा जीवन दान का चयन किया गया है। व्यक्तिमुक्त कल्याणकारी राज्य की स्थापना के पृष्ठभूमि में है। अमर है आलोक गान्धी जी की मृत्यु पर लिखा गया है। सार यह है कि उनके सभी गीतिनाट्य रेडियो पर सफल रहे हैं। कृष्णकथा पर आधारित वृन्दावन लिखा गया है। सौन्दर्य कामी मानव की कल्पना को लेकर लिखा गया है। स्वप्नसत्य में यथार्थ और आदर्श की घटनाओं का विन्यास है। दिग्विजय अंतरिक्ष यात्रा से सम्बन्धित है। इस प्रकार पंत के गीतिनाट्य जहाँ काव्यत्व से पूर्ण हैं वहीं नाट्यत्व से हीन हैं। उदयशंकर भट्ट की सभी रचनाएं रेडियो के लिए लिखी गयी हैं। अशोक वन बन्दिनी, अश्वत्थामा, एवं गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण में सम्बन्धित पात्रों की प्रमुख घटनाओं एवं पात्र की आन्तरिक दशा का वर्णन है। उन्हें रेडियो में पर्याप्त सफलता मिली है। जानकी वल्लभ शास्त्री छायावादी शिल्प से प्रभावित जाने माने कवि हैं अतः उनके गीतिनाट्यों में भाषा और शिल्प का अद्भुत समन्वय है जिनका थोड़े बहुत परिवर्तन से मंचन भी किया जा सकता है। पाषाणी में अहल्या, उर्वशी में पुरूरवा,-उर्वशी, की गंगावतरण में गंगा आनयन सम्बन्धी घटनाएँ विन्यस्त हैं। वासन्ती, ऋतु सम्बन्धी नाटक है, मंजरी की कथा राजशेखर से प्रभावित है। इरावती में इरावती और अग्निमित्र के प्रेम प्रसंग की घटनाएँ विन्यस्त हैं।

सार यह है कि इनके गीतिनाट्यों में अन्त्यानुप्रास की स्वेच्छया स्वीकृत है जिनमें संगीत का सहारा लिया गया है। पुरूरवा और उर्वशी प्रणय प्रसंग को लेकर दिनकर ने उर्वशी की रचना की है जिसमें काव्यत्व अधिक और नाट्यत्व कम है। संशय की एक रात में नरेश मेहता ने राम-रावण युद्ध से पूर्व राम के संशय को व्यक्त किया है। अग्निदेवता में

उन्होंने अग्नि के विकास के साथ ही साथ भारतीय सभ्यता के विकास की रूपरेखा अंकित की है। एकलव्य विवशता एवं युद्धोत्तर मूल्यहीनता को लेकर दुष्यन्तकुमार ने एक कण्ठ विषपायी की रचना की है। उत्तरप्रियदर्शी में, अशोक के बौद्धधर्म में दीक्षित होने की पृष्ठभूमि उपस्थित की गयी है। योगनिद्रा पुराणकथा से संबंधित है। सूखा सरोवर में लक्ष्मीनारायण लाल ने लोक कथा के माध्यम से सरोवर के जल सूखने एवं पुनः आने की घटनाओं को विन्यस्त किया है।

सारांश यह है कि इस युग के गीतिनाट्यों की कथावस्तु पौराणिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक सामाजिक, लोकजीवन और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों से चुनी गयी हैं। नाट्यकार मानव संचेतना के प्रति सजग एवं आस्थावान है। गीतिनाट्यकार मानवतावादी समाजवादी, साम्यवादी, आदर्शवादी यथार्थवादी और मनोविश्लेषणवादी है अतः उन्हीं प्रवृत्तियों के अनुरूप घटनाओं का चयन किया गया है जिसमें क्रमबद्धता है, क्रिया व्यापार को गतिशील बनाए रखने का प्रयास है उनमें अनावश्यक विस्तार नहीं है। नाटकीयता और आकस्मिकता स्थान-स्थान पर मिलती है।

इस युग के गीतिनाट्यों के पात्र सजीव एवं निर्जीव दोनों है। सजीव पात्र स्पंदित जाग्रत एवं विकासोन्मुख हैं। भावों के घात प्रतिघात से उनका चारित्रिक विकास किया गया है। एवं मनोवैज्ञानिकता को आधार बनाकर उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति का उद्घाटन किया गया है। इस युग के गीतिनाट्यों के संवाद एक तरफ काव्यात्मक हैं तो दूसरी तरफ सुबोध, व्यावहारिक संक्षिप्त संगीतात्मक एवं सम्प्रेषणीय हैं। कहीं कहीं लम्बे संवाद अनाटकीय हो उठे हैं। इनकी भाषा एक तरफ तत्सम प्रधान, मुहावरेदार है तो दूसरी तरफ अलंकारों से युक्त काव्यात्मक है। प्रतीक और बिम्ब विधान इस युग की अपनी विशेषता है। कुछ रचनाओं में छन्दों का आग्रह है तो कुछ में मुक्त छन्द। इस काल के गीतिनाट्यों को रेडियो और रंगमंच दोनों की सुविधाएँ प्राप्त हैं, अतः मंचोपयुक्त, साज-सज्जा, पटपरिवर्तन, अभिनयों का उल्लेख तथा ध्वनि, प्रकाश संगीत का यथावसर निर्देश किया गया है।

इस प्रकार हिन्दी गीतिनाट्यों के विकासक्रम पर विहंगम दृष्टिपात करने से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि इतिवृत्तात्मक पद्य नाटक एवं अनाटकीय काव्यप्रधान नाट्यों से लेकर हिन्दी का गीतिनाट्य विकसित हुआ है जिसे उपयुक्त रंगमंच न मिलने के कारण रेडियो का सहारा लेना पड़ा है। आज सिनेमा के विकास होने के कारण जहाँ नाट्यों की माँग कम हो गयी है वहीं गीतिनाट्यों की लोकप्रियता घट गयी है किन्तु मैं समझता हूँ कि टेलीविजन गीतिनाट्यों के लिए वरदान बनकर आयेगा और वह दिन दूर नहीं जब उसकी लोकप्रियता बढ़ेगी।

सम्पूर्णगीतिनाट्यों का विवेचन एक स्थान पर सम्भव नहीं है अतः प्रवृत्ति, प्रकृति एवं क्षेत्र के आधार पर प्रमुख गीतिनाट्यों का चयन करउनका विवेचन अगले खण्ड में किया

जायेगा जो निम्न लिखित हैं —

करुणालय, लीला, अनघ, पंचवटी प्रसंग, तारा, मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र, शिल्पी, अप्सरा, राधा, उन्मुक्त, द्रौपदी, कर्ण, स्नेह या स्वर्ग, मेघदूत, रजतशिखर, कवि, सृष्टि का आखिरी आदमी, सृष्टि की साँझ, लौहदेवता, संघर्ष, अन्धायुग, इन्दुमती, मदनदहन, सौवर्ण, स्वप्नसत्य, दिग्विजय, उर्वशी, गंगावतरण, पाषाणी, मंजरी, अशोक वन बन्दिनी, गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण, सूखा सरोवर, उर्वशी, संशय की एक रात, एक कण्ठ विषपायी, उत्तरप्रियदर्शी, इरावती और अग्निलीक।

भाग – 2

प्रथम अध्याय

प्रमुख गीतिनाट्यों की कथावस्तु

प्रथम अध्याय

प्रमुख गीतिनाट्यों की कथावस्तु

करुणालय – जयशंकर 'प्रसाद'

वैदिक साहित्य में उपलब्ध शुनःशेप, रोहित, हरिश्चन्द्र आदि से सम्बन्धित घटनाओं का संकलन कर करुणालय की रचना की गयी है। यह कृति पाँच दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य में हरिश्चन्द्र सान्ध्य नीलिमा में सरयू में नौका विहार कर रहे हैं। सेनापति ज्योतिष्मान महाराज का ध्यान आकृष्ट कर इक्ष्वाकु कुल के भुजबल की प्रशंसा करता है। तभी एकाएक घोर गर्जना होती है, जिसके कारण महाराज नाव को तट की ओर ले चलने का संकेत करते हैं, किन्तु माँझी नाव के स्थिर हो जाने के कारण अपनी विवशता विज्ञापित करता है। उसी समय आकाशवाणी राजा को पाखण्डी कहती है। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् हरिश्चन्द्र पुत्र-बलि को टालते रहते हैं। राजा हरिश्चन्द्र प्रतिज्ञा पूर्ण करने का वचन देते हैं और नौका का अवरोध समाप्त हो जाता है। द्वितीय दृश्य रोहित के स्वगत कथन से प्रारम्भ हो जाता है। पिताज्ञा को सर्वोपरि मानते हुए भी वह निरर्थक आज्ञा के लिए तैयार नहीं है। अज्ञानावस्था में रहते ही उसकी बलि दे दी जाती किन्तु सज्ञान की स्थिति में यह सम्भव नहीं है। तभी छाया-पथ से इन्द्र उसे कर्म करने का प्रेरणात्मक सन्देश देते हैं। तीसरे दृश्य में क्षुधार्त अजीगर्त का चित्रण है। अकाल में सभी पशुओं के मर जाने पर तथा अन्न के अभाव के कारण ऋषि अजीगर्त की क्षुधा दैन्यावस्था में जीवन यापन करता है। रोहित अजीगर्त की दुरावस्था को देखकर सहायता हेतु तत्पर होता है किन्तु अजीगर्त उसे राजकुमार समझकर उस पर व्यंग्य करता है। रोहित सौ गायों के बदले में उसका एक पुत्र बलिदान हेतु माँगता है। पारिवारिक बुभुक्षा शान्ति हेतु मध्यम पुत्र शुनःशेप का विक्रय किया जाता है। चतुर्थ दृश्य शुनःशेप को लेकर रोहित के महाराज हरिश्चन्द्र के समक्ष पहुँचने की घटना से प्रारम्भ होता है। हरिश्चन्द्र रोहित को आज्ञा भंग के कारण पुत्राधम कहकर उसे राज्य के लिए अयोग्य कहते हैं किन्तु रोहित वाक्चातुर्य से पिता को प्रसन्न कर लेता है। अपने स्थान पर शुनःशेप के बलिदान की बात कहता है जिसे कुल-पुरोहित वशिष्ठ उसकी बलि देना स्वीकार कर लेते हैं। अन्तिम दृश्य में यज्ञ-मण्डप में राजा हरिश्चन्द्र, रोहित, वशिष्ठ, अजीगर्त तथा शक्ति आदि उपस्थित हैं। शुनःशेप यूप में बँधा है और वशिष्ठ का पुत्र शक्ति उसके वध के लिए उद्यत होता है किन्तु करुणा से विचलित हो जाने के कारण वह निष्ठुर कर्म नहीं कर पाता। लोभी अजीगर्त एक सौ गायों के बदले में स्वयं अपने हाथ से पशु बलि देने के लिए तत्पर हो जाता है। इस मार्मिक स्थिति को देखकर शुनःशेप

प्रभु से दुःख के गर्त में पड़ा अनाथ असहाय को बचाने की प्रार्थना करता है। विश्वामित्र मधु-
-च्छन्दा आदि सौ पुत्रों के साथ यज्ञ मण्डप में पधारते हैं और इस कर्म को आसुरी एवं अनार्य घोषित करते हैं। इसी समय एक राजकीय दासी यज्ञमण्डप में प्रवेशकर अजीगर्त की भर्त्सना करती है। वह सुव्रता दासी विश्वामित्र को स्मरण कराती है कि वह उनकी गान्धर्व विवाहित पत्नी है जिसे विश्वामित्र गर्भिणी स्थिति में छोड़कर तप करने चले गए थे। शुनःशेफ उसका पुत्र है। लांछिता होने के कारण उसे देश निर्वासन का दण्ड मिला था। वह अपना प्रसव यातनायें ऋषि आश्रम में छोड़कर अन्तःपुर की दासी बन गयी थी। विश्वामित्र उसे पहिचान कर पुनः अंगीकृत करते हैं तथा महाराज से उसको दासी रूप से मुक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। हरि-श्चन्द्र अजीगर्त को क्षमा और सुव्रता को स्वतन्त्र करते हैं। अन्त में सभी पात्र करुणानिधान की प्रार्थना करते हैं।

वैदिक काल की अमानुषिक नरबलि पर व्यंग्य करने के लिए प्रसाद जी ने कथा का चुनाव पौराणिक वृत्त से किया है अतः इसका कथानक ख्यातवृत्त माना जा सकता है। मूल कथानक में लेखक ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा अनेक परिवर्तन उपस्थित - किये हैं।

हरिश्चन्द्र रोहित आदि की मुख्य कथा आधिकारिक है एवं सुव्रता, विश्वामित्र की कथा प्रासंगिक। हरिश्चन्द्र द्वारा रोहित के बलि देने की पूर्व प्रतिज्ञा, सुव्रता तथा विश्वा-मित्र का गान्धर्व विवाह, विश्वामित्र द्वारा सुव्रता को छोड़कर चले जाना, गर्भिणी सुव्रता का निर्वासन, शुनःशेफ का जन्म इत्यादि की घटनाएँ सूच्य रूप में दिखायी गयी हैं। प्रासंगिक घट-नाओं से नाटक में किसी प्रकार का वैचित्र्य या वैशिष्ट्य नहीं उत्पन्न हुआ है। नाटकीयता की दृष्टि से भी प्रासंगिक घटनाएँ अच्छी नहीं बन पड़ी हैं।

लीला — मैथिलीशरण गुप्त

राम के बाल जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को 'लीला' नामक गीतिनाट्य में उपनिबद्ध किया है। लीला नव अंकों की रचना है। प्रथम दृश्य में पृथ्वी देवी प्रभु का गुणानु-वाद करती है क्योंकि उसकी पुकार सुनकर प्रभु ने जनवत्सलता प्रदर्शन हेतु नराकार रूप में अवतार लिया है। द्वितीय अंक दृश्य एक वनप्रान्तर का है जहाँ राम, भरत, लक्ष्मण, वीर और गम्भीर मुद्रायें प्रस्तुत हैं। लक्ष्मण मृगया के स्थान पर ओज स्फूर्ति एवं लक्ष्यभेदन के लिए सिंह से नियुद्ध करने को प्राथमिकता देते हैं। भरत जल विहार का प्रस्ताव रखते हैं। इसपर

लक्ष्मण उन पर कटाक्ष करते हैं। राम सखी को प्रेम से खेलने के लिए कहते हैं। सभी सरयू-तट पहुँचते हैं। उसी समय वीर प्रविष्ट होकर विश्वामित्र का आगमन सुनाता है। राम बालकों को विश्वामित्र की कथा सुनाते हैं। तृतीय दृश्य का कथानक विश्वामित्र द्वारा राम की याचना से सम्बन्धित है। विश्वामित्र दशरथ से अपने आने का कारण बताते हैं। विश्वामित्र उनसे नर व श्रेष्ठ रूप में राम-लक्ष्मण को माँगते हैं। दशरथ उन्हें कोमल फूल कहते हैं जो युद्ध में म्लान हो जायेंगे। विश्वामित्र के कुपित होने पर राम उन्हें सान्त्वना देते हैं। राम दशरथ से विनय करते हैं कि जहाँ सत्य है, धर्म है वहीं विजय है। याचक के सम्मुख तो प्राण भी देय है। इस प्रकार दशरथ, राम-लक्ष्मण को भेजने की स्वीकृति दे देते हैं। चतुर्थ दृश्य में कौसल्या और सुमित्रा का वार्तालाप है। विधाता यदि किसी को नारी बनाये तो क्षत्राणी नहीं क्योंकि उसे पति एवं पुत्रों से वंचित होना पड़ता है। सुमित्रा, कौसल्या को समझाती है कि सच्चा लोको-पकार तो क्षत्राणी ही करती है। लोकोपकार में तो कठोराघात सहना ही पड़ता है, इस प्रकार का गौरव उन्हें ही मिलता है। पंचम दृश्य कराल और अराल के संवाद से प्रारम्भ होता है। अराल भरतखण्ड की नैसर्गिक-सुषमा पर मुग्ध हो गया है तभी कराल उसे सचेष्ट करता है कि हमारी सोने की लंका से बढ़कर भरतखण्ड अच्छा नहीं है। लंका की शक्ति के सम्मुख रात्रि-दिन देवता कम्पित रहते हैं। मारूत और कृशानु उसके सेवक हैं। अराल पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अकृत्रिम सौन्दर्य की तुलना करता है— निर्मल नदियों का प्रवाह, अगम्य पर्वत श्रृंखला, धन-धान्य से युक्त ग्राम, नगर तपोवन अन्यत्र कहाँ है? कराल उस पर व्यंग्य करता है कि लंकेश्वर से कहें कि वह धर्म-भीरू होकर, जटा रखकर यहीं संन्यासी बनें। कराल उसे विश्वामित्र से सावधान रहने को कहकर चला जाता है। उसी समय प्रचण्ड आँधी की तरह ताड़का आती है। राम उसे स्त्री समझ कर मारने में संकोच करते हैं किन्तु विश्वामित्र का आदेश पाकर एक ही बाण में मार गिराते हैं। अराल इस दृश्य को देखकर राक्षस गणों को एकत्र होने का आदेश देता है। षष्ठ दृश्य अयोध्या राजभवन का है। राम-लक्ष्मण के जाने के बाद भरत और शत्रुघ्न इत्यादि की दिनचर्या में उत्साह का अभाव हो गया था। भरत ने राम-लक्ष्मण का वृत्तान्त जानने के लिए गुप्तचर कुशध्वज और शतानन्द को भेजा था। उसी समय वीर आकर गुप्तचरों का सन्देश सुनाता है कि राम, लक्ष्मण सकुशल हैं। जनक के आग्रह पर मिथिलापुरी चले गये। विश्वामित्र की कृपा से राम को दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये हैं। सप्तम दृश्य जनकपुर की पुष्प-वाटिका से सम्बन्धित है। पुष्पचयन कर सुलक्षणा आती है। ऊर्मिला उससे सीता की प्रतीक्षा

करने को कहती है। सुलक्षणा कौशिक के साथ दो नृप-कुमारों के आने का संकेत करती है। उर्मिला सीता को प्रत्यक्ष भवानी कहती है। सभी पूजन करती हैं। सुलक्षणा राम-लक्ष्मण के अतुलनीय सौन्दर्य एवं ताड़का-सुबाहु वध एवं अहल्यातरण का उल्लेख करती है। सहसा राम-लक्ष्मण पुष्पवाटिका में प्रवेश करते हैं। राम, सीता को और लक्ष्मण उर्मिला को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। राम, सीता से परिचय करने को उत्सुक हैं किन्तु संकोचवश नहीं कर पा रहे हैं। इसी समय नेपथ्य से गीत होता है सभी अपना अस्तित्व भूल जाते हैं। राम सीता के प्रति अपने प्रेम को लक्ष्मण से प्रकट करते हैं। लक्ष्मण जनक-प्रण निबाहने की बात कहते हैं। अष्टम दृश्य में दो राजाओं का संवाद है। धनुष के न उठने के कारणों पर तर्क वितर्क करते हैं। पहला राजा परशुराम की ओर संकेत करता है। दूसरा राजा आग लगाने हेतु उनके पास प्रस्थान करता है। नवम दृश्य में जनक, राम-लक्ष्मण के रूप गुण, शील देखकर प्रसन्न होते हैं किन्तु उन्हें आर्थिक क्लेश होता है कि इसे कोई शूर उठा ही नहीं सका, लगता है पृथ्वी वीर-विहीन हो गयी है। इन मार्मिक शब्दों को सुनकर लक्ष्मण क्रोधित होते हैं। विश्वामित्र, राम को धनुष उठाने की आज्ञा देते हैं। राम के धनुष खींचते ही टूट गया। इसी समय परशुराम आ जाते हैं। वे धनुष भंजक का पता पूछते हैं। लक्ष्मण के प्रत्युत्तर में उनका क्रोध बढ़ जाता है। परशुराम, राम को अपना धनुष देते हैं, राम धनुष बाण लेकर शर-संधान करते हैं। यह देखकर परशुराम स्तब्ध रह जाते हैं और राम की प्रार्थना करते हैं कि भू-भारहरण-हेतु आपने अवतार लिया है। जयमाला लिए सखियों के साथ सीता धीरे-धीरे राम ओर बढ़ती हैं।

इस प्रकार इसमें राम का मृगयाटन, कौशल्या की वेदना अराल का बारस अनुराग दो राजाओं द्वारा धनुष के सम्बन्ध में कल्पनाएँ, मौलिक घटनाएँ हैं। इस गीति-नाट्य में प्रासंगिक घटनाएँ आधिकारिक कथा को पुष्ट करती हुई चलती हैं। घटनाओं के वर्णन में नवीनता तो नहीं किन्तु गतिशीलता अवश्य है।

'अनघ'— मैथिलीशरण गुप्त

महात्मा गाँधी के सत्याग्रह, त्याग एवं अहिंसा से साहित्यकार धार्मिक एवं सामाजिक सुधारक उत्प्रेरित हुए हैं। उक्त सिद्धान्तों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक व्याख्याएँ हुईं। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अनघ में सत्याग्रह, परोपकार जनसेवा को प्रामुख्य दिया है। इसमें भगवान् बुद्ध के [illegible] जातक की कथावस्तु विन्यस्त है जिसमें मघ के जनसेवा हेतु अनेक सत्प्रयासों का उल्लेख है। इसमें कुल बारह दृश्य हैं। कथावस्तु इस प्रकार है —

अरण्य में मघ गीत गाता हुआ अपने को जनसेवक स्वीकार करता है, तभी उसे एक छाया दिखती है। मघ के समीप पहुँचने पर वह जन मघ से अर्थ-सौख्यपूर्ण उपाय पूछता है। मघ उसे श्रम करने का उपदेश देते हैं। तीव्र आर्तनाद सुन मघ चोरों के पास पहुँचते हैं। वे धन हेतु जनसंहार की प्रवृत्ति की तीव्र भर्त्सना करते हैं तथा चोरों को अपने पराक्रम से पराजित कर उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त होने का उपदेश देते हैं, चोर प्रभावित होकर सदुपाय करने के लिए कृत संकल्प होते हैं। द्वितीय दृश्य में मुखिया तथा कुछ मनुष्य चौपाल में बैठकर मघ के ग्राम सुधारों का उल्लेख करते हैं। इसी बीच में मघ वहाँ पहुँच जाते हैं। मुखिया उसे सामाजिक विद्रोह न कराने के लिए सचेष्ट करता है। तृतीय दृश्य घर का है, जहाँ मघ की माँ प्रतीक्षारत दिखायी देती है। ग्रीष्म, वर्षा, जनविरोध की उपेक्षा कर लोकाराधन में तत्पर मघ के विषय में माँ चिन्तित है। मघ के आने पर वह उसे कन्या-कुसुममाला से बाँधने की बात कहती है किन्तु मघ अपने वाक्चातुर्य से बच जाता है। चतुर्थ दृश्य उद्यान से प्रारम्भ होता है जिसमें मालिन की षोडशी कन्या सुरभि गीत गाती हुई अपने गोप्य प्रेम को प्रकट करती है। मघ के प्रति अपनी आसक्ति को वह भक्ति में परिवर्तित करती है। मालिन आकर उसे मघ की माँ के पास चलने के लिए उद्यत करती है। पंचम दृश्य के प्रारम्भ में शोभन, वाचक सुव्रत विशेष एवं विशाल मघ के कृत कार्यों के औचित्य पर तर्क वितर्क करते हैं। शोभन मघ पर यह आक्षेप करता है कि वह प्रच्छन्न रूप से अनीश्वरवाद का प्रचार कर रहा है किन्तु विशेष उसको निष्पाप कहकर लोकहितकारी कृत्यों का उल्लेख करता है। मद्यपी, मघ पर अस्त्राघात करता है जिसे माँ आगे बढ़कर झेल लेती है। आहत माँ की मघ परिचर्या में जुट जाता है, उसने मद्यपी को क्षमा कर दिया। मघ के इस औदार्य को देखकर सभी उसके अनुयायी हो जाते हैं। षष्ठ दृश्य में 'मघ' की माँ लेटी है, कन्धे पर पट्टी बँधी है। सुरभि पैर दबाती है और मघ दूध का पात्र लेकर माँ के पास जाता है। सुरभि के हाथ में पात्र लेते ही प्रेमजनित कम्पन के कारण दूध गिर जाता है। माँ मघ से ब्याह का वचन लेना चाहती है, उसके पिता अमोघ भी पितृऋण से मोक्ष हेतु विवाह की बात करते हैं। मघ आदेश का शिरोधार्य करता है। सप्तम दृश्य का कथानक मघ एवं उसके मित्र शोभनादि से सम्बन्धित है, वे मघ से उनके मूल सिद्धान्तों के सम्बन्ध में पूछते हैं। मघ अपने को साधारण मनुष्य मात्र कहता है जिसके पास किसी प्रकार की सिद्धि-शक्ति नहीं है। दया, अन्याय का प्रतिकार, सहनशीलता, परोपकार, सत्यशोधन इत्यादि गुणों को अपनाने के लिए वह उपदेश देता है। अष्टम दृश्य में ग्राम-भोजक और उसकी भार्या मघ के प्रभाव की चर्चा करते हैं। प्रजा अपनी समस्याओं का निपटारा मघ से कराती है, अतः भोजक की आय कम हो रही है। वह षड्यन्त्र करके मघ को राजद्रोही सिद्ध करना चाहता है। नवम दृश्य में राजा-रानी का प्रणय-विलास अंकित है। राजा, रानी

से कहता है कि वह साथ चलकर प्रजापालित देख ले। रानी कहती है कि सच्ची शान्ति तो वन में है। राजा कर्तव्य पालन का वचन देता है। दशम दृश्य का प्रारम्भ मुखिया और उसके एक साथी के वार्तालाप से होता है। ग्रामवासियों के पुत्र मघ के अनुयायी हो रहे हैं। क्रोधित मुखिया प्रतिशोध लेने के लिए मघ का घर जलाने की बात कहता है। एकादश दृश्य में सुरभि मन को प्रबोध देती है, इसी समय मघ आकर सुरभि का धन्यवाद करता है कि वह उसकी सच्ची सहा-यिका है। मघ सुरभि के ब्याह हेतु वर के खोजने की बात कहता है किन्तु वह तो मघ कीचरण सेविका ही रहना चाहती है, बाद में दोनों परस्पर विवाह हेतु वचनबद्ध होते हैं। द्वादश दृश्य में शोषन आकर दुःखद समाचार सुनाता है कि मघ की सारी गायें अप - हृत कर ली गयी हैं, इस चौर्य-कार्य में शोषन भी सम्मिलित था। वह इसका प्रायश्चित करना चाहता है। मघ उससे लोकापवाद से भयभीत होकर कर्तव्य भ्रष्ट न होने का आग्रह करता है। कुकुर शीघ्रता से आकर मघ के घर जलकर भस्म होने का संवाद सुनाता है।त्रयोदश सर्ग का प्रारम्भ कुछ लोगों के वार्तालाप से होता है। अन्याय, अत्याचार, के विरूद्ध लोग राज्य छोड़-कर जाना चाहते हैं। चतुर्दश दृश्य में मघ की माँ एवं सुरभि मघ के प्रति किए हुए अत्याचार की निन्दा करती हैं। इसी समय बन्दी मघ मुखिया के साथ आता है। माँ धैर्य धारण कर पुत्र को दृढ़ रहने का आशीर्वाद देती है। मघ, सुरभि पर माँ का भार सौंपता है। पञ्चदश दृश्य कारागार का है जहाँ ग्राम भोजक की स्त्री मघ पर द्रवित होकर कारागार के कपाट खोलदेती है किन्तु मघ बाहर नहीं जाना चाहता है। षोडश दृश्य में अयोध राजधानी जाता है, वहाँ मघ को राजबन्दी देख मूर्छित हो जाता है। सप्तदश दृश्य में न्यायासन पर मगधराज , बन्दी मघ आदि प्रस्तुत होतेहैं। मघ को दण्ड रूप में शूली दी जाती है। सुरभि, मघ के निर्दोष होने की साक्षी देती है, मघ कृत ग्रामोद्धार की चर्चा करती है। साधक, सुरपति आकर मघ की प्रशंसा करते हैं। गुप्तचर सूचक भी आकर उनके मत की पुष्टि करता है। अन्त में मघ, अनघ सिद्ध होते हैं। राजा मघ को प्रतिनिधि नियुक्त करता है। अनघ की कथाव-स्तु उत्पाद्य है, जिसमें घटनाओं का बाहुल्य है। वर्णनात्मकता अधिक होने के कारण कथा - प्रवाह मंद है। सुश्रृंखलित कथावस्तु न होकर दृश्यों में विभक्त घटनाएँ मात्र हैं। यह एकदेशव्या-पिक नाटक है।

पंचवटी-प्रसंग — निराला

प्रस्तुत गीतिनाट्य पाँच दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य में सीता-राम का वार्तालाप है। सीता-राम के साथ वन की उन्मुक्त प्राकृतिक छटा का आनन्द लेती हुई जनक

पुरी की उस पुष्पवाटिका का स्मरण कराती हैं जहाँ राम का प्रथम दर्शन हुआ था। उस समय सीता अपने को बन्दिनी मानती थी और आज मुक्त खेल खेलती हैं। इस आश्रम के अतिरिक्त वह राम के श्रीमुख से कथा और कहाँ सुन सकती थी। राम चारुचित्रा वनस्थली की प्रशंसा करते हैं। इसी समय सीता को अनसूया देवी की शिक्षा का स्मरण आता है। लक्ष्मण अर्चना हेतु बिल्वदल पुष्प इत्यादि लाते हैं। राम लक्ष्मण की प्रशंसा करते हैं। द्वितीय दृश्य में पुष्पचयन करते हुए लक्ष्मण का स्वगत कथन है। वे अनुभव करते हैं कि सीता माता की चरण-रेणु ही उनकी परम शक्ति, माता की तृप्ति है। तुच्छ वासनाओं का विसर्जन कर वे माता की सेवा करना चाहते हैं। तृतीय दृश्य में भी स्वगत कथानक है, अद्वितीय सुन्दरी शूर्पणखा अपने को रम्भा और रमा से श्रेष्ठ कहती है क्योंकि विधाता ने सृष्टि के प्राकृतिक सौन्दर्य के सार तत्व को लेकर उसके शरीर का निर्माण किया है। नैनों में ऐसी मादकता है जिससे समस्त संसार मदोन्मत्त हो सकता है। इसी समय उसकी दृष्टि सामने की कुटी पर जाती है और वह सोचने लगती है कि कौन मूर्ख प्राण देने यहाँ आ गया है। चतुर्थ दृश्य के प्रारम्भ में राम लक्ष्मण को प्रलय का रहस्य बताते हैं कि मन, बुद्धि और अहंकार का लय ही प्रलय है। माया ब्रह्म-लिप्त है, भेद उत्पन्न करती है। मन योगियों के साथ योग सीख कर स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है। भक्ति, योग, कर्म, ज्ञान सभी की दार्शनिक व्याख्या राम करते हैं। पंचम दृश्य में शूर्पणखा का राम के प्रति प्रणय निवेदन है। असफल होने पर लक्ष्मण से विवाह का प्रस्ताव रखती है। वहाँ से अपमानित होने पर कुपित शूर्पणखा प्रतिकार लेने हेतु सन्नद्ध होती है, तभी लक्ष्मण उसे विरूप कर देते हैं।

इस गीतिनाट्य में कथावस्तु बहुत संक्षिप्त है। राम-सीता का प्रेमवर्णन, लक्ष्मण की मातृसेवा, शूर्पणखा की सौन्दर्य परक आत्म प्रशंसा तथा राम द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण कवि की मौलिक घटनाएँ हैं। घटनाएँ विरल होने के कारण कथा-प्रवाह शिथिल और मंद है। प्रथम और अन्तिम दृश्य की घटनाओं को छोड़कर शेष घटनाएँ अप्रासंगिक और नाटकीय हैं।

तारा — भगवतीचरण वर्मा

इसमें चार दृश्य हैं। प्रारम्भ में तारा के मन में कर्तव्य और वासना का अन्तर्द्वन्द्व होता है, एक तरफ उसके शरीर में वासना का उद्दाम वेग है तो दूसरी तरफ पति बृहस्पति के लिए उसके मन में भक्ति है। बृहस्पति उसे संसार की नश्वरता कहते हैं। द्वितीय दृश्य में बृहस्पति, शिष्य चन्द्रमा से धर्म पुण्य की व्याख्या करते हैं। तभी बीच तारा

जाती है। चन्द्रमा को देखकर उसे अपना यौवन भार प्रतीत होता है। गुरु आश्रम और तारा का भार चन्द्रमा पर डाल कर पर्यटन पर निकल जाते हैं। चन्द्रमा भी तारा की मदमाती चाल और अलसायी आँखें देख स्तब्ध रह जाता है। तृतीय दृश्य में तारा और चन्द्रमा का प्रणय के पूर्व अन्तर्द्वन्द्व चित्रित है। तारा वासना की भयंकर आग में जल रही है, चन्द्रमा उससे अपना प्रेम निवेदन करता है। तारा उसे सचेष्ट करती हुई शिष्य और गुरुपत्नी के सम्बन्धों की जानकारी देती है। वह इस कार्य को पाप समझती है किन्तु चन्द्रमा के आग्रह निवेदन को अस्वीकार नहीं कर पाती। चतुर्थ दृश्य में बृहस्पति, शिष्य के विश्वासघात को समझकर उन दोनों को शाप दे देते हैं।

इसकी कथावस्तु मिश्र है। संश्लिष्ट कथावस्तु में घटनाओं का विन्यास इस कौशल से हुआ है कि प्रवाह तीव्रता से होता है। इसकी आलोचना करते हुए कृष्ण सिंहल लिखते हैं —" कथावस्तु की योजना में भी गठन और स्वच्छन्दता है, जिसके कारण नाटक की रोचकता को कहीं ठेस नहीं पहुँचती।"[1]

मत्स्यगन्धा — उदयशंकर भट्ट

इस गीतिनाट्य में नारी की उद्दाम यौवन-लालसा का चित्रांकन हुआ है। धीवर कन्या मत्स्यगन्धा की कथा है कि जो राजा शान्तनु के साथ विवाह होने पर सत्यवती के नाम से विख्यात हुई। छह दृश्य युक्त इस नाट्य का प्रारम्भ प्रकृति के उल्लसित सौन्दर्य को देखकर अपने हृदय की सिहरन और यौवन की प्रथम लहर से चंचल एक मादक भूख से पीड़ित मत्स्यगन्धा के भावुक स्वरूप से होता है। यौवन सुलभ भावनाएँ मचलने लगती हैं। वह आत्मविभोर होकर धर्मनीति को भूल बैठती है। अनंग उसे चिरयौवन का वरदान देना चाहता है किन्तु केवट की कन्या होने के कारण वह अपनी दयनीय स्थिति का स्मरण कर प्रस्तावित वरदान को अस्वीकृत कर देती है। द्वितीय दृश्य में मत्स्यगंधा नाव में बैठी है। इसी समय वृद्ध पराशर ऋषि उससे नौका द्वारा नदी पार पहुँचाने की प्रार्थना करते हैं। कन्या तूफान के भय एवं नौका के जर्जर होने के कारण झिझकती है किन्तु ऋषि के हठ करने पर ले जाना स्वीकार करती है। तृतीय दृश्य में नौका में बैठे ऋषि कामान्ध होकर उससे रति-याचना करते हैं। मत्स्यगन्धा का नारीत्व आत्मसमर्पण के लिए व्याकुल ही था किन्तु वह समाज

1- हिन्दी गीतिनाट्य — कृष्ण सिंहल, पृ० 90

की लोक मर्यादा, अनादिकाल से नारी की दयनीयावस्था की दुहाई देती है। ऋषि पाप-पुण्य कर्म, अकर्म की नवीन व्याख्या कर उसकी वासना को उद्वेलित कर देते हैं। मत्स्यगंधा आत्म-समर्पण से पूर्व चिरयौवन और कन्यात्व का वरदान माँग लेती है। चतुर्थ दृश्य में मत्स्य-गंधा आत्मसमर्पण के दृश्य का पुनर्स्मरण करती है। पंचम दृश्य के प्रारम्भ में वह यौवन के आनन्द समुद्र में डूबती उतराती है तभी मृत्यु शान्तनु के आहत होने का समाचार सुनाती है। अन्तिम दृश्य में विधवा रूप में सत्यवती करूण पश्चाताप ग्लानि करती कोसती है। अक्षय यौवन का वरदान अब अभिशाप लगता है। अनन्त यौवन का हाहाकार कितना दारूण है यह सत्यवती अनुभव कर उसे वापस लेने की प्रार्थना करती है। अनंग आकर उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर, चंचल महत्त्वाकांक्षा पर व्यंग्य करता है। सत्यव्रती के दारूण अशान्ति अतृप्ति एवं रूदन से उसकी समाप्ति होती है। कहना नहीं होगा उसकी कथावस्तु बहुत गतिशील है। "कहीं कथा में शिथिलता नहीं आती और न कोरी भावुकता छलकती है।"[1]

इसकी कथावस्तु प्रतीकात्मक है। भट्ट जी के अनुसार " भारतीय पौराणिक साहित्य में मत्स्यगंधा ही चिर यौवन की प्रतीक है। इस यौवन में काम संगीत गाता है। शान्तनु संसार है जिसने उसे वरण किया है। पराशर मानव-यौवन की कमजोरी है।यौवन की वह ऊँचाई है जहाँ मत्स्यगंधा ने आत्मसमर्पण किया है। उद्दाम यौवन की तृप्ति के लिए उसने मत्स्यगंधा को चिर यौवना होने का वरदान दिया है।"[2]

विश्वामित्र —— उदयशंकर भट्ट

सप्त दृश्यबद्ध इस गीतिनाट्य की कथावस्तु इस प्रकार है —— नाटक का प्रारम्भ हिमालय की तलहटी में समाधिस्थविश्वामित्र के कठोर तप से होता है। उनके तप से प्रकृति वशीभूत हो गयी है। उनमें नवीन सृष्टि के निर्माण की शक्ति आ गयी है। समाधि में लीन होते ही उर्वशी और मेनका प्रविष्ट हुईं। दोनों की दृष्टि तपोलीन हिमाच्छादित विश्वामित्र पर पड़ती है। मेनका अपने सौन्दर्य से तपस्वी को पुत्तलिकावत नचाने की बात कहती है। उर्वशी इसे असम्भव बताती है। मेनका चुनौती स्वीकार कर यौवन के सहायक बसन्त को आमंत्रित करती है। तभी प्रकृति का पट परिवर्तन हो जाता है। उद्दाम वातावरण से प्रभा-

---

1- डा० गिरीश रस्तोगी, हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन, पृ० 168

2- उदय शंकर भट्ट — विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ० 12

वित होकर विश्वामित्र के शरीर से हिम-कण गिरने लगते हैं। वे एकदम आँख खोल देते हैं, आँखों में पहले विस्मय, फिर क्रोध, फिर वितर्क, फिर आह्लाद और प्रेम का नशा सा छलकने लगता है। तभी उन्हें मेनका का मधुर गीत सुनायी देता है। विश्वामित्र उसका परिचय जानना चाहते हैं किन्तु मेनका उसकी अवज्ञा करती है, वह एकाएक अदृश्य हो जाती है। विश्वामित्र समाधिस्थ होने का प्रयास करते हैं किन्तु वासना का वेग उन्हें असफल बना देता है। वे तप की केंचुल छोड़कर मेनका को आलिंगन करना चाहते हैं। वे मेनका से प्रणय-भिक्षा की याचना करते हैं, ऋषि कामातुर एवं विरहाग्नि में जलते हुए उन्मत्त प्रलाप करते हैं। उन्हें चतुर्दिक मेनका दिखायी पड़ती है। वे विह्वल होकर शिलाखण्ड से गिर पड़ते हैं। मेनका [illegible] प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लेती है। बारह वर्ष बाद मेनका की गोद में एक बालिका है। विश्वामित्र के मन में ग्लानि उत्पन्न होने लगी। वे अमृत के धोखे गरल पी गए। उर्वशी उसके उद्देश्य का स्मरण कराती है। मेनका कन्या को विश्वामित्र के समक्ष शिला पर लिटा कर चली जाती है। विश्वामित्र अपना ध्येय भूल गए थे, जिससे वे स्वर्ग से नरक में गिर गए। मेनका उन पर व्यंग्य कसती है कि उनकी आकांक्षा सिद्धि हरि, हर से भी उन्नततम होने की थी। यह उनका भ्रम था। बालिका के रोते ही वे उसे प्यार करने लगते हैं किन्तु वे अपने अहम् की खोज में उसे एकाकी छोड़कर चले जाते हैं।

यह गीतिनाट्य भी प्रतीकात्मक है जिसमें घटनाएँ विरल हैं। पंचम दृश्य बारह वर्ष के बाद का है जिसको लेखक ने जिस क्रम से उल्लिखित किया है वह वस्तु विन्यास की दृष्टि से सफल नहीं है। इसी तरह से समाधि भंग होने पर तपस्वी विश्वामित्र का कामुक आचरण न तो मनोवैज्ञानिक न ही नाटकीय। इसमें नाटकीय घटनाओं का बहुत अभाव है। अन्त में एकाध घटनाएँ अवश्य गतिशील चित्रित हुई हैं।

शिल्पी -- सुमित्रानन्दन पंत

इसका कथानक कलाकार के अन्तःसंघर्ष से सम्बन्धित है। इसमें तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में कलाकार अपने कला-कक्ष में नवीन-प्रतिमा निर्माण में संलग्न है। वह गुनगुना कर पाषाण में प्रियतमा की छवि अंकित करने का प्रयास करता है। मूर्ति के बन जाने पर वह उसका निरीक्षण करता है उसे सन्तोष है कि पाषाण सजीव हो गया है। इस शिलाखण्ड ने काल-चक्र की गति को स्तम्भित कर अमर कर दिया है। तभी उसे अपनी यह भावना भ्रमात्मक लगती है। तभी शिल्पी की शिष्या उसका ध्यानभंग करती है कि वह अपनी रचनाओं

को कुरूप में क्यों नष्ट कर देता है। तभी कुछ दर्शक उसकी कृतियों को देखने आ जाते हैं। शिष्या आगन्तुकों को शिल्पी का कला-कक्ष दिखलाती है, जहाँ गांधी, ईशामसीह, गुरुदेव रवीन्द्र, सरदार पटेल राधाकृष्ण की मूर्तियाँ रखी हैं। साथ ही इन मूर्तियों के सम्बन्ध में झलकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। सभी आगन्तुक शिल्पी की कला-चेतना से विमोहित हो जाते हैं। द्वितीय दृश्य मुरलीधर की मूर्ति के प्राण प्रतिष्ठा उत्सव से प्रारम्भ होता है। मंगल वाद्यों के साथ चल रहे कीर्तन के मध्य एक अतिथि कृष्ण की महत्ता पर प्रकाश डालता है। कि कृष्ण कालिक भारत वैभवशाली रहा होगा। दूसरा व्यक्ति इसका समर्थन करता है। तीसरा व्यक्ति कहता है कि यह मुरली की ध्वनि काम-क्रोध से कुंठित तथा तृष्णा से लुंठित आत्मा को मुक्त कर स्वर्गिक सोपानों पर उठाती रहती है। चौथा कृष्ण को योगेश्वर कहता हुआ उनकी लीलाओं पर प्रकाश डालता है। इसी समय भावगीत होता है। पाँचवा व्यक्ति कहता है कि मुरलीधर के पावन दर्शन से मनुष्य अजेय विश्वास प्राप्त करता है। छठा व्यक्ति कहता है कि प्रतिमा पूजन मृत आदर्शों का पूजन है। कोई भी आदर्श पूर्ण एवं चिरन्तन नहीं है। सातवाँ व्यक्ति कहता है कि जीवन के प्रतिमान बदलते रहते हैं अतः सैद्धान्तिक सत्य, आदर्श भी परिवर्तनशील हैं। लोग शिल्पी से प्रतिमा पूजन के महत्व पर प्रकाश डालने का आग्रह करते हैं। शिल्पी [illegible] की दृष्टि में जड़ प्रतिमा मात्र भाव का कलारूप है। मानव के प्रति आदर, जीवों के प्रति स्नेह करना ही प्रभु का पूजन है। तृतीय दृश्य में शिल्पी अधूरी प्रतिमा के निर्माण में संलग्न दिखाई देता है। प्रतिमा का निरीक्षण करते हुए शिल्पी अनुभव करता है कि आज नवीन जागतिक चैतन्य सर्वत्र छा रहा है। विगत आदर्शों के नींव कुण्ठित हो रहे हैं। अतः युगानुकूल नव्य जीवन को शिला-फलक पर अंकित करना चाहिए। शिल्पी की शिष्या उसकी उद्विग्नता का अनुभव कर उसे प्रबोध देती है कि वह अपने कुशल हाथों से सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को प्रस्तुत कर सकता है। शिल्पी नव मनुष्यत्व को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है, जिसमें उसे अद्भुत सफलता मिलती है। उसकी शिष्या भी इस नूतन मूर्ति को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करती है। आने वाले दर्शक मूर्ति को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि आप अर्द्धनग्न, श्रृंगारिक चित्र गढ़ रहे हैं जो धरती से लड़कर अन्न उपजाते हैं उनसे सम्पन्नों की क्षुधापूर्ति होती है अतः आपको कृषकों के भावों को भी चित्रित करना चाहिए। शिल्पी कला को व्यापक बनाने में सफल हो जाता है और अपनी नूतन कला दिखलाता है, जिसमें कृषकों का चित्रण है। सभी दर्शक हर्षित हो उठते हैं। समवेत गीत से रूपक समापन होता है।

इसकी कथावस्तु उत्पाद्य है जिसमें कलाकार का अन्तःसंघर्ष प्रमुख होने के कारण घटना प्रवाह बहुत विरल, लम्बे लम्बे सैद्धान्तिक भाषणों में नाटकीयता का अभाव है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिल्पी की घटनाओं में रुक्षता , जटिलता होने के कारण घटना प्रवाह शिथिल है।

अप्सरा — पंत

'पंत' कृत अप्सरा में सौन्दर्य चेतना का प्राधान्य है। कलाकार का मन लौकिक ऐषणाओं के आकर्षण से क्रमशः मुक्त होकर किस प्रकार सौन्दर्य तथा कला के माध्यम से मानव-जीवन की सार्थकता प्राप्त करता है यही इस गीतिनाट्य की कथावस्तु है। प्रथम दृश्य भावोद्वेलन से सम्बन्धित है जिसमें कलाकार अप्सरा का गीत सुनकर चकित होता है। कलाकार का यौवन रोमांच द्वार पार कर चुका है। कलाकार नहीं जानता कि स्वर्गलोक की कौन सी अप्सरा उसके भीतर प्रविष्ट हो गयी है। कलाकार व्यथित होकर कहता है कि उसका समस्त मनोबल निखिल अध्ययन, जीवन का चिन्तन- मनन व्यर्थ हो गया। द्वितीय दृश्य मानसिक संघर्ष का है। कलाकार सोचता है कि अज्ञात देश में उसको कौन पुकार रहा है अथवा यह उसके अन्तरतम की ही पुकार है। उसके अन्तरतम में संशय के कारण घोर असंगति है। तभी युग-चेतन का गीत सुनायी देता है। कलाकार को ऐसा प्रतीत होता है कि मानव आत्मा के मूल्यों के ध्रुव प्रकाश को जीवन-तृष्णा का अवचेतनतम निगल रहा है। युग-जीवन शिल्पी के कन्धों पर यह दायित्व आ पड़ा है कि युग-मन के बिखरे अनगढ़ उपकरणों को लेकर मनुष्यत्व की नव प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करे। तृतीय दृश्य एवं चतुर्थ दृश्य उन्मेष का है जिसका प्रारम्भ अप्सरा के गीत से होता है जिसमें अप्सरा को सत्यं शिवं सुन्दरम् से सम्बन्धित कहा गया है। कलाकार को नवीन चेतना प्राप्त होती है। उसे अनुभव होता है कि मनुज हृदय की कुरूपता को नष्ट कर मानव के अन्तर में एक महत् चैतन्य उदय हो रहा है जो युग की विशृंखलता, आर्थिक वैषम्य को समाप्त करेगा। मानव- जीवन राग द्वेष से उठकर ऊर्ध्वगामी होगा। तभी मनुष्य नियति का गीत सुनायी पड़ता है।

यह गीतिनाट्य प्रतीकात्मक है जिसको पंत ने सौन्दर्य चेतना का रूपक कहा है। इसकी कथावस्तु जटिल, विरल और नीरस है। घटनाएँ गतिशील नहीं है उनमें कुतूहलता का सर्वथा अभाव है।

(13)

राधा — उदयशंकर भट्ट

राधा-कृष्ण के निष्काम प्रेम को लेकर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है, जिसमें वासना और सौन्दर्य जाल से मुक्त राधा के प्रेम, त्याग, विवेक और कर्तव्य के समक्ष कृष्ण को भी झुकना पड़ता है। यह गीतिनाट्य चार दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य में यमुना के किनारे निर्जन निकुंज में राधा-कृष्ण के प्रेम में आवेश के कारण कुछ अचेतन होकर बैठी गीत गाती हैं। तभी उसकी सखी विशाखा आती है। राधा उससे अपनी प्रेम विषयक जिज्ञासा ज्ञापित करती है। वह कृष्ण-प्रेम में इतनी लिप्त है कि कलश लेकर कूप पानी लेने जाती है किन्तु पाँव यमुना के किनारे की ओर बढ़ते हैं। कृष्ण-प्रेम में विवाहित राधा सारे बन्धन तोड़ चुकी है, सास की मार खा चुकी है। यशोदा से भी अपमानित हुई है और द्वितीय दृश्य का प्रारम्भ यमुना के तट पर बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण और उस मधुर तान में सुध-बुध भूली राधा के प्रेम-प्रदर्शन से होता है। कृष्ण अपने अवतार का प्रयोजन बताते हुए धर्म-संस्थापन का उल्लेख करते हैं। वे राधा को कर्म योग का उपदेश देते हैं किन्तु राधा मोहक बंशी की तान सुनाने को कहती है। बंशी की धुन सुनकर राधा की सखियाँ आकर एक लय से नर्तन करने लगती हैं। तृतीय दृश्य में राधा कुछ उद्विग्न सी चिर प्रतीक्षा में बैठी गीत गाती दीखती है। उसकी सखी विशाखा भी कृष्ण-प्रेम के कारण पारिवारिक कलह, अपमान का उल्लेख करती है। राधा अपने श्वसुर के कोप सम्बन्ध विच्छेद, पति का प्रयोजन की एक घटना का उल्लेख करती है। इसी बीच में आधुनिक प्रश्नों- विवाह में लड़की की इच्छा, स्त्रोन्नति, समाजोन्नति, राष्ट्रोन्नति आदि को उठाया जाता है। कृष्ण उन्हें अक्रूर के आगमन की बात सुनाते हैं। अतः राधा संज्ञाशून्य हो जाती हैं। कृष्ण द्वन्द्वहीन जीवनयापन का उपदेश देते हैं। राधा को अपने कर्तव्य का बोध होता है। अन्तिम दृश्य में कृष्ण के चले जाने पर शोक और दुःश्चिंता में मग्न राधा निर्जीव सी उन्मत्त होकर बाँसुरी बजाती एवं गीत गाती है। तभी नारद का आगमन होता है। नारद कृष्ण के शासक बनने का उल्लेख करते हैं एवं राधा के जीवन को व्यर्थ कहते हैं। प्रेमावेश में राधा मूर्छित हो जाती है। नारद उसके प्रेम की गरिमा देखकर पराजित होते हैं। कृष्ण-विरह में मूर्छित राधा को कृष्ण के दर्शन होते हैं, दोनों आलिंगनबद्ध होते हैं। धीरे-धीरे कृष्ण राधा का रूप अंधकार में एक हो जाता है।

इसकी कथावस्तु मिश्र एवं प्रतीकात्मक है, राधा का विवाहित होना, प्रचारित होते हुए भी नए परिवेश में वर्णित है। घटना प्रवाह मंद है, बीच-बीच में दार्शनिक सिद्धान्तों, गहन आध्यात्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या के कारण कथा में नीरसता आ जाती है, जिसके कारण नाटकीयता में व्याघात उत्पन्न होता है। इसका अन्त भी अविश्वसनीय है।

(14)

उन्मुक्त — सियारामशरण गुप्त

वैज्ञानिक यन्त्रों के दुरुप्रयोग, व्यर्थ का रक्तपात एवं हिंसा के विरुद्ध जन-मानस में अहिंसा जाग्रत करने हेतु श्री सियारामशरण गुप्त ने उन्मुक्त की रचना की। इसमें कुल सोलह दृश्य हैं। नाटक प्रारम्भ करने के पूर्व अवतरण की रचना की गयी है जिसमें छाया-वन के कुसुम कुंज में खड़ी कुसुमावती आगत अनिष्ट आशंका से भयभीत होती दिखायी जाती है। इसी बीच जयकेतु आकर लौह द्वीप से प्राप्त रण-निमन्त्रण की सूचना देता है। वह देवी से रण-यात्रा आदेश लेने आया है। देवी सहर्ष यह स्वीकृति दे देती है। प्रथम दृश्य अलिन्द का है। पुष्पदन्त और गुणधर युद्ध की नवीन परिस्थिति पर विचार कर रहे हैं। पुष्पदन्त ताम्र, रौप्य, स्वर्णद्वीपों की पराजय का समाचार देता है जिसको सुनकर गुणधर द्विविधाग्रस्त हो अपनी स्थिति पर सोचता है। पुष्पदन्त यान्त्रिक जयन्त की भस्मक किरणों के आविष्कार का उल्लेख करता है। इसी समय मृदुला प्रविष्ट होती है। गुणधर मृदुला से प्रेमालाप करने को उत्सुक है, जबकि मृदुला उसे स्वातंत्र्य- प्रदीप की शिखा को प्रज्वलित करने हेतु युद्धस्थल में भेजने को तत्पर है। द्वितीय दृश्य के प्रारम्भ में राजाज्ञा उद्घोषित होती है कि रात्रिकाल में शत्रुपक्ष से आक्रमण हुआ था जिसका उत्तर दिया जा चुका है। सभी नगर निवासी कुसुमद्वीप की रक्षार्थ वचनबद्ध होते हैं। तृतीय दृश्य रणक्षेत्र से सम्बन्धित है। पुष्पदन्त का चिन्तन चल रहा है। वह युद्धार्थ प्रस्थान की घटना का स्मरण करता है। मृदुला अपने पुत्र भानु को सामने लाकर पुष्पदन्त से उसके सम्बन्ध में जानना चाहती है। मृदुला हेम-द्वीप वासिनी मालिनी का पत्र देती है, जिसमें उसके द्वीप के विनाश की कहानी अंकित है। चतुर्थ दृश्य मृदुला के घर का है। शान्तधर अपने मित्र रणजय की बात का उल्लेख करता है कि यह कुसुमद्वीप पराजित होगा और लौहद्वीप इस पर शासन करेगा। तभी एक वृद्धा प्रविष्ट होती है, वृद्धा का पौत्र युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ है। वह कुछ रौप्यखण्ड देशहित अर्पित करती है। पंचम दृश्य मे गुणधर एवं पुष्पदन्त के बीच संवाद है। पुष्पदन्त, गुणधर के रण-कौशल का वर्णन करते हुए कहता है कि कुसुमद्वीप की सेना जिस समय निरुत्साहित हो रही थी। उसी समय गुणधर की वीरता के कारण उसकी सेना पुनः लौट पड़ी। षष्ठ दृश्य कुतालय का है। पुष्पदन्त पत्र द्वारा युद्धक्षेत्र की परिस्थिति का ज्ञान उसे कराता है, मृदुला से आग्रह किया गया है कि यान में भस्मक किरण के यंत्र को संधान कर दे। सप्तम दृश्य में गुणधर शुश्रूषालय में दिखायी देता है।

जब शत्रुघ्न के आहत सैनिक को गुणधर जलदेने हेतु आगे बढ़ा उसी समय भीषण विस्फोट हुआ और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। युद्ध की विभीषिका से भयभीत कुसुमायुध परास्त हो जाता है। पुष्पदन्त गुणधर को जयन्त को लाने की आज्ञा देता है किन्तु उसके अस्वीकार करने पर उसे बन्दी बनाता है। विजेता शत्रुघ्न नगर में सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास करता और अन्त में गुणधर, मृदुला और पुष्पदन्त अहिंसक बनने की प्रतिज्ञा करते हैं।

इस प्रकार यह गीतिनाट्य उत्पाद्य है, प्रासंगिक घटनाओं के साथ आधिकारिक कथा का कोई सामंजस्य नहीं है। लेखक का उद्देश्य गाँधी दर्शन को प्रतिष्ठापित करना रहा है किन्तु जिन घटनाओं के चयन से लेखक ने जिस उद्देश्य को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है वह उद्देश्य असफल ही रहा है। कथावस्तु विस्तृत, घटनाएँ अनाटकीय और अव्यवस्थित हैं।

द्रौपदी -- भगवतीचरण वर्मा

महाभारत के मूल में द्रौपदी की प्रतिहिंसा और दर्प रहे हैं। गीतिनाट्यकार ने इसका प्रारम्भ स्वयम्वरा द्रौपदी के आन्तरिक मनोभाव से किया है। सखी, द्रोण और द्रुपदराज की शत्रुता का कारण जानना चाहती है। द्रौपदी, द्रोण द्वारा वैभव की माँग, अपमानित होकर कुरु-कुल विनाश हेतु में शस्त्र-शिक्षक रूप में नियुक्त होना, द्रुपदराजों की अपमान की घटना का उल्लेख करती है। यह स्वयम्वर कुरुकुल विनाश हेतु आयोजित है। चारण स्वयम्वर की शर्त- तेल में मछली का प्रतिबिम्ब देखकर चलित चक्र में से उसका लक्ष्यभेद करना बताता है, जिसे आगत नरेश पूर्ण नहीं कर पाते, तभी कर्ण लक्ष्य भेद के लिए तत्पर होता है। जिसे सूत पुत्र कहकर द्रौपदी अपमानित करती है, तभी ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन लक्ष्यभेद कर देता है। उसे लेकर पाण्डव कुन्ती के पास जाते हैं, जो प्राप्त भिक्षा को परस्पर बाँट कर भोगने का आदेश अनजाने ही दे देती है। फलतः द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी बन जाती है। उधर पाण्डव राजसूय यज्ञ का आयोजन करते हैं जिसमें सुयोधन कोआमंत्रित किया जाता है, माया महल के कारण उसे अंध-पुत्र अंधा होता है, यह मर्मभेदी शब्द द्रौपदी से सुनना पड़ता है। इस अपमान का बदला लेने के लिए वह युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीड़ा के लिए आमंत्रित करता है और परिस्थिति इस प्रकार बदलती है कि युधिष्ठिर अपना सर्वस्व यहाँ तक कि द्रौपदी भी दाँव में लगाकर हार जाते हैं। सुयोधन, दुःशासन को द्रौपदी के पकड़ लाने का आदेश देता है। द्रौपदी सभी को धिक्कृत करती है किन्तु कृष्ण ही उसे अपमानित होने से बचाते हैं। अन्त में बारह वर्ष का वनवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास पर वे बन्धनमुक्त होते

है।6)

है। द्रोपदी दु:शासन के रक्त से सिंचित केश बाँधने की प्रतिज्ञाकरती है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद द्रोपदी को ग्लानि होती है, युधिष्ठिर उसे सान्त्वना देते हैं।

द्रोपदी की कथावस्तु पौराणिक है, गीतिनाट्यकार ने सीमित घटनाओं को इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि दर्शक का मन लगा रहता है। महाभारत का युद्ध सूक्ष्म रूप में है, शेष घटनाएँ दृश्य हैं।

कर्ण — भगवतीचरण वर्मा

इस गीतिनाट्य का प्रारम्भ वाचक के कथन से होता है। उसने भीष्म की शरशैय्या एवं द्रोणवध की घटना का उल्लेख किया है। ऐसी विषम परिस्थिति में दुर्योधन चिन्तित होता है तभी कर्ण सेनापतित्व इस शर्त पर स्वीकार करता है कि शल्य उसका सारथि बनें। शल्य उसकी शर्त स्वीकार कर उससे पाण्डवों के प्रति हिंसा का कारण जानना चाहता है। कर्ण द्रोपदी द्वारा अपमानित होने की बात कहता है। दृश्य परिवर्तन में स्वयंवर भूमि की घटना का उल्लेख होता है जिसमें सभी वीर लक्ष्य बेधने में असमर्थ रहते हैं। कर्ण के आगे बढ़ने पर द्रोपदी उसे सूत-पुत्र कहकर अपमानित करती है, अन्त में अर्जुन के गले में वरमाला पड़ती है। युद्ध मैदान में शल्य पाण्डवों को मारने की मंत्रणा देता है किन्तु कर्ण वचनबद्धता के कारण ऐसा नहीं कर पाता? वह अपने को कुन्ती-पुत्र होने का रहस्य शल्य से उद्घाटित करता है। स्मृतिरूप में कुन्ती द्वारा सूर्य-स्तवन की घटना उल्लिखित करता है। शल्य अर्जुन को कवच-कुण्डल से युक्त देखकर कर्ण से इसका रहस्य जानना चाहता है। कर्ण इन्द्र के याचक बनने की घटना का उल्लेख करता है। कर्ण एवं अर्जुन परस्पर वाक्-चर्चा करते हैं तभी कृष्ण चातुर्य द्वारा उन्हें दलदल से मुक्त मैदान में ले जाकर युद्ध करने पर विवश करते हैं। उस दलदल में शल्य का रथ फँस गया। कर्ण धनुष रखकर रथ का पहिया उठाने को उद्यत होता है। कृष्ण अर्जुन से बाण चलाने को कहते हैं किन्तु अर्जुन निरस्त्र पर बाण चलाने में संकोच करता है किन्तु कृष्ण के प्रबोधन से उसने साठ बाण चला दिए। कर्ण घायल हो गया। कुपित शल्य को कृष्ण शान्त करते हैं। उसी समय कर्ण की परीक्षालेने हेतु धर्म आ पहुँचता है। कर्ण दाँत तोड़ कर स्वर्णदान करता है। इस प्रकार लेखक ने मूल सीमित कथानक को स्मृति सूत्रों से सबल बनाकर प्रस्तुत किया है, जिसमें कौतूहलता आद्यन्त बनी रहती है।

स्नेह या स्वर्ग — सेठ गोविन्ददास

यह नाटक यूनान के कवि होमर के 'ईलियड' नामक काव्य की एक कथा के आधार पर लिखा गया है। इसमें तीन अंक और प्रत्येक अंक में अनेक दृश्य हैं। कथानक का प्रारम्भ स्वर्ग के जयन्तभवन से होता है। जयन्त अपनी बहन शुचिता को पृथ्वी निवासिनी स्नेहलता के पास भेजने का प्रस्ताव करता है। दूसरे दृश्य में नायक अजेय जयन्त से स्नेह-लता के प्रति पल्लवित अपने प्रेम की बात कहता है। जयन्त और अजेय दोनों स्नेहलता के प्रणय-प्राप्त करने के प्रत्याशी हैं। तृतीय दृश्य में स्नेहलता अपनी सखी चपला से अपनी द्विविधा का वर्णन करती है। एक ओर देवत्व है तो दूसरी तरफ मनुष्यत्व। तभी सहसा आकाश से एक रथ उतरता दिखायी देता है। रथ से शुचिता उतरती है। वह जयन्त का प्रणय प्रस्ताव प्रस्तुत करती है तथा उसे स्वर्गिक आकर्षणों का लोभ दिखाती है। इसी समय प्रभाकर आता है। वह अजेय का सन्देश कहना चाहता है किन्तु स्नेहलता कहती है कि वह अजेय को भली-भाँति जानती है। निराश प्रभाकर लौट जाता है। विक्षुब्ध अजेय स्नेहलता के अपहरण की बात सोचता है। जयन्त से युद्ध करके वह लाभ में ही रहेगा। दूसरे अंक में स्नेहलता की उद्विग्नता वर्णित है। जयन्त के प्रेम की गहराई वह देखना चाहती है। इसी समय अजेय आता है। अजेय, जयन्त के प्रलोभनों का उल्लेख उससे करता है और कहता है कि वह उसे लेने आया है। स्नेहलता उसके साथ उसके घर जाने को तत्पर हो जाती है। दूसरे दृश्य में स्नेहलता के पिता अजय उसके जाने का शोक करते हैं तभी जयन्त उसे लाने का आश्वासन देता है। तृतीय दृश्य में जयन्त, अजेय के पास आता है और उसे स्नेहलता के अपहरण को लेकर धिक्कृत कर उसे युद्ध के लिए ललकारता है। चतुर्थ दृश्य में इन्द्र, जयन्त के अस्त्रसज्जित होने की बात देवदूत से पूछता है। तृतीय अंक में कुछ लोग युद्ध देखने को लालायित होते दिखायी देते हैं। दूसरे दृश्य में शची अपनी सखी सुचिता से युद्ध के सम्बन्ध में पूछती है। तीसरे दृश्य में महेन्द्र दोनों को युद्ध से अलग करते हैं। वे स्नेहलता को दो में से किसी एक को चुनने के लिए कहते हैं वह वरमाला लेकर अजेय के गले में डाल देती है। सभी उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

इलियड की कथा को भारतीय रूप देने के कारण इसकी कथा भिन्न है। आधिकारिक कथाओं के साथ प्रासंगिक कथा का अच्छा समन्वय है। घटनाओं में कौतूहलता, नाटकीयता और प्रवाहमयता है।

मेघदूत —'पन्त'

कालिदास के मेघदूत से प्रभावित होकर पंत ने मेघदूत गीतिनाट्य की रचना की है। इस नाटक का प्रारम्भ शंख, मृदंग, सारंगी आदि वाद्यों की सम्मिलित ध्वनि के साथ वर्षा गीत से होता है। सूत्रधार वर्षा ऋतु के आगमन तथा मेघदूत की सजल कल्पना की पृष्ठ-भूमि के सम्बन्ध में कहता है। बाद में कालिदास कृत मेघदूत की संक्षिप्त कथा का उल्लेख करता है। अन्तर्दृश्य के साथ यह नाटक प्रारम्भ होता है। यक्षिणी यक्ष के सद्यःस्फुट पुष्पोपहार के कुबेर के यहाँ न ले जाने पर व्याकुल होती है। यक्ष प्रत्युत्तर देता है कि प्रेयसी का क्षणिक वियोग उसे असह्य है। इसी समय यक्षेश्वर रौद्ररूप धारण कर उस कर्तव्य-भ्रष्ट को एक वर्ष के लिए यक्ष-लोक से निर्वासित कर देता है। करुणवाद्य के साथ सूत्रधार प्रविष्ट होता है, वह सूचित करता है कि शाप पीड़ित यक्ष को रामगिरि में वास करते हुए कुछ मास हो गए हैं। यक्ष आषाढ़ मास के प्रथम बादलों को अलकापुरी का रास्ता बता कर पत्नी को संदेश देता है। सूत्रधार आगे वर्णन करता है कि मेघ विन्ध्याचल से होता हुआ उज्जयिनी महाकाल के ? शिव-मन्दिर से होता हुआ कैलाश पर्वत पर पहुँच गया। अलकापुरी पहुँच कर यक्ष की पत्नी को उसके प्रिय का सन्देश सुनाता है। सूत्रधार कहता है कि शरदऋतु के समीप आने पर यक्ष के निर्वासन की सीमा समाप्त सी हो रही है। अन्त में दोनों के मिलन से कथावस्तु समाप्त हो जाती है। मेघदूत की कथावस्तु सरल है, क्रिया व्यापार में नाटकीयता होने के कारण पाठक का मन रमता है।

रजतशिखर —'पन्त'

प्राणोन्मादन वाद्य संगीत के साथ पुरुष स्वर उभरता है, जो मर्मरित वन की हरी भरी घाटियों में प्राकृतिक-सौन्दर्य का उल्लेख करता है। कल-कल बहती सरिता पुष्पों पर रंग-बिरंगी तितलियों का नर्तन किसे आकृष्ट नहीं करता? स्त्री कहती है कि आशा-आकांक्षाएँ मोहक स्वप्नों के इन्द्रजाल बुनती है। युवक, युवती को अपने किशोर प्रणय-निवेदन का स्मरण कराता है कि जाने कितने गोपन वसन्त पावस, शरद साथ व्यतीत हुए। युवक युवती के मुख को निर्दोष कहता है। युवती के प्रसन्न होने पर वह उसे प्रीतिपाश में आबद्ध कर लेता है। युवती उसे कुंठित कहती है, वह उन्मन थी अतः युवक से मिलने चली आयी थी। युवक का मित्र जो मानव मन के सूक्ष्म तत्व विश्लेषक है, अपने गहन ज्ञान से उसकी सुप्तात्मा को जाग्रत कर देता है। युवती आश्चर्य व्यक्त करती है कि शुभ्रव्रत ने अपने वात्सल्य को अंधकार में रख ज्ञान-प्रकाश से वंचित रखा। शुभ्रव्रत कहता है कि साधक, कवि, प्रेमी, पागल

वायवीय तत्वों से बने होते हैं। वे सूक्ष्म कल्पना से भावना के पंख लेकर स्वर्ग धरा में निष्फल विचरण करते हैं। सुव्रत इसका कारण बताता है कि युवती ने अपने हृदय का समर्पण कर प्रणयदान नहीं किया है अतः ऐसी स्थिति में आत्मा वास्तविकता से दूर होकर काल्पनिक तृप्ति की खोज करती है। आज 75 प्रतिशत मनुष्यों के उद्वेगों का कारण रागात्मक प्रवृत्ति का अंध दमन है, खोखी, रुग्ण, अवैज्ञानिक पद्धति पर निर्मित समाज, के बन्धन का पुनरुद्धार करना होगा। युवक लज्जित होकर सुव्रत एवं युवती से क्षमा माँगता है क्योंकि ईर्ष्या के कारण वह इन्द्रिय स्पर्शों से मर्माहत होकर आत्मा के गौरव को विस्मृत कर गया था। सुव्रत युवती इन्हें पुण्य कल्पनाएँ कहते हैं जिस प्रकार धूमिल वाष्पों के बादल हट जाने पर आकाश में सूर्य की सुनहली किरणें फैलने लगती हैं उसी प्रकार द्वैतशून्य मन में एकोऽहं बहुस्यामि का मूलमंत्र गुंजायमान होगा। मानव सुर में परिणत हो जायेगा। तभी विस्थापितों का प्रवेश होता है। वे कहते हैं कि नृशंस हत्या, मार, काट, पैशाचिक उद्दाम कामना के ताण्डव के कारण ही वे विस्थापित बने हैं। सुव्रत कहता है कि राग, द्वेष, ईर्ष्या, स्पर्धा, कलह, क्रोध, रीति-नीतिगत विद्रोह, कुण्ठित तृष्णाएँ, अतृप्त पिपासा है। रागात्मक सन्तुलन जबतक ठीक नहीं होगा, सामाजिक सम्बन्ध सजीव न होंगे। इस पृथ्वी पर मनुष्य अपनी ही छाया के पीछे- पीछे भटक रहे हैं। वे छोटे-छोटे स्वार्थों में अनुरक्त हैं, इसीलिए कुण्ठित मानव जीवन से विमुख एवं विरक्त हैं। अतः युवक आराधक बनकर ऐसी ज्योति जगाना चाहता है जिससे मानवीय शोभा, गरिमा, आनन्द एवं मधुरिमा पृथ्वी पर बरसती रहे। युवक-युवती मिलकर घाटी में विस्थापित मानव का घर द्वार बसाना चाहते हैं जिसमें अम्बर की व्यापकता, रजतशिखरों की उर्ध्वग दिव्यशान्ति, सागर की गम्भीरता, सरिता की गति एवं फूलों का सारल्य हो, सब मिलकर जीवन-स्वप्नों के नीड़ सजोएँगे। अन्त में प्रार्थना से इसकी समाप्ति होती है।

विचार प्रधान गीतिनाट्य है, जिसे पन्त ने मनुष्य की अन्तश्चेतना का प्रतीक कहा है। इसमें कथानक का अभाव है, बीच-बीच में सैद्धान्तिक निरूपणों से कथावस्तु शिथिल विशृंखलित एवं नाटकीयता से हीन है।

कवि — सिद्धनाथ कुमार

इस गीतिनाट्य में तीन दृश्य है। प्रथम दृश्य के प्रारम्भ में कवि एकान्त में बैठा प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वादन करता है उसी समय आकाश से अपने अंचल का छोर उड़ाती हुई नारी उतरती है। कवि उसका परिचय जानना चाहता है, नारी अपने को

कल्पना कहकर कवि की अभिन्न सहचरी रूप में परिचय देती है। द्वितीय दृश्य में कवि और कल्पना का प्रणय अंकित है। वह बेसुध होकर कल्पना के गीत गाता है, तभी जीवन आता है। कवि जीवन से कल्पना का परिचय मानस-रानी के रूप में देता है। जीवन रुष्ट होकर कवि को उलाहना देता है कि वह जगत के दुःख द्वन्द्व, हाहाकार को भूल गया। कवि धरती में अमृत कण की वर्षा न कर सके तो अपनी कविता से संसार को हँसा तो सके। जाते समय जीवन, कवि को सचेष्ट करता जाता है। तृतीय दृश्य में कवि किंकर्तव्यविमूढ़ बन-कर यह निर्णय नहीं कर पाता कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है। तभी उसे हृदय-विदारक ध्वनि सुनायी पड़ती है। उसे भूखे कंकाल दिखायी देते हैं, स्त्री, पुरुष, शिशु सब भूख से तड़प रहे हैं। अपना दुःख वह कल्पना से व्यक्त करता है। कल्पना भी तदनुरूप अपना परि-वेश बदलने को तत्पर होती है। कवि उसके इस रूप को पाकर अपने को धन्य समझता है और दोनों नूतन निर्माण की कल्पना करते हैं। इस प्रकार लेखक ने कवि के द्वन्द्व को प्रस्तुत करने के लिए संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत किया है। घटनाएँ सजीव एवं गतिशील हैं। गीतिनाट्य-कार ने स्वयं लिखा है —" क्या करें कवि ? क्या वह जीवन के संघर्षों से ऊपर उठकर कल्पना के स्वर्णिम नीलगगन में विचरण करे? आनन्द के तराने छेड़े? अपने व्यक्तिगत जीवन की मुस्कान और आँसू को छन्दों में बाँधे अथवा वह अपने शोषित-पीड़ित अस्त-व्यस्त सामाजिक जीवन को देखे? अपनी धरती के गीत गाये?"[1]

सृष्टि का आखिरी आदमी — धर्मवीर भारती

कथानक के प्रारम्भ में एक व्यक्ति(उद्घोषक) गम्भीर गर्जना करता हुआ मनु राजा की सन्तानों को सम्बोधित कर कहता है कि इस सभ्यता की नगरी के निर्माण में न जाने कितने नंगे, भूखे और मुर्दा कब्रे दफ़न हुए हैं। मैं भविष्य के उसी नगर के चौराहे से बोल रहा हूँ। उद्घोषक की ध्वनि सुनकर बहुत से व्यक्तियों का शोर चौराहे पर सुनायी पड़ता है। उनका अस्पष्ट स्वर गाली - गलौज, अन्त में फुसफुसाहट में विलीन हो जाते हैं। हजारों की संख्या में बच्चे वृद्ध, पुरुष स्त्रियाँ चले आ रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज नगर में कुछ रहस्यमय वस्तु अवगत होने को है। विगत रात सितारों से रुक-रुककर कुछ ऐसी आवाजें आयी थी, जैसे कोई जिन्दा व्यक्ति आग की लपटों में भूना जाता हो। भयविह्वल आतंकित मन से लोगों ने सारी रात बितायी। प्रातः लोगों ने देखा कि पश्चिम के पहाड़ पर आग का सन जलता हुआ एक बादल टँगा हुआ है। जंगल झुलस गए हैं। स्थान-स्थान पर

1- सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक : सिद्धनाथ कुमार पृ० 203

सभ्यता में दरार पड़ गयी है। नगर निवासी भयभ्रस्त होकर घरों से भाग रहे हैं। वे समझते हैं कि यह महासृष्टि का अन्तिम दिन है। सहसा फौजी बैंड का स्वर उभरता है। और सुसज्जित सेना हाथ में बन्दूक लिए प्रकट होती है। सैनिक एक व्यक्ति को पकड़ने के लिए प्रयत्नशील है। बन्दी कहता है कि हम और तुम सभी चूहे की भांति असहाय और निर्बल हैं। शस्त्रधारी सेना आग के बादल को नहीं जीत सकती है। ये सैनिक हमें भले ही मार डालें किन्तु महानाश के तूफानों के मध्य ये भी पीले पत्तों के समान झर जायेंगे। गोलियों की धाँय-धाँय से सर्वत्र मरघटा जैसा सन्नाटा छा जाता है। उद्घोषक कहता है कि उस व्यक्ति को सैनिकों ने गोलियों से भून दिया। चलो-सड़क रक्त रंजित हो गयी। इसी समय शासक का आगमन होता है। शासक प्रजातंत्र की दुहाई देता हुआ कहता है कि उसने अपने राज्य-काल में दीवारें सोने से मढ़ दी हैं, नदियों पे मीलों लम्बे बाँध बने हैं, तभी बादलों की गरज के साथ दूर पहाड़ी से लम्बी दाढ़ी, ढीला-चोगा और तीखी आँखों वाला वैज्ञानिक जादूगर और युगद्रष्टा धीरे-धीरे उतरता है। सभी उसका सम्मान करते हैं। वैज्ञानिक कहता है कि शासक के अन्त के साथ इस सभ्यता की बेशर्म कहानी का अन्त हो जायेगा। शासक वैज्ञानिक को राजद्रोह के लिए रोकता है। राजाज्ञा से सैनिक वैज्ञानिक को गोली से मारते हैं। घायल वैज्ञानिक कहता है कि बादल बरस कर ही रहेगा। मुर्दे अपना बदला अवश्य लेंगे। लपटों का बादल गरज रहा है। मुर्दा करवट बदल कर खड़ा हो जाता है। शासक भय-ग्रस्त स्वर में गोली चलाने का आदेश देता है किन्तु मुर्दा अपने को मृत्युंजय कहता है। वह कहता है कि वह इस नगरी को ध्वस्त करेगा। उद्घोषक कहता है कि भीड़ भाग रही है, सर्वत्र हाहाकार का नंगा नाच हो रहा है। लपटों का बादल रह-रह कर गरज उठता है। सब कुछ नष्ट हो जाता है। इधर उधर लाशें बिखरी पड़ी हैं। इंसान सदा के लिए सो गया है। धरती बंध्या हो गयी है किन्तु धरती के एक कोने में एक गेहूँ की बाली और जंगली फूल अब भी शेष हैं। धीरे-धीरे आग की बाढ़ रुकती है। अब एक नया इंसान ढलेगा, जीवन के मूल्य बदलेंगे, नयी सभ्यता अवतरित होगी। यहीं पर तूर्यनाद, शंखध्वनि मंगलवादन होता है और नवजात शिशु की प्रथम मुस्कान का सहज सुन्दर और सरल संगीत के साथ इस गीति-नाट्य का अन्त हो जाता है।

पूरे नाटक का घटनाक्रम आद्यन्त सुसम्बद्ध, शृंखलाबद्ध और गतिशील है। कहीं भी ढीलापन और ठहराव नहीं है, जिज्ञासा का भाव सतत बना रहता है। अप्रासंगिक और अवान्तर कथाओं को कहीं भी स्थान नहीं मिला है। कथानक सरलतापूर्वक विकसित होकर चरम अवस्था तक पहुँचता है।

सृष्टि की साँझ — सिद्धनाथ कुमार

युद्ध के कारणों की खोज सृष्टि की साँझ है। गीतिनाट्य का प्रारम्भ तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से होता है। युद्ध की समाप्ति के बाद सेनानायक और महामात्य उच्च अट्टहास करते हैं। अजय इस असमय के अट्टहास को रोकने का प्रयास करता है। सेनानायक युद्ध के कारणों की व्याख्या करता है। वह जग की कुरीतियों अत्याचार, पापों की समाप्ति एवं आदर्शों की रक्षा, शान्ति हेतु युद्ध की आवश्यकता पर बल देता है। अजय विद्रूप हँसी हँस कर इसे शाब्दिक आडम्बर कहता है। पेरिस, लन्दन, याकोहामा, न्यूयार्क मास्को धू-धू कर जल रहे हैं। अश्रु बहाने के लिए कुछ ही लोग शेष बचे हैं। सेनानायक एवं महामात्य उसे कायर कहकर युद्ध में सम्मिलित होने का कारण जानना चाहते हैं। अजय उसे विवेकहीनता का परिणाम कहता है। अहं के कारण प्रतिद्वन्द्वी की दृढ़ता के प्रति ईर्ष्यालु होकर सेनानायक से मिला था। वे अपने को आदर्श प्रेमी, मानवता के संरक्षक कहते हैं। मिथ्या-विश्वास, प्राचीन व्यवस्थाएँ नष्ट कर नवीन की सृष्टि करने का विचार महामात्य रखते हैं। अजय वेदों के श्लोक, रामायण, इलियड, ओडेसी, शेक्सपियर को नष्ट हुआ कहकर धरती को अभागिन कहता है। महामात्य नवीन स्वप्नों आशाओं की बात कहता है। विनष्ट वस्तु पर शोक व्यर्थ है। सभी रेखा की खोज करना चाहते हैं जिससे नई सृष्टि की आशा है। द्वितीय दृश्य में रेखा प्राचीन स्मृतियों में उलझी शोक मना रही है, अजय उसे आश्वासन देकर नवीन सृष्टि की कल्पना प्रस्तुत करता है। वह स्वयं को मनु और रेखा को श्रद्धा कहता है। दूसरी तरफ सेनानायक को कामना अप्सरा के रूप में दिखायी देती है। वह उसके आकर्षण में आकृष्ट होकर वासनाविकारी बनता है, वहाँ कामना उसे हिल्लोलित कर उसका साथ छोड़ देती है। सेनानायक वासनाभिभूत होकर नारी की शीतल छाया का अभिलाषी होता है। वह येन-केन प्रकारेण रेखा को पाना चाहता है। महामात्य उसे शान्त करना चाहता है। इसी समय अजय आता दिखायी देता है। वह रिवाल्वर से उस पर वार करता है। रेखा के समक्ष अपना प्रणय निवेदन करता है। परस्पर द्वन्द्व युद्ध होता है। गोलियों के आघात से दोनों आहत होते हैं। इसी बीच आहत अजय अपने चरण मात्र आहत होने की सूचना देता है। इस सृष्टि का नया चन्द्र उदित हो रहा है। दोनों आशान्वित होकर मिलते हैं।

इस प्रकार लेखक अपनी अभिनव कल्पना से मौलिक कथानक बहुत प्रभावी ढंग से सुशृंखलित रूप में उपस्थित करता है।

(23)

लौहदेवता — सिद्धनाथ कुमार

विज्ञान के वरदान या अभिशाप होने में पर्याप्त विवाद है। एक ओर उसने जहाँ यान्त्रिक-सभ्यता के सम्वर्द्धन हेतु यंत्रों का आविष्कार किया है वहीं दूसरी ओर शोषण दरिद्रता को जन्म दिया है। सिद्धनाथ कुमार ने लौह देवता में यान्त्रिक सभ्यता के विकास की झलकियाँ अंकित की हैं। गीतिनाट्य के प्रारम्भ में जन समूह लौह देवता की वन्दना करता है। लौह देवता प्रसन्न होकर वरदान स्वरूप एक शक्ति उस व्यक्ति को देना चाहता है, जो सर्वाधिक स्वर्णमुद्राएँ देगा। पुजारी स्वर्णमुद्रायें देता है। उस शक्ति के माध्यम से ट्रैक्टर द्वारा जमीन को गहरायी तक जोता गया, नदी में बाँध बनाये गए, वस्त्र बुने, ज्ञान-विज्ञान के नवीन ग्रन्थों की रचना होने लगी, जीवनदाता औषधियों का निर्माण होने लगे। किन्तु जन-समूह को सुख आकाश-कुसुम ही सिद्ध हुआ क्योंकि पुजारी श्रम का मूल्य देकर उत्पादन का उपयोग स्वेच्छया करता था। कारणों की खोज में लगा जनसमूह लौह-देवता के इन आविष्कारों को नष्ट करना चाहता है तभी लौहदेवता प्रकट होकर इनके मूल में निहित कारणों की खोज करने को प्रेरित करता है और जनसमूह उसके इंगित को समझ कर उसे समूल नष्ट करने का प्रण लेते हैं। इस प्रकार लेखक ने विषयानुकूल घटनाओं का सृजन कर उनकी प्रभावमयता की ओर विशेष ध्यान दिया है।

संघर्ष : सिद्धनाथ कुमार

इस गीतिनाट्य में एक मूर्तिकार के संघर्ष को अभिव्यक्ति देने के लिए घटनाओं का सृजन किया गया है। शिल्पकार पंकज अथक परिश्रम से पत्थर को सजीव मूर्तियों के रूप में परिवर्तित करता है। उसका अन्तर्मन उसे मानव धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। जबकि पंकज अपनी साधना में रत ही रहना चाहता है। इस कला-साधना से वह जगत को सुखी बनाने की कल्पना करता है, जबकि मन उसे परिवार को सुखी बनाने के लिए प्रेरित करता है क्योंकि उसका पुत्र मोहन बीमार है, वह उसके लिए अच्छी दवा की व्यवस्था नहीं कर पाता है। उसकी पत्नी के स्वप्न अधूरे हैं यद्यपि उसे शिल्पकार की पत्नी बनने का गौरव है किन्तु यथार्थ बहुत कटु होता है। मन उसे संसार की नश्वरता पर उपदेश देकर मूर्तियों की अमरता पर प्रकाश डालता है। भविष्य के दृश्य में भूमि उत्खनन तथा उसमें कलाकार पंकज की मूर्तियों के प्राप्त होने की घटनाएँ दिखायी हैं। तभी चतुर्दिक विस्फोट होता है और आवेश में आकर पंकज अपनी मूर्ति तोड़ डालता है।

'संघर्ष' में कलाकार ने आन्तरिक संघर्ष को सीमित घटनाओं से व्यक्त किया गया है। स्मृति दृश्य के रूप में मोहन की बीमारी तथा पंकज और बेला प्रेम-सम्बन्धों की योजना प्रासंगिक घटनाओं के रूप में बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है।

अन्धायुग : धर्मवीर भारती

सम्पूर्ण कृति पाँच अंकों में विभक्त है[११]। अंकों के शीर्षक घटनासूचक होने के साथ ही साथ प्रतीकात्मक हैं जैसे कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, गांधारी का शाप एवं विजय, एक क्रमिक आत्महत्या समापन में प्रभु की मृत्यु। प्रथम अंक के पहिले स्थापना है जिसके अन्तर्गत मंगलाचरण, उसके साथ नर्तक द्वारा मंच पर भाव – नाट्य नेपथ्य से उद्घोषणा होती है जिस युग का वर्णन इस कृति में है उसमें धर्म-अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे, सत्ता उसकी होगी जिसके पास पूँजी होगी। नकली चेहरे वालों का महत्व होगा। राजशक्तियाँ लोलुप होंगी एवं जनता भयग्रस्त होकर गहन गुफाओं में जाकर छिपेगी। इस प्रकार यह अन्धों के माध्यम से ज्योति की कथा है। प्रथम अंक का प्रारम्भ कथागायन से होता है। इसमें कहा गया है कि मर्यादा टुकड़े-टुकड़े में विभक्त हो गयी है। कौरव और पाण्डवों ने इसका अतिक्रमण किया है। जो शुभ, सुन्दर एवं कोमलतम था वह हार गया, भय ममता एवं अधिकारों का अंधापन जीत गया है। कौरव के महलों के गलियारों में दो बूढ़े प्रहरी वार्तालाप करते हैं कि इस गलियारों में मंथरगति से घूमने वाली कौरव स्त्रियाँ आज विधवाएँ हैं। सत्रह दिन तक लोमहर्षक संग्राम को देखकर ही वे थक गए हैं। यद्यपि महलों में रक्षणीय कुछ नहीं रह गया फिर भी वे अंधी संस्कृति के रक्षक थे। सहसा आँधी की ध्वनि सुनायी देती है। प्रहरी कहता है कि सारी कौरव नगरी का आसमान गिद्धों से घिर गया है। तभी विदुर का प्रवेश होता है वे इस अपशकुन की सूचना महाराज को देने जाते हैं। इसके बाद कथा गायन होता है जिसमें यह चिन्ता व्यक्त की गयी है कि कौरव दल का क्या परिणाम हुआ? धृतराष्ट्र और गान्धारी मौन बैठे हैं क्योंकि संजय अभी तक कुछ भी संवाद नहीं ला पाये। विदुर कहते हैं कि भीष्म, द्रोण, कृष्ण इत्यादि सभी ने वर्षों पूर्व इस आशंका को व्यक्त किया था। धृतराष्ट्र कहते हैं कि वे जन्मान्ध थे अतः बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को कैसे ग्रहण कर सकते थे। बाह्य संसार में स्वतः उनके अन्धेपन से उपजा था। कौरव का ममत्व ही उनका अन्तिम सत्य था। संजय के संवाद निरर्थक थे क्योंकि उन शब्दों से जो चित्र बनते थे उनसे वे अपरिचित हैं। दुःशासन की आहत छाती से भीम ने किस प्रकार अंजुलि में रक्त लेकर अपनी तृषा बुझायी होगी, इसकी कल्पना नहीं कर सकते हैं। गांधारी के लिए यह सब असह्य हो जाता है, तभी धृतराष्ट्र कह उठते हैं कि उन्हें आज

यह ज्ञान हुआ है कि उनकी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी सत्य है। इस ज्ञान से उन्हें भय होने लगा है। गान्धारी कृष्ण पर मर्यादा उल्लंघन का आरोप लगाती है कि धर्म, नीति मर्यादा सब आडम्बर है इनसे उसे घृणा है इसलिए स्वेच्छा से उन्होंने इन आँखों पर पट्टी चढ़ा रखी है। धृतराष्ट्र कहते हैं कि पुत्र शोक के कारण गान्धारी जर्जर हो उठी है। गांधारी कहती है कि युद्ध में धर्म की विजय होती है किन्तु इस युद्ध में धर्म किसी ओर नहीं था कृष्ण ने मर्यादा को अपने हित में बदल लिया है, उसके सामने ही पुत्र-वधुओं की माँगों से सिन्दूर पोंछ दिया गया। तभी याचक का प्रवेश होता है जिसने कौरवों के विजय की भविष्य-वाणी की थी। उसे भी आश्चर्य है कि एक व्यक्ति ने नक्षत्रों की गति बदल दी है। द्वितीय दृश्य में घटनाओं के संकेत के लिए कथागायन होता है। द्वितीय अंक का प्रारम्भ संजय का परिचय देते हुए कथागायन से होता है। संजय तटस्थ द्रष्टा शब्दशिल्पी है। वह भटक गया है। हस्तिनापुर जाने का मार्ग खोज नहीं पा रहा है। उसे इस बात की ग्लानि है कि वह एकाकी बच गया है। इस अन्तिम पराजय की अनुभूति को वह कैसे कहेगा। संजय के सामने कुरुक्षेत्र के मैदान को अर्जुन ने भू लुंठित कौरव कबन्धों से पाट दिया है। हर संकट महा-नाश, प्रलय, विप्लव के बाद सत्य कहने के लिए संजय शेष बचेगा। तभी कृतवर्मा आकर उसे धैर्य धारण कराकर समाचार कहने के लिए प्रेरित करते हैं। दूर से कृपाचार्य अश्वत्थामा को पुकारते हैं। कृपाचार्य कृतवर्मा से बताते हैं कि रथ से उतर कर दुर्योधन ने नतमस्तक होकर पराजय स्वीकार की थी, उसी समय अश्वत्थामा ने अपना धनुष तोड़ दिया और आर्तनाद करता हुआ वन चला गया। अश्वत्थामा सोच रहा है कि पिता की निर्मम हत्या का प्रतिशोध कैसे ले सकेगा। युधिष्ठिर ने नर-कुंजर का अन्तर पृथक नहीं किया। उसी दिन से अश्वत्थामा की कोमल अनुभूतियों की भ्रूण-हत्या हो गयी और वह अंध-बर्बर पशु बन गया, आते हुए संजय का गला घोटने का प्रयास करता है तभी कृपाचार्य एवं कृतवर्मा संजय को छुड़ाते हैं। संजय उन्हें सरोवर में छिपे दुर्योधन का पता बताते हैं। उसी समय वृद्ध याचक का प्रवेश होता है। अश्वत्थामा गला घोंट कर उसकी हत्या करने का प्रयास करता है। कृपाचार्य और कृतवर्मा आकर उसको पकड़ लेते हैं। अश्वत्थामा को ज्ञात नहीं है कि आवावेश में उसने क्या किया। यह उसकी मनोग्रन्थि है। कथागायन से इस अंक की समाप्ति होती है। तीसरे अंक में अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य व्यक्त हुआ है। अंक के प्रारम्भ में कथागायन से यह सूचना मिलती है कि संजय से युद्ध का समाचार सुनकर गान्धारी- धृतराष्ट्र गहन व्यथा से व्याकुल हो जाते हैं। इसी बीच एक पंगु गूँगा सैनिक घिसटता हुआ आता है और विदुर के पैर पकड़ कर पानी माँगने का संकेत करता है। दुर्योधन का बन्धु होने पर भी पाण्डवों की ओर से लड़ने वाला युयुत्सु नगरवासियों एवं माता गान्धारी से उपेक्षा पाता है। गूँगा कराह कर पानी

पानी माँगता है। युयुत्सु उसे पानी पिलाता है। गूँगा पानी पीते समय सहसा चीख उठता है क्योंकि युयुत्सु ने ही उसको आहत किया था। अन्तःपुर में भयंकर आर्तनाद उठता है। पाण्डवों की जय ध्वनि गूँजने लगती है। छिपा हुआ अश्वत्थामा प्रण करता है कि छिपकर वह पाण्डवों की हत्या करेगा। कृपाचार्य इस प्रतिहिंसा में अश्वत्थामा के साथ हैं, अश्वत्थामा भीम के अन्याय की चर्चा करता है। कृतवर्मा एवं कृपाचार्य विश्राम करते हैं, अश्वत्थामा पहरा देता है। कौआ एवं उल्लूक के युद्ध से अश्वत्थामा को मार्ग मिल जाता है। वह निहत्थे, अचेत सोये पाण्डवों की ओर जाता है। वह अकेले कुंजर की भाँति धृष्टद्युम्न को पदाघात से चूर करना चाहता है। वह पाण्डव-कुल के भविष्य को नष्ट करने का प्रण करता है। कृपाचार्य उसे रोकने का प्रयास करते हैं। इस अंक के अन्त में एक अन्तराल - पंख पहिये और पट्टियाँ हैं जिसमें वृद्ध याचक का प्रवेश होता है, वह अपने को प्रेतात्मा कहता है। प्रेतात्मा पात्रों की असंगतियों को समूचे युग की असंगतियाँ कहता है। चौथा अंक गान्धारी के शाप से सम्बन्धित है। प्रारम्भ में कथागायन है। अश्वत्थामा पाण्डव शिविर में जाता है, द्वार पर रक्षक शंकर हैं। शर, शक्ति, नाराच और दिव्यास्त्रों का प्रयोग अश्वत्थामा ने किया किन्तु शंकर के सामने निष्फल गए अतः हार मानकर अश्वत्थामा उनकी स्तुति करने लगा। आशुतोष शंकर ने उसे विजयी बनने का वरदान दिया क्योंकि अब पाण्डवों के पुण्य क्षय हो चुके हैं। पुण्य के प्रभाव वश ही शंकर पाण्डवों की रक्षा करते थे किन्तु पाण्डवों ने अधर्म से दुर्योधन का वध कर अपनी मृत्यु के द्वार को खोल दिया। आगे की कथा संजय, गान्धारी को सुनाते हैं कि अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के पास जा पहुँचता है। उसकी आँखें निकाल कर मर्मस्थलों में आघात करता है। कोलाहल सुनकर पाण्डव योद्धा आये किन्तु अश्वत्थामा ने सभी को मार गिराया। शिविर से भागने वाले नर नारियों को कृतवर्मा एवं कृपाचार्य बाणों से विद्ध करते थे। बाद में शिविर में आग लगा दी गयी। गान्धारी, संजय से दिव्यदृष्टि द्वारा अश्वत्थामा के पौरुष को देखना चाहती हैं, क्योंकि जिस कार्य को उसके सौ पुत्र, द्रोण, भीष्म, नहीं कर सके, उसे अश्वत्थामा ने किया। संजय उसे दिव्यदृष्टि प्रदान कर मरणासन्न दुर्योधन को दिखलाते हैं। अश्वत्थामा, दुर्योधन से कहता है कि यह कार्य तो आने अपने पिता के प्रतिशोध को पूर्ण करने के लिए किया और दुर्योधन का प्रतिशोध लेने के लिए पाण्डवों के उत्तराधिकारी को मारना चाहता है, जो उत्तरा के गर्भ में सुरक्षित है। उसी समय दुर्योधन का प्राणान्त होता है। गान्धारी अश्वत्थामा के शरीर को वज्र बनाने के लिए उसे देखना चाहती है। आँखों से पट्टी उतारते ही संजय की दिव्यदृष्टि समाप्त हो जाती है। विदुर, गान्धारी से परिजनों के अन्त्येष्टि का आग्रह करते हैं। धृतराष्ट्र संजय, विदुर, युयुत्सु, गान्धारी सभी प्रस्थान करते

है। इसी समय झाड़ी से निकलकर कृपाचार्य उन्हें अश्वत्थामा का पता बताते हैं। संजय धृत-राष्ट्र को बताते हैं कि अब अश्वत्थामा क्यभीत हो गया है क्योंकि कृष्ण पाण्डवों को लेकर उसे खोज रहे हैं। गान्धारी ने कहा कि उसने अश्वत्थामा के शरीर को वज्र बना दिया है। दूर से विस्फोट की ध्वनि सुनायी पड़ती है। विदुर आशंका व्यक्त करते हैं कि अश्वत्थामा मिल गया है। धृतराष्ट्र संजय से दिव्यदृष्टि से देखने का आग्रह करते हैं किन्तु वह तो पहिले ही समाप्त हो गयी है। चतुर्दिक अग्निबाण गिर रहे हैं, सभी सुरक्षित स्थान में जाते हैं, तभी अश्वत्थामा प्रविष्ट होता है। उसके गले में बाण चुभा हुआ है। क्रोध से वह अर्जुन से कहता है कि वह वल्कल धारण कर तपोवन जाना चाहता था किन्तु सम्पूर्ण पाण्डव वंश को निर्मूल किये बिना कृष्ण की युद्ध लिप्सा नहीं शान्त होगी। यह कहकर वह देवताओं की साक्षी में ब्रह्मास्त्र छोड़ता है। भयंकर गर्जना होती है। व्यास नराधम अश्वत्थामा के इस कुकृत्य की निन्दा करते हैं क्योंकि यदि ब्रह्मास्त्र का लक्ष्य सिद्ध हो गया तो आगे आने वाली सदियों में पृथ्वी पर वनस्पतियाँ तक पैदा नहीं होंगी। मनुष्य का सम्पूर्ण अर्जित ज्ञान नष्ट हो जायेगा। व्यास ने बतलाया कि अर्जुन ने सभी अपने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिये हैं। व्यास दोनों से ब्रह्मास्त्र वापस लेने की बात कहते हैं अश्वत्थामा को पीछे हटाने की रीति ज्ञात नहीं है अतः धरती को बनुर्वर होने से बचाने के लिए उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने की बात कहता है। व्यास उसे पशु कहते हैं। पाण्डव-बन्धुओं का क्रन्दन सुनकर गान्धारी को संजय सभी तथ्यों से अवगत कराते हैं। धृतराष्ट्र-युयुत्सु के शासक होने की कल्पना करते हैं क्योंकि पाण्डवों का कोई उत्तराधिकारी नहीं है। विदुर ने आकर सूचना दी कि कृष्ण उत्तरा के गर्भ में मृत शिशु को अपना जीवन देकर जीवित करेंगे। अश्वत्थामा मस्तक मणि देकर वन चला जाता है। गान्धारी हृदय विदा-रक स्वर में कृष्ण को शाप देती है कि कृष्ण के वंशज पागल कुत्तों की तरह परस्पर फाड़ खायेंगे तथा कृष्ण घने जंगल में पशुओं की तरह साधारण व्याध के हाथों मारे जायेंगे। अर्जुन कृत पाप-पुण्यों का योग-क्षेम, स्वयं कृष्ण वहन करते हैं। अट्ठारह दिन के भीषण संग्राम में जितने सैनिक मरे हैं उतनी ही बार कृष्ण की मृत्यु हुई है। अश्वत्थामा के गलित अंगों से रक्त पीप स्वेद बनकर युगान्तर तक वे ही निकलते रहेंगे। कृष्ण ने गान्धारी के शाप को शिरोधार्य किया। अंक की समाप्ति कथागायन से होती है। पाँचवाँ अंक का शीर्षक है विजय एक क्रमिक आत्महत्या। इसका प्रारम्भ कथागायन से होता है जिसमें कहा गया है कि वर्षानुवर्ष समाप्त हो गये। ब्रह्मास्त्रों से झुलसी धरती हरीभरी हो गयी। युधिष्ठिर का अभिषेक हुआ किन्तु कौरव नगरी तेजोहत एवं श्रीहीन ही बनी रही। युधिष्ठिर चिन्तित है कि शापग्रस्त प्रभु का देहावसान किस प्रकार होगा। भयानक युद्ध को अर्द्धसत्य, रक्तपात, हिंसा, से जीतकर

एक प्रकार की हार का अनुभव करना ही है, क्योंकि जो सिंहासन प्राप्त हुआ है उसके पीछे अन्धेपन की अटल परम्परा है। विदुर सूचना देते हैं कि भीम ने आज युयुत्सु का अपमान किया है। भीम की कटूक्तियों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र और गान्धारी वन चले गये। प्रहरी आपस में वार्तालाप करते हैं कि शासक बदल गए किन्तु ये ज्यों के त्यों बने हैं। इनसे पहले के शासक अन्धे थे, ये तो सन्त ज्ञानी हैं। शासन क्या करेंगे क्योंकि इन्हें तो प्रजा की प्रकृति का ज्ञान नहीं है। घृणा को सहन न कर सकने के कारण युयुत्सु आत्महत्या करने का प्रयास करता है, शुश्रूषा करके विदुर उसे प्राणदान देते हैं। कृपाचार्य कहते हैं कि अब इन महलों में आत्मघाती नपुंसक ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति उभर आयी है। इस आत्मघाती संस्कृति में वे नहीं रह पायेंगे। जलते हुए वन में धृतराष्ट्र संजय, गान्धारी चले जा रहे हैं। धृतराष्ट्र, संजय को समझा-बुझा कर वापस भेजना चाहते हैं। गान्धारी भयंकर आग की लपटों से घिर जाती है, धृतराष्ट्र उसे बताते हैं कि उनके पैर में बरगद की टूटी डाली गिर पड़ती है। कथागायन में पाण्डव शासन की निस्सारता का वर्णन किया जाता है। एक प्रहरी बाते पर युधिष्ठिर का किरीट रखे है क्योंकि हस्तिनापुर में अत्यधिक अपशकुन होने लगे थे। युधिष्ठिर, कुन्ती, गान्धारी एवं धृतराष्ट्र के जीवित न रहने के कारण उदास होकर हिमालय में गलने के लिए जाना चाहते हैं। अंक के अन्त में प्रहरी द्वारकापुरी में भयंकर अपशकुन होने की चर्चा करते हैं। इसके बाद समापन है जिसमें प्रभु की मृत्यु वर्णित है। कथागायन में नैराश्य कृष्ण की स्थिति का वर्णन है इसी समय भयंकर रूपवाला अश्वत्थामा प्रविष्ट होता है। वह कहता है कि कृष्ण ने नशे में डूबे अपने बन्धु-जनों की व्यापक हत्या की है, वही शक्ति क्षीण, तेजहीन, हताश, अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है। व्याध शर संधान किये जाता है और प्रभु-पद को मृगनयन समझ कर तीर छोड़ता है एक ज्योति चमक कर बुझ जाती है। बीन की तान हिचकियों की तरह तीन बार उठकर टूट जाती है। अश्वत्थामा अट्टहास करता है और संजय अर्द्धमूर्छित हो जाते हैं। अश्वत्थामा प्रभु की मृत्यु का प्रत्यक्ष द्रष्टा है। उसने देखा कि बाण लगते ही कृष्ण के तलुओं से पीप भरा दुर्गन्धित रक्त फूट कर बहने लगा। शायद कृष्ण ने नरपशु अश्वत्थामा को चरणों में धारण किया था इसीलिए वह विगत शोक होकर आस्था का अनुभव करता है। युयुत्सु को इस आस्था पर आश्चर्य है। वह गरिमामय कृष्ण के मरण को देखने आया है। इसी बीच वृद्ध याचक हाथ में धनुष लिए प्रवेश करता है। व्याध कहता है कि वह जरा नामक व्याध है पहिले वह ज्योतिषी था। अश्वत्थामा ने उसका वध कर दिया था। प्रेत-योनि से छुटकारा पाने के लिए ही कृष्ण ने उसे बाण मारने के लिए कहा था क्योंकि अश्वत्थामा के पापों का दण्ड स्वयं लेना चाहते थे। अश्वत्थामा को शान्ति की अनुभूति होती है। समस्त दायित्व कृष्ण ने ले लिया है अतः शेष लोग साहस एवं ममत्व के साथ नवीन सृष्टि की रचना करें। कथा-

गायन के साथ कृति समाप्त होती है।

अन्धायुग की घटनाओं का उपजीव्य महाभारत है अतः इसकी कथावस्तु प्रख्यात है, जिसमें नाट्यकार ने सर्जनात्मक प्रतिभा से युगीन कुण्ठा, हिंसा, स्वार्थपरता, और युद्ध की विभीषिका का अंकन किया है। विस्तृत कथावस्तु को लेखक बड़े ही कौशल से समेटने का प्रयास किया है। घटनाएँ प्रभाव की दृष्टि से सक्षम हैं। कल्पना के संयोग से उसमें नाटकीयता का समावेश हुआ है। सम्पूर्ण कथा को कुछ इस तरह के ताने - बाने से बुना गया है कि वह बहुत कुछ एक तान और अटूट बन गयी है। कथावस्तु को गतिशील और अन्विति-पूर्ण बनाने के लिए धर्मवीर भारती ने मुख्यतया दो उपादानों का सहारा लिया है —कथागायन या कोरस का और प्रसंगानुकूल बदलते हुए टोन और लय का।[1] शृंखलाबद्धता, रसात्मकता, सघनता, मार्मिकता की दृष्टि से इसकी कथावस्तु बहुत ही आकर्षक है।

इन्दुमती — गिरिजाकुमार माथुर

कालिदास कृत 'रघुवंश' में वर्णित 'इन्दुमती स्वयम्वर' के आधार पर गिरिजा कुमार माथुर ने इन्दुमती की रचना की है। प्रारम्भ में कवि ने रघुवंश का वर्णन करते हुए अज की प्रशंसा की है। प्रभाती के अन्तर्गत स्वयम्वर मण्डप का वर्णन है। तत्पश्चात् वरमाला लिए हुए स्वयंवरा इन्दुमती मण्डप में पधारती है। इन्दुमती की सखी सुनन्दा उप-स्थित राजाओं में से मगधराज, अंगदेशपति, अनूपदेश के स्वामी, शौरसेन के नृपति, पाण्ड्यराज का परिचय उससे कराती हैं किन्तु इन्दुमती सभी राजाओं में कोई न कोई दोष देखकर उन्हें अस्वीकार कर देती है। भानुवंशी अज को देखकर उसके नेत्र अनुरक्त हो जाते हैं। वह अज को वरण कर वरमाला पहना देती है। सर्वत्र प्रसन्नता फैल जाती है। दोनों का विधिवत् विवाह सम्पन्न होता है और यज्ञ-गीत से इसका समापन होता है। पूरे गीतिनाट्य को विन्यास से दो दृश्यों में विभक्त किया गया है। कथावस्तु संक्षिप्त किन्तु प्रभावी है।

मदन दहन — उदयशंकर भट्ट

तारकासुर के घोर तप से ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे यथेच्छ वर दिया। उसने वरदान पाकर सब लोकों को जीत लिया। अमरावती के स्वामी इन्द्र को जीतकर उसने अपना दास बना लिया। सम्पूर्ण देव-स्त्रियाँ उसके महल में दासी का काम करने लगीं। वरुण

1- हिन्दी नाटक, पृ0 186

वरुण देव उसके लिए पानी भरते सूर्यदेव उतनी देर तक तपते, जितनी देर तक उसके विहारोद्यान में कमलिनी न खिल जाती। इन्द्र भेंट लेकर वहाँ खड़े रहते। नन्दन कानन के पुष्प उसकी रानियों के कण्ठहार बनते। धर्म-कर्म, यज्ञ-अनुष्ठान सब बन्द हो गए। तभी एक दिन सभी व्यथित हो ब्रह्मा की स्तुति कर उनसे अपना दुख सुनाने लगे। इसी समय पृथ्वी आकर करुण-क्रन्दन करने लगी। ब्रह्मा ने इसका उपाय बताया कि पार्वती शिव से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर को मार सकता है। विवाह का उपाय देवताओं को करना होगा। इसी समय कामदेव आकर उन्हें सान्त्वना देता है।इन्द्रादि सभी देवता उससे शिव की समाधि तोड़ने हेतु आग्रह करते हैं। इस दुस्साध्य कार्य को सुनकर रति व्यथित होती है, रति भी उसके साथ जाती है। चतुर्दिक कामोद्दीपक वातावरण छा गया। प्रकृति के अणु-अणु में काम-वासना भर गयी। चर-अचर- उन्मत्त हो उठे।ऐसे मादक प्राकृतिक वातावरण में सखियों सहित पार्वती शिव के पास जाती है। वह नन्दी सहित शिवार्चन करती है। उपयुक्त अवसर देखकर काम ने शर सन्धान कर शिव को जगाया। काम को देखकर शिव क्रोधित हो गए। उनका तीसरा नेत्र खुल गया। अग्नि-धार में काम भस्मीभूत हो गया। प्रिय को न देखकर रति स्तब्ध रह गयी। शिव आत्म-ग्लानि से भर अन्तर्धान हो गये। रति के विलाप से इस नाटक का समापन होता है। उक्त गीतिनाट्य का मूलाधार कालिदास का कुमारसम्भव है।

काम का दहन वर्णन , शंकर-पार्वती का प्रथम दर्शन मौलिक रूप में वर्णित है। आधिकारिक एवं प्रासंगिक घटनाओं का अच्छा समन्वय है। घटनाएँ नाटकीय एवं गतिशील हैं जिनमें कौतूहल की मात्रा पर्याप्त विद्यमान है।

सौवर्ण —— पन्त

पन्त जी के गीतिनाट्यों में सौवर्ण का विशेष स्थान है। इसका प्रारम्भ अमरों द्वारा हिम-संस्कृति केन्द्र हिमालय-स्तवन से होता है। हिमालय के आँगन में चन्द्रच्छटा का काव्यमय वर्णन है। स्वर्दूत हिमालय के प्रांगण में रहने वाले अमरों की क्रिया-कलापों से ऊब कर मनुज लोक में जाकर जन-युग की नवपरिणित देखना चाहता है। वह स्वर्दूती को ऋषि-आश्रम में ले जाता है, जहाँ नीवारों के ढेर लगे हैं- जहाँ निरन्तर मन्त्रोच्चार हो रहा है। आत्मद्रष्टा तापस पद्मासन पर स्थित होकर मनस् की ऊर्ध्व श्रेणियों पर आरोहण कर रहा है। दूसरी ओर स्वर्दूत एवं स्वर्दूती उस घाटी को देखते हैं जो अब नक्षत्र लोक सी अद्भुत लगती है, जहाँ का मनस्वी मानव भौतिक साधनों की उपलब्धि हेतु प्रयत्नशील है। स्वर्दूत को मानव की वैज्ञानिक रचनाओं में कहीं अभाव खटकता है। वह मध्यकालिक रूढ़ियों, रीतियों ,

शोषण एवं उत्पीड़नों का उल्लेख करता है, जिस पर मानव को विजय पानी है। तभी उसे नव्य युगान्तर का आवाहन करते हुए स्त्री-पुरुषों का स्वर सुनायी पड़ता है। एक पुरुष वर्तमान की दुरवस्था का वर्णन करता है, जिसमें धर्म-नीति, सदाचार विलुप्त प्राय हो गये हैं। भ्रान्ति विभ्रम, युद्ध एवं युद्ध-संघर्षों से इस धरती का मानव त्रस्त एवं क्षुब्ध है। वह मृग-मरीचिका में मोहित है। स्त्री भी इस विषमता का उल्लेख करती है साथ ही वह इन विषमताओं के दूर करने के प्रयोगों की चर्चा करती है। इसी समय एक बुद्धिजीवी आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक मूल्यों के संकटों का उल्लेख करता है। कला एवं साहित्य भी इस संकट से अछूता नहीं है। इस निराश मानव को आशा की किरण दे अन्याय से लड़ने के लिए प्रेरित करना तथा जीवन के शीत-ताप से म्लान होने वाले पलायनवादी व्यक्ति को यथार्थ से परिचित कराना। आज सबके सामने यह विकट समस्या उपस्थित है कि मानवमूल्यों की मर्यादा किस प्रकार सुरक्षित हो सकती है। पुरुष कहता है कि युग दायित्व का गुरुतम भार भारतवासियों के युवा कन्धों पर आ गया है। अपने विवेक एवं स्वतंत्र संकल्प शक्ति से विकृत-प्रचारों से कुं-ठित नव मूल्यों का उद्धार करना होगा। कुछ लोग इस बुद्धिजीवी पुरुष को गुप्तचर समझकर पकड़ लेते हैं। स्वर्दूत एवं स्वर्दूती हिमालय पारकर भव्य हरित भू पर आ पहुँचते हैं। दोनों इस भूमि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह वही भूमि है जहाँ असत् पर सत् की, तम पर ज्योति की, मृत्यु पर अमरत्व की विजय हुई है। इस देश के ग्रामवासी सृजन कर्मों में रत हैं। अब वे इस देश की स्तुति कर स्वर्दूत एवं स्वर्दूती औद्योगिक केन्द्रों में जा पहुँचती हैं, जहाँ विश्व भ्रान्ति के प्रलय- बलाहक छाये हुए हैं। विश्वशान्ति हेतु विभिन्न देशों के अधिनायक एकत्रित हुए हैं, ये लोग कोई मार्ग नहीं खोज सके। स्वर्दूत इनके मध्य बैठा हुआ मध्यमार्ग के पथिक का उल्लेख करता है, जो पंचशील का पोषक सहजीवन का बोधक, युग द्रष्टा एवं द्वेष-क्लेश से विमुक्त है। स्वर्दूती-स्वर्दूत दोनों पुनः तपोभूमि आ पहुँचते हैं। जहाँ हिमालय के दुर्गम शिखरों पर एक व्यक्ति खड़ा है। स्वर्दूत उसे कोई प्रेमी, पागल या साधक कहता है। स्वर्दूती उसे क्रान्तद्रष्टा कहती है, जो लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो कर मानव का भविष्य देख रहा है। दोनों उसके अस्फुट स्वरों को सुनते हैं। [illegible] भविष्य-द्रष्टा की भाँति मानव जीवन के उल्लसित चित्र अंकित करता है।

इस प्रकार इसका कथानक संक्रमणकालीन मानव मूल्यों के विकास का प्रतीक है। घटनाएँ बहुत संक्षिप्त, जटिल, अनाटकीय, रूक्ष और विवरण प्रधान हैं।

स्वप्न और सत्य — पन्त'

प्रथम दृश्य में सन्ध्या का समय चित्रित है। एक तरुण कलाकार दीवार पर लगी काली तख्ती पर रंगीन खड़ियों से पतझर का रेखाचित्र बना रहा है। वह सोच रहा है कि धीरे-धीरे प्रकृति परिवर्तित होती है और अँगड़ायी भरती कलियों में भ्रमर फिर रंगरेलियाँ मनायेंगे। इसी बीच कलाकार के मित्रों का प्रवेश होता है और उसका पहला मित्र उसके प्रकृति चित्रण पर कटाक्ष करता है, उसे बौद्धिक-शिशु के साथ भावुक प्रेमी कहता है जो अपनी-प्रेयसी का मुख निर्निमेष देखता है। इस जीवन के कर्तव्य-विमुख होने पर जन-समाज से शापित होगा। दूसरा मित्र उसके चित्र को देखकर कहता है कि यह कैसा मधुर सजीव दृश्य है, सरल वक्र रेखाओं के द्वारा पतझर के सूने पंजर में नवीन वसंत के नवभाव उच्छ्वासित हो उठे हैं यह मार्मिक कृति है। कलाकार मुग्ध-भाव से मातृ-प्रकृति की अद्भुत शोभा का वर्णन करता है। वह कहता है कि प्रकृति का करुणांचल सत्-असत् , घृणा-प्रेम, अश्रु-हास, छाया-तप से गुम्फित है। वास्तव में कलाकार के लिए प्रकृति सत्य है, यह रहस्यमयी प्रकृति निखिल प्रेरणाओं की जननी है। पहला मित्र कहता है वह प्रकृति के बाह्य-रूप पर ही मुग्ध है। वह प्रकृति मुग्ध-यौवना की तरह कपोलों पर लज्जा की लालिमा लाकर हावों-भावों से इन्द्रजाल रचती है। दूसरा मित्र पहले मित्र को भ्रमित-मति कहकर मातृ-प्रकृति के शाप से बचने के लिए सचेष्ट करता है। कलाकार कहता है कि वह विद्वान् नहीं है, पर उसकी आँखों को जो वस्तु सुन्दर लगती है उससे वह आँख नहीं चुरा सकता है। वह भावना प्रिय है, जो कि प्रकृति अनजाने में उसके मन को मोहित कर लेती है, स्वप्न-पाश में बाँध कर उसके हृदय को तन्मय कर देती है, उसी प्रकृति को तूलिका से अंकित करना चाहता है। पहला मित्र कलाकार के इस विचार को प्रलाप कहता है क्योंकि मानव जगत् प्रकृति सौन्दर्य से कहीं सुन्दर है। कलाकार को चाहिए कि आँख खोल कर देखे कि मानवीय-जगत में कैसा हाहाकार मच रहा है। शोषित कंकालों की भूखी चीत्कारों से जगत काँप रहा है। बाहर क्रान्ति की जय के नारे लगते हैं। पहला मित्र कलाकार को सम्बोधित करते हुए कहता है कि यह जन प्रदर्शन लोक पर्व है। इस आनन्दपर्व में हमें भी सम्मिलित होना चाहिए। दूसरा मित्र अपने अन्तर की जिज्ञासा के शमन हेतु इस प्रदर्शन में नहीं सम्मिलित होता है। कलाकार नीरस तर्कों के पौषित शब्दाडम्बर से व्यथित हो उठता है। वह स्वप्नों की परियों के अंचल में छिपकर विश्राम करना चाहता है। क्लान्त कलाकार का श्रान्त मन स्वप्नावस्था में अन्तर्मन में विचरण करता है। कुछ छायाएँ कलाकार को घेर लेती हैं और उसे स्वर्ग का वैशिष्ट्य बताती हैं। इसी समय पृष्ठभूमि से रघुपति राघव राजाराम एवं श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन' की ध्वनि सुनायी

पड़ती है। तभी एक स्वर उभरता है कि रामचरण शरणागति के बिना परमार्थ की सिद्धि सम्भव नहीं है। वह इस संसार को सियाराम मय जानकर प्रणाम करता है। यह तुलसी-दास की वाणी थी। फिर दूसरा स्वर उभरता है कि वह सूरदास है जिनके कृष्ण शैशवावस्था में घुटनों के बल चलते थे, अपनी विश्वविमोहिनी लीला-विलास से उन्होंने ब्रज-भूमि को विमुग्ध किया है। अब तक उनके मंजीरव से यमुना तट मुखरित रहता है। कलाकार को मौन नृत्य में समाधिस्थ मीरा के दर्शन होते हैं। एक स्वर कबीर का उभरता है, चौथा स्वर कहता है कि उसे कबीर की साखियाँ सदैव प्रिय रही हैं। उसकी उलटवासियाँ अद्भुत हैं। चौथा स्वर फिर कहता है कि भारत के अकर्मण्य जन सदैव अतीत का मुख देखा करते हैं, अपने दायित्वों से विमुख विगत गौरव के स्वप्नों में खोये रहते हैं। वे जाति-पाँति, रूढ़ियों में विभक्त हैं, उसका दृष्टिकोण है कि यह धरती ज्ञान-विज्ञान समन्वित हो। कलाकार सोचता है कि महापुरुषों के सामीप्य लाभ के कारण उसका जीवन सार्थक हो गया है। स्वप्न के दूसरे दृश्य में कलाकार दुःस्वप्न ग्रस्त अन्तर अवचेतन के छायान्धकार से पूर्ण लोकों में भटकता है, वह संस्कृति, कला-साहित्य, के क्षेत्र में क्षुद्र मतवाद एवं गुटबाजी का उल्लेख करता है। वह आगे सोचता है कि अब जीवन में नए विहान की कामना की जा रही है, स्वार्थों की शृंखला टूट रही है, जग-वैषम्य कल्मष नष्ट हो जायेगा। कलाकार की स्वप्न चेतना व्यापक जीवन प्रसार में विचरण करती है कि कला कौशल से शोभित वर्गहीन समाज निर्भय होकर जीवन यापन कर सकेगा। चिन्ताओं से मुक्त मानव आत्मोन्नति में रत रहेगा। तभी विप्लव का कोलाहल उठता है, कलाकार चौंक उठता है। वह कहता है कि यह कैसी रण-भेरी बज रही है, भय ग्रस्त होने के कारण कलाकार का स्वप्न टूट जाता है। दूर से वादित संगीत उसका ध्यान आकृष्ट करता है और वह उठकर ध्यानमग्न अवस्था में बैठ जाता है। गीत के साथ यवनिकापात होता है।

इस प्रकार गीतिनाट्यकार ने आधिकारिक कथा के बीच प्रासंगिक घटनाओं का संगुम्फन किया है। स्वप्न में तुलसी, सूर, मीरा और कबीर से सम्बन्धित घटनाएँ दिखायी गयी हैं। यह गीतिनाट्य आदर्श और यथार्थ के बीच युग संघर्ष का द्योतक है। घटनाओं में नाटकीयता, क्रिया-व्यापार में सजीवता पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है किन्तु कथावस्तु सूक्ष्म और दुरूह है जिससे उसका प्रवाह अवरुद्ध सा हो गया है।

दिग्विजय — पन्त

'जीवन सत्य की बहिरन्तर विजय का काव्य-रूपक है।'[1] इसमें लेखक ने मानव की अन्तरिक्ष यात्रा का वर्णन किया है। इसका प्रारम्भ अप्सराओं के गीत से होता है।

1- सौवर्ण, पन्त पृ0 9।

जिसमें वे खेचर के प्रतिनिधि दिग्विजय नर की स्तुति करती हैं। आगे का संवाद मरूत एवं
अप्सरा के संवाद से विकसित होता है। मरूत शब्द गति एवं ज्योतिर्वेग को भी अतिक्रमण
कर चलने प्रक्षेपास्त्र का उल्लेख करता है। अप्सरा भी इस अघटनीय को देखकर स्तब्ध रह
जाती है कि प्रथम बार धरती के गुरूत्वाकर्षण से उठकर कोई भू पर नीहार लोक को कम्पित
कर रहा है। तभी एक स्वर खेचर की कुशलता पूछता है। खेचर यान-यन्त्रों के यथाविधि कार्य
रत रहने का सन्देश देता है। साथ ही वह इस अन्तरिक्ष में प्रथम बार विचरण करने का
सुखद अनुभव बताता है कि वह इस समय रजत-नील पुंज स्वप्न लोक में विचरण कर रहा
है। खेचर इन्द्रधनुष में लिपटी मुग्ध अनन्त यौवना धरती को देख अपने आत्मीय, सुहृदय एवं
देश निवासियों का स्मरण करता है जिन्हें शायद चिन्ता होगी कि अब अन्तरिक्ष में ही वह त्रि-
शंकु के समान रह जायेगा, जबकि शत्रु इस दुस्साहस पर हँसते होंगे। अब खेचर पृथ्वी की
परिक्रमा पूर्ण कर चुका है, उसी समय उसके इस स्फीत गर्व को चूर्ण कर नील ध्वनि चुनौती
देती है कि भले ही उसने मंगल, चन्द्र, शुक्र पर अपनी वैजयन्ती फहरा ली है किन्तु मानव
अंधी लौह नियति को क्या तोड़ सकेगा जो उसे निर्मम पाटों में पीस रही है। यह नीलध्वनि
महाकाल है। इस अन्तरिक्ष के अन्दर अगणित अन्तरिक्ष हैं। शाखामृग की तरह एक ग्रह से दूसरे
ग्रह को पार करना निष्फल प्रयास है। इससे तम, राग, द्वेष, घृणा, कलह, निन्दा, प्रतिस्पर्धा
भी उन ग्रहों में व्याप्त हो जायेगी। जाति-पाति वर्गों में विभक्त मानवों को एक करने की सा-
मर्थ्य मानव में नहीं है। मानव को इन दुर्गुणों पर विजय पानी चाहिए तभी उसकी विजय
सार्थक होगी। मेघ गर्जन तथा वज्र निपात का घोर रव सुनकर खेचर मन ही मन पराजित
होने लगता है, तभी दिव्य स्वर से उसे सहारा मिलता है और खेचर मातृ-प्रकृति का आश्वा-
सन पाकर अपना तन मन जीवन उसी समर्पित कर देता है। खेचर अपना देश देखकर उल्ला-
सित हो उठता है। कई स्वर उसका स्वागत करते हैं। नर-नारी के समवेत अभिनन्दन गीत
से इसका समापन होता है। इस प्रकार इसकी कथावस्तु बहुत ही संक्षिप्त है। किन्तु कुतूहलता
विद्यमान है।

उर्वशी —— जानकी वल्लभ शास्त्री

उर्वशी में चार दृश्य हैं। उर्वशी के करूण-क्रन्दन से इस गीतिनाट्य का
आरम्भ होता है। पुरूरवा रक्षा के लिए तत्पर होता है। रम्भा उर्वशी के हरण की बात कहती
है। पुरूरवा उर्वशी की रक्षा कर सकुशल सखियों को सौंप देता है। द्वितीय दृश्य में मेनका,
रम्भा, सुकेशी, चित्रलेखा सभी सखियाँ उर्वशी की उदासीनता की चर्चा करती हैं। तृतीय दृश्य
में विदूषक पुरूरवा से रम्भा के पत्र आगमन की बात कहता है। उसी समय महारानी औ

पत्र को अपने पास रख लेती है। चतुर्थ दृश्य के प्रारम्भ में उर्वशी का नृत्य होता है। भरत-मुनि उसके अभिनय सम्बन्धी दोषों को देखकर कुपित हो उसे स्वर्ग-भ्रष्ट होने का शाप देते है।

पौराणिक इतिवृत्त को लेखक ने बड़े ही कौशल से प्रस्तुत किया है। विदूषक द्वारा उर्वशी के पत्र की प्राप्ति सम्बन्धी घटना कथानक में कौतूहल के साथ पाठक की चित्तवृत्ति को रमाने में समर्थ है। घटना सुनियोजित एवं गतिशील है।

गंगावतरण — जानकी वल्लभ शास्त्री

इसमें कुल तीन दृश्य हैं, इसका कथानक पौराणिक है। प्रथम दृश्य में भगीरथ की घोर तपस्या, उसको तपोभ्रष्ट करने के लिए इन्द्र द्वारा रम्भा एवं उर्वशी का प्रेषण है। द्वितीय दृश्य में दोनों अप्सराओं का वैफल्य वर्णित है। तृतीय दृश्य में भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा प्रकट होकर वरदान देते हैं। भगीरथ अपने पूर्वजों के उद्धार की चिन्ता व्यक्त करते हैं। नारद भगीरथ की प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मा गंगा को कमण्डल से छोड़ने के लिए तत्पर होते हैं जिसे रोकने के लिए भगवान शंकर प्रकट होते हैं। गंगावतरण से इसका कथानक समाप्त होता है।

इस प्रकार लेखक आधिकारिक कथा के साथ नारद की घटना प्रासंगिक रूप में विन्यस्त कीहै। कथावस्तु संक्षिप्त और गतिशील है, क्रिया व्यापार योजना की दृष्टि से यह सफल गीतिनाट्य है।

पाषाणी — जानकी वल्लभ शास्त्री

पाषाणी में कुल तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में राजकुमारी मल्लिका से अहल्या अपने मन की कुण्ठा की बात कहती है। निःसन्तान राजा-रानी को गौतम उनकी पहली सन्तान देकर वंश वृद्धि का वरदान देते हैं। द्वितीय दृश्य में गौतम अहल्या के चित्त-चांचल्य के स सम्बन्ध में पूछते हैं। तृतीय दृश्य में अहल्या स्वप्न में इन्द्र का प्रणय निवेदन सुनती है। प्रातः वेला में गौतम नित्य-कर्म करने के लिए जाने को तैयार होते हैं, अहल्या उन्हें जाने से रोकती है। इन्द्र से सम्बन्धित अपने स्वप्न को बताती है। गौतम ईर्ष्यालु होकर उसे तिरस्कृत करते हुए मूर्छित हो जाते हैं। मूर्छित अवस्था में उनके मुख से पाषाणी निकल जाता है। अहल्या सिसकने लगती है।

अहल्या के बाल्यजीवन की घटना, इन्द्र से उसके सम्बन्ध की घटनाएँ मौलिक हैं गीतिनाट्यकार ने आधिकारिक एवं प्रासंगिक घटनाओं का अच्छा समन्वय किया है।

मंजरी — जानकी वल्लभ शास्त्री

इसमें पाँच दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में राजा-रानी एवं विदूषक वसन्तोत्सव मनाने में व्यस्त दिखाई देते हैं। तभी भैरवानन्द आते हैं। वह राजा के मन की बात प्रत्यक्ष रूप से दिखाता है। एक तरूणी कुंडे में उन्हें दिखायी देती है। महारानी इस राजकुमारी को बन्दिनी बनाती है। विदूषक की सहायता से राजा उसके कक्ष तक पहुँचते हैं। वे द्वार खट-खटाते हैं। मंजरी रानी के भ्रम में पड़कर दरवाजा नहीं खोलती है। राजा उससे अपना प्रणय निवेदन करते हैं। असफल होने पर वे मूर्छित हो जाते हैं। मंजरी यह बात सुनकर व्याकुल होतीहै। तृतीय दृश्य में रानी, मंजरी को राजा से ब्याह केलिए उत्प्रेरित करती है। मंजरी अपने को दूसरे की धरोहर कहती है। तभी राजा युद्ध की तैयारी करता है। मंजरी ब्याह के लिए तैयार हो जाती है, किन्तु उसका अन्तर्मन शरीर को नश्वर कहता है अतः अपने कलेजे में कटार घुसेड़ लेतीह। भैरव भी उसके पश्चाताप में मर जाता है। राजा उन्मत्त हो उठता है। इस प्रकार आधिकारिक और प्रासंगिक घटनाओं का संगुम्फन कर, घटना प्रवाह को तीव्र और गतिमान बनाया गया है।

अशोक वन-बन्दिनी— उदयशंकर भट्ट

इसमें लेखक ने सीता के चरित्र की महत्ता स्थापित की है। प्रथम दृश्य में सीता अशोकवाटिका में राक्षसियों से घिरी बैठी हैं। वह अपने प्रति-प्रेम में ध्यानस्थ हैं। त्रिजटा उसे रावण के समक्ष समर्पण करने के लिए प्रेरित करती है। सीता उसके प्रलोभनों को अस्वीकार कर राम-प्रेम में दृढ़ रहती हैं। इस दृढ़ता से उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है और वह राक्षसियों को समझाती है कि वे सीता को भयभीत न करें। इसी समय रावण वहाँ आ जाता है, वह अपनी महिमा का बखान करके सीता से प्रणयनिवेदन करता है, जिसे सीता ठुकरा देती हैं। परिणाम स्वरूप वह कुपित होकर तलवार से उसकी हत्या करना चाहताहै, इसी बीच रानी मन्दोदरी आकर उसे रोकती है। एक मास की अवधि देकर रावण चलाजाता है। दूसरे दृश्य में सीता, हनुमान के आगमन की सम्पूर्ण घटना सूक्ष्म रूप में कहती हैं। राक्षसियाँ सीता के धैर्य , कष्ट सहिष्णुता को देख आश्चर्य में पड़ जातीहैं। त्रिजटा, सीता के घावों में पत्तियों का लेप लगाती हैं। इसी समय मन्दोदरी आती है और वह अपनी विवशता का वर्णन करती है। सीता नारी को असाधारण शक्तिमती कहती हैं, जिसे सुनकर मन्दोदरी अभिभूत हो जाती है। वह सीता को राम की सायुज्य शक्ति मानती है। इस प्रकार इसमें त्रिजटा का हृदय परिवर्तन एवं मन्दोदरी की विवशता का वर्णन लेखक की अपनी मौलिकता है। क्रिया व्यापार गतिशील है, अनेक घटनाएँ सूक्ष्मरूप में दिखाई गयी है। इसमें संकलनविधान

परिस्थितियों के बीच विकसित होने वाले कथानक में आद्यन्त कौतूहल है।

गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण — उदयशंकर भट्ट

गीतिनाट्य का प्रारम्भ दुर्योधन की शंकालु प्रवृत्ति से होता है, जिसमें वह गुरुद्रोण पर पाण्डवों के प्रति कोमल भाव रखने के लिए आक्षेप लगाता है। इस पक्षपात रखने के आक्षेप को सुनकर उनका अन्तर्मन उन्हें विकृत करता है। द्रुपद को दण्ड देना, शिष्यों की अपेक्षा पुत्र अश्वत्थामा को अधिक सचेष्ट होकर शिक्षा देना, एकलव्य के प्रति उनका आचरण इत्यादि घटनाएँ संक्षिप्त एवं स्मृति के रूप में उभरती हैं। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि वे युद्ध में जीवित नहीं रहेंगे। इस प्रकार लेखक ने बड़े कौशल से प्रासंगिक कथाओं के रूप में अर्जुन-द्रुपद युद्ध, द्रुपद की पराजय, एकलव्य द्वारा उनसे शस्त्र सीखने का आग्रह अस्वीकार करने पर मूर्ति बनाकर शस्त्र संचालन में प्रवीण होना, श्वान मुख बाण-बिद्ध होने पर अर्जुन की ईर्ष्या, एकलव्य की गुरु दक्षिणा की घटनाओं को विन्यस्त किया है।

इसमें अनेक घटनाएँ सूच्य हैं। प्रासंगिक और आधिकारिक कथावस्तु को सुसंगठित कर उसमें नाट्योचित उतार-चढ़ाव की स्वाभाविकता लायी गयी है।

सूखा सरोवर — लक्ष्मी नारायण लाल

सम्पूर्ण नाटक तीन अंकों का है। प्रथम अंक में सरोवर के सूख जाने पर वहाँ के नागरिकों की मनस्थिति का चित्रण है। नाटक के प्रारम्भ में वृद्ध पुरुष सरोवर के सूखने के कारणों का उल्लेख करता है। इसके मूल में राजा का मिथ्याचरण है। वृद्ध ने राजा को सामान्य नागरिक कहा था, परिणाम स्वरूप उसने वृद्ध को कारागार में बन्द कर दिया था। राजपुरोहित आकर वृद्ध को पकड़ लेता है। तभी कारागार टूट जाने के कारण दूसरा व्यक्ति आ जाता है। पुरोहित, वृद्ध को छोड़कर चला जाता है। पीछे से नगरी के पाँच व्यक्ति आते हैं, सभी घुटने टेककर सरोवर के सामने क्षमा माँगते हैं। सरोवर के सूखने पर सभी कोलाहल होता है। तभी पीछे से एक आवाज उभरती है। धर्मच्युत होने के कारण राजा से तर्क वितर्क करने, उसे साधारण व्यक्ति मानने, ईश्वरत्व पर शंका करने, दान-पुण्य, लोकाचार के परित्याग करने के कारण धर्म ने सरोवर को सोख लिया है। सभी देवता से क्षमा प्रार्थना करते हैं। एक सन्यासी आकर इस रहस्य का उद्घाटन करता है। ठूँठ के पीछे छिपे पुरोहित को पकड़ लेते हैं। जनता प्यास प्यास की पुकार लगाती है। जनता कहती है कि हम सरोवर को उसका प्राप्य अर्घ्य, दीप, दान देकर पूजते चले आये हैं। उसी स्थल पर कुछ सैनिक

राजा भी आ जाता है। राजा किंकर्तव्यविमूढ़ है। सभी सरोवर के सामने नत मस्तक हो जाते हैं। संन्यासी राजा को उपदेश देता है कि वह प्रजा से सम्मुख होकर कन्या मिलावे। सहसा सरोवर के तीव्र आलोक से एक अत्यन्त तेजवान मानव शरीरधारी सत्ता निकलती है । उसके हाथ में खाली घट और दण्ड है। वह सभी को निर्भय होने का आश्वासन देता है। दैवत सरोवर के सूखने को सांस्कृतिक घटना कहता है। वह सरोवर का दैवत नहीं, मर्यादा है। वह अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण लोगों को कराता है कि इस जीवन में जिस क्षण कोई आत्महत्या करेगा। उस क्षण सरोवर का सारा जीवन समाप्त हो जायेगा। यही उसकी मर्यादा है। नगरनिवासी आत्महत्या से परिचित नहीं है। दैवत उन्हें सचेत करता है कि इस नगरी की अनिंद्य सुन्दरी राजकुमारी अपूर्वकांति जो इस सरोवर में डूब-कर मर गयी है। दूर से भागता हुआ विक्षिप्त व्यक्ति आकर सरोवर से अपनी प्रिया माँगता है। सभी जन उसे मारने दौड़ते हैं, क्योंकि वह इस नगरी का शत्रु है। संन्यासी उसकी रक्षा करता है। संन्यासी बताता है कि राजकुमारी का पिता इससे घृणा करता था। वह राजकुमारी का विवाह दूसरे व्यक्ति से करना चाहता था फिर भी जनता उसे विश्वासघाती समझ मारने को उद्यत होती है। पुरुष दूर चला जाता है। संन्यासी सरोवर के किनारे चिन्तित मुद्रा में बैठता है। दूसरा अंक राजप्रसाद से सम्बन्धित है। खाली सिंहासन पर पहरा देने वाले सैनिकों से राजा इस प्रकार के कृत्य का कारण पूछता है। तभी छोटा राजा आकर सिंहासन परअपना अधिकार जमाता है। वह विधिवत् अभिषेक समय की प्रतीक्षा करता है। बड़ा राजा प्रजा से आज्ञा लेने के लिए उपदेश देता है। छोटा राजा सिंहासन पर पहरा देने के लिए दो नए सैनिक बुलाता है। छोटा राजा षड्यन्त्र करके बड़े राजा की हत्या करा देना चाहता है। बड़ा राजा उसे सिंहासन पर पटक देता है और माथे का बोझ उस पर डाल कर उसे अभिषिक्त करता है। अचेतावस्था में पड़े छोटे राजा की दो सैनिक हत्या करने का प्रयास करते हैं। तभी राजमाता उन्हें रोक देती है। राजमाता कहती है कि उसके देखते ही देखते बड़ा राजा संन्यासी बन गया। सभी लोग चले जाते हैं। संज्ञा आने पर राजा सैनिकों को पुरस्कृत करता है। छोटा राजा इससे चिन्तित है कि उसके राजा होते हुए नगरवासियों की श्रद्धा संन्यासी पर है। राजा पुरोहित से परामर्श कर सैन्य शक्ति बढ़ाने हेतु मैनपुरी के राजा को सन्धि प्रस्ताव भेजता है। इसी बीच राजकुमारी आकर उस घटना का उल्लेख करती है, जब सरोवर के उस पार मढ़ी का राजा छिपकर राजबल से उसका डोला उठवा ले जा रहा था, तभी गुदड़ी वर प्रजा एवं एक नायक ने प्राणों की बाजी लगाकर उसकी रक्षा की थी। राजा और पुरोहित इसे मिथ्या कहते हैं तथा राजकुमारी को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। स्वामी

राजकुमारी को राजमाता आश्वासन देती है, रोती हुई राजकुमारी मैनपुरी राजा के संग अपने ब्याह की चर्चा करती है, जिसे वह स्वीकार नहीं। अचानक एक पुरुष आकर राजकुमारी को यह आश्वासन देता है कि वह यह विवाह नहीं होने देगा। राजमाता एवं राजकुमारी उसके तिलक लगाकर आरती उतारती हैं तभी पुरोहित उन्हें बन्दी बनाता है।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में संन्यासी सूखे सरोवर के किनारे बैठा दिखायी देता है। सरोवर से यह करूण स्वर सुनायी पड़ता है जिसमें प्रियतम से मिलने की कामना व्यक्त की गयी है। राजा और पुरोहित भी सुनते हैं। राजाज्ञा पाकर पुरोहित का गला दबोच लेता है। एक पागल आकर पुरोहित के मरने की खबर देता है। राजा उस पर कृपाण चलाता है। तभी पाँच नगर-निवासी आ जाते हैं। सभी उस करूण-क्रन्दन से द्रवित हैं। सन्यासी उसे राजकुमारी की आत्मा कहता है। राजा उसे पाखण्डी कहता है। तभी करूण स्वर में गाती हुई राजकुमारी की आत्मा सरोवर से निकलती है। भयभीत जनता को आत्मा शान्त कराती है। राजा आत्मा को बन्दी बनाने की आज्ञा देता है। एक सैनिक पुरूष को बन्दी बनाकर राजा के सामने लाता है। संन्यासी के अतिरिक्त सभी चले जाते हैं। आत्मा संन्यासी से कहती है कि वह उसके प्रियतम की प्राण रक्षा करें। आत्मा और पुरूष का मिलन होता है। आगत कोलाहली आत्मा अदृश्य हो जाती है। पाँच व्यक्तियों के साथ राजा आकर संन्यासी पर अभियोग लगाता है कि वह सरोवर एवं भटकती आत्मा से मिला हुआ है किन्तु जनाक्रोश के आगे राजा भग जाता है। देवता आकर सरोवर के पानी को इस शर्त में वापस करने की बात कहता है कि उसे एक प्रतिनिधि की बलि चाहिए जो अहर्निश सरोवर की रक्षा करे। कुछ लोग राजा को प्रतिनिधि कहते हैं तभी पागल प्रविष्ट होकर अपने को प्रस्तुत करता है, संन्यासी स्वयं प्रतिनिधि बनने को तत्पर है किन्तु पागल के आत्मोत्सर्ग से सरोवर में पानी भर आता है।

इस प्रकार इसका कथानक उत्कृष्ट है। आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक घटनाओं को इस ढंग से उपस्थित किया गया है कि कथा प्रवाह में कुतूहलता और प्रवाहशीलता और गतिशीलता के दर्शन होते हैं। कार्य व्यापार के घात-प्रतिघात से कथानक को नाटकीय बनाया गया है। जिसमें आवयविक अन्विति पर विशेष बल दिया गया है। घटना चयन में सघनता आरोह, अवरोह की स्वाभाविकता एवं प्रभविष्णुता मिलती है।

उर्वशी — दिनकर

राजा पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुरी के समीप पुष्पोद्यान में सूत्रधार और नटी ज्योत्स्नास्नात प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले रहे हैं। दोनों के हृदयों में पल्लवित

प्रेम का उद्दीपन हो रहा है क्योंकि पृथ्वी में वसन्त-श्री पुष्पों की छटा बिखेर रही है तथा आकाश में नीलांशुक पर जटित रजत बूटे - सा प्रतीत हो रहा है। सर्वत्र शीतल मंद सुगन्धित वायु प्रवाहित हो रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे आकाश आलिंगन हेतु पृथ्वी पर झुक रहा हो। ऐसे समय आकाश से नीचे उतरती हुई अप्सराओं के नूपुरों की झंकार सुनायी पड़ती है। सूत्रधार और नटी वृक्ष की छाया में छिपकर अप्सराओं की क्रीड़ा देखते हैं। सहजन्या रम्भा और मेनका परस्पर गीत गाती हुई दिखायी पड़ती है। वे फूलों के सौन्दर्य पर मुग्ध है। उन्हीं को अपना निवास बनाना चाहती है तथा हरियाली पर पड़ी ओस बिन्दुओं में स्नान करना चाहती हैं। मेनका, रम्भा से धरती और आकाश का अन्तर पूछती है, जिसके उत्तर में रम्भा स्वर्ग की अमरता एवं मृत्युलोक की नश्वरता का तात्विक विवेचन करती है, वे कभी भी इन्द्रियों का उपभोग नहीं कर पाते। जबकि पृथ्वी-निवासी प्रियतम के वक्षस्थल का सुख-स्पर्श असीम आनन्द देता है। इस पर सहजन्या अप्सरा कटाक्ष करतीहुई कहती है कि सखी उर्वशी के समान वह भी किन्हीं मर्त्य नयनों की रस-प्रतिमा बन गयी है। रम्भा उर्वशी के न आने का कारण जानना चाहतीहै, सहजन्या उर्वशी एवं पुरूरवा भेंट की कथा सुनाती है। एक दिन वे कुबेर भवन से आ रही थीं कि एक दैत्य ने बलात् उर्वशी का अपहरण कर लिया। उनका करूण क्रन्दन सुनकर अद्वितीय सुन्दर एवं बलशाली पुरूष ने उसे मुक्त कराया जिसके कारण उर्वशी उस पर अनुरक्त हो गयी और स्वर्ग लोक को छोड़कर उस नरश्रेष्ठ के आलिंगन में आबद्ध होना चाहती है। उनके प्रेम में उर्वशी इतनी तन्मय है कि उसे भूख और नींद नहीं लगती है सदैव अन्यमनस्क रहती है जिसके कारण उसका सौन्दर्य खराब हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वहहमें छोड़कर शीघ्र चली जायेगी। यह सुनकर रम्भा आश्चर्य व्यक्त करती है कि वे तो अप्सरा हैं, उनका प्रेम व्यापार क्रीड़ा मात्र है, अतः वे एक ही पुरूष के प्रेम बन्धन में कैसे बँध सकती है। मृत्युलोक निवासी प्रेमी का प्रेम कुछ काल तक के लिए ही होता है। वहाँ के निवासियों के सुख स्वप्न हो जाते हैं तथा रोग,शोक जरा से व्यक्ति पीड़ित रहता है। प्रेम के इस भयंकर परिणाम को सुनकर सहजन्या भयभीत हो जाती है। उसे लगता है कि उर्वशी नरक में जा रही है क्योंकि माता बनने पर उसका यौवन, सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा। मेनका जीवन का साफल्य मातृत्व पाने में समझती है। इसी बीच आकाश-मार्ग से चित्रलेखा आती है जो उर्वशी की प्रेम-व्याकुलता का संकेत करती है। विवाहित पत्नी के होते हुए पुरूरवा उर्वशी का होकर रहेगा ऐसा चित्रलेखा का विश्वास है, जबकि मेनका को सन्देह है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में पुरूरवा की महारानी औशीनरी अपनी सखियों के साथ उर्वशी- प्रेम प्रसंग की चर्चा करती है। निपुणिका कहती है कि पति-पूजन करके जब आप लौट रहीं थीं उसी समय उर्वशी प्रकट हुई जिसे देखकर महाराज अधीर हो गए

और सत्वर उसे आलिंगन में बाँध लिया। अनेक प्रियलापों से उसका मनुहार करने लगे। महारानी यह सुनकर मरना श्रेयस्कर समझती है। रानी सोचती है कि उसने दुराचारिणी गणिका का क्या अहित किया था जिसने अपने रूप और यौवन के पाश में उसके पति को आबद्ध कर रखा है। निपुणिका महाराज की आसक्ति का वर्णन करती है कि उर्वशी के संकेत पर महाराज झुकते हैं। निपुणिका उसे आश्वस्त करती है कि महाराज उस स्वर्ग वेश्या को अधिक समयतक अपने पास नहीं रख सकेंगे। मदनिका उसका समर्थन करती है। महारानी प्रेम के क्षेत्र में एक अप्सरा से पराजित हो जाती है। यद्यपि महारानी ने राजा के चरणों में तन, मन, धन यौवन वार चुकी हैं उनके मधुमत्त की एक बूँद और की लालसा में पगली रहती थी। मदनिका इसी रस दृष्टि को जीवन मानती है। इसी समय कंचुकी प्रविष्ट होकर महाराज का सन्देश देता है कि वे सकुशल गन्धमादन पर्वत पहुँच गए हैं। महाराज प्रकृति के सुरम्य वातावरण में अतिशय प्रसन्न हैं किन्तु पुत्रहीनता की वेदना उन्हें कष्ट दे रही है। अतः धर्म-साधना में त्रुटि न हो, वे भी शिवाराधन में संलग्न रहेंगी। औशीनरी अप्सरा के साथ रमण करने की अनोखी साधना पर व्यंग्य करती है। तृतीय अंक में पुरूरवा एवं उर्वशी के प्रणय प्रसंग वर्णित हैं। गन्धमादन पर्वत पर आनन्द क्रीड़ाएँ करते हुए वे अनुभव करते हैं कि परस्पर अभिसार करते हुए न जाने कितना समय व्यतीत हो गया। पुरूरवा उर्वशी के प्रथम दर्शन पर ही मुग्ध हो गया था। उर्वशी भी ऐसा अनुभव करती थी। वह पुरूरवा को देखकर जब सुरपुर लौटी, तब से पुष्प शैया पर पड़ी तपती रही। ललना की मर्यादा गवाँ देने पर ही पुरूरवा उसे मिल सका। राजा इसके लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता है। दुष्ट दनुज से उर्वशी को मुक्त कराकर जब वह घर लौटा तो निष्प्राण-सा था। उर्वशी के विरह से सन्तप्त होकर उसने सोचा कि सुरपति से उर्वशी माँग ले परन्तु याचना को क्षत्रिय धर्म विरुद्ध समझकर वह रुक गया। अन्त में यही सोच कर धैर्य धारण किया कि यदि उसका प्रेम असत्य नहीं होगा, तो वह उर्वशी को दमन कर भूतल आने हेतु विवश करेगा। उर्वशी कहती है कि उसने हरण क्यों नहीं कर लिया यदि वह याचना के अपयश से भयभीत था क्योंकि वही मानमयी धन्य है जो प्रणयी के बाहुबलय के विक्रम-तरंग में चढ़कर आती है। राजा हरण एवं विघाटन दोनों को भयामूलक विकर्म कहता है। यह सुनकर उर्वशी स्तब्ध रह जाती है क्योंकि वह समझती है कि देवताओं के भय से निकलकर वह किसी सुर के ही बाहुवलय में फँस गयी है। वह तो अन्धकार की प्रतिमा बनकर राजा के प्रगाढ़ प्रेम की तिमिराच्छन्न शय्या पर ही सोने आयी थी किन्तु राजा की अनासक्ति देख उसे उपेक्षिता बनने का भय लगता है। राजा अपने मन में भावों की व्याख्या करता है कि उसे हृदयस्थ अज्ञात आग शान्त नहीं रहने देती और व्याकुल कर

डोलने से जागती है। रूप का रसमय उसके रुधिर को उत्तेजित करता है किन्तु आगे बढ़ने पर अतल से ध्वनि उठती है कि दृष्टि का पेय रक्त का भोजन नहीं है, रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है जिससे उमंग टूटने पर बाहुओं का पाश शिथिल हो जाता है। रक्त की उत्तप्त लहरों के पार सत्य को राजा पाना चाहता है। राजा के मन में बुलबुलों सी मधुर स्मृतियाँ फूटने लगती हैं। वह उल्लास का अनुभव करता है। रोमांच होता है और पिपासित राजा प्रिया की गोद में विवश होकर गिर पड़ता है। वह उर्वशी के चुम्बन आलिंगन में रस मग्न हो उठता है। उसका अपराजेय विश्रुत वीरत्व भाव न जाने कहाँ विलुप्त हो जाता है। उर्वशी उसे समझाती है कि जब तक भीतर वैश्वानर धधकता है, तभी तक पुरुष की शोभा है। जिसके समक्ष सिंह से लेकर सुरपति नतमस्तक होते हैं, अप्सरा ऐसे पुरुषों का अधर चु चुम्बन हेतु लालायित रहती है। उर्वशी राजा के भय को नष्ट कर समझातीहै कि मनुष्य में ही एक साथ जल-अनल, साधना-कामना, योग-भोग सभी कुछ है। राजा कहता है कि उर्वशी की गति-भंगिमा, मधुर स्वर और अपार रूप उसे सम्मोहित करते रहते हैं। प्रवाल से अधरों का चुम्बन प्राणों के पाटल खिला देते हैं किन्तु अविच्छिन्न वेदना न्यून का नहीं होती है। उर्वशी के मतानुसार रक्त बुद्धि से अधिक बली और ज्ञानी है, अतः बुद्धि का आश्रय छोड़ रक्त का आनन्द लेना चाहिए। राजा इसे ठीक समझता है और उसे ऊपर उठाना चाहता है।वह प्रेम को दाह मात्र न समझ कर अमृत शिखा कहता है क्योंकि यह प्रेमानल रुधिर में केवल उद्वेलन ही नहीं जगाता वरन् मन में किसी कान्त कवि को जन्म देता है। उर्वशी के रूप सौन्दर्य में उस अलक्ष्य का सौन्दर्य झलक रहा है, जो विश्व की मूल सत्ता है। उस द्युतिमान को तन के अतिक्रमण से प्राप्त किया जा सकता है। नर-नारी का प्रेम इस ऊर्ध्वगमन में बाधक प्रतीत होता है। उर्वशी कहती है कि वह बाधक नहीं होगी परन्तु उसकी इतनी अभिलाषा है कि किंचित् उरपीड़क आलिंगन मे राजा उसे कसे रहे और प्रगाढ़ चुम्बन से उसके अधरो को जलाता रहे। इसी समय उद्दीपक मधुर चाँदनी फैलने लगी। उर्वशी एवं राजा की कामना है कि ऐसे मादक वातावरण में काल की गति अवरुद्ध हो जाय। वे रसमग्न होकर अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करते हैं। उर्वशी को दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति और परमेश्वर में भिन्नता नहीं है। प्रकृति में अनुरक्त मन परमेश्वर को पाता है। प्रकृति को माया कहकर उसका अस्तित्व समाप्त करना है। द्वैत मन की कृति है। शुभाशुभ भावों से तटस्थ रहने पर भ्रम समाप्त हो जाता है। सहज कामना से बहते जाना ही मुक्ति है। नर-नारी का पारस्परिक ज्ञान ईश्वरीय है। अतः काम ही धर्म है। धर्म साधना प्रकृति से भिन्न नहीं है। पुरुरवा चिन्तन की हिलोर से अनेक गुह्य नभों में घूम आया है किन्तु उसे भी जीवन का आदि अन्त

नहीं सूझता है। उर्वशी के अपरूप रूप मुग्ध राजा उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछता है। उर्वशी अपने को दैवी कहती है। वह और नारायण ऋषि की मानसिक तनया या चाहे जो समझ ले किन्तु वह युग-युग तक सर्वभक्षी कालों में ऐसी थी। प्रकृति के समान वह भी निस्सीम है। इस प्रकार मधुर आलापों में रजनी व्यतीत हो गयी। गन्धमादन पर्वत पर एक वर्ष अभिसार करते समाप्त हो गया।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ की कथावस्तु महर्षि च्यवन के आश्रम से सम्बन्धित है। च्यवन पत्नी सुकन्या उर्वशी के पुत्र को लिए खड़ी है, इसी समय चित्रलेखा आती है, जिससे पुत्र जाग पड़ता है। सुकन्या पुत्र के लिए सोचती है कि वह पिता-सदृश रसलोभी अथवा ऐरावत समान गन्ध प्रेमी होगा। सुकन्या ऐसे समय में अम्बर की दशा जानना चाहती है, चित्रलेखा उसके पूर्व जीवन की घटना का स्मरण कराती है। सुकन्या को अपने पति पर निस्सीम गर्व है, अस्थिर रसास्वाद को दुःखदायी कहती है क्योंकि यौवन तक ही रसलोलुप आते हैं। चित्रलेखा अपने यौवन को शाश्वत रखना चाहती है। अप्सराओं का यौवन विगलित नहीं होता, वरन् भुवनवासी ही जराक्रान्त होते हैं। चित्रलेखा सुकन्या से महर्षि के प्रथम दर्शन की घटना जानना चाहती है। सुकन्या उत्तर देती है कि महर्षि की समाधि भग्न होने पर तनिक भयाक्रान्त हुई किन्तु वह निष्पाप, निश्चल खड़ी रही। उस समय ऋषि के नयनों में आसव लाली छा गयी। उन्होंने शिष्ट शब्दों में उसके रूप की प्रशंसा की और सहचरी बनाने का प्रस्ताव किया। ऋषि ने उसे अपनी तपस्या का फल माना। ऐसे में सुकन्या का नारीत्व विकसित हो उठा। वह ऋषि की प्रशस्तिपूर्ण गिरा पर सर्वस्व वार बैठी। इसी प्रसंग के बीच उर्वशी वहाँ आती है। पुत्र को लेकर उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है तथा अपना अभाग्य बतलाती है कि शाप वश अपने पुत्र का मुख स्वामी को नहीं दिखा सकती। सुकन्या, उर्वशी की विपत्ति पर सहानुभूति प्रगट करती है। उर्वशी दुखी होकर प्रियतम के यहाँ लौटने की बात कहती है। पुत्र का लालन पालन सुकन्या को ही करना होगा। बड़ा होने पर उसे राजा के पास भेजना होगा। प्रियतम की रस पूर्ण क्रीड़ाएँ स्मरण आती हैं। चित्रलेखा इस भयानक परिस्थिति का सामुख्य शीघ्र करने को [illegible] कहती है किन्तु उर्वशी इससे सहमत नहीं है। सुकन्या भी इस निरीह पयमुख को राजभवन नहीं भेजना चाहती क्योंकि विमातृत्व पर नारी को विश्वास नहीं है। वह उर्वशी की गोद से आयु को लेकर उसके बड़े होने, बाल-क्रीड़ाओं की कामना करती है। दुखी उर्वशी और चित्रलेखा प्रस्थान करती हैं।

पंचम अंक आयु एवं पुरूरवा की भेंट से सम्बन्धित है। राजा पुरूरवा उर्वशी महामात्य, राजपण्डित, राजज्योतिषी एवं अन्य सभासद, परिचारक एवं परिचारिकाएँ उप-

स्थित हैं। राजा चिन्ताग्रस्त है। महामात्य उनके मौन और विषाद के विषय में पूछते हैं। राजा अपने विचित्र स्वप्न का वर्णन करता है। प्रतिष्ठान के लोग अर्घ्य-घट-पादप लाकर लगा रहे हैं। मैं भी सिंचनार्थ नीर घट लिए खड़ा हूँ किन्तु उसे सभी अपरिचित समझते हैं। उसे सभी एकाकी छोड़कर चले जाते हैं, वह भटकता हुआ महर्षि च्यवन के आश्रम में पहुँचता है। राजा स्वप्न का वर्णन करते हुए बताता है कि वहाँ मैंने दिव्य प्रशान्त बालक देखा। उसे भेंटने के लिए जैसे मैं आगे बढ़ा --- तत्क्षण कुटीर सहित वह विलुप्त हो गया। चतुर्दिक उर्वशी का मुख दिखलायी दे रहा था किन्तु आलिंगन करते ही वह भी गगन में उड़ गयी। प्रातःकाल ही उसकी निद्रा भग्न हुई। उसे सुनकर उर्वशी घबरा जाती है। सभी आश्चर्यचकित होते हैं। ज्योतिषी इस स्वप्न को प्रव्रज्या-योग बतलाते हैं। राजा आज सन्ध्या तक अपने वीर तनय को राज-पाट सौंपकर संन्यासी हो जायेंगे। उर्वशी भरत-शाप को स्मरण कर व्याकुल होती है। प्रतिहारी एक ब्रह्मचारी के साथ सुकन्या के आने का समाचार देता है। सुकन्या उर्वशी से कहती है। कि महर्षि की आज्ञा से उस न्यास को लौटाने आयी है जिसे सोलह वर्ष पूर्व सौंपा गया था। वह आयु से माता-पिता को प्रणाम करने को कहती है। पुरूरवा उसे छाती से लगाकर अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए वंश के दीप की उत्पत्ति के विषय में उससे छिपा करवाने के सम्बन्ध में उर्वशी से पूछता है। उर्वशी सोलह वर्ष पूर्व राजा द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ पर गन्धमादन पर्वत पर यौवन बिताने के समय इस पुत्र की उत्पत्ति बताती है। राजा सभासदों के सामने स्वप्न में देखे इसी बालक की चर्चा करता है। सभी के सामने राजा पुत्र-प्रेम प्रकट करता है। इसी बीच उर्वशी अन्तर्धान हो जाती है। राजा प्रमदवन में ढूँढ़ने की आज्ञा देता है। सुकन्या उसे समझाती है कि उर्वशी देवलोक चली गयी है। वह भरत शाप की कथा बताती है कि उस विलोल हृदया का अनुराग जब आपसे हुआ था तो किसी कारण वश भरत उससे कुपित हो गये, उसी के फलस्वरूप उसे पति या पुत्र में एक को ही पाने का शाप मिला था और पिता-पुत्र के पारस्परिक साक्षात्कार पर वह मर्त्यलोक में नहीं रह सकती। यह सुनकर कुपित राजा अपना धनुष माँगता है। वह स्वर्ग को भरत शाप या पुरूरवा के बाणों की प्रचण्डता का आभास करायेगा। उर्वशी देवों की अप्सरा नहीं उसकी प्राणप्रिया है। महामात्य उन्हें समझाते हैं तभी नेपथ्य से आवाज आती है कि देवों से लड़ने में कल्याण नहीं है। उर्वशी की अपेक्षा निःश्रेयस शान्ति देगा। राजा भी यही समझता है कि वह वृथा ही विक्रम-विलास, माया-मोह में लिप्त था। वह अन्तर्मन की उपेक्षा नहीं करना चाहता। वह अपना मुकुट आयु के मस्तक पर रख देता है और सभी को आशीर्वाद देकर कानन चला जाता है। इसी समय महारानी औशीनरी प्रवेश करती है। वह आयु को शासन सम्भालने को कहती है।

उसे इसका पश्चाताप है कि वह महाराज की पद-धूलि नहीं ले सकी। यह चोट बड़ी तिग्म एवं विषम है। सुकन्या, औशीनरी की व्यथा के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। आयु, माँ को धैर्य बँधाता है। रानी उसे छाती से लगा लेती है। सुकन्या अपने आश्रम लौट जाती है।

इस प्रकार दिनकर ने आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक घटनाओं का इस क्रम से वर्णन किया है कि उसमें विशृंखलता नहीं दृष्टिगत होती है। अनेक नाटकीय घटनाओं का चयन किया गया है। तृतीय अंक की घटनाएँ कथाप्रवाह में व्याघात उत्पन्न करती हैं। दिनकर जी ने पंच कार्यावस्थाएँ, पंच सन्धियों का समावेश कि करने का प्रयास किया है जिसके कारण कथावस्तु रोचक और सशक्त बन पड़ी है।

संशय की एक रात — नरेश मेहता

नरेश मेहता ने रामकथा कथा के एक प्रख्यात प्रसंग को नयी दृष्टि से अनुचिन्तित किया है। प्रसंग है राम के सहयोगी वानरों द्वारा रामेश्वर तट पर सेतु बाँधना और पुल पार कर लंका पर आक्रमण करना। इस विख्यात प्रसंग के नवलेखन में कवि ने आधुनिक मनोभूमि का उपयोग किया है। सीता का हरण राम व्यक्तिगत समस्या मानते हैं और उसके लिए युद्ध का आह्वान करना वे उचित नहीं समझते। पूरी प्रसंग योजना राम के इसी संशय के केन्द्र-बिन्दु पर घूमती है।कृति चार सर्गों में विभक्त है। राम रामेश्वर के सिन्धु-तट पर चिन्ता-मग्न टहल रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि मैंने कितनी सन्ध्याएँ इस तट पर व्यर्थ ही काट दी हैं। कितनी बार चिन्तित मन टहलते हुए इस बालू को अपने पैरों तले रौंदा है। थक कर जब कभी बैठ गया हूँ तो मेरे चारों ओर बने मेरे पद चिह्न ऐसे लगते हैं कि मैं किसी दुर्ग में घिरा हुआ बैठा हूँ। उद्विग्नावस्था में उँगलियाँ बालू पर सीता की अनुकृति बनाती रही हैं किन्तु उन अनुकृति आकृतियों को समुद्र का ज्वार भरा लहरों का जल न जाने कितनी बार बहा ले गया है। सीता का उद्धार कैसे किया जाये — इस प्रश्न का निश्चय नहीं कर पाया। कभी-कभी ऐसे समय मैथिलनन्दिनी की स्मृति मन को उद्वेलित करती है। अनेक बार अनेक दूत रावण के पास भेजे गये परन्तु कोई फल नहीं निकला। राम के मन पश्चाताप की अग्नि धधक रही है। यह जानते हुए कि स्वर्ण-मृग एक प्रवंचना है, वे उसके पीछे गए।

लक्ष्मण रेखा उस धूर्त रावण के पैरों में सर्प बन कर क्यों नहीं लिपट गयी। राम चिन्तित है कि उनके स्वजन सम्बन्धी जनपद क्या सोचते होंगे। इसी समय लक्ष्मण प्रवेश कर राम को सूचित करते हैं कि सम्पा नरेश ने सन्धि कर ली है। रात में सुग्रीव शिविर में आयेंगे। राम निराशा तथा युद्ध से विरक्ति की बातें करते हैं। वे समझते हैं कि आज हम सन्धियों से और युद्धों से अपनी नियति पाना चाहते हैं। हम स्वयं अन्धेरों में बाधा

करते हुए विलुप्त हो जाएँ क्योंकि मनुष्य की अन्तिम नियति खोना ही है। इस पर लक्ष्मण उत्साह पूर्ण स्वरों में राम की अवसाद-ग्रस्त मनोदशा को तोड़ने की चेष्टा करते हैं। चलना हमारा धर्म है, चलते समय हो सकता है कि हमारी पसलियों में बाण फँस जाय, हो सकता है राक्षस-गण हमारा भक्षण कर लें। इसके पश्चात लक्ष्मण, राम के संशय के सन्दर्भ में प्रश्न करते हुए कहते हैं कि युद्ध का आवाहन आपको व्यर्थ तो नहीं प्रतीत होता अथवा युद्ध में क्या होगा, इसकी चिन्ता तो आपको दुखी नहीं बनाती? यदि है तो मैं अपने चाप की शपथ लेता हूँ कि आप मुझे आदेश दें और फिर मेरे पुरुषार्थ को देखें। दूसरी बार सिन्धु का मन्थन होगा। विधाता के लेख को भी मैं अपने बाणों से चुनौती देता हूँ। आप अपने बन्धुओं तथा मित्रों के पौरुष पर विश्वास कीजिए। राम लक्ष्मण को उत्तर देते हुए कहते हैं कि बन्धु मैंने कभी किसी का अविश्वास नहीं किया। मैं मात्र युद्ध बचाना चाहता हूँ मुझे युद्ध प्रिय भी नहीं है। लक्ष्मण, क्या तुम मेरी इस विवशता की कल्पना कर सकते हो? मेरे लिए अन्य लोग प्रायश्चित करें, दुःख भोगें। जंगलों में भटकते फिरें, यह कहाँ तक न्यायोचित है?पिता की मृत्यु माताओं का वैधव्य, रावण के दरबार में अंगद का अपमान, ऊर्मिला का विरह आखिर किसके लिए? मेरी व्यक्तिगत समस्याएँ, क्यों ऐतिहासिक कारण बनें? यदि अपने स्वार्थ के लिए युद्ध-रत होता हूँ, तो निश्चित ही हम आस्था को प्रवंचित करते हैं। युद्ध के उपरान्त शान्ति होगी, उपलब्धियाँ मिलेंगी, इस मिथ्या विश्वास से राम छुटकारा पाना चाहते हैं।

द्वितीय सर्ग में राम को एकाकी छोड़कर लक्ष्मण चले जाते हैं। राम टहलते टहलते सेतु बन्ध की एक बुर्ज पर जाकर सघनान्धकार से आच्छादित सागर को देखते हुए सोचते हैं कि यदि मनुष्य के प्रश्नों का उत्तर युद्ध है, तो राम को इस धूमिल जय की आवश्यकता नहीं। मानव के रक्त पर पैर रखकर आती सीता उन्हें स्वीकार नहीं। इसी बीच युद्ध वेश में सुसज्जित नील प्रविष्ट होकर सूचित करते हैं कि पुल की मीनार के पीछे एक छाया अस्पष्ट होकर दिखाई देती है। उसके अंक में एक पक्षी फड़फड़ाता दिखाई देता है।छाया राम से अकेले में बात करना चाहती है, अतः नील, जाम्बवंत चले जाते हैं। राम को पता लगता है कि यह छाया उनके पिता की आत्मा है और पक्षी उनके मित्र जटायु की आत्मा है।दशरथ की आत्मा राम को समझाती है कि तुम बिना युद्ध के सत्य और अधिकार पाना चाहते हो। यह असम्भव है, हर एक बार तुम्हारे दूत रावण के द्वार से हार कर लौट आये हैं। यह अनासक्ति क्या कर्म के प्रति कापुरुषता नहीं है? कीर्ति- यश, नारी, धरा, यह सब किसी की कृपा से नहीं, वरन् पौरुष से प्राप्त की जाती हैं। हे राम!मेरा मोह ही मेरी मृत्यु का कारण था। मैंने वचन देकर मृत्यु को क्रय किया था इसलिए तुम्हारा परिताप समयोचित नहीं है।

तुम्हारा मोह कैसा भी क्यों न हो असत्य है, असत्य से युद्ध करना है। राम अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि सत्य और असत्य का निर्णय कैसे हो? छाया उत्तर में कहती है कि संशय स्वयं में सत्य नहीं और तुम्हें परिताप है संशय नहीं। राम प्रतिवाद करते हैं कि यह संशय युद्ध के परिणाम का नहीं, मानव नियति का है यदि सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का प्रतिपादन युद्ध से होता है तो वे सत्य नहीं। यदि मैं मात्र क्षण हूँ तो क्षण कासंशय और यदि मैं घटना मात्र हूँ तो यह घटना का संशय है। राम के इन तर्कों का उत्तर जटायु देते हुए कहते हैं कि दाशरथि, तुमने मुझे पिता तुल्य पद देकर मेरी अन्त्येष्टि की थी। उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ ? अपनी लघुता के कारण हमें अनुभव होता है कि हम जन्म लेते हैं और मरते हैं। तुम जितनी गुणात्मकता जानने का प्रयत्न करोगे उतना ही संशयों और शंकाओं के जाल में आबद्ध होते जाओगे। जो उत्तरतुम पाना चाहते हो वह कभी न था, न है, और न होगा। अन्त में दश-रथ की आत्मा राम को कर्म का वरण करने की आज्ञा देकर विलुप्त हो जाती है। तृतीय सर्ग का प्रारम्भ मध्य रात्रि की मन्त्रणा से होता है। युद्ध परिषद् की बैठक हो रही है। राम, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव और जामवान् आदि सभी बैठे हैं। हनुमान राम के निर्णय पर असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सीता हरण की समस्या व्यक्तिगत होती किन्तु स्थिति विपरीत है। आज रामेश्वर के तट पर कोटि-कोटि वानर किस की तेज से अभिभूत होकर अपने जाति-कुलों के वैर भाव को विस्मृत कर, प्रान्तीयता का परित्याग कर सागर के इस विशाल वक्ष पर महासेतु का निर्माण कर रहे हैं। यह महासेतु विप्लवी चेतना का प्रतीक है। राम ही ने अयोध्या से रामेश्वर तक समस्त जनसमूह को नई चेतना से समन्वित किया है। सीता किसी की कन्या-पत्नी या पुत्रवधू हो सकती है किन्तु हमारे लिए वह अपहृत स्वतन्त्रता की प्रतीक है। हनुमान अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हम युद्ध लोलुप के पिपासु नहीं थे। साम्राज्यवादी शोषक-भावना के द्वारा रावण ने उन्हें अर्धमानव बना दिया है। लंका में उनका क्रय-विक्रय गुलाम बनाकर होता है। परतंत्र काल में दक्षिण के वानर जनों ने राक्षसों के लोम-हर्षक अत्याचार को सहन किया। अतः वे इससे सदैव के लिए मुक्ति चाहते हैं। राम युद्ध की अनिवार्यता को समझते हैं किन्तु उन्हें विश्वास नहीं है कि युद्ध के बाद शान्ति हो जायेगी।

इसलिए वे इस समस्या को दूसरे ढंग से देख रहे हैं। इस युद्ध से सबका लक्ष्य मिल जाए किन्तु आगामी युद्धों का कारण न बने। सुग्रीव भी इस युद्ध को न्यायसंगत सिद्ध करते हैं। ऐसे समय विभीषण मौन बैठे हैं। राम उनसे इसका कारण पूछते हैं। विभीषण युद्ध को एक दर्शन बताता है। जब साम, दाम, दण्ड, भेद व्यर्थ हो जाते हैं तब इसका आश्रय लिया जाता है। अत्याचारी से अधिकार प्राप्त करने का अन्तिम साधन है। हम सभी खण्डित व्यक्तित्व लिए

है। विभीषण के मन में अन्तर्द्वन्द्व है कि इस युद्ध में किसका साथ दे। वह कह रहा है कि जब कल युद्ध होगा, यह निश्चित है किसकी की पराजय होगी। विजेता लंका को नष्ट भ्रष्ट करेंगे तो वे कैसे इन अत्याचारों को देख सकेंगे। यद्यपि रावण ने उसकी हर उचित मंत्रणा को ठुकरा दिया है फिर भी उसे यह बात व्यथित करतीहै कि राष्ट्र के संकट की वेला में राज्य पाने के लिए आक्रान्ता का साथ देना कहाँ तक न्यायसंगत है। उसे क्या कहकर लांछित किया जायेगा। हर मनीषावान् द्वन्द्वों, विचारों, संघर्षों की यात्रा करता है। अतः हमें इस समय कर्म पर दृढ़ रहना चाहिए। चतुर्थ सर्ग में संदिग्ध मन का संकल्प और सवेरा वर्णित है। प्रत्यूष वेला के समय युद्ध वेष में राम गवाक्ष की चौखट पर कुहनी टिकाये चिन्तित दिखाई देते हैं। बाहर सुदूर तक तुमुल कोलाहल हवा में लहराते हुए विभिन्न सैन्य दलों के झण्डे घण्टा रव स्पष्ट हैं। लक्ष्मण पार्थिव पूजन में व्यस्त हैं। राम मन ही मन विचार करते हैं कि उन्होंने ज्वार के समान आवेश वाले अपने सहयोगियों के सामने आत्म समर्पण कर दिया है। आधे मन से युद्ध के प्रस्ताव को स्वीकार किया है। लड़ना ही उनका चिन्तन होगा। वे जनमत का निर्णय हैं। इतिहास अपने अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति में व्यक्ति को व्यक्ति नहीं मानता है। मुझमें कल का युद्ध आज ही सम्भावित हो चुका है। मध्य रात्रि के इस निर्णय से जाने कितने सूर्य आज ही कल के* लिए मर चुके हैं। अभी पूजनोपरान्त सेनाएँ, रथ, घोड़े सब युद्ध यात्रा पर चल देंगे किन्तु कल के बाद भविष्य में इस तथ्य का कोई साक्ष्य नहीं रहेगा कि राम युद्ध करना नहीं चाहते थे। विवशता में ही उन्हें सामूहिक निर्णय स्वीकार करना पड़ा था। उन्हें गहरी चिन्ता है कि भविष्य के लोग कैसे यह जान सकेंगे कि शिवधनुष को भग्न करने वाले राम ने अपने व्यक्ति रूपी धनुष में लगी हुई सन्देह की डोरी को खींचा था किन्तु उसमें असफल हो गए थे और जन समूह का निर्णय स्वीकार कर अपनी व्यक्तिगत धारणाओं का बलिदान कर दिया था। मध्यरात्रि के निर्णय ने ज्वालामुखियों को जगा दिया है। अब प्रश्नों का समय नहीं। युद्ध की वास्तविकता सूर्योदय ला रही है।

इस प्रकार रामकथा के अघटित प्रसंग को लेकर लेखक ने अनेक मौलिक घटनाओं का सृजन किया है। राम का वितर्क, प्रेतात्मा का आगमन, विभीषण का संशय मौलिक घटनाएँ हैं। आधिकारिक कथा के साथ उक्त प्रासंगिक घटनाएँ इस रूप में संगुम्फित हैं कि उनमें नाटकीयता पर्याप्त रूप में विद्यमान है। क्रिया-व्यापार विरल होने के कारण कथा-प्रवाह कुछ मंद सा है।

एक कण्ठ विषपायी — दुष्यन्तकुमार

इसका कथानक प्रजापति दक्ष के यज्ञ-विध्वंस से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण नाटक

चार दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य दक्षप्रजापति द्वारा शंकर को अपमानित करने हेतु यज्ञ - आयोजन से सम्बद्ध है। नाटक का प्रारम्भ दक्ष एवं उसकी पत्नी वीरिणी के वार्तालाप से होता है। वीरिणी दक्ष को समझाती है कि इस यज्ञ में तीनों लोकों के प्रतिनिधि ऋषि, देवगण आमंत्रित है, अतः जामाता शंकर को भी बुलाना चाहिए, जबकि दक्ष परम्परा भंजक शंकर को अपना सम्बन्धी मानने में संकोच करते हैं क्योंकि शंकर ने अबोध सती को बातों में लुब्ध कर उससे विवाह किया है। अतः दक्ष शंकर को बहिष्कृत करना चाहते हैं। इसी समय सर्वहत राजकुमार की क्रूरता का उल्लेख करता है जिसने पक्षी को कमरे में बन्द कर उसके पंख नोच डाले हैं। वीरिणी बारम्बार कन्या प्रेम से अभिभूत होकरशंकर को बुलाना चाहती है। इसी समय अनुचर सूचित करते हैं कि राजसुता नन्दी के साथ यज्ञ-मण्डप में पहुँच गयी। दक्ष उसे कैलाश लोक भेजने की आज्ञा देते हैं। यदि वह यज्ञ देखना चाहती है तो, सामान्य प्रजा जन की तरह देखना चाहिए। वीरिणी इस आज्ञा के क्रियान्वयन होते ही आत्मघात करने की बात कहती है। वीरिणी कहती है कि यदि सती के स्थान पर वह स्वयं होती तो वह भी इसी प्रकार का आचरण करती। दक्ष कोमल होते हैं। यज्ञ में शंकर का भाग देने हेतु तैयार नहीं होते। द्वारपाल आकर आगे की घटना की सूचना देता है कि क्रोधित दक्ष के यज्ञमण्डप में प्रविष्ट होते ही सती यज्ञाग्नि में अपनी आहुति दे दी। नन्दी इसकी सूचना देने शंकर के पास जाता है। द्वितीय दृश्य दक्ष के यज्ञ विध्वंश से सम्बन्धित है। विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, वरुण, एकत्रित होकर शंकर के गणों द्वारा यज्ञ-विध्वंस की घटना पर प्रकाश डालते हैं। ब्रह्मा यह अनुभव करते हैं कि इस यज्ञ में अतिथि जिसने भाग लिया है, वे सभी अपमानित हुए हैं। इसी समय अस्त-व्यस्त दशा में सर्वहत प्रविष्ट होता है और वह नगर की स्थिति का उल्लेख करता है कि सारे नगर में रक्त जमा हुआ है, सड़ी हुई लाशें दिखायी देती हैं। सर्वहत उस युद्ध की विभीषिका देख विक्षिप्त हो गया है। बुभुक्षित होकर चतुर्दिक रोटी की खोज में रत है। वरुण इसे शंकर की हिंसा का जीवित प्रतिरूप कहते हैं। विष्णु इसे युद्धोपरान्त संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का स्तूप मानते हैं। इन्द्र अपने को अपमानित अनुभव करते हुए कहते हैं। कि परम्परा भंजक शंकर कन्धे पर सती का शव तांडवक जैसा आचरण कर रहे हैं। सभी इस पर चिन्तित हैं कि अविनाशी, देहमुक्त शंकर मानसिक सन्तुलन खोकर साधारण पाशों में कैसे आबद्ध हो गए। ब्रह्मा भी इस बात से दुखित है कि उनके सहयोगी शंकर मृत्यु की क्षणिकता से क्यों पीड़ित हैं? कुबेर को इस बात का आश्चर्य है कि भृगु, पैल, कश्यप, अगस्त्य, व्यास प्रभृति ऋषि मुनियों की सभा को शंकर के गणों ने विध्वंस किया है। इन्द्र, कुबेर, वरुण

आदि देवता इस पर सहमत हैं कि शंकर के इस कृत्य को निन्दनीय मान, उन्हें दण्ड दिया जाये। ब्रह्मा कुछ निर्णय नहीं ले पाते। इसी समय विष्णु पूछते हैं कि तत्वज्ञानवेत्ता शंकर की आत्मा क्यों रोती है। इन्द्रादिक देवता उत्तर देने के पूर्व शंकर से मिलना चाहते हैं, इसी समय लड़खड़ाते हुए सर्वहत का प्रवेश होता है।

तृतीय दृश्य के प्रारम्भ में हिममण्डित कैलाश पर्वत पर सती के शोक में मग्न शंकर दिखायी पड़ते हैं। शंकर सती के अस्तव्यस्त केशों को अपनी उँगलियों से सहलाते हुए अपने पुंसत्व को धिक्कारते हैं, तभी वरुण, कुबेर उनका स्तवन करते हैं। कुपित शंकर यह प्रश्न करतते हैं कि दक्ष के यज्ञ के सम्मिलित देव शंकर का अपमान किस प्रकार सहन कर गये। आदर्शों का परिधान ओढ़ने पर शंकर ने निर्वासन एवं प्रेयसि-वियोग पाया। अतः वे महिमा-मण्डित छल से ऊब चुके हैं। शंकर देवताओं के आने का कारण पूछते हैं। कुबेर संवेदना प्रकट करने आये हैं। शंकर को उन पर विश्वास नहीं होता है। सती के अर्ध जले शव के प्रति वे प्रेम प्रकट करते हैं। कुपित होकर वे कहते हैं कि सन्ध्या तक सती जीवित नहीं होती तो तीनों लोकों को वे भस्म कर देंगे। क्रोधाविष्ट में वे डमरू बजाने लगते हैं।

चतुर्थ दृश्य के प्रारम्भ में युद्ध वेष में सज्जित इन्द्र, ब्रह्मा से युद्ध करने के लिए अनुमति माँगते हैं क्योंकि महादेव अपनी पूर्व नियोजित डाकनियाँ, शाकनियों, प्रेत-गणों की सेना लेकर देवलोक की सीमाओं पर चढ़ आये हैं। अब युद्ध के सिवा अन्य विकल्प अवशेष नहीं है। ब्रह्मा भविष्य के परिणाम को सोचकर चिन्तित होते हैं। एक सैनिक सूचना देता है कि महादेव की सेना क्रमशः बढ़ती आ रही है। इन्द्र ब्रह्मा के सम्मुख शस्त्र, अन्न, वस्त्र की समृद्धि की सूचना देता है। प्रजा ब्रह्मा के विरुद्ध होने लगती है। वह युद्ध चाहती है। कुबेर वरुण शेष जनप्रतिनिधि बनकर ब्रह्मा से युद्ध की घोषणा करने में संकुचित होते हैं। तभी विष्णु का प्रवेश होता है। अनेक आहत नागरिकों के साथ सर्वहत उनकी सभा में आकर उनको धिक्कारता है। भीड़ लम्बी-लम्बी बातें नहीं सुनना चाहती। विष्णु युद्ध की घोषणा करते हैं। साथ ही वे इन्द्र से धनुष लेकर एक बाण चढ़ाकर छोड़ते हैं। वे इस बाण से शंकर के स्वप्न को तोड़ना चाहते हैं। इस बाण की प्रतिक्रिया सभी जानना चाहते हैं। विष्णु समझाते हैं कि यह बाण शिव के कन्धों पर पड़ी सती के शव को खण्ड-खण्ड कर दिशाओं में विकीर्ण करेगा। जहाँ ये खण्ड गिरेंगे वहाँ धर्म के तीर्थ बन जायेंगे। यह बाण चुनौती होगा चाहे शंकर स्वीकार करें या नहीं। सभी देवता उनकी प्रार्थना करते हैं। उद्घोषक कहता है कि महादेव की सेनाएँ लौट गयी हैं।

इस प्रकार प्रख्यात कथावस्तु को लेखक ने मौलिक कल्पनाओं से सुनियोजित किया है कि उसमें गतिशीलता प्रवाहमयता सर्वत्र दिखाई देती है। सर्वहत शंकर का क्रोध नूतन रूप

में वर्णित है। कथावस्तु क्रमबद्ध सुशृंखलित है जिसमें पूर्वोत्तर समस्याओं के निरूपण के लिए जिन क्रिया-व्यापारों का उल्लेख किया गया है, उनमें मर्मस्पर्शिता, सजीवता और रोचकता है।

उत्तर प्रियदर्शी — अज्ञेय

अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने की पृष्ठभूमि को लेखक ने इस गीति-नाट्य का मुख्य विषय बनाया है। प्रारम्भ में अशोक के पूर्व जन्म की घटना का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि वे जब बालक थे, उसी समय शाक्य मुनि बुद्ध भिक्षा माँगते निकले। बालक ने एक मुट्ठी मिट्टी दी जिसके परिणाम स्वरूप वह दूसरे जन्म में जम्बूद्वीप के राजा होने का वरदान पा गया। अशोक प्रारम्भ में क्रूर शासक था, उसने मंत्रियों को आज्ञा दी कि उसकी आज्ञानुसार नरक बनवाकर दुष्टों को दण्ड दिया जाय। नरक का शासक क्रूर स्वभाव वाले घोर को बनाया गया, जिसकी लम्बी सीमा में आकर स्वयं सम्राट भी नहीं बच सकेंगे। दुर्भाग्य वश एक भिक्षु नरक की सीमा में प्रविष्ट होता है। उसे देख घोर को आश्चर्य होता है। शीतल कड़ाह ठण्डा हो जाता है। उसके मध्य खिले कमल में बैठा भिक्षु बाहर आता है। इस घटना को देखने स्वयं अशोक भी आता है। यम के गण उसे भी बन्दित करते हैं। वह घोर [illegible] से अपने को शासक बताता है। किन्तु वह उसकी प्रतिश्रुति को पुनर्स्मरण कराता है। राजा वज्राघात से पीड़ित होकर भिक्षु के सामने गिर पड़ता है। भिक्षु उसे अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। पारमिता करुणा के महत्व एवं उसके रहस्य को उसके सम्मुख उद्घाटित करता है और अशोक उसके उपदेश को ग्रहण करता है। यही इसका कथानक है। यद्यपि इसका कथानक बहुत संक्षिप्त है। एक ही घटना का उल्लेख है तथापि उसकी प्रवाहमयता में कोई कमी नहीं है। सीमित घटना को [illegible] लेखक ने मनोवैज्ञानिक प्रतीकों से वर्णित करने का प्रयास किया है।

इरावती — जानकी वल्लभ शास्त्री

सम्पूर्ण गीतिनाट्य तीन अंकों में विभक्त है। इसकी कथावस्तु मगध के विश्व-विख्यात शुंग वंशीय साम्राज्य के प्रतिष्ठापक सम्राट पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र एवं इरावती से सम्बन्धित है। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य मैत्रकाल के मन्दिर में इरावती आराधना में तल्लीन है तभी राजगुरु उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं। वह जिस पर युवराज अग्निमित्र मुग्ध है। द्वितीय दृश्य में इरावती का नृत्य होता है। वह बाल सजाकर गौतम की अर्चना करना चाहती है। उसके नृत्य से सभी वर्ग के दर्शक अभिभूत हो उठते हैं। तृतीय दृश्य में इरावती

उन्मन होकर घूमती है। राजगुरु आकर उसके रूप सौन्दर्य से अभिभूत अग्निमित्र की चर्चा करता है। वह याद दिलाता है कि इरावती देवदासी है और उसे राजगुरु के आदेश के अनुसार अग्निमित्र से प्रेम करना पड़ेगा। चतुर्थ दृश्य में कावेरी एवं इरावती पुरुषों की मधुवृत्ति पर व्यंग्य करती है। द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में राजगुरु अग्निमित्र के समक्ष इरावती का पूर्व जीवन वर्णित करता है कि इरावती बौद्ध धर्म में दीक्षित थी किन्तु उसके रूप ज्वाला के कारण वहाँ का वातावरण अपवित्र होने लगा। परिणाम स्वरूप उसे वहाँ से निष्कासित किया गया। वह शिप्रा में कूद कर आत्महत्या करना चाहती थी। राजगुरु ने उसे वहाँ से निकाल कर देवदासी पद में प्रतिष्ठित किया था। यहाँ उसने नृत्य संगीत कला पर असाधारण अधिकार प्राप्त किया। द्वितीय दृश्य में इरावती अपना पूर्व जीवन स्मरण करती है कि वह किस प्रकार देवदासी से राजरानी बनी। अग्निमित्र इस अन्तर को स्पष्ट करता है। इरावती समझती है कि वह दया धर्म की मारी थी तथा अग्निमित्र अर्थ काम से अन्ध था, अतः वह उसके रूप शलभ से आकृष्ट होकर ही उसे रानी बनाया है। दोनों में प्यार नहीं था। अग्निमित्र उसे समझाने का प्रयास करता है। तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में मदन महोत्सव समारोह के लिए मालविका गीत का पूर्वाभ्यास कर रही है। इसी समय इरावती प्रविष्ट होती है, मालविका कहती है कि उसके आने के पूर्व इरावती मुदित रहती थी किन्तु ज्यों ही उसके पैर यहाँ पड़े, कलह-कोलाहल उत्पन्न होने लगे। इरावती समझती है कि राजधर्म बहुपत्नीक होता है अतः मालविका दुखी मत हो, वह अग्निमित्र के समक्ष अपना पूर्व जीवन की घट-नाओं का वर्णन करती है। माता-पिता बाल्यकाल में ही स्वर्ग सिधार गए थे। मगध के बौद्ध विहार में उसने आश्रय पाया था किन्तु वैराग्य ने साथ नहीं दिया। स्तूप के नीचे चम-कता यह असाधारण रूप भिक्षुओं के ध्यान को भंग करता था, अतः उसे निष्कासित कर दिया गया। एक दिन वह एक सार्थवाह के साथ पद यात्रा करती हुई उज्जयिनी पहुँच गयी। यहाँ उसने ललित कलाओं का आश्रय लिया किन्तु ललित कला भी प्रभुसत्ता से अनुशासित थी। अग्नि-मित्र उसे समझाता है कि अब वह राजाश्रय छोड़ कर कहाँ जायेगी। वह आत्मश्लाघा करता है, इरावती मालविका के नर्तकी बनाने पर आपत्ति करती है। अग्निमित्र आज की बात उसे सबके समक्ष प्रस्तुत कर अन्तःपुर की रानी बना लेगा। इरावती एवं मालविका साथ रहने को तत्पर होती है। द्वितीय दृश्य में राजभवन के रंगपीठ पर इरावती एवं मालविका का नृत्य होता है। इरावती शरीर के सभी आभूषण क्रमशः उतारती है। अन्त में सौन्दर्यमाता इरावती रंगपीठ के मध्यभाग में शिव-चरण की ध्यानयोगिनी पार्वती की तपोमुद्रा में स्थित हो जाती है।

इस प्रकार जानकी वल्लभ शास्त्री ने अनेक घटनाओं को सूक्ष्म रूप में उपस्थित किया है। घटनाओं में नाटकीयता लाने के लिए उनके उतार-चढ़ाव पर विशेष ध्यान दिया

गया है। स्मृति दृश्यों के रूप में अनेक स्थानों की घटनाओं को एक ही स्थान पर उपस्थित करने का प्रयास किया गया है।

अग्नि लीक — भारत भूषण

अग्निलीक में राम, सीता के उत्तरखण्ड की कथा उपनिबद्ध है जिसमें सीता का निर्वासन राम का अश्वमेध प्रसंग, सीता द्वारा पृथ्वी प्रवेश की घटनाएँ विन्यस्त हैं। नाटक में तीन दृश्य हैं। नाटक के प्रथम दृश्य का प्रारम्भ रथारूढ़ राजपुरुष एवं सारथी के वार्तालाप से होता है। राजपुरुष को गन्तव्य पहुँचने की आतुरता है जबकि रथवान इतनी लम्बी यात्रा के कारण पशु की थकावट का उल्लेख करता है। उनका गन्तव्य स्थल वाल्मीकि समीप ही है, अतः वह सरोवर के किनारे हाथ मुँह धोकर विश्राम करने का आग्रह करता है। राजपुरुष रथ से उतर कर ताल की ओर चल देता है। रथवान घोड़े खोल देता है तथा एक पेड़ की छाया में बैठ जाता है। वह विकलता से उस स्थल को पहिचानने का प्रयास करता है। स्थल की पहिचान के कारण उसके आँसू आ जाते हैं। राजपुरुष उसके औदासीन्य का कारण जानने का प्रयास करता है। उसे रथवान् भाग्य की बात कहकर टाल देता है, जिसके विरोध में राजपुरुष उसकी भाग्यवादिता पर व्यंग्य करके कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उसकी दृष्टि में सुख दुख मनुष्य की ही रचना है। रथवान मनुष्य द्वारा भुक्त कुछ ऐसे दुखों का उल्लेख करता है जिसे मनुष्य नहीं चाहता है। इन दुखों को मिटाना मनुष्य के वश की बात नहीं है क्योंकि व्यतीत हुई घटनाओं का अनबीता नहीं कहा जा सकता है। राजपुरुष रथवान के दुखों में प्रच्छन्न कारणों को ज्ञात करना चाहता है। उसे विश्वास नहीं होता कि न्याय रक्षक, धर्मावतार प्रजावत्सल राम के राज्य में किसी को दुख भी हो सकता है। रथवान की बात को सच नहीं मान पाता क्योंकि अपने दर्द को कैसे झूठा सिद्ध करे, जो उसे अन्दर ही अन्दर खोखला कर रहा है। उसे सोलह वर्ष पूर्व की बीती बात स्मरण हो आती है, राजपुरुष उस समय बच्चा था। उस समय रथवान अपने छोटे महाराज एवं महारानी सीता को रथ में बैठाकर निर्वासन हेतु यहीं लाया था। सीता ने इसी सरोवर के जल से सूर्य को अर्घ्य दिया था। सीता ने लक्ष्मण से यहीं छोड़ने का आग्रह किया था क्योंकि वाल्मीकि आश्रम जाना व्यर्थ समझती थीं। उसी समय सीता ने राम के लिए सन्देश दिया कि पितृप्रदत्त वनवास में सीता-राम के साथ थी क्योंकि दोनों का धर्म एक था, अब राम महाराज हैं, सीता उनकी प्रजा है। अतः सीता को एकाकी वन आना पड़ा है। रथवान आसन्नप्रसवा सीता की मर्मान्तक वेदना का अनुभव करके व्यथित होता है। यह रावली कार्य उसके किस अपराध के दण्ड स्वरूप दिया गया था। राजपुरुष उसकी वेदना का अनुभव करते हुए भी आँसू बहाना

व्यर्थ समझता है। सीता के वन चले जाने से अयोध्या निवासियों ने मात्र छत्र-छाया ही खोयी है, जबकि राम ने प्राणों की प्रेयसी अपने जीवन संगिनी अर्धांगिनी को खोया है। इस छोटी सी भूल को उन्होंने भारी मूल्य दिया है। उन्हें जो ग्लानि है वह अवर्णनीय है। रथवान आवेश में आकर सन्तुलन खो देता है और राम को लक्षित करते हुए कहता है कि दुर्मुख की बात को मानकर अर्धांगिनी का परित्याग कि सुविचारित ढंग से हुआ है, उन्हें खोया हुआ राज्य पाना था, जिसके लिए वे चौदह वर्षों तक जंगलों में भटके थे। राजपुरूष उसे राजद्रोही कहता है। फिर भी रथवान सामान्य जन के मनोभावों को कहता है कि अब राजपुरूषों को प्रजा की हित-चिन्ता का ध्यान नहीं है[११]। पहले प्रजा घीहर बात राजा के कानों में पहुँचती थी और अब महाराज चक्रवर्ती पद पाने हु हेतु व्यग्र हैं। यज्ञ, राग, रंग, भोग, दान-पुण्य, इत्यादि समारोहों से राजपुरूषों को यह जानने का अवकाश नहीं है कि प्रजा कैसे जीती -मरती है। जिस राम ने सत्य के लिए राज्य ठुकरा दिया था उसी ने राज्य के लिए सत्य को झुठला दिया क्योंकि प्रजा को अन्धकार में रखकर एक पगले की बात सुनी गयी। राज्य मोह में लिप्त राम को प्रजा का ध्यान नहीं आया और देश की लक्ष्मी बाहर चली गयी। राजपुरूष उसके इस कथन से सहमत नहीं होता। वह अपनी शंका व्यक्त करता है कि उस समय सारी प्रजा ही उस पगले का समर्थन करती थी। राम के अनासक्त जीवन-यापन का उल्लेख करता है। रथवान अयोध्या का दुर्भाग्य बताता है कि इस नगरी का नरेश वन में ही रहता आया है। जब राम वन गए तो भरत वैरागी हो गये और सीता के वन गमन पर राम अनासक्त हुए। प्रजा ने कभी सुख ही नहीं पाया क्योंकि राम ने सीता के साथ सारी प्रजा को वनवास दे दिया। राम के साथ प्रजा भी घुलती है। सीता के बाद महामारी, सूखा ने प्रजा को त्रस्त कर रखा है। राजपुरूष इस सन्दर्भ में राम की चिन्ता व्यक्त करता है इसलिए ऋषियों और पण्डितों के परामर्श से इस यज्ञ का आयोजन किया गया है। यज्ञ समाप्ति पर राम को सीता दर्शन के साथ वंशधरों की प्राप्ति होगी।

द्वितीय दृश्य में रूग्णावस्था देवी(सीता) तथा कौशिकी दिखायी देती है। देवी बहुत दिन तक अचेतावस्था में रहीं। कौशिकी शुश्रूषा से वे स्वस्थ हुई। कौशिकी देवी को समझाती हैं अपने मन को बन्द रखना उचित नहीं होता। अपनी अन्तर्व्यथा को किसी से कह देने से मन हल्का हो जाता है। देवी विगत कई वर्षों से इसी आश्रम में रहती है फिर भी वे इस आश्रम के परिवेश से नितान्त असम्पृक्त होकर अपने ही अन्तर्जगत में खोयी रहती हैं। देवी ने कभी भी अपने पूर्व संसार माता-पिता, मित्र-बन्धु का उल्लेख भी नहीं किया है। इस कारण उनके मन के भाव अपना सहज स्वाभाविक मार्ग न पाकर चेतना को उद्वेलित कर तन मन को क्षीण करते रहते हैं। देवी, कौशिकी से अपने एकाकी होने का उल्लेख करती है।

उन्हें केवल इतना भय है कि मरने के समय कहीं जीवन से मोह न हो जाय। इसी समय दूर से कोलाहल सुनायी पड़ता है। कौशिकी रामचन्द्र की सैन्य-यात्रा का कोलाहल बताती है। आश्रम से अनतिदूर उनका स्कन्धावार है। यह राम की दिग्विजय यात्रा है। देवी के मन में अन्तर्द्वन्द्व उठने लगता है वे रामचन्द्र का विजय अभियान छिपकर देखना चाहती हैं। किन्तु पहिचान जाने की आशंका है। बाद में वे अपनी दुर्बलता पर विजय पाती है। उन्हें यह अश्वमेध यज्ञ निरर्थक लगता है क्योंकि इस विजयनाद के नीचे प्रजा का हाहाकार दबा हुआ है। तभी दीवार के पीछे से आधि पागल वेशधारी चरण कूद कर उनके सामने आता है। वह अट्टहास करता हुआ अश्वमेध यज्ञ पर कटाक्ष करता है। देवी उस पागल को समझाने का प्रयास करती है।

तृतीय दृश्य वाल्मीकि का आश्रम है। सीता को राम का सन्देश प्राप्त हुआ है कि वह ऋषियों, साधुओं, पण्डितों, राजपुरुषों एवं प्रजाजनों के समक्ष आकर अपनी पवित्रता सिद्ध करें। सीता वहाँ जाना नहीं चाहती, प्रसवावस्था कैकष्ट तथा आश्रम की सेविका बनना इसलिए नहीं स्वीकार किया कि सोलहवर्षों के बाद उसके सतीत्व पर पुनर्विचार हो। यदि यही कहना था तो निर्वासन के समय ही प्रजाजनों के समक्ष पातिव्रत की सौगन्ध खा सकती थी। उसे अब अपना अपमान असह्य है। अब मरण ही उनकी मुक्ति है। वह वाल्मीकि से अपना नितान्त गुप्त रहस्य उद्घाटित करती है। वह राम के लिए स्वयम्बरा बनी किन्तु राम कभी प्रेमी नहीं बन पाये इन्हें राज्य, राजनीति, संग्राम विजय की धुन सवार थी। विवाह के समय के सपनों की पूर्ति के लिए वह राम के साथ वन गयी। कष्ट सहे, राम की सेवा की, किंतु राम आश्रित धर्म समझाते रहे। उनका मन राज्य की ओर लगा। नारी के प्यार जानने का इन्हें अवकाश ही नहीं मिला। राक्षसों के चंगुल में फँसकर उनके संवाद की प्रतीक्षा करती रही। लेकिन मैं हनुमान आकर मात्र मेरा समाचार ले गए। राम को सीता से बढ़कर विजय की चिन्ता थी। रावणवध के बाद राम ने मेरी अग्निपरीक्षा ली, किन्तु बाद में एक अपढ़ व्यक्ति के कहने से मुझे निर्वासित किया। यदि प्रजा का मन रखना था तो राजा की तरह दण्ड देकर प्रेमी की भूमिका निभाने हेतु मेरे साथ स्वयं वन चले आते। राज्य-लिप्सा के कारण राम ने पत्नी को कभी नहीं अपनाया। वाल्मीकि इस अपवाद का प्रतिवाद करते हैं। सीता कहती है कि राम के मन में आसमुद्रा वसुन्धरा को बाहों में भरने की, रघुकुल में अपनी कीर्ति को सबसे ऊँची करने की महत्वाकांक्षा रहती थी। अपनी शक्ति और प्रभुता के आस्फालन में कभी शिथिल नहीं हुए। अब राम को मैं स्वयं छोड़ती हूँ। लव-कुश आकर माँ का मार्ग अवरुद्ध करते हैं किन्तु सीता अतल में समा गयी। राम के मन में गहरी मानसिक व्यथा उत्पन्न

होती है और वे पुनः सोचने को बाध्य होते हैं कि सारे सम्बन्ध क्यों गलत बदं देने लगे और उन्हें सीता कीमहत्ता का आभास अन्त में हुआ। यही इसकी कथावस्तु है।

इस प्रकार भारतभूषण ने पौराणिक इतिवृत्त के साथ अनेक मौलिक घटनाओं की रचना की है। रथयान, चरण की घटनाएँ प्रासंगिक घटनाएँ हैं। प्रासंगिक घटनाएँ कहीं भी विशृंखलित नहीं हैं। लम्बे-लम्बे सम्भाषणों से कथाप्रवाह अवश्य मंद पड़ गया है? घटनाएँ वर्णनात्मक होने के कारण पाठक को पकड़-सा लेती हैं।क्रिया -व्यापार में नाटकीयता होने के कारण रसव्याघात नहीं होता है।

द्वितीय अध्याय

गीतिनाट्यों के पात्रों का चरित्र-चित्रण

द्वितीय अध्याय

गीतिनाट्यों के पात्रों का चरित्र-चित्रण

सिद्धान्त निरूपण करते समय हमने पिछले अध्याय में देखा है कि चरित्र-चित्रण नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। गीतिनाट्यों के पात्रों का चरित्र चित्रण लिखने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनकी संक्षिप्त सूची और उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाय :—

(1) करूणालय	हरिश्चन्द्र, सेनापति, रोहित, अजीगर्त, शुनःशेफ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, सुव्रता।
(2) लीला —	दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, धीर, वीर, गम्भीर, विश्वामित्र, जनक, परशुराम, अराल, कराल, कौशल्या।
(3) अनघ —	मघ, अमोघ, शोभन, याचक, सुव्रत, विरोध, विशाल, सुमुख, ग्रामभोजक, सुर, सूचक, राजा, साधक, मुखिया, चोर, सुरभि, रानी, मघ की माँ, मालिन, ग्रामभोजक की स्त्री।
(4) पंचवटी प्रसंग —	राम, लक्ष्मण, सीता, शूर्पनखा।
(5) तारा	बृहस्पति, चन्द्रमा, तारा।
(6) मत्स्यगन्धा	पराशर, अनंग, मत्स्यगंधा, ऋतु।
(7) विश्वामित्र—	विश्वामित्र, उर्वशी, मेनका, शकुन्तला।
(8) शिल्पी —	[illegible] शिल्पी, जननायक, शिष्या।
(9) अप्सरा —	कलाकार, अप्सरा।
(10) राधा —	कृष्ण, नारद, राधा, विशाखा, चन्द्रावली।
(11) उन्मुक्त —	पुष्पदन्त, गुणधर, ज्ञानधर, जयकेतु, कर्मधार, कुसुमावती, जागरिता, मृदुला, सुलोचन, वृद्धा।
(12) द्रौपदी —	कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, कर्ण, विदुर, शकुनि, सुयोधन, चारण, कुन्ती, द्रौपदी, सखी, दासी।
(13) कर्ण —	शल्य, कर्ण, सुयोधन, कृष्ण, अर्जुन, इन्द्र, धर्म, याचक, द्रौपदी, कुन्ती।
(14) स्नेह या स्वर्ग —	जयन्त, अजेय, प्रभाकर, अनूप, महेन्द्र, सुमित्रा, स्नेहलता, चपला शची।
(15) मेघदूत —	यक्ष, कुबेर।
(16) रजतशिखर —	युवक साधक (सुव्रत) मनोविश्लेषक, राजनीतिज्ञ, विस्थापित, युवती।

(2)

(17) कवि — कवि, जीवन, किसान, पुरुष, मजदूर, कल्पना, स्त्रियाँ।

(18) सृष्टि का आखिरी आदमी — उद्घोषक, शासक, वैज्ञानिक।

(19) सृष्टि की साँझ, अजय, सेनानायक, महामात्य, मन, रेखा, वामना।

(20) लौह देवता — पुरुष, लौहदेवता, पुजारी, स्त्री।

(21) संघर्ष — पंकज, मन, मोहन, आदमी, बेला।

(22) अन्धायुग — अश्वत्थामा, विदुर, धृतराष्ट्र युधिष्ठिर, कृतवर्मा, कृपाचार्य, संजय युयुत्सु, व्यास, बलराम, कृष्ण, वृद्ध याचक, प्रहरी, गूँगा, भिखारी गांधारी।

(23) इन्दुमती — इन्दुमती, सुनन्दा।

(24) मदनदहन — कामदेव, ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, रति।

(25) सौवर्ण — स्वर्दूत, स्वर्दूती, वैद्य, कवि, सौवर्ण, देवी।

(26) स्वप्न-सत्य ,, दो मित्र, कलाकार।

(27) दिग्विजय — जेन्नर, मरूत, अप्सरा।

(28) उर्वशी — पुरूरवा, विदूषक, भरतमुनि, उर्वशी, रम्भा, चित्रलेखा, मेनका, सुकेशी।

(29) गंगावतरण — सूत्रधार, भगीरथ, ब्रह्मा, नारद, शंकर, उर्वशी, रम्भा।

(30) पाषाणी — गौतम, इन्द्र, ऋषिकुमार, अहल्या, मल्लिका,

(31) मंजरी — राजा, विदूषक, योगी, रानी, गोपी, मंजरी, सखियाँ, चेटियाँ।

(32) अशोकवन-बन्दिनी— रावण, जानकी, त्रिजटा, मंदोदरी, राक्षसियाँ।

(33) गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण — दुर्योधन, द्रोण, अर्जुन, द्रुपद, एकलव्य, छाया।

(34) सूखा सरोवर — संन्यासी, वृद्ध, नगरी का राजा, पुरोहित, पागल, सरोवर देवता राजमाता, राजकुमारी।

(35) उर्वशी — सूत्रधार, पुरूरवा, महामात्य, सभासद, आयु, नटी, उर्वशी, मेनका, औशीनरी, सहजन्या, रम्भा, सुकन्या, चित्रलेखा, निपुणिका, मदनिका।

(36) संशय की एक रात — राम लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, दशरथ, जटायु।

(37) एक कण्ठ विषपायी — सर्वहत, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, शेष दक्षपाल, सिपाही, वीरिणी(सती)।

(38) उत्तरप्रियदर्शी — प्रियदर्शी, (अशोक) मंत्री, घोर, भिक्षु, संचालक।

(39) इरावती — अग्निमित्र, राजगुरू, निट, चेट सचिव, इरावती, कावेरी, मालविका।
(40) अग्निलीक — राजपुरूष, रथवान्, चरण, वाल्मीकि, लव, कुश, सीता।

उक्त पात्रों की सूची पर दृष्टि निक्षेप करने पर सहज रूप में यह पता लगता है कि पात्र विभिन्न प्रकार के हैं जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(1) पौराणिक पात्र — हरिश्चन्द्र, रोहित, शुनःशेफ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, दशरथ, शंकर, विष्णु, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, पुरूरवा, कृष्ण, सीता, उर्वशी।

(2) ऐतिहासिक पात्र— अशोक, अग्निमित्र।

(3) प्रतीकात्मक पात्र— मय, तारा, मत्स्यगंधा, शिल्पी, कवि, कलाकार, अप्सरा, विश्वामित्र, अश्वत्थामा।

(4) काल्पनिक पात्र — ज्योतिष्मान्, सुव्रता, मय, ग्रामभोजक, विदूषक, अजेय, प्रभाकर रेखा मंजरी, यक्ष, पुष्पदन्त, गुणधर, अजय, मोहन, पंकज, वेला, सर्वहत।

(5) असाधारण पात्र — मय, राम, पुरूरवा, कृष्ण।

(6) साधारण पात्र — धीर, वीर, विशाल, विदुर, शकुनि, दासी, प्रहरी, भृंग, भिखारी विदूषक, त्रिजटा, सर्वहत।

(7) वीर पात्र — राम, कर्ण, अजेय, अजय, अश्वत्थामा, पुरूरवा, शंकर, द्रोणाचार्य, पुष्पदन्त।

(8) ऋषि पात्र — वशिष्ठ, नारद, विदुर, गौतम, विद्, वाल्मीकि।

(9) देवपात्र — लोकदेवता, महेन्द्र, ब्रह्मा, वरूण, स्वर्दूत, स्वर्दूती, विष्णु, शंकर।

(10) कामुकपात्र — शूर्पणखा, तारा, मत्स्यगंधा, विश्वामित्र, पराशर।

(11) प्रेमीपात्र — कृष्ण, राधा, अजेय, स्नेहलता, यक्ष, कवि, पुरूरवा, सीता, पागल, उर्वशी, इरावती, अग्निमित्र।

(12) पीड़क(दुष्ट) पात्र — अजीगर्त, ग्रामभोजक, रावण, चोर।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी गीतिनाट्यों में प्रायः सभी प्रकार के पात्र मिलते हैं किन्तु पौराणिक पात्रों को अधिक महत्व दियागया है। आज इन गीतिनाट्यों के प्रसारण हेतु रेडियो जैसा सशक्त माध्यम मिल गया है। ~~आज का कवि~~ अतः चेतन पात्रों के अतिरिक्त मानवेतर जड़ पात्रों को भी मुखरित किया जा सकता है — उत्तरशती, शरदचेतना, वासन्ती (जानकी वल्लभ शास्त्री)।

इन पात्रों में से प्रमुख पुरूषवर्ग स्त्री पात्रों का चरित्र-चित्रण लिखा जा रहा है —

पुरूषपात्र :— हरिश्चन्द्र, रोहित, अजीगर्त, वशिष्ठ, विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, ग्रामसुधारक, मुखिया, चन्द्रगुप्त, शिल्पी, वृद्ध, मुधचन्द्र, धर्म, अजेय, यक्ष, युवक, कवि, बालक, अजय, पंकज, युयुत्सु, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, अज, आग्नेय, कलाधर, खेचर, पुरूरवा, भगीरथ, गौतम, द्रोण, सन्यासी, हनुमान, विभीषण, दक्ष, शंकर, सर्वदत्त, अशोक।

स्त्रीपात्र :— सीता, सुरभि, शूर्पणखा, तारा, मत्स्यगंधा, राधा, मृदुला, द्रोपदी, स्नेहलता, रेखा, गान्धारी, इन्दुमती, उर्वशी, अहल्या, मंजरी, इरावती।

पुरूषपात्र

हरिश्चन्द्र :—

परम्परित रूप से हरिश्चन्द्र का चरित्र 'प्राण जाँय पर वचन न जाई' का पोषक था किन्तु प्रसाद जी ने करूणालय में इस आदर्शवादिता को अनावृत कर मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है जिसमें पुत्र-प्रेम का प्राधान्य है। वरूण की उपासना के बाद उसे रोहित की प्राप्ति हुई थी अतः वह ममता वश उसकी बलि नहीं दे सका। नौका स्तब्ध होने पर वह कहता है —

"आह देव यदि आप समझते ,
कितनी ममता होती है सन्तान की।"[1]

वन विचरण कर जब रोहित आता है तो हरिश्चन्द्र अपनी आज्ञा का उल्लंघन नहीं सह पाते। वे उसे राज्यच्युत करते हैं —

"रे पुत्राधम तूने आज्ञा भंग की।
मेरी अब तू योग्य नहीं इस राज्य के।"[2]

हरिश्चन्द्र आदर्श शासक नहीं हैं क्योंकि पुत्र के बदले प्रजा तुल्य ऋषिपुत्र के बलिदान को स्वीकार करने में तनिक संकोच नहीं करता है। वह धर्म के स्थूल रूप का रक्षक कहा गया है। वेदों से वेदभीत होने वाला है।

1- करूणालय, प्रसाद — पृ0 15

2- करूणालय, प्रसाद — पृ0 27-28

रोहित :—

रोहित के चरित्र में एक ओर पितृ-भक्ति है तो दूसरी ओर उद्दाम जीवन-लालसा। बलि देने की बात सुनकर वह सोचने लगता है कि पिता की आज्ञा-पालन धर्म है, किन्तु जीवन सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं है —

"पिता परम गुरु होता है, आदेश भी। उसका पालन करना हितकर धर्म है।
किन्तु निरर्थक मरने की आज्ञा कड़ी, कैसे पालन करने के है योग्य थीं।"[1]

× × × × × ×

क्या उसको अधिकार हमारे प्राण पर, क्या वह इतनी सार्वजनिक सम्पत्ति है?
नहीं, नहीं, 'वह मेरा है,' यह सत्य है,।"[1]

इन्द्र छाया से चरैवेति-चरैवेति का मंत्र पाकर वह राज्य से पलायन कर जाता है। अजीगर्त के आश्रम में पहुँच कर उसकी व्यावसायिक बुद्धि जाग्रत होती है और वह सौ गायों के बदले में बलिदान हेतु एक पुत्र माँगता है। उसे लेकर हरिश्चन्द्र के समक्ष वह अपने पलायन के सम्बन्ध में पुत्र-प्रेम का उल्लेख कर क्षमा माँगता है —

"सुनिये, मैंने रक्षा की है धर्म्म की, नहीं आप होते अनुगामी निरय के।
पुत्र नरकत्राता, तो क्या कौन मित्र, देता पिण्ड तिलोदक, यह भी समझिये।"[2]

डा0 नगेन्द्र ने इन तर्कों को साधारण एवं शक्ति हीन माना है।[3]

अजीगर्त :—

अजीगर्त एक ऋषि है किन्तु उसका चरित्र अधम कोटि का है। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' का वह साक्षात् उदाहरण है। वह शुनःशेप को बिना किसी संकोच के विक्रय हेतु तत्पर हो जाता है।

"हाँ हाँ मुझको सब बाते स्वीकार है, चलो मुझे पहले गायें दे दो अभी।"[4]

उसका चरित्र उस स्थल पर अमानुषिक हो जाता है, जहाँ वह सौ गायों के बदले अपने पुत्र के वध के लिए प्रस्तुत हो जाता है।

" और एक सौ गायें मुझको दीजिए, मैं कर दूँगा काम आपका शीघ्र।"[5]

इस प्रकार उसके चरित्र में मानवीय सहानुभूति, पुत्र-प्रेम एवं ऋषि तुल्य औदार्य एवं ज्ञान का नितान्त अभाव है।

1- करुणालय, प्रसाद- पृ0 17-18
2- वही, पृ0 28
3- आधुनिक हिन्दी नाटक — डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 97
4- करुणालय, प्रसाद, पृ0 24
5- करुणालय, प्रसाद, पृ0 31

<u>वशिष्ठ :—</u>

इक्ष्वाकु वंश के कुल गुरु एवं पुरोहित के रूप में चित्रित किया गया है। करुणालय में वे रोहित के तर्कों को उचित मानकर वे बलि हेतु अन्य पुरुष की स्वीकृति देते हैं —

"राजपुत्र के बदले इसको दे दिए, बलि तब देव प्रसन्न तुरत हो जायेंगे।"[1]

वशिष्ठ पुत्रशक्ति एवं विश्वामित्र बलि जैसे जघन्य एवं कर्म के लिए भर्त्सना करते हैं —

"अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया, रे मनुष्य, तू कितने नीचे गिर गया।
आज प्रलोभन भय तुझसे करवा रहे, कैसे आसुर कर्म अरे तू क्षुद्र है।"[2]

× × × × × × ×

"तुम हो त्राता धर्म मनुज की शान्ति के यह क्या है व्यापार चलाया।"[3]

अन्त में वशिष्ठ अपनी भूल के लिए क्षमा माँगते हैं। सारांश यह है कि वशिष्ठ धर्म के गतानुगतिक रूप को मानने वाले, त्यागी, तपस्वी रूप में चित्रित हैं। 'लीला' के वशिष्ठ विवेकी हैं जो कि राम-लक्ष्मण को महाराज दशरथ से विश्वामित्र के यज्ञ-रक्षार्थ दिला देते हैं।

<u>विश्वामित्र :—</u>

'करुणालय' में विश्वामित्र के जीवन के दो पक्षों का उजागर किया गया है। भावुक प्रेमी एवं वैदिकी हिंसा के विरोधी रूप में। उन्होंने सुव्रता से गान्धर्व विवाह किया था किन्तु धर्म तत्व के चिन्तनार्थ उसे छोड़कर चले जाते हैं। अन्त में शुनःशेफ के साथ उसे स्वीकार करते हैं। शुनःशेफ के बलिदान के समय वे उपस्थित होकर सभी को धिक्कृत करते हैं — "हाय मचा रक्खा क्या यह अन्धेर है, क्या इसमें है धर्म यही क्या ठीक है।"[4]

वे बलिदान हेतु अपने पुत्र मधुच्छन्दा को प्रस्तुत करते हैं। अन्त में वशिष्ठ भूल स्वीकार कर उन्हें महर्षि कहते हैं —

"लज्जित हूँ मुझमें यह साहस था नहीं, विश्वामित्र महर्षि तुम्हें हूँ मानता।"[5]

रामकथा से सम्बन्धित विश्वामित्र का चरित्र 'लीला' में चित्रित किया गया है। 'लीला' में उन्हें तपस्वी, ज्ञानी कहा गया है वे क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि बने हैं —

1- करुणालय, प्रसाद पृ० 28
2- वही, पृ० 33
3- करुणा — प्रसाद पृ० 33
4- करुणालय, प्रसाद पृ० 32
5- वही, पृ० 33-34

"बड़े तपस्वी ज्ञानी है, क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हुए हैं। इनसे अब भी मानी।"[1]

राक्षसों के विघ्नों से यज्ञ-याज्ञिक क्रम में व्यवधान होने लगा। अतः वे राम-लक्ष्मण को लेने अयोध्या जाते हैं। दशरथ के अस्वीकार करने पर कुपित हो जाते हैं। वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ राम-लक्ष्मण को भेज देते हैं। विश्वामित्र के आदेश से राम ताड़का का वध करते हैं। वे राम-लक्ष्मण को अस्त्र-शस्त्रादि की शिक्षा देते हैं।

ब्रह्मर्षि बनने के उत्थान-पतन की कहानी 'विश्वामित्र' गीतिनाट्य में अंकित है —

(i) तपस्वी :— विश्वामित्र के मन में अहं की भावना थी। तपस्वी एवं अहं का उल्लेख श्री उदयशंकर भट्ट ने स्वयं किया है —

"विश्वामित्र प्रचण्ड तपस्वी और अहं प्रधान पुरुष हैं।"[2]

नाटक के प्रारम्भ में उन्हें तपस्वी कहा गया है —

"हिमालय की तलहटी में देवदारू के वृक्ष के नीचे हिमासन पर विश्वामित्र तप कर रहे हैं। नाभि के नीचे तक लटकती दाढ़ी बिखरी हुई जटाएँ, अंग में एक मात्र-कौपीन, प्रदीप्त और उग्र मुख-मण्डल।"[3]

मेनका भी उसे तपस्वी रूप में समाधिस्थ देखती है —

"ज्योति-पुंज यह तीन तपोनिधि कौन है, जीवित मृत्यु समान शून्य निस्पन्द गति,
पृथ्वी पर आछन्न भस्म से ज्योतित-सा, अवगुण्ठित सा हिम रज का परिधान ले?
मैं सुनती थी यहाँ घोर तप कर रहा, कोई लिए समाधि एक चिर काल से।"[4]

तपस्या के कारण अहंभाव उत्पन्न होता है और वे दूसरे विराट् ब्रह्म इन्द्र गन्धर्व, यक्ष-किन्नर रचने की अनन्त शक्ति सम्पन्न बनने का उद्घोष करते हैं —

"बुझ सकते रवि मेरे भृकुटि निपात से फूट सकता ब्रह्माण्ड एक संकेत पा।
चाहूँ तो संसार चरण पर आ गिरे और नये संसार बनें, नवघात हो,

× × × × ×

रच दूँ अपर विराट् ब्रह्म को मैं स्वयं रच दूँ हरि, हर और विधाता इन्द्र भी
नहीं मुझे अब कुछ भी है अज्ञेय जग, ज्ञेय तथा अति गूढ़ गिरा अविकारस्था।।"[5]

इस तपस्या की शक्ति से उत्पन्न विश्वामित्र के अहंवादी व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए श्री पूनम सिंहल लिखते हैं —

3से 5 :—विश्वामित्र, भट्ट, क्रमशः पृ0 11, 16, 12

1- सीता — मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 18

2- विश्वामित्र,और दो भावनाट्य, पृ0 भूमिका—2 उदयशंकर भट्ट

"यहाँ चरम अहंकार ने भोगवृत्ति और नैतिक बुद्धि को अधिकृत कर लिया है। विश्वामित्र सांसारिक सुखोपभोग एवं आनन्द से विमुख कठोर तपस्या में संलग्न जीवन के निषेधात्मक मूल्यों को अपनाते हैं।"[1]

(2) क्रोधी :—

अहंवादी होने के कारण विश्वामित्र उस समय उग्र एवं क्रोधी हो उठते हैं जब उन्हें मेनका से उपेक्षा मिलती है। श्री उदयशंकर भट्ट लिखते हैं कि —"पुरुष का पौरुष तभी पूर्ण होता है जब उसका अहं उसे सदैव जागरूक रखे और अहं भाव की पूर्ति के लिए क्रियाशीलता हो। यह क्रियाशीलता और अहंकार कम के दबने पर क्रोध को जन्म देते हैं। पौरुष की अन्विति उसके अहंकार और क्रोध में है।"[2]

"क्या तू मुझको नहीं जानती चक्रमति, मैं हूँ विश्वामित्र प्रतापी महामुनि।
मैं चाहूँ तो क्षण में ही नव सृष्टि कर, तुझ जैसी उत्पन्न करूँ शत नारियाँ॥
× × × × × ×
हे निर्लज्जे साहसिके, मन्दाग्निके, मेरे सम्मुख मेरा ही अपमान तू।
महत्तपस्वी मैं हूँ युग निर्माण कर, रच दूँ सारा विश्व अभी क्षण में नया॥"[3]

(3) कामुक :—

मेनका जैसी अद्वितीय सुन्दरी को देखकर वे उस पर अनुरक्त हो उठते हैं। उन्हें तापस जीवन नीरस, स्वयं ब्रह्म होने की मीठी कल्पना में अहं प्रतीत होने लगता है। वे कहते हैं —

"सुनो तुम्हीं हो रोम-रोम की कामना, रोमांचित प्राणों की संचित साधना।
मेरे तप से, जप, समाधि से ध्यान से, सुन्दर यह मुस्कान तुम्हारी दीखती॥
× × × × × × ×
सब प्रपंच अध्यात्म एक तम सत्य हो, यह सौन्दर्य समग्र सृष्टि का मूल है।"[4]

मेनका के अन्तर्धान होने पर वे कामार्त होकर कहने लगते हैं —

"अरे अग्निसी, सुलगाकर इस देह में, कहाँ गयी हो काम-भृकुटि चल-भंगिमे।
प्राण, हृदय, बल सभी खींच कर देह का मूर्छित को मृत, मृत को करने सक्षमा।"[5]

उनकी इस आतुरता के औचित्य पर डा०वि०ना०भट्ट ने आक्षेप करते हुए लिखा है कि — "समाधि भंग होने पर विश्वामित्र जैसे तपोनिष्ठ का बिना किसी तीव्र आन्तरिक संघर्ष के साधना च्युत होकर हृदय हार बैठना समझ में नहीं आता।"[6]

6—भारतीय नाट्य साहित्य —सेठ गोविन्द, वि०ना०भट्ट—347

1—हिन्दी गीतिनाट्य श्री कृष्ण सिंहल, पृ० 95 2— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, उ०भ०, पृ० 2-3

3—विश्वामित्र, उदयशंकर भट्ट पृ० 27-28 4— विश्वामित्र, उ०श०भ०, पृ०30—31, 5 वही, 34

पागल होकर चारों ओर उसे खोजते हैं —

"है यह कैसा हुआ, हृदय क्या हुआ?अरे, क्या हुआ अणु-अणु क्यों बेचैन है?
हृदय काँपता, धड़कन उड़ती जा रही, श्वासों के रँग नभ में पंख समेट कर।
अन्धकार है लहर लहर-सा घूमता, लहराता है तिमिर चन्द्र की कान्ति में।
× × × × × × ×
इन गुलाब की पंखुड़ियों पर हँस रहा, प्रिये तुम्हारा स्मय, विस्मय को चूमकर।
चम्पा की मकरन्द सुधा में उड़ रही, मुग्ध हृदय की मृदुता, कोमलता, सरल।"[1]

मेनका मिलन में उनका सारा अहं घुल जाता है। दोनों का सुखद मिलन होता है परिणाम शकुन्तला रूप में आता है। उन्हें अपने पूर्व तपस्वी जीवन की याद आती है। वे पश्चाताप एवं ग्लानि का अनुभव करते हैं —

"गरल अमृत के धोखे में मैं पी गया।"[2]

वे अलिप्त शकुन्तला को शिला पर रोती स्त्री को छोड़कर चले जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अहं के प्रतीक पुरुष रूप में उपस्थित हुए हैं। उदयशंकर भट्ट ने उनके मनोविज्ञान के सम्बन्ध में लिखा है —"मानव में अहंकार, उसका धीरे-धीरे कम होना, प्रेम का उदय होना, प्रेम की परिणति, विजय के बाद विलास का होना और तदनन्तर मानव में फिर पुराने संस्कार जाग्रत होना यही क्रम है।"[3]

राम

'लीला' में राम की बाल लीलाएँ एवं व्याहतक की घटनाएँ विन्यस्त हैं। इसमें 'राम' के अवतारी रूप का उल्लेख किया गया है। अवतार कार्यों में निशाचर-कुल का संहार एवं पृथ्वी रक्षण कहा गया है —

"आदि शक्ति के सहित हुए हैं निराकार, क्यों रसातल जाने में पाकर यों उद्धार।
नीच निशाचर-कुल का होगा अब सत्वर संहार, ।"[4]

बाल्यावस्था में राम बड़े ही वीर, खेल-कूद में प्रवीण थे। विश्वामित्र से राक्षसों के कुकृत्यों को सुनकर उनका वीर भाव जाग्रत होता है —

"पुण्यभूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे, पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।"[5]

1- विश्वामित्र, उदयशंकर भट्ट, पृ0 36-37

2- वही, पृ0 44 3-विश्वामित्र और दो भावनाट्य-उदयशंकरभट्ट, पृ0भूमिका, 12

4- लीला — मैथिलीशरण गुप्त पृ0 10 5- लीला-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 24

पिता से मोह को छोड़ने के लिए वे कहते हैं —

"धर्म-कार्य है, जहाँ धर्म है जय निश्चय है,
यदि राक्षस हैं क्रूर, शूरभुत है तो हम भी,
रखते हैं उत्साह लड़ें आकर यदि यम भी।"[1]

राम के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

"सुगठित शरीर उन्नत ललाट, आजानुबाहु वक्षः कपाट,
कोदण्ड लिए, बाँधे निषंग, करते हैं मन्मथ मान भंग।
भय-रहित दृष्टि, लोचन विशाल, राज-शावक कैसी चाल-ढाल।"[2]

पंचवटी प्रसंग में राम के रूप को देखकर शूर्पणखा कहती है —

"सुन्दर, मैं मुग्ध हो गयी हूँ देख,
अनुपम तुम्हारा रूप।"[3]

निःश्छल हृदय :—

राम बड़े ही सरल हृदय के हैं। सीता के प्रथम दर्शन से उनके मन में जो पवित्र प्रेम उद्वेलित हुआ है उसे वे लक्ष्मण से छिपाते नहीं। विश्वामित्र के आदेश से राम ने विश्व-विश्रुत शिव-धनुष को भंग किया। परशुराम के क्रोध को वे विनम्रता से समाप्त करना चाहते हैं। बाद में उनके धनुष को चढ़ा कर वे परशुराम को सन्तुष्ट करते हैं। पंचवटी-प्रसंग में राम का एक पत्नीव्रत वाला रूप सामने आया है। शूर्पणखा के प्रणय निवेदन के प्रत्युत्तर में वे कहते हैं —

"सुन्दरी, विवाहित हूँ, देखो, यह पत्नी है।"[4]

पंचवटी-प्रसंग में राम, लक्ष्मण को ज्ञान भक्ति, योग, माया, सृष्टि, प्रलय का वर्णन करते हैं—

वाल्मीकि के मनुष्य राम, कालिदास के सौन्दर्य प्रिय वीर राजा राम, भवभूति के करुणा विगलित विरही राम, तुलसी के मर्यादावादी अवतार पुरुषोत्तम राम से भिन्न 'नरेश मेहता' ने संशय की एक रात में राम के संशयग्रस्त रूप को उजागर करने का प्रयास किया है क्योंकि उनका चरित्र इतना विविध और संवेदनशील है कि प्रत्येक युग उनके साथ अपना तादात्म्य कर सकता है। इसीलिए नरेश मेहता ने राम में आधुनिक जीवन की विसंगतियों का आरोपण कर उन्हें नितान्त नये रूप में प्रस्तुत किया है। वे ऐसे संक्रमण बिन्दु पर

1- सीता — मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 28
2- वही, पृ0 5।
3- पंचवटी प्रसंग— निराला, पृ0 233
4- वही, निराला, पृ0 234

खड़े हैं, जहाँ एक ओर व्यक्ति है तो दूसरी ओर समूह, एक ओर वनवास है तो दूसरी ओर युद्ध, एक ओर उनकी व्यक्तिगत सीता है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता की पर्याय जन-जन की सीता, एक ओर मूल्य की स्वीकृतियाँ हैं तो दूसरी ओर नवीन मूल्यों के जन्म की कुण्डलियाँ हैं। सीता को रावण से मुक्त कराना चाहते हैं किन्तु इसके लिए रक्तपात स्वीकार्य नहीं है —"कैसा युद्ध/ कैसी विजय/ कैसी प्राप्ति/ सब मिथ्यात्व है। नरसंहार के क्या — मोह के प्रति। वितृष्णा से भर उठा हूँ।× × × मेरी व्यक्तिगत समस्याएँ/ क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें/ मैं सत्य चाहता हूँ। युद्ध से नहीं। खड्ग से भी नहीं। मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।"[1]

इस प्रकार राम के माध्यम से अस्मिता का संकट और सर्वजनीन होने की चिन्ता से उत्पन्न संकट दोनों व्यक्त हुए हैं। आत्म मंथन और समूह जन के प्रति दायित्व दोनों व्यक्त हुए हैं और अन्ततः दुहरे व्यक्तित्व का बोध भी स्पष्ट हुआ है। इस प्रकार राम के अन्तर्मानस में गहन द्वन्द्व का प्रदर्शन कर उन्हें सनातन प्रज्ञा-पुरुष बना दिया है — "दो सत्य। दो संकल्प। दो-दो आस्थाएँ, व्यक्ति मैं ही। अप्रामाणिक व्यक्ति पैदा हो रहा है।"[2]

वे जनविनाश का कारण नहीं बनना चाहते —

"आज तक मैं निमित्त ही रहा। कुल के विनाश का, लेकिन अब नहीं बनूँगा कारण, जन के विनाश का।"[3]

अन्त में बहुमत के निर्णय को स्वीकार करने को बाध्य होते हैं। राम अपने शौर्य को सामूहिक नियति के विकल्प में बदल कर निःसंग हो जाते हैं और उनके आधे व्यक्ति का अधूरा मन उस निःसंगता को पा जाता है जो निरन्तर यह कहता है —

"अब मैं निर्णय हूँ, सबका। अपना नहीं। क्योंकि मैं अब निर्णय हूँ/व्यक्ति नहीं।"[4]

'अग्निलीक' में राम के जीवन की उत्तरकाल की घटनाओं का विन्यास है। इसमें राम के चरित्र की निम्न विशेषताओं का उल्लेख हुआ है —

(1) शासक :—

रावण-वध के बाद राज्याभिषेक होने के बाद राम अयोध्या के शासक बनते हैं। राजपुरुष राम के शासन का वैशिष्ट्य कहता है —

1- शौर्य की एक रात, नरेश मेहता, पृ० 20-24

2- वही, पृ० 23 3- वही, पृ० 32

4- वही, पृ० 88

"जिनका यश तीनों लोकों में गूंजता है, जो पिता की भांति पालन करते हैं
और भाई की भांति स्नेह देते हैं,
जो न्याय के रक्षक और धर्म के अवतार हैं।"[1]

(2) राज्यलोलुप :—

राम शासन पाकर राज्य लोलुप बन बैठे हैं क्योंकि इसके कारण ही उन्होंने दुर्मुख की बात मानकर सीता का परित्याग किया है —

"उन्हें तो अपना खोया राज्य पाना था। जिसके लिए ये चौदह बरसों तक जंगलों में भटके हैं × × × उन्होंने राज्य का मोल चुकाया है।"[2]

सीता भी उन पर लांछन लगाती है —

"दिन-रात आठों पहर बस इन्हें एक ही धुन थी: राज्य, राजनीति, संग्राम, विजय।
सोते जागते हर पल ये राजा ही बने रहे।"[3]

राम स्वयं अपने को प्रजा-सेवक कहते हैं, उनके और प्रजा के मध्य जो आता है, वह बाधा है — " पर मैं ईश्वर नहीं हूँ, मानव हूँ। मिट्टी से बना एक सेवक हूँ प्रजा का, और मेरे और प्रजा के बीच जो भी आता है, चाहे वह शास्त्र हो, परम्परा हो, या हो चाहे वह ऋषि हो, या चाहे सीता-सी हो, मार्ग की बाधा है।"[4]

(3) महत्वाकांक्षी :—

राम आसागरा धरती को अपने हाथों में बाँधने के लिए यत्नशील हैं। इस लालसा के कारण सीता कहती हैं —

"महत्वकांक्षा। आसागरा धरा को अपनी बाँहों में भर लेने की इच्छा,
रघुवंश में अपनी कीर्ति सबसे ऊँची करने की लालसा, जिसके आगे सारे नेह-नाते
सारे जीवन-सुख, सारी धर्म-प्रतिज्ञाएँ, उन्हें थोथी जान पड़ती हैं।"[5]

राम की राज्य-लिप्सा पर सीता प्रश्नवाचक चिह्न लगाती है कि पत्नी की अपेक्षा इन्हें राज्य अधिक प्रिय था —

"ये तो राज्य के मतवाले थे, विजय-श्री के भूखे थे,
प्यार से इन्हें लगाव ही कब था?"[6]

"इनके ध्यान में तो हर समय अयोध्या ही रहती थी,
इनका मन राज्य की ही उधेड़बुन में उलझा था।
नारी के प्यार को जानने का इन्हें अवकाश कहाँ था?"[7]

1- अग्निलीक, भारतभूषण अग्रवाल, पृ० 15   2- अग्निलीक, पृ० 19   3- अग्निलीक पृ० 46
4- वही, पृ० 64-65   5- वही, पृ० 53   6- वही, पृ० 52   7- वही, पृ० 49

(4) उत्कृष्ट-प्रेमी :—

सीता के पृथ्वी प्रवेश के बाद राम दुखित होकर अपने जीवन की घटनाओं का अवलोकन करते हुए पश्चाताप करते हैं। वे परिताप से पीड़ित होकर आत्महत्या करने की अपेक्षा सीता-प्रेम के कारण निःसृत आँसुओं से ही शेष जीवन सींचना चाहते हैं —

"जब देवी थी और मेरा स्वर्ग मेरे सामने था—
और क्या इस परिताप की यातना से टूटकर
मैं अपने ही हाथों से अपना गला घोंट लूँ?
पर अपने जीवन का ऐसा व्यर्थ अन्त करके
मैं फिर एक बार पलायन ही करूँगा। इससे तो अच्छा है
कि मैं इन आँसुओं को अपने शेष जीवन में सींच दूँ
और जो रामराज्य, अभी केवल देवी की तपस्या का ही इतिहास है—
उसे देवी के गौरव का स्मारक बना दूँ।"[1]

लक्ष्मण

राम के अनन्य सहायक लक्ष्मण के बाल्य-जीवन की झाँकी 'सीता' में अंकित है। उनके अतुलित शक्ति है। मृगया करते समय वे निहत्थे सिंह से युद्ध करना चाहते हैं।

"मेरी इच्छा है कि सिंह से आज नियुद्ध मचाऊँ मैं,
दोनों पिछले पंजों के बल, उसको नाच नचाऊँ मैं।"[2]

पुष्पवाटिका में ऊर्मिला को देखकर उनके मन में कोमल अनुभूतियाँ जन्म लेने लगती हैं —

"इनका प्रिय दर्शन ही मन में सुहृद भाव भरता है।"[3]

जनक की वाणी सुनकर उनका क्रोध जाग्रत हो जाता है, वे कहते हैं —

"अधिक नहीं सुन सकते कान, आप पूज्य हैं पिता समान,
फिर भी फिर भी यह अपमान, सहन नहीं कैसे मिथिलेश।"[4]
"क्या है यह प्राचीन पिनाक, कहो उठा लाऊँ कैलाश।
कहो उखाड़ूँ विन्ध्यकन्दर, अवनि उठाऊँ यथा अनन्त।"[5]

उनका यह क्रोध परशुराम-प्रसंग में और अधिक उग्र हो उठता है। परशुराम के साथ विवाद में उनकी वाक्-पटुता प्रदर्शित होती है। परशुराम ने कहा कि वे शाप और शस्त्र दोनों रखते हैं तो लक्ष्मण बोल उठते हैं —

1- अग्निलीक, भारतभूषण, पृ० 67 2- सीता पृ० 11
3- सीता, पृ० 80 4- सीता, पृ० 103 5- सीता, पृ० 104

"अहो शान्त हो पापः रहे वर्णसंकरता दूर।"[1]

लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति विश्व-विश्रुत है। राम के साथ वे भी वन चले गए। वन में राम-सीता के प्रति वे पूर्णरूपेण समर्पित हैं- सीता कहतीहैं —

"कितना सुबोध है।
आज्ञा-पालन के सिवा कुछ भी नहीं जानता, आता है सामने तो झुका सिर दृष्टि चरणों की ओर रखता है।"[2]

वे स्वयं कहते हैं —

"मां की प्रीति के लिए ही चुनता हूँ सुमन, दल, इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता —
जानने की इच्छा भी नहीं है कुछ।
माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है।"[3]

शूर्पणखा जैसी अद्वितीय सुन्दरी के प्रणय प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे विरूप कर देते हैं।

लक्ष्मण के चरित्र को प्रबुद्ध बनाने के लिए 'नरेश मेहता' ने उनके चरित्र में राजनयिक रूप को प्रतिष्ठित किया है। परम्परित लक्ष्मण राम के आज्ञानुयायी रहे हैं किन्तु 'संशय की एक रात' में लक्ष्मण कर्म तथा शक्ति के अदम्य जिजीविषा तथा अटूट वर्चस्व के प्रतीक बन गए हैं। वे राम के पूरक व्यक्तित्व हैं। निष्ठा, कर्म आचरण के कारण ही वे राम की इन्द्रिय बन पाये हैं —

"जैसा उचित समझो। बात कर लो। तुम्ही मेरी इन्द्रियाँ हो।"[4]

राम जब अपने को 'घुन चुके धनुष के टूटे फलक' से अधिक महत्व वाला नहीं मानते हैं और अपनी नियति केवल होना बताते हैं तब लक्ष्मण उस नियतिवाद का विरोध करते हैं। हम कितने ही लघु क्यों न हो, हमारी सार्थक सत्ता है जो शक्तिपूर्ण कर्म के माध्यम से चरितार्थ होती है। राम के अवसाद-ग्रस्त मनःपटल के अंधकार को अपनी ओजस्वी वाणी के आलोक से चीरते हैं —

"हमारी जलती हुई आँखों में/बँधी हुई मुट्ठी में। भिंचे हुए ओठों में।
इन थकित पैरों में/
संकलित प्रज्ञा है/वर्चस्वी निष्ठा है। उत्तोलित इच्छा है।"[5]

1- सीता, पृ0 112, 2- पंचवटीप्रसंग, पृ0 217 3-पंचवटी -प्रसंग, पृ0 219
4- संशय की एक रात पृ0 8 5- संशय की एक रात, पृ0 15

उन्हें यह भी चिन्ता नहीं है कि इस गतिमान होने में हमें कीर्ति मिलेगी, सम्भवतः उन्हें [illegible] प्राप्त होगी या इसके प्रतिकूल होगा — लेकिन यह कम नहीं है कि —

"कर्म और वर्चस् को। छीन सके कोई भी। जब तक हम जीवित हैं।"[1]

कर्म तथा शक्ति के प्रतिनिधि लक्ष्मण परम्परानुमोदित वीरता की उद्घोषणा करते है —

"आज्ञा करें राम, देखें फिर पौरुष इस बन्धु का। दूसरी बार होगा।
सागर का मन्थन, अब लंका यदि भू पर भी होती तो बाग नहीं पाती
बन्धु, लक्ष्मण के पौरुष से।"[2]

उनका बन्धु-प्रेम स्वभाव सिद्ध-पौरुष को उद्दीप्त करता है। राम के ललाट पर चिन्ता की कुटिल रेखाएँ देखने में असमर्थ लक्ष्मण कर्म की चुनौती स्वीकार करते हैं —

"कर्म की चुनौती, मुझे स्वीकार है। अग्निकुण्ड की भी पर/राम के माथे पर,
चिन्ता की रेखाए देख नहीं सकता।"[3]

सीता को लाने के लिए एकाकी तैयार हैं —

"यदि नितान्त एकाकी भी जाना पड़े, जाऊँगा। सीता को लाऊँगा, अपने पुरुषार्थ से।"[4]

इस प्रकार पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण भ्रातृस्नेह, अखण्ड पौरुष, वर्चस्वी निष्ठा, अटूट कर्म तथा जीवन्त शौर्य की प्रतिमूर्ति बन गये हैं। इसीलिए उन्हें लघु मानव कहा गया है।

दशरथ

(1) अतिथिप्रेमी :—

विश्वमित्र के आगमन में उनका अतिथि प्रेम दिखायी पड़ता है —

"अभिलाषा है यही कि कुछ सेवा भी लीजे, जो यह गौरव दिया कृपित्र वो उसकी कीजे।"[5]

(2) वीररूप :— आश्रमों में राक्षसों के उत्पात सुनकर वे युद्ध के लिए तत्पर हो जाते हैं —

"उनके बल का बोध उन्हें अब हो जावेगा, उनका सारा शौर्य समर में खो जावेगा।
निशाचरों में प्रौढ़ सूर्य की समता पाऊँ, रण के सारे खेल खेलकर बैठा हूँ मैं।"[6]

(3) पुत्रप्रेम :— दशरथ का पुत्र-प्रेम विख्यात है। वृद्धावस्था में पुत्र मोह बढ़ ही जाता है। विश्वामित्र की याचना पर वे विकल हो जाते हैं, राम के समझाने पर वे कहते हैं —

"किन्तु पुत्र, तुम मुझे प्राण से भी हो प्यारे, हो सकते हैं प्राण कहीं प्राणों से न्यारे।?
बड़े व्रतों से हाय! हुए हैं जन्म तुम्हारे, आँखों से क्या अलग करूँ आँखों के तारे।"[7]

1- संशय की एक रात, पृ० 16
2- वही, पृ० 17
3- वही, पृ० 17
4- वही, पृ० 18
5- सीता, पृ० 21
6- सीता पृ० 24-26
7- सीता, पृ० 27-28

पुत्र-प्रेम के आधिक्य के कारण उन्होंने राम के वियोग में प्राण त्याग दिए। 'संशय की एक रात' में दशरथ को छाया या प्रेत के रूप में अवतरित किया गया है। दशरथ द्वारा कवि ने राम के उमड़ते संशयों को दूर कर समस्याओं का समाधान देने का प्रयत्न किया गया है। परिचयोपरान्त राम, दशरथ के सम्मुख अपना संशय व्यक्त करते हैं कि युद्ध कलह वे नहीं चाहते थे इसीलिए वे शान्त जीवन व्यतीत करने वन चले आये किन्तु राक्षसी षडयन्त्रों ने उन्हें युद्ध में लिप्त कर रखा है। युद्ध ही शुभाशुभ कर्मों का परिणाम है। दशरथ राम को समझाते हैं —

"ओ विकल्पित पुत्र मेरे।
परिस्थितियाँ धेनु हैं
दुहो इनको
निष्ठुर अँगुलियों से दुहो इनको।"[1]

दशरथ राम को कर्माभिमुख करते हैं। उनका सारा चिन्तन जटिलता से अनुस्यूत नहीं उसमें शान्ति और सीधापन है। वे इस दृष्टि से नियतिवादी हैं, इसलिए नियम चक्र में कर्म की गति के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं दीखता है। युद्ध भी इसी कर्म का एक अंग है। संसार में शक्ति से यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धरा जय प्राप्त होते हैं, इसीलिए वे कर्तव्य के प्रति अनासक्ति पलायन कापुरुषता है —

"जितनी गुणात्मकता जानोगे
उतने ही संशय
उतने ही प्रश्न तुम्हें घेरेंगे।"[2]

इस प्रकार दशरथ आदर्शवीर, अतिथिप्रेमी एवं ममतालु रूप में चित्रित हैं।

मघ

'अनघ' का नायक है। वह लेखक के अनुसार भगवान् बुद्ध का एक साधनावतार है। उसका लालन-पालन साधारण परिवार में हुआ है, देखने में वह सौन्दर्यवान है—

"शिरोपरि चिकुरजाल शोभन है, सुधा-मधु-युक्त लोकलोचन है।
गौर तनु-कान्ति, सौम्य, शुभरुचि है, सहज ही दीख रहा यह शुचि है।
हाथ हैं लम्बे लम्बे कैसे, सुलभ हैं ऊँचे फल भी जैसे।"[3]

वह लोकोपकार हित में अपना सर्वस्व अर्पण करता है। ग्राम-सुधार में इतना लिप्त हो जाता है कि उसे अपने घर की चिन्ता नहीं रहती। षडयन्त्र में बन्दी बनाया जाता है। मार्गे अप-

1- संशय की एक रात, पृ0 46, 2- संशय की एक रात, पृ0 54

3- अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 20-21।

हृत कर ली जाती हैं, घर जला दिया जाता है किन्तु वह अपने मार्ग में दृढ़ रहता है क्योंकि उसके जीवन का लक्ष्य यही है —

"न तन-सेवा, न मन-सेवा, न जीवन और धन-सेवा, मुझे है इष्ट-जन-सेवा
सदा सच्ची भुवन-सेवा।"[1]

उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(1) अनासक्त —

मघ सुख-दुख को समबुद्धि के साथ सहन करता है। संसार कैसा भी हो वह निर्लिप्त रहना चाहता है —

"रहे प्रवाह चले ही पैना, पर मुझको इसका क्या लेना।"[2]

वह तो स्पष्टरूप से कर्म करना चाहता है। वह फलाभिलाषी नहीं है —

"फल हो किसी के हाथ, मेरे हाथ कर्म है।"[3]

यहाँ तक कि फाँसी की आज्ञा सुनकर वह निर्लिप्त रहता है।

(2) वीर :— वह शारीरिक शक्ति से सम्पन्न वीर पुरुष है। वह चार चोरों को अपनी शक्ति से पराजित कर उन्हें क्षमा करता है —

"मैं हूँ सबल तुम दीन। हैं अबल मेरे रक्ष्य।"[4]

(3) उदार :— मघ हृदय से उदार है। चोरों को अपना सुवर्ण कटिबन्ध देता है। अपने सभी सहयोगियों को अपने खाने-पीने में हिस्सा देता है। हृदय की उदारता के कारण वह पापियों से घृणा नहीं करता है, उसका कथन है कि —

"पापी का उपकार करो, हाँ पापों का प्रतिकार करो।"[5]

(4) सुधारक :— वह सच्चा सेवक है। आवश्यकतानुसार वह कुआँ खोदता है —

"मैं तो बनूँगा कूप-मेरा यही व्यायाम।"[6]

यह गाँव भर के सुधार का सारा, लिए बैठा है भार हमारा।"[7] का संकल्प कर (हाट-बाट) की सफाई करता है —

"मरम्मत कभी कुओं-बाटों की, सफाई कभी हाट-बाट की,
आप अपने हाथों करता है, गन्दगी से भी कब डरता है।"[8]

वह जात्याभिमान को भुलाकर सभी को समान समझता है, मुखिया कहता है —

1- अनघ, पृ0 संख्या 95   2 से 8 तक :- अनघ, क्रमशः पृष्ठ संख्यायें 7, 59, 14, 63, 15, 17, 17

"अजी , वह सम्राट बनता है, ऊँच हो नीचों में सनता है।
किन्तु है मनुज मात्र सम जिसको, द्विजों से शूद्र नहीं कम जिसको,
तुला जो आप सुकृत पर है, उसे क्या जाति-पाँति का डर है।"[1]

<u>कर्त्तव्यनिष्ठ</u> :— अपने निर्धारित कर्त्तव्य में उसे कोई बाधा सह्य नहीं। भोजन की चिन्ता न कर वह धर्म पालन में सजग रहता है। माँ उसे खाना खाने के लिए कहती है कि अचानक मद्यपी के आ जाने पर वह कर्त्तव्योन्मुख होता है —

"तू खा, मैं फिर खा लूँगा, प्रथम धर्म निज पालूँगा।
जन सेवा-व्रत पालूँ मैं, खींच रहा कर्त्तव्य मुझे"[2]

<u>मातृभक्त</u> :— अनघ माँ का अनन्य भक्त है। उसे चिन्ता है कि उसके भूखा रहने पर माँ खाना नहीं खायेगी। अतः वह माँ से प्रार्थना करता है —

"यदि तू भोजन कर लेती, और मुझे भी रख देती।
तो क्या अभी न खाता मैं, या न शीघ्र घर आता मैं।"[3]

कर्त्तव्य-पालन में वह भूख-प्यास की चिन्ता नहीं करता।

<u>अतिथिप्रेमी</u> :— 'मघ' अति सहृदय अतिथिप्रेमी है। उसे अतिथि देवो भव' का सिद्धान्त प्रिय है। अतः वह द्वार पर आये व्यक्ति का सत्कार करता है। एक मद्यपी उसके घर आकर उसका गला दबाकर मारना चाहता है। फिर भी 'मघ' उसकी सेवा करता है इसी तरह दूसरे मद्यपी के आने पर 'मघ' उससे गृह पवित्र करने की याचना करता है —

"करने उसकी शीघ्र सँभाल, घर से निकला 'मघ' तत्काल।
बोला तुम सुर साधु चरित्र, तो जन का गृह करो पवित्र।
लो आतिथ्य अर्चना और ठहरो हे ठाकुर इस ठौर।"[4]

<u>निर्भय</u> :— ग्राम्य-सेवा में लिप्त रहने के कारण वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को मानने वाला हो गया था। अतः उसे किसी से भी भय नहीं था। सभी अपने हैं, उसके साहस की सभी प्रशंसा करते हैं —

"साहसी और सहिष्णु बड़े हो, कष्ट, कोट देखो जहाँ खड़े हो।"[5]

<u>दृढ़ता</u> —कर्म का प्रतिपादन निष्ठा व दृढ़ता से करता है —

" मेरा प्रयत्न पूरा- चाहे रहे अधूरा।
पर मैं उसे करूँगा सब विघ्न भय तरूँगा।"[6]

---

1 से 6 तक :— अनघ , प्र सं० पृष्ठ संख्यायें — 18-19, 31, 30, 47-48, 21
100,

वैफल्य का उसे भय नहीं, विरोधी व्यक्तियों से उसे चिन्ता नहीं, निन्दा-स्तुति की चाह नहीं—

"मेरे अनेक संगी यदि हैं अनेक रंगी,
तो भी न मैं टलूँगा, निज मार्ग पर चलूँगा।"[1]

गुप्तचाह की सूचना पाकर भी वह कर्म में दृढ़ रहता है —

"घर क्या स्वयं जलूँगा, फिर भी न मैं टलूँगा,
जब एक दिन मरूँगा, तब क्यों कभी डरूँगा।"[2]

ग्रामभोजक

वह मगध ग्राम का शासक है। वह मघ की बढ़ती हुई कीर्ति से ईर्ष्या करता है। क्योंकि मघ के कारण ग्रामवासियों में झगड़ा नहीं होता है। इसके कारण भोजक की आय क्षीण होती जा रही है। वह षडयन्त्र कर मघ को राजद्रोही सिद्ध करना चाहता है—

"मघ राजविद्रोही बने चाहें वही नाचो चने।"[3]

वह अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु दूसरों का अपकार करने में संकोच नहीं करता।

मुखिया

मुखिया भी मघ के लोकोपकारी कार्यों से प्रसन्न नहीं है, वह रूढ़िवादी विचारधारा का है। उसे इस बात का दुःख है कि मघ कुलीन होकर भी निम्न जाति के लोगों के साथ उठता बैठता है। यदि उसका यही व्यवहार रहा तो मर्यादा नष्ट हो जायेगी।

"न रोकेंगे विचार यदि ऐसे, रहेगी मर्यादा फिर कैसे?"[4]

वह स्पष्टरूप से 'मघ' से कहता है —

"किन्तु नीचों को सिर न चढ़ाना
न सामाजिक विद्रोह बढ़ाना।"[5]

उसका पुत्र शोभन मघ का अनुयायी है अतः मुखिया को पुत्र शोभन की बड़ी चिन्ता है। उसका यह प्रेम स्वार्थमय है वह मघ से प्रतिशोध लेने को उद्यत होता है —

"अच्छा देखा जायेगा— वह इसका फल पायेगा।
मुझसे भी उसने छला, पर न जला दूँ तो भला।"[6]

वह ग्रामभोजक के साथ षडयन्त्र कर मघ को राजबन्दी बनाता है।

1- अनघ' पृष्ठ0 101
2- अनघ, पृष्ठ0 107
3- वही, पृष्ठ0 67
4- वही, पृष्ठ0 19
5- वही, पृष्ठ0 24
6- वही, पृष्ठ0 81

चन्द्रमा

'तारा' गीतिनाट्य के पात्र 'चन्द्रमा' में चरित्रगत निम्न विशेषताएँ दृष्टि-गोचर होती है —

(1) जिज्ञासु :— 'चन्द्रमा' जिज्ञासु प्रवृत्ति का है, अपने गुरु बृहस्पति से पाप-पुण्य और और सामाजिक बन्धन, वासना-प्रेम इत्यादि के बारे में पूछता है —

"गुरूवर क्या है पुण्य और क्या पाप है?
असफलता क्या जीवन में अभिशाप है?"[1]

वह वासना के बारे में पूछता है —

"प्रभो उचित है यह, पर है यह क्या वासना।
क्या यह पाप वृत्ति की सदा उपासना।"[2]

सामाजिक बन्धनों के बारे में पूछता है —

"है प्रत्येक व्यक्ति प्रतिकूल समाज से।
और उसी से निर्मित सकल समाज है।
फिर समाज के बन्धन का है मूल्य क्या?"[3]

(2) आज्ञापालक :— चन्द्रमा गुरु की आज्ञा मानने वाला है। बृहस्पति देश-पर्यटन को जाते हुए चन्द्रमा से कहते हैं —

"और वत्स तुम मेरे प्यारे शिष्य हो,
आश्रम की सेवा का तुम पर भार है"[4]

तो चन्द्रमा गुरु-आज्ञा स्वीकार कर कहता है —

"यह आज्ञा प्रभु की मुझको स्वीकार है।"[5]

(3) चिन्तनशील :— 'तारा' को देखकर उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व जन्म लेता है। 'तारा' यदि एक ओर अनिन्द्य सुन्दरी है तो दूसरी ओर वह गुरुपत्नी है। इस सन्दर्भ में वह चिन्तन करता है —

"क्यों आँखे झप गयी और कम्पन हुआ?
हृदय धड़कने लगा वेग से किसलिए?
ये अभिशापित अशुभ शकुन आ रहे
तारा गुरु-पत्नी तारा तुम कौन हो?

1- तारा, भगवती चरण वर्मा, पृ0 59 2- तारा, भगवती चरण वर्मा, पृ0 59
3- वही, पृ0 59 4- वही, पृ0 62 5- वही, पृ0 62

धूम रहित तुम अग्नि शिखा की ज्वाल हो,
उन्नत पुलक हो, तुम शैशव मृणाल हो,
अरे कौन हो सुन्दरता की जाल हो,
कर्म क्षेत्र के पथ पर फंदा जाल हो।"[1]

वह आगे सोचता है —

"यौवन मदिरा से नाविक उन्मत्त है।
नहीं दीख पड़ता अब उसे प्रकाश है।
पतन, प्रेम क्या तुम यथार्थ ही पतन हो
नहीं विश्व के निर्णय का आधार क्या?"[2]

वासना के बारे में वह कहता है —

"अरी वासना क्या तुम निश्चय पाप हो?"[3]

(4) गुरूद्रोही :— 'चन्द्रमा' गुरूपत्नी 'तारा' से प्रणय निवेदन करता है। इस प्रकार गुरू-द्रोही के रूपमें उपस्थित होता है — 'तारा' कहती है यह पाप है, तो चन्द्रमा उत्तरदेता है—

"पाप, कौन कह सकता है इसको पाप है,
कहो पाप की परिभाषा क्या एक है?
गुरूपत्नी, हो देवि तुम्हारे चरण में
आया है यह दास भिखारी शान्ति का।
उसे प्रेम की दीक्षा देकर शान्ति दो।"[4]

शिल्पी

'शिल्पी' गीतिनाट्य का पात्र शिल्पी आकृतियों से सन्तुष्ट नहीं है —

"किन्तु मुझे सन्तोष नहीं अपनी कृतियों से।
नित्य नए रूपों रेखाओं में जगती जो
दिव्य मूर्ति मेरे मन की आँखों के सन्मुख
उसे अभी मैं बाँध नहीं पाया हूँ अपनी
शिल्प कला में जब तक उसको जड़ प्रस्तर में
अंकित करने की चेष्टा करता प्रयत्न से
उसका रूप बदल जाता कल्पना क्षितिज में।"[5]

1 से 4 तक :— तारा, क्रमशः पृष्ठ संख्यायें —62, 64, 65, 67,

5- शिल्पी, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 सं0 16-17

(1) चिरन्तन सत्य का प्रेमी :—

शिल्पी इस संक्रान्ति -काल के नित्य परिवर्तनशील वास्तविकता के पट में मानव आत्मा के चिरन्तन सत्य को अंकित करना चाहता है —

"नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट में,
मूर्तित करूँ चिरन्तन सत्य मनुज आत्मा का।"[1]

शिल्पी गाँधी , ईशामसीह, गुरुदेव रवीन्द्र, लौहपुरुष सरदार पटेल, राधाकृष्ण इत्यादि की मूर्तियाँ बनायी हैं। नाटककार 'शिल्पी' को अहिंसा में विश्वास रखने वाला कहता है —

"जहाँ अन्य देशों के जननायक इस युग में
अंग रक्षकों से बहु रहते घिरे निरन्तर
वहाँ अहिंसक बापू निर्भय स्वर्ग दूत से
मुक्त विचरते रहे सतत जनगण समूह में।"[2]

(2) मानव आदर ही प्रभु-पूजा :—

'शिल्पी' मानवआदर ही प्रभु की पूजा है इस सिद्धान्त में विश्वास करने वाला है। लोग 'शिल्पी' से प्रतिमापूजन के महत्व पर प्रकाश डालने के लिए कहते हैं तो शिल्पी कहता है —

"जड़ प्रतिमा तो मात्र भाव का बाह्य रूप है।
जीवन के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति आदर,
जीवों के प्रति स्नेह, यही प्रभु का पूजन है।
यह समस्त संसृति ही ईश्वर की प्रतिमा है।
सार रूप में वही व्याप्त है निखिल जगत में
मानव का मन ही उसका पावन मंदिर है॥"[3]

(3) वास्तविकता पर विश्वास :— शिल्पी कल्पना जगत में विचरण न कर वास्तविकता पर विश्वास करने वाला है। वह श्रृंगारिक चित्र न गढ़ कर नवमनुष्यत्व को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है। वह अतृप्त वासना पूरक अर्धनग्न चित्र न गढ़ कर उन कृषकों को चित्रित करना चाहता है जो धरती से लड़कर अन्न उपजाते हैं —

"इधर किसान खड़े हैं, धरती के प्रतिनिधि-से
स्वर्ण शस्य डाली सिर पर धर उधर श्रमिक हैं
नवयुग के निर्माता, हृष्ट-पुष्ट तन —

---

1 से 3 तक :— शिल्पी , क्रमशः पृष्ठ 17, 20, 33

पैरों के नीचे उद्वेलित जीवन सागर
युग संघर्षण, जन आकांक्षा का द्योतक है।"[1]

नाटककार कहता है इस चित्रण से देश में जागृति आयेगी —

"निश्चय यह जन के मन मंदिर की प्रतिमा है,
साकार जन आकांक्षा की प्रतीक जन जीवनमय है।
सामूहिक चेतना हो उठी मूर्तित इसमें
शक्ति स्फूर्ति विश्वास भरेगी यह जन मन में।
× × × ×
नव युग जीवन की शोभा प्रतिमा की जय हो।"[2]

कृष्ण

कृष्ण के अनेक रूपों का उल्लेख 'राधा' और 'अंधायुग' गीतिनाट्यों में हुआ है। एक तरफ वे गोपी रमण है तो दूसरी तरफ गीता ज्ञानोपदेशक योगीश्वर हैं —

(1)सौन्दर्य — कृष्ण अद्वितीय सुन्दर हैं। उनके शारीरिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में भट्ट जी ने लिखा है —"प्रशस्त ललाट, चमकता मुख, उभरी नुकीली नाक, रेख फूट रही है। बलिष्ठ बाहु, सुता हुआ गठीला शरीर, न बहुत लम्बा न छोटा कद। कमर में फेंटा कसा हुआ, पीला तथा रेशमी वस्त्र, भोली भाव-भंगिमा, ज्ञानमण्डित मुखाकृति, सरसता और सरलता तथा सौन्दर्य के अवतार।"[3] राधा स्वयं कहती है —

"रूप यह जो दामिनी से भी अधिक उज्ज्वल, वर्चस,
काम से सुन्दर कला के पूर्ण अभिलषित सृजन, चित्रण।"[4]

इस भुवन मोहिनि छवि को देख कौन अपने मन को वश में रख सकती है ?—

"आपकी यह भुवनमोहिनि छवि निरखकर कौन नारी,
कौन ललना, कौन रमणी, धधकती जिसमें पिपासा,
× × × × ×
विश्ववन्द्य अनिन्द्य, प्रतिमा में न आकर लीन होगी?"[5]

इसीलिए गोकुल की सभी गोपियाँ उनमें मुग्ध हैं।

(2)प्रेमी :— कृष्ण का प्रेम आश्चर्य का प्रेम है। इस प्रेम को मैं लौकिक वासना की सीढ़ी मान्य नहीं है, यह तो शुचि है, उज्ज्वल है, श्रेष्ठ है, अलौकिक है। कृष्ण कहते हैं —

1- शिल्पी, पृ0 42
2- वही, पृ0 44
3- राधा, उदयशंकर भट्ट, पृ0 110
4- वही, पृ0 117
5- वही, पृ0113-114

"यह नहीं है प्रेम, यह उन्माद था है रूप गर्वित
देख सुन्दरतर किसी को वासना आकृष्ट होती।
प्रेम अनुभव के पुलक में प्रोत्फुल्ल आनन्द में भर
प्राण को, मन को निछावर निचुड़-सा करके - तभी तक
प्रेम है वह शुद्ध राधे, वासना उससे उबरती
× × × × ×
प्रेम आकर्षण, तथा आनन्द आत्मा की अलकृति
उसे तन का दास बनने नहीं देना शुद्ध सुन्दरि।"[1]

अन्त में उनका राधा से मिलन होता है।

(3)मर्यादा प्रिय — प्रेम में मर्यादा का बंधन कृष्ण को स्वीकार नहीं है। धर्मयुक्त मर्यादा उसे प्रिय है। विशाखा कहती है —

"है जिसे मर्याद प्रिय और धर्म का पालन महाप्रिय।"[2]

(3)प्रकृति-प्रेमी:— अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उसने प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में व्यतीत किया। उसे प्राकृतिक शोभा अत्यन्त प्रिय है —

"अहा, यह क्या हो रहा है, इस शरद की पूर्णिमा में।
चन्द्रिका-विस्फुरित बेला मनहरण पल-पल प्रकृति की,
बिखर-सा बिखरा हुआ है राशि-राशि आनन्द-सा स्मय।"[3]

(5)गीता-ज्ञानोपदेशक :— यद्यपि कृष्ण ने गीता का उपदेश महाभारत युद्ध के समय दिया था किन्तु उनका समग्र जीवन अनासक्त सर्वद्वन्द्व विनिर्मुक्त ही रहा है। इसी अनुकूल जीवन के सिद्धान्तों की व्याख्या अर्जुन से की थी किन्तु उदयशंकर भट्ट ने मथुरा जाने के पूर्व ही कृष्ण से राधा को स्थित प्रज्ञ होने का उपदेश कराया है। वे विवेक सम्मत कर्म करने को महत्व देते हैं —

"है विवेक समग्र मूलाधार मानव-चेतना का
फलाफल ही उचित निर्णय ज्ञान का अज्ञान का।"[4]

वे कर्तव्य को धर्म मानते हैं जिससे आत्म-चिन्तन एवं लोक-हित सम्पादित हो —

"धर्म है केवल समाजोन्नति तथा उन्नति राष्ट्र-उन्नति।
आत्म-चिन्तन, लोक-हित, कर्तव्य-पालन, बस यही तो।"[5]

1- राधा, पृ0 115
2- राधा, पृ0 102
3- वही, पृ0 128
4- वही, पृ0 130
5- वही, पृ0 130

देशहित का कार्य सर्वोपरि है। इसके लिए द्वन्द्वहीन होने की बात वे कहते हैं —

"द्वन्द्वहीन, प्रमत्त मैं तो सदा चिन्ता-हीन रहता
सामने जो आ पड़े उसको सहो साहस न हारो
हम सभी चेतन कड़ी है उस समाज-विशेष की सखि,
उसे ही अविच्छिन्न करते रहें यह ही सत्य-सेवा,
देश का हित भी इसी में, इसी में जीवन-सफलता।"[1]

उन्होंने गीतोक्त अवतार-प्रयोजन का उल्लेख किया है —

"मैं जगत् का पाप, मिथ्याचार, छल, विद्वेष हरने
और वास्तव धर्म की संस्थापना का सुनिश्चय ले,
तथा नैतिक प्रेम का ही रूप जग को दिखाने को
यहाँ आया हूँ महाव्रत यही मेरा सत्य राधे।"[2]

उक्त सिद्धान्त वाक्यों के डिम्-डिम घोष से यह न समझना चाहिए कि कृष्ण ईश्वर हैं। वास्तव में 'राधा' नामक गीतिनाट्य में वे विवेकवान, पुरुष रूप में ही चित्रित हैं। कृष्ण सिंहल ने लिखा है —"कृष्ण गीता के विवेकी मोह रागातीत जीवन्मुक्त पुरुष की प्रतिमूर्ति हैं।"[3]

'अन्धायुग' में उनके चरित्र का विकास किया गया है। उसमें विरोधी-प्रवृत्तियों का सामन्जस्य दिखायी पड़ता है। जहाँ सभी पात्र पथ-भ्रष्ट एवं युद्ध-प्रिय हैं वहीं कृष्ण तटस्थ एवं अनासक्त हैं। किन्तु यह अनासक्ति भी विभक्त है। जहाँ एक ओर कौरव पक्ष को अपनी नारायणी सेना देते हैं वहीं दूसरी ओर पाण्डव पक्ष की ओर स्वयं होकर अपने व्यक्तित्व को विभाजित करते हैं। वे एक पक्षीय होने के कारण निर्णय लेने में असमर्थ हैं। सत्यासत्य का वरण अनासक्त होकर न करके, वे परिस्थिति सापेक्ष्य रूप में करते हैं। इस प्रकार वे आधुनिक संशय ग्रस्त मानव के प्रतिनिधि के रूप में दिखायी देते हैं। उनके ईश्वरत्व की झलक कहीं-कहीं दिखाई देती है। वृद्ध याचक कृष्ण-अर्जुन संवाद का उल्लेख करता है —

"मैं हूँ परात्पर। जो कहता हूँ करो
सत्य जीतेगा/ मुझसे लो सत्य, मत डरो।"[4]

गीतोपदेशक अनासक्त सबके योग-क्षेम-वाहक कृष्ण, अर्जुन से सब कुछ समर्पित करने को कहते हैं—

"ज्ञान जो समर्पित नहीं है/अधूरा है
मनोबुद्धि तुम अर्पित कर दो/ मुझे/
भय से मुक्त होकर/ तुम प्राप्त मुझे ही होगे/इसमें सन्देह नहीं।"[5]

1- राधा, पृ0139   2- राधा, पृ0 117   3- हिन्दी गीतिनाट्य: कृष्ण सिंहल, पृ097
4- अन्धायुग, धर्मवीर भारती, पृ024   5- अन्धायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 20

वे कुशल राजनीतिज्ञ हैं, निःशस्त्र होकर भी सारे महाभारत का संचालन करते हैं। उनमें इतनी शक्ति है कि वे सभी को अपने मनोनुकूल बना लेते हैं। गान्धारी उन्हें वंचक कहती है—

"जिसको तुम कहते हो प्रभु/उसने जब चाहा,
मर्यादा को अपने हित में बदल लिया वंचक है।"[1]

धर्मवीर भारती ने दिव्य आदर्शों की प्रतिमूर्ति तथा मर्यादा रक्षक की संज्ञा से अलंकृत किया है। उन्होंने गान्धारी के शाप को जिस सहजता से स्वीकार किया है, वह सचमुच ही आश्चर्यजनक है। कृष्ण ही अश्वत्थामा के अंगों से रक्त-पीप बनकर बहता रहा है।"[2]

यह ही महाभारत के युद्ध में करोड़ों बार मरा है। इस प्रकार यदि हम देखें तो कृष्ण का चरित्र बहुत ही रहस्यमय है, एक तरफ वे ब्रह्म हैं तो दूसरी तरफ दार्शनिक। एक तरफ मर्यादावान हैं तो दूसरी तरफ मर्यादाहीन।

गुणधर

'उन्मुक्त' में गुणधर के माध्यम से गाँधीदर्शन' को उभारा गया है। गान्धीदर्शन में निष्ठावान गुणधर का व्यक्तित्व स्थिर नहीं है। वह भीरु और दयालु किस्म का जीव है—

"होगा परिणाम अन्त में क्या, यह सोचा है, क्या हम हरा सकेंगे लौह सैन्यबल को।"[3]

(2)संशययुक्त :— गुणधर कार्य को करने से पहले उस कार्य में संशय व्यक्त करने वाला व्यक्ति है ——"फिर भी न जाने किस अन्तर के कोने में, कोई एक संशय हटाये नहीं हटता।

बोल उठता है वह बार बार फिर कैसे कैसे कुछ होगा नहीं, व्यर्थ यह सब है।"[4]

(3)प्रेमी :— गुणधर पत्नी कुन्तला से हमेशा प्रेमालाप करने को उत्सुक रहता है। पत्नी की प्रेरणा से युद्ध में प्रवृत्त होता है —

"मेरे नयनों की ज्योति, मेरी उर तन्त्री की मुकुल मधुर गूँज।
देखूँ और फिर क्या मेरी मन मोहिनी।"[5]

(4)दयालु :— एक स्थिति ऐसी भी आती है कि युद्धक्षेत्र में एक शत्रु-पक्ष के सैनिक को मरणासन्न देखकर उसकी करूणा के बाँध टूट जाते हैं —

"हृदय मेरा भर आया, मैंने उसके निकट भरा जल पात्र बढ़ाया।"[6]
"वह सैनिक भी न था और कुछ , वह था मानव, मेरा मानव।"[7]

किन्तु एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गुणधर ऐसा कायर पात्र है जो गाँधीदर्शन में आस्था रखता है, किन्तु वह सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है।

1-अन्धायुग-पृ022 3 से 7 तक :— उन्मुक्त -श्री सियारामशरण गुप्त, क्रमशः पृ0स023,
2-अन्धायुग-पृ0 100 27, 34, 78, 81

पुष्पदन्त

(1)वीर :— पुष्पदन्त वीर है। शत्रु-सेना के आक्रमण के समय वह वीरता का परिचय देता है —

"सोचने का किसको अब अवकाश कहाँ। निश्चित है वीरों का एक ही सुपरिणाम"
एक ही सुगति है। मृत्यु और जीवन के इस-उस कूल में।"[1]

(2)युद्धप्रिय :— पुष्पदन्त ~~[illegible]~~ युद्धप्रिय है। गुप्तचर से युद्ध की नवीन विधियों को बताते हुए कहता है —

"तो क्या क्रूर यातुधान की दासता करेंगे हम? क्या हमारी बुद्धि भी कर न सकेगी
आविष्कार वैसे ही, दे सकें उसे जो योग्य उत्तर समर में?"[2]

(3)देशभक्त :— पुष्पदन्त के हृदय में देशभक्ति की उत्कट अभिलाषा है। वे देश को पराधीन नहीं देख सकता —

"कुसुम द्वीप है कुसुम द्वीप सर्वस्व हमारे, हम सब हैं सर्वत्र, सर्वथा सदा तुम्हारे।
तुम्हीं हमारी ज्ञान-ज्योति अन्तः करणों में, अर्पित हैं ये प्राण तुम्हारे ही चरणों में।
शत्रु दलित हम तुम्हें कदापि न होने देंगे, किसी लौह के साथ कहीं भी लोहा लेंगे॥"[3]

कर्ण

कर्ण गीतिनाट्य का नायक है। इसकी उत्पत्ति के लिए वर्मा जी ने पुराण परम्परा में स्वीकृत किंवदन्ती का उल्लेख किया है। यह कुन्ती के कुमारावस्था का पुत्र है। भीष्म - पितामह तथा द्रोण के बाद कर्ण ही महाभारत युद्ध का सेनापति बना था, जो अर्जुन द्वारा मारा गया। इस गीतिनाट्य में कर्ण की निम्न विशेषताओं का उल्लेख हुआ है —

(1)अभिमानी :— कर्ण अद्भुत वीर- लक्ष्य-भेदक था, उसे अपने शौर्य पर अभिमान था। शल्य कहता है —

"तुम उच्छृंखल तुम अविवेकी अभिमानी, हे सूतपुत्र तुम अपना धनुष उठाओ,
देखूँ कितना अभिमान, कि कितना पानी।"[4]

वह स्वयं अपने भुजदण्डों पर जीवित रहने की बात कहता है —

"मैं सूतपुत्र? मैं हूँ मनुष्य, मैं पावन, मैं निष्कलंक, मैं अकलुष, मैं व्रतधारी
मैं जीवित हूँ निज भुजदण्डों के बल पर, मैं राज्य लोभ से बना कभी न भिखारी।"[5]

1—उन्मुक्त, सियारामशरण गुप्त, पृ0 23, 4—त्रिपथगा, भगवतीचरण वर्मा, पृ0 14
2— वही, पृ028 3— वही, पृ0 41 5— वही, पृ0 18

उसके मरने पर कुपित शल्य को कृष्ण इस प्रकार उसके चरित्र के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कर्ण को अभिमानी कहते हैं —

"वह कब विनयी बन सका और कब कोमल, वह अहम्भाव का था उद्दाम पुजारी।"[1]

इस अहं भावना के कारण ही वह द्रौपदी से अपना अपमान सहन नहीं कर पाता।

(2)सेनापति — भीष्म और द्रोण के बाद सेनापति बना। उसे दोनों वीरों की कमियों का ज्ञान था अतः उनसे दूर रह, वह विजय का अभिलाषी था —

"मैं कर्ण करूँगा सेना का संचालन, मैं कर्ण चल रहा कुरुक्षेत्र को मथने,
मैं आज विजय का वरण करूँगा निश्चय, यदि साथ दिया मेरा सारथि ने रथ ने।"[2]

(3)दानी :— कर्ण के चरित्र का मूल केन्द्र बिन्दु उसकी दानवीरता ही है। इन्द्र उससे कवच कुण्डल माँगने आया था। इन्हीं के कारण जबकि वह अजेय था किन्तु दानी होने के कारण वह भिक्षुक को निराश कैसे कर दे, जबकि भिखारी साक्षात् इन्द्र है —

"वह इन्द्र भिखारी बनकर मेरे सम्मुख आया था जब अमरत्व माँगने मेरा,
मैंने कर दी थी उसकी इच्छा पूरी, कब दान-धर्म से आनन ने मुख फेरा।"[3]

वह स्वयं कहता है —"नहीं दान में कर्ण कभी पीछे रहा।"[4]

उसने अन्तिम समय में भी याचक धर्म को दाँत तोड़कर स्वर्ण का दान दिया है। इसी दान-वीरता के कारण भगवती चरण वर्मा उससे सर्वाधिक प्रभावित हैं — "अतिशय वीर, पराक्रमी दानी और उदार, इन शब्दों में कर्ण के सम्पूर्ण चरित्र का विश्लेषण किया जा सकता है। अपने पौरुष और शौर्य पर उसे विश्वास था, अपनी उदारता और दानवृत्ति पर उसे अभिमान था।[5]

अजेय

वह सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित गीतिनाट्य 'स्नेह या स्वर्ग' का नायक है। उसने स्नेहलता के लिए जयन्त से युद्ध किया था अन्त में स्नेहलता की जयमाला उसके गले में पड़ती है। उसकी निम्न चारित्रिक विशेषताएँ हैं —

(1)स्वाभिमानी :— उसे अपनी शक्ति एवं प्रेम का स्वाभिमान है। जयन्त की प्रतिस्पर्धा में आने पर वह अपने को हीन नहीं समझता है —

"किन्तु, मित्र मैं तो अपने को किसी सुर से, मानता नहीं हूँ दीन, हीन, किसी बात में।
इससे क्या जो वह अमर्त्य है, मैं मर्त्य हूँ मृत्यु तो सभी को निज जीवन में आयेगी।"[6]

1-त्रिपथगा, पृ039
2- वही, पृ013
3- वही, 28
4- त्रिपथगा, पृ0 30
5- वही, भूमिका, पृ0 1

<u>(प्रेमी :—</u>   वह स्नेहलता के बाल्य-काल का सखा है। अतः साथ-साथ खेलते-कूदते प्रेम हो जाना स्वाभाविक ही है —

"संग-संग खेले हम, खेल में लड़े भी हैं, लड़के अलग हुए किन्तु मिले शीघ्र ही सम्भव नहीं था दूर रह सकना हमें। कभी स्नेह, कभी क्रोध, कभी हँसी, रोना भी"[1] स्नेहलता के मान की रक्षा वह सदैव करता रहा है।

<u>वीर :—</u>   अजेय श्रेष्ठ वीर है। जयन्त की प्रतिस्पर्धा में वह प्रत्येक दृष्टि से आपने को वीर कहता है। उसे इस बात का भय नहीं है कि वह मर्त्य है, उसके पास सीमित साधन है —

"मैं प्रसिद्ध शूर श्रेष्ठ हूँगा इस देश का, जीत गया यदि सुर संगर में जूझ के।
नियत समय पूर्व मर्त्य या अमर्त्य हो, जिसमें अधिक शौर्य होगा वही जीतेगा।"[2]

और द्वन्द्वयुद्ध में उसने इस बात को सिद्धकर दिया है कि वह जयन्त से कम वीर नहीं है। इस प्रकार अजेय श्रेष्ठ नायक- प्रेमी तथा वीर है।

<u>यक्ष</u>

'यक्ष' मेघदूत(पंत) का नायक है। नवोढ़ा पत्नी के प्रेम में आबद्ध होने के कारण वह कर्तव्यभ्रष्ट हो गया था जिससे उसको पत्नी से एक वर्ष तक अलग रहने का शाप मिला था। पंत ने उसकी निम्न चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख किया है —

<u>प्रेमी :—</u>   यक्ष अपनी पत्नी का प्रेमी है। शाप मिलने पर वह पत्नी से कहता है —

"कैसे जाऊँ तुम्हें छोड़कर, प्रेयसि तुम मेरे प्राणों के
मधुर वृन्त पर स्वर्ग कुसुम सी, खिली हुई जो अपलक लोचन?
×   ×   ×   ×   ×
नहीं प्रिये, प्रेमी का अन्तर प्रेयसी की प्रतिमा को तजकर, नहीं पूजता अन्य मूर्ति को।"[3]

<u>विरही :—</u>   यक्ष पत्नी के विरह में दुर्बल हो गया है। मेघ, यक्ष-पत्नी से सदेश कहता है — "तुमसे बढ़कर वह विरही है, तुमसे वह कृश दुर्बल है।
उत्कण्ठित वह भी है दृग से उसके भी बहता जल है।"[4]

<u>युवक</u>

यह रजत शिखर का नायक है जो अपने रोमानी भावनाओं के कारण व्यथित होता है किन्तु अन्त में वह विस्थापनों की सहायता करके साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। उसकी निम्न चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख पंत जी ने किया है — .

1- स्नेह या स्वर्ग, सेठगोविन्ददास पृ07
2- वही, पृ0 35-36
3- मेघदूत, पंत, (संगम) पृ0 2   4- मेघदूत, पंत, पृ0 41

(1) प्रकृति-प्रेमी :— युवक प्राकृतिक सुषमा को देखकर आकृष्ट होता है —

"शरद चाँदनी दुग्ध फेन सा कम्पित उर ले, स्वप्नों की गुंजित चापों से निशा वन को
मुखरित कर देती जब नव कौतुक सी, फूलों के मृदु अवयव ओसों में लपेट कर।"[1]

(2) प्रेमी :— युवक एक युवती से प्रेम करता है, जो देख उसका भावुक मन उल्लसित हो उठता है। वह अतीत की याद करते हुए कहता है —

"तुम्हीं प्रथम मधु ऋतु आयी थी, जब प्राणों के पल्लव मरमर कर स्वनों से सिहर
उठे थे।

"मदिरारुण लपटों में उर की आकांक्षाएँ फूट पड़ी थीं सहसा तुमको घेर चतुर्दिक।"[2]

(3) ईर्ष्यालु :— युवक जब देखता है कि उसकी प्रेयसी उससे विरक्त हो रही है तो वह ईर्ष्यान्ध बन उस पर लांछन लगाता है —

"समझ गया मैं दूर हो गया मेरा संशय, नया केन्द्र मिल गया तुम्हारी मधुर वृत्ति को
नया पुष्ट आधार हृदय की प्रणय सुधा को।"[3]

(4) ऊर्ध्वरेता :— रजतशिखर मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। युवक के माध्यम से जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। जब वासनाएँ, कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं तभी मानव मुक्त होगा। युवक का यही सुविचारित मत है, वह कहता है —

"ऊर्ध्व मान्यताओं का ही सामूहिक जीवन, समतल गत संचरण धरा के निश्चेतन से। अविरत संघर्षण कर नित ऊपर उठ कर जो सामाजिक भू जीवन जो संगठित हुआ।"[4]

(5) साधक :— युवक विचारक है। जागतिक कुछ द्वन्द्वों को समाप्त करने के लिए वह मान्यतावादी बनता है। व्याकुल जन समूह को देखकर वह उनकी सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित करता है। वह कहता है —

"आराधक बन सकूँ प्रभात में दिव्य ज्योति का, जो इस मृण्मय घर द्वीप की अमर
शिखा है। जिसकी करुणा किरणों के अन्तःस्पर्शों से इस द्रोणी का तम स्वप्नों में दीपित
होता। वह आगे कहता है —

"आओ हम दोनों मिल प्राणों की घाटी में विस्थापित मानव का फिर घर द्वार बसाएँ
शुभ्र रजत शिखरों की ऊर्ध्वग दिव्य शांति ले, अंबर की व्यापकता, सागर की गंभीरता"[5]

1- रजतशिखर-पंत, पृ० 9
2- वही, पृ० 13
3- वही, पृ० 18
4- रजतशिखर, पंत, पृ० 24
5- वही, पृ० 38-40

(31)

कवि

'कवि' गीतिनाट्य का नायक कवि है। उसकी चारित्रिक निम्न विशेषताएँ हैं —

(1) प्रकृतिप्रेमी :— कवि एकान्त में बैठा प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वादन करता है —

"यह छायावन सुषमा की पंखुड़ियाँ बिखेर, दिशि-दिशि में
है आनन्द-मगन, गा रहा विहग कल-कूजन के शत-शत गायन।
नव छवि नव मधु से रँगे भ्रमर, हैं गूँज रहे बन कर मर्मर।"[1]

(2) प्रेमी — कवि कल्पना परी को देखकर चकित रह जाता है, दोनों की आँखें मिल जाती हैं। कवि का रोम-रोम एक विचित्र उमंग से भर जाता है, कौतुक होकर कल्पना रानी की प्रशंसा में गीत गाता है —

"जीवन की ज्वाला में जलते सपने मैं लेकर भागा था,
सुखमय स्वप्नों के प्राण-हेतु मैंने से करुणा-कण माँगा था।
करुणा की किरणें स्वप्नों को अब अमर बनाने आई है।"[2]

(3) मानवतावादी :— कवि भूखे कंकाल देखकर इन्हें अपनी कविता से शक्ति देने का संकल्प करता है। नूतन निर्माण करने की कल्पना करता है, इस प्रकार वह अपने व्यक्तिगत जीवन की मुस्कान न देखकर, सामाजिक जीवन को देखता है —

"मैंने देखा है, आज विश्व का सत्य रूप। मैंने है अब चीत्कार सुना,
जगती का हाहाकार सुना मैं सह न सकूँगा उसे देवि।"[3]

शासक

'सृष्टि का आखिरी आदमी' गीतिनाट्य का शासक वर्तमान प्रजातंत्र प्रणाली का प्रतीक है। जहाँ 'वोट' सर्वोपरि होता है। अज्ञान, अहंकार के कारण जनता को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा करता है, परिणाम स्वरूप जनता कोअपने पक्ष में नहीं कर सका। प्रजा उसके अहसान भूल गयी, उसने प्रजा को जो सुख-समृद्धि दी है प्रजा भूल गयी —

"ओ कमबख्तो, भूल गए तुम/ मैंने अपने राज्य-काल में
सोने से मढ़ दी दीवारें/ धरती पर फौलादी चादर चढ़ी हुई है।"[4]

वह प्रजातंत्र का समर्थक है, जहाँ वोट की शक्ति सर्वस्व होती है। वोट के बिना कमायत भी नहीं आ सकती है —

1- कवि, सिद्धनाथ कुमार पृ0 205
2- वही, पृ0 211
3- कवि, सिद्धनाथ कुमार, पृ0235
4- सृष्टि का आखिरी आदमी, धर्मवीर भारती, पृ0187

"फिर मेरे इस प्रजातंत्र में/ बिना वोट के नहीं फूल तक खिलता है जब,

क्या मजाल है/बिना वोट के यहाँ क्यामत झाँक सके तो।"[1]

वह प्राकृतिक शक्तियों को वश में करना चाहता है, इसीलिए बादल को गोली मारने का आदेश देता है। वह वैज्ञानिक की भी उपेक्षा करता है। इस प्रकार शासक वर्तमान प्रजातंत्र प्रणाली का है, स्वयं तो प्रजा का हितैषी बनता है किन्तु जन-जीवन से खिलवाड़ करने में किंचित् संकोच नहीं करता है। उसके जीवन का कोई आदर्श नहीं है।

अजय

'सृष्टि की साँझ' का नायक है। उसकी अहं-भावना के कारण सारा राष्ट्र अणु-युद्ध में फँस गया, परिणाम स्वरूप व्यापक नरसंहार हुआ। सृष्टि नष्ट हो गयी। इस वीभत्स दृश्य को देख अजय के मन में ग्लानि होती है और वह नयी सृष्टि के सपने देखने लगता है। वह रेखा को श्रद्धा बनाकर नया मनु बनता है। उसके चरित्र की निम्न विशेषताएँ हैं—

(1)श्रेष्ठनेता :— अजय अपने देश का लोक-प्रिय नेता है, उसके द्वारा ~~का~~ संदेश प्रसारित करने पर सारा राष्ट्र युद्ध की लपट में आ गया —

"तुमने ही तो/ रेडियो-यन्त्र से भेजा था/ सन्देश राष्ट्र के जन-जन को।

तुमने ही तो/ था उत्तेजित कर दिया उन्हें निज वाणी से।"[2]

(2)अहंकारी :— अजय के चरित्रमें यही अवगुण था कि वह सत्ता लोलुप होने के कारण मदान्ध था।अन्य का अस्तित्व उसे स्वीकार नहीं था। वह कहता है —

"था मेरा अहम् सदा/ मुझसे कहता रहता/ केवल मैं ही हूँ सत्य

और सब मिथ्या है?xxxx मेरे विचार ही अपनाएँ/

मेरे पद चिन्हों पर आएँ।x xx जब मेरे प्रतिद्वन्द्वी ने

मेरे सत्य विचार नहीं माने। मैंने समझा अपमान उसे।

जग गई घृणा की आग, जगा विद्वेष।"[3]

(3)मानवता-प्रेमी :— उसकी ईर्ष्या नरसंहार का कारण बनी। तब उसे ग्लानि हुई और उसका सुपर ईगो बड़(इदम्)पर हावी हो गया। वह मानवता का प्रेमी बन गया वह कहता है — "मेरा अन्तर हो रहा विकल, वसुधा का यह विध्वंस देख।

मैं देख नहीं सकता पल-भर

क्षत-विक्षत आहत, मृतप्राय, इस धरती को।"[4]

1- सृष्टि का आखिरी आदमी, धर्मवीर भारती, पृ0 187

2- सृष्टि की साँझ, सिद्धनाथ कुमार पृ0 58

3से4तक वही, क्रमशः पृ0 40, 50

पंकज

'संघर्ष' का नायक पंकज एक मूर्तिकार है उसका अन्तर्मन उसे मानव-धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहता है —

"तुम कलाकार ही नहीं, नहीं शिल्पी केवल/
तुम रक्त-मांस के पुतले भी, मानव भी हो।"[1]

उसका मन परिवार को सुखी बनाने के लिए प्रेरित करता है जबकि वह इस कला-साधना से जगत् को सुखी बनाने की कल्पना करता है —

"देखो, मेरे उर में/ आकांक्षाएँ हैं जाग रही कितनी,
मेरी सांसें जग की/ मंगल कामना किया करतीं सदैव।"[2]

मन उसे संसार की नश्वरता एवं कला की अमरता के बारे में समझाता है —

"नश्वर देह कभी मिट जायगी। मिट जायेंगे/ जग के वैभवैश्वर्य सभी।
मिट जायेगी दुनिया की सारी चमक-दमक।
लेकिन यह अनुपमकला-सृष्टि/ जग के ओठों पर भी सदैव मुस्कायगी।"[3]

युयुत्सु

धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु सत्य पक्ष का प्रबल समर्थक होने के कारण वह कौरवपक्ष का परित्याग कर, पाण्डव-पक्ष की ओर युद्ध में सम्मिलित होता है। युद्धोपरान्त वह अपने महल वापस आता है, जहाँ उसे अपने परिवार से अपमान मिलता है। इस पीड़ा से वह व्यथित हो उठता है —

"मेरा अपराध सिर्फ इतना है/ सत्य पर रहा मैं दृढ़
द्रोण भीष्म/ सबके सब महारथी/ नहीं जा सके/ दुर्योधन के विरुद्ध
फिर भी मैंने कहा/ पक्ष मैं असत्य का नहीं लूँगा
मैं भी हूँ कौरव/ पर सत्य बड़ा है कौरव वंश से।"[4]

नगर में उसके प्रवेश होते ही द्वार बन्द कर लेना, माता गान्धारी की उपेक्षा से वह अर्द्ध-विक्षिप्त हो जाता है—वह सोचता है —

"अकेला था यदि मैं,
कर लेता समझौता असत्य से।"[5]

1- संघर्ष, सिद्धनाथ कुमार पृ० 110
2- वही, पृ० 123
3- वही, पृ० 123
4- अन्धायुग, धर्मवीर भारती पृ० 53
5- वही, पृ० 56

असत्य से समझौता करने पर वह अन्दर से जर्जर हो जाता है। वह सोचता है —

"अन्तिम परिणति में/ दोनों जर्जर करते हैं

पक्ष चाहे सत्य का हो/ अथवा असत्य का।"[1]

मृग सैनिक द्वारा पहिचाने जाने पर उसकी घृणा उसके अन्तर्मन को तोड़ देती है। उसकी आत्मा अपमान, घृणा, उपेक्षा से आहत हो उठती है —

"मातृ वंचित हूँ

सबकी घृणा का पात्र हूँ।"[2]

जैसा डा0 जयदेव तनेजा ने लिखा है —"आस्था के प्रति अनास्था का सबसे गहरा स्वर युयुत्सु है। निश्चित परिपाटी से पृथक होकर अपना पथ आप निर्धारित करने वाले इस चरित्र में आज के मानव की पीड़ा और यातना साकार हो उठी है।"[3]

भीम द्वारा अपमानित होने पर वह गूँगा हो गया। असह्य यातना के कारण वह आत्महत्या कर लेता है। कृष्ण की मृत्यु के समय वह प्रेतरूप में उपस्थित होकर उनका घोर विरोधी बन जाता है —

जीकर वह जीत नहीं पाया अनास्था को

मरने का नाटक रचकर वह चाहता है/ बाँधना हमको।"[4]

"इस प्रकार कवि ने एक ओर उसे सत्य का कर्मफल लेकर अन्याय के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र में लड़ने वाले कर्तव्यशील योद्धा की संज्ञा से अलंकृत किया है दूसरी ओर उसे सत्य का आश्रय लेने के कारण अपराधी- मान उसकी नियति को दारूण विडम्बना के तारों से उलझा दिया।"[5]

अश्वत्थामा

अंधायुग का सशक्त पात्र अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का पुत्र है। युधिष्ठिर के अर्द्ध-सत्य वचनों ने उसके पिता की क्रूर हत्या कर दी, जिससे वह विरक्त, विक्षुब्ध होकर अपने धनुष के टुकड़े कर देता है। प्रतिशोध की अग्नि में सुलगता हुआ। वह समस्त मानवीय भाव-नाओं को निर्मूल कर घृणा और बर्बर हो जाता है —

"उस दिन से मेरे अन्दर भी? जो शुभ था, कोमलतम था।

उसकी भ्रूण हत्या युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य ने कर दी।"[6]

विवशता के कारण वह अपने को कायर कहता है —

मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा/ कायर अश्वत्थामा/ शेष हूँ अभी तक"[7]

1- अन्धायुग, पृ0 57 3- समकालिक हिन्दी-नाटकों में चरित्र सृष्टि-डा0जयदेव तनेजा, पृ097
2- वही, पृ0 59 4- अन्धायुग, पृ0 124 5- अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि-सुरेश गौतम, पृ0 108
6- अन्धायुग, पृ0 34-35 7-वही, पृ035

ऐसे नपुंसक एवं खण्डित अस्तित्व से विक्षुब्ध होकर वह आत्मघात की बात सोचता है —

"आत्मघात कर लूँ? इस नपुंसक अस्तित्व से।
छुटकारा पाकर यदि मुझे/ पिछली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद/ इतनी यातना नहीं होगी।"[1]

प्रतिशोधाग्नि में जलता हुआ अश्वत्थामा हत्या पर उतर आता है —

"किन्तु नहीं जीवित रहूँगा मैं/ अंधे बर्बर पशु-सा
वध, केवल वध, केवल वध/ अन्तिम अर्थ बने मेरे अस्तित्व का।"[2]

उसके अन्तस् की मनुष्यता समाप्त हो जाने पर उसमें किंकर्तव्य विमूढ़ता तथा उत्तेजना जन्य पशुत्व का उदय होता है। इस जटिल मनोग्रंथि के कारण तटस्थ संजय भी उसके आक्रमण से बच नहीं पाता। वह युधिष्ठिर का गला घोंटना चाहता है —

"इसी तरह, इसी तरह/ मेरे भूखे पंजे जाकर दबोचेंगे।
वह गला युधिष्ठिर का/ जिससे निकला था/ अश्वत्थामा हतो हतः।"[3]
"मैं क्या करूँ मातुल मैं क्या करूँ/ वध मेरे लिए नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिए मनोग्रंथि/ जिसको पा जाऊँ/ मरोड़ूँ मैं।"[4]

युधिष्ठिर के अर्धसत्य वचनों ने उसके भविष्य की हत्या कर दी थी। अतः वृद्ध याचक की हत्या करने में नहीं झिझकता है। अधर्म से वह पाण्डवों का वंश निर्मूल करना चाहता है —

"वे भी निश्चय मारे जायेंगे अधर्म से। सोच लिया/ मातुल मैंने बिल्कुल सोच लिया
मैं अश्वत्थामा उन नीचों को मारूँगा।"
जब तक निर्मूल नहीं कर दूँगा मैं पाण्डव वंश को"[5]

अधर्म से पराजित किए हुए दुर्योधन के समीप पहुँच कर वह प्रतिशोध लेने के हेतु सेनापति बनकर प्रतिश्रुत होता है —

"सुनते हो कृतवर्मा/ कल तक मैं लूँगा प्रतिशोध
सेना यदि छोड़ जाय/ तब भी अकेला मैं।"[6]

पाण्डव शिविरों में आग लगाकर स्त्रियों को हाथियों से निर्ममतापूर्वक कुचलवा देता है। धृष्टद्युम्न का गला घोंटकर अपनी चरम घृणा का परिचय देता है। पिता की हत्या का प्रतिशोध पूरा करने के लिए दुर्योधन के समक्ष पाण्डव वंश को नष्ट करने का कार्य, वह पूरा करना चाहता है — "किन्तु अब भी आधा प्रतिशोध नहीं ले पाया
शेष है अभी भी/ सुरक्षित है उत्तरा/ जन्म देगी जो पाण्डव उत्तराधिकारी को
किन्तु स्वामी/ अपना कार्य पूरा करूँगा मैं।"[7]

---

1 से 7 तक :— अंधायुग, क्रमशः पृष्ठ 35, 36, 37, 38-39, 62, 67, 84-85

प्रश्न उठता है कि "इतनी घृणा, क्रोध, इतना विद्रोह आखिर क्यों? अश्वत्थामा ऐसा क्यों होता गया अपने आप मेरे लिखते न लिखते।"[1]
इसके उत्तर में लेखक ने स्वयं अपने मित्र फादर रेवडास का संस्मरण उल्लेखित कर घृणा से प्रेम का पूर्वाभ्यास स्वीकार करते हुए अश्वत्थामा की घृणा का एक और आयाम उद्घाटित किया है।"2

अश्वत्थामा अद्भुत वीर एवं भक्त है। उसने शंकर से युद्ध किया उन्हें पहचान कर विनम्र होकर उनकी अर्चना करता है। वह ब्रह्मास्त्र का धारक है किन्तु उसका प्रयोग विवशता पर ही करता है। अर्जुन के बाण-प्रहार से उसका स्वाभिमान आहत हो जाता है और वह ब्रह्मास्त्र प्रयुक्त करता है। उसके वापस करने की विधि उसे नहीं आती, अत: वह उसे उत्तरा के गर्भ में केन्द्रित करता है। उसे भ्रूण हत्या का पाप लगता है। वह मानव भविष्य की रक्षा में अक्षम सिद्ध होता है। इस प्रकार अश्वत्थामा पितृभक्त, वचन-पालक पराक्रमी, योद्धा, निर्भीक निडर स्पष्टवक्ता है।
कहना नहीं होगा कि अन्धायुग का जीवन्त पात्र अश्वत्थामा ही है —।"भारती की कलम से निकला हुआ सबसे सफल, सशक्त, मार्मिक पात्र अश्वत्थामा अन्धायुग में अपनी सारी मनोग्रन्थि व्यक्तित्व की असमानता के साथ उपस्थित है।"3

"अश्वत्थामा एक असामान्य पात्र है। अश्वत्थामा विमथित अन्तर्मन की विक्षुब्ध मूर्ति है। महाभारतकाल की अनैतिकता उसमें पुंजीभूत-सी हो गयी है। वह सामान्य स्थिति में न रहकर बहुत कुछ असामान्य पात्र हो गया है। भारती ने उसके घनीभूत क्षणों को सफलता से सन्निविष्ट कर अभिव्यक्ति दी है।"[4]

"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अश्वत्थामा अपनी समस्त कुण्ठाओं के साथ जिस रूप में चित्रित किया गया है, वह बहुत ही शक्तिशाली एवं सजीव बन पड़ा है।"[5]

धृतराष्ट्र

हस्तिनापुर का शासक है। जन्मान्ध होने के कारण उसने वैयक्तिक संसार की कल्पना कर ली है। जिसमें वस्तु-जगत वेदना-जन्य है। उसमें नैतिकता का कोई मापदण्ड नहीं है। पुत्र ममता ही उसकी नीति थी —

"पर वह संसार/स्वतः मेरे अन्धेपन से उपजा था।
मैंने अपने ही वैयक्तिक सम्वेदन से जो जाना था/ केवल उतना ही था मेरे लिए वस्तुजगत। xxx मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म/बिल्कुल

1-पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, प0 16
2- वही, पृ0 16
3- हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन, डा0गिरीश रस्तोगी, पृ0 192
4-हिन्दी नाटक —डा0बच्चन सिंह पृ0192
5- हिन्दी गीतिनाट्य, कृष्णसिंहल पृ0 124
6-

मेरा ही वैयक्तिक था।

उसमें नैतिकता का कोई बाह्य मापदण्ड ही नहीं/कौरव जो मेरी मांसलता

से उपजे हैं, वे ही हैं अन्तिम सत्य/ मेरी ममता ही वहाँ नीति थी, मर्यादा थी।[1]

इसी ममता के कारण ही वह दुर्योधन का विरोध नहीं कर सका और महाभारत होने की स्थिति उत्पन्न होती गयी। सारा महाभारत युद्ध होता रहा और धृतराष्ट्र युद्ध के समाचार सुनकर शान्त होता रहा। उसने किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया, परिणामस्वरूप उसके सभी पुत्र हताहत हो गए— तभी उसे बोध हुआ कि वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी सत्य हुआ करता है। क्योंकि उसे अपने पुत्रों के विजित होने में लेशमात्र सन्देह नहीं था। वृद्ध याचक से कहता है —

"याद मुझे आता है/ तुमने कहा था कि द्वन्द्व अनिवार्य है

क्योंकि उससे ही जय होगी कौरव-दल की।"[2]

युद्ध के अन्तिम दिनों तक उसे विजय का विश्वास था, वह संजय के आने की प्रतीक्षा करता रहता है। संजय के आने पर पराजय के समाचार सुनकर वह क्षीहत हो जाता है। निराश हो वह कौरव नगरी छोड़कर चला जाता है। रास्ते में युयुत्सु को देख उसका पुत्र-प्रेम उमड़ पड़ता है और वह उसे अश्वत्थामा की विभीषिका से बचाना चाहता है —

"मेरा है केवल एक पुत्र शेष

खोकर उसे कैसे जीवित रहूँगा।"[3]

अश्वत्थामा द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र उत्तरा के पेट में गिरा समझकर धृतराष्ट्र को युयुत्सु के राजा बनने की आशा बलवती हो उठती है —

"तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर

सब राजपाट तुमको ही सौंप दें।"[4]

कान्तार में लगी आग में वह जलना चाहता है, वह जलकर सब प्राप्त करना चाहता है —

"जीवन भर मैं अन्धेपन के अँधियारे में भटका हूँ

अग्नि है नहीं, यह है ज्योतिवृत्त

देखकर नहीं यह सत्य ग्रहण कर सका तो आज

मैं अपनी वृद्ध अस्थियों पर/ सत्य धारण करूँगा/अग्निमाला-सा।"[5]

1- अन्धायुग, पृ0 17-18
2- वही, पृ0 23
3- वही, पृ0 89
4- अन्धायुग, पृ0 95
5- वही, पृ0 113

इस प्रकार धृतराष्ट्र जन्मांध होने के कारण परमुखापेक्षी, निर्वीर्य स्वार्थी पुत्र-प्रेमी शासक है।

धर्मवीर भारती ने अंधायुग में पात्रों के ऐतिहासिक, पौराणिक रूप की रक्षा करते हुए उन्हें प्रतीकात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है —

"राजशक्तियाँ लोलुप होंगी/ जनता उनसे पीड़ित होगी/गहन गुफाओं में छिपकर दिन काटेगी।xxxपथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित/अपने अन्तर की अन्ध गुफाओं के वासी/यह कथा उन्हीं अन्धों की है।"[1]

अन्धायुग के सभी पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी मानसिक ग्रन्थियों के प्रतीक हैं। "अन्धायुग के अधिकांश पात्र निश्चित ऐतिहासिक होते हुए भी विशिष्ट मानसिक प्रवृत्तियों दृष्टिकोणों एवं अन्त-ग्रन्थियों के प्रतीक हैं। यह प्रतीकत्व उनके चरित्र की स्वतन्त्रता को नष्ट नहीं करता, वरन् उन्हें एक विराट मानवीय प्रासंगिता प्रदान करता है। जिसके कारण महाभारत की कथा का एक और पुनर्कथन मात्र न रहकर अंधायुग मानव-मन के अन्तर्जगत का महाकाव्य बन गया है।"[2]

"इसमें कुछ स्वकल्पित पात्रऔर कुछ स्वकल्पित घटनाएँ हैं।"[3]

डा०श्रीपति शर्मा ने लिखा है कि अधिक पात्र प्रख्यात हैं, परन्तु कुछ पात्र कल्पित भी हैं।"[4]

मनोहर वर्मा ने भी प्रतीकात्मकता की स्वीकृति देते हुए लिखा है —"अन्धायुग में चरित्र-चित्रण वैचारिक कोटि का है। चरित्र मानवीय अस्तित्व की अपेक्षा विशेष विचारधारा अथवा विद्रोही कुण्ठाओं के प्रतीक हैं। बीसवीं सदी की पतनोन्मुख संस्कृति के प्रतिनिधि यहाँ उपस्थित है।"[5]

"प्रायः सभी पात्र विवादग्रस्त हैं। पतिव्रता गान्धारी, धर्मराज युधिष्ठिर तथा मर्यादारक्षक कृष्ण सभी के व्यक्तित्वों में कहीं न कहीं धब्बा अवश्य है क्योंकि वे मानवीयविकास की सीढ़ियाँ हैं। इस विकास को आगे बढ़ाते जाना ही मानववादी की सबसे बड़ी आस्था है।"[6]

शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने इसके पात्रों की समीक्षा करते हुए लिखा है —"धर्मवीर भारती की सफ-लता इसमें सन्निहित है कि उन्होंने मर्यादा और आस्था की अपेक्षा अनास्था का अधिक प्रबल प्रतिनिधित्व पात्रों द्वारा कराया है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भारती में केन्द्रापगामी प्रवृत्ति अधिक उपलब्ध होती है।"[7]

अनास्था और पथभ्रष्ट पात्रों में भारती के सत्यान्वेषक-मनोवृत्ति का उल्लेख डा० विश्वनाथ तिवारी ने इस प्रकार किया है —"उसके चरित्र किसी न किसी रूप में अंधे, पथ-भ्रष्ट निष्क्रिय और आत्महारा हैं किन्तु लेखक ने इसी कुण्ठा, निराशा और अन्धापन में सत्य की खोज की है।"[7]

1-अन्धायुग, पृ010 2-सृजन के आयाम, ज्वाला प्रसाद खेतान, पृ0153, [illegible]
3-अन्धायुग, पृ04, 4-हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ0 360, श्रीपति शर्मा,
5-आलोचना, जनवरी, 1956, पृ0118, 6-हिन्दी नव लेखन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 93
7- नया हिन्दीकाव्य, औरविवेचन, शम्भूनाथ चतु0, पृ0140 8-छायावादोत्तर हिन्दी गद्यसाहित्य डा0विश्वनाथतिवारी, पृ0 155-56

सारतः कहा जा सकता है कि अन्धायुग के पात्र मानसिक कुण्ठाओं के प्रतीक होने के कारण विकृतरूप प्रस्तुत हुए हैं जो ह्रासोन्मुख मर्यादाहीन संस्कृति के वाहक हैं। डा० गणेशदत्त ने लिखा है —"लगभग सभी प्रमुख पात्रों के मानस की अवचेतना तथा उसके मनः व्यापारों मनोभावों अतृप्तेच्छाओं एवं मानसिक घात-प्रतिघात का गतिमय एवं द्वन्द्वात्मक चित्रण उसमें किया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्धायुग के पात्रों की वृत्ति अन्तर्मुखी है, जो मानसिक जटिलताओं, अनेक आन्तरिक भेदभाव असन्तोष घातक-तृष्णा, नैराश्यपूर्ण आपदाओं, मनोविकृति, प्रतिशोध, ग्रन्थि और अहंभाव से ओत-प्रोत है।"[1]

नेमिचन्द्र जैन ने भी अन्धायुग के पात्रों को प्रतीकात्मक रूप में स्वीकार किया है— "इस नाटक के सभी पात्र मूल्यांधता के किसी न किसी स्तर, रूप या पक्ष के प्रतीक हैं। अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, कृपाचार्य, युयुत्सु, संजय, युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव और अन्ततः स्वयं कृष्ण। प्रहरियों के रूप में जनसाधारण की कल्पित निर्लिप्तता भी उसी अन्धता का एक रूप है।"[2]

अज

'अज' इन्दुमती का नायक है, उसके सौन्दर्य का वर्णन गिरिजाकुमार माथुर ने इस प्रकार किया है —

"सान्ध्य अग्नि ज्यों दीपित होती/लेकर तेज और दिनकर से
नन्दिनेय रघु से अज जन्मे/ज्यों बालेन्दु क्षीर सागर से
रूप कान्ति ज्यों एक दीप से/ जलकर पाता दीप दूसरा
रविकुल की श्री अज ने पायी/ कार्तिकेय ने ज्यों शंकर से।"[3]

सुनन्दा भी उसके सौन्दर्य की चर्चा करती है —

"लो अब देखो पद्म लोचने/भानुवंश की शोभा निरुपम
अनवद्यांग अनंगरूप अज/ राजकमल पर बालारुण सम
तेज और इक्ष्वाकु वंश के। शत यज्ञों की कीर्ति कथाएँ
भूमि, सिन्धु, पाताल स्वर्ग में/ अंकित जिनकी रथ रेखाएँ/
कुल की कान्ति, चन्द्रलेखा छवि/ गुण लावण्य, तरुण-नवीन यौवन।"[4]

जिसे देख इन्दुमती मुग्ध हो गयी थी। इस प्रकार अज, रूप गुण, यौवन से सम्पन्न रघुवंश के अनरूप राजकुमार हैं।

1-आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-डा०गणेशदत्त पृ० 362
2-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य सम्पादक-डा०महेन्द्र भटनागर, पृ० 76
3-धूप के धान-गिरिजाकुमार माथुर, पृ० 114 4- वही, पृ०121

कामदेव

'मदन दहन' के नायक कामदेव के चरित्र में निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है —

(1) अहंकारी :— पृथ्वी सहित सभी देवताओं को व्याकुल देखकर उसका अहं उद्दीप्त हो जाता है। वह ब्रह्मा से कहता है —

"हे गुरुवर हो आज्ञा मुझको तीन लोक में कौन प्रबल/
तपःपूत है कौन आज नर जिसने किया तुम्हें व्याकुल।
कौन उपेक्षा करके मेरी स्वर्ग जीतना चाह रहा/कौन बीधने नैनों के
प्रति अब तक लापरवाह रहा।"[1]

(2) परोपकारी :— वह परोपकार के लिए मृत्यु तक को वरण करने को तैयार हो जाता है—
"कार्य सिद्ध हो कार्य सिद्ध हो यही ध्येय अब मेरा होगा।
या आलिंगन मृत्यु करेगी मेरा स्वामिन्।"[2]

उसने वसन्त के प्रभाव से शंकर को कामोद्दीप्त किया और उनके कोप का भाजन बना। अन्त में उसे मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा।

कलाकार

कलाकार' स्वप्न और सत्य' का नायक है। पंत ने उसके निम्न चारित्रिक गुणों का उल्लेख किया है—

(1) प्रकृतिप्रेमी :— भावुक कलाकार वन्य सुषमा को देख आकृष्ट होकर कहता है —

"अँगड़ाई भरती हैं कलियाँ
मुग्ध मधुप करते रंगरलियाँ
रिक्त पात्र में किसने मोहक
मधिक मदिरा ढाली?"[3]

वह प्रकृति को माता मानता है —

"मातृ प्रकृति कैसी अद्भुत है?"[4]

(2) चित्रकार :— जो प्रकृति अनजाने में उसके मन को मोहित कर लेती है, उसी प्रकृति को तूलिका से उरेहना करना चाहता है —

"स्वप्न पाश में बाँध हृदय तन्मय कर देता,
मैं उसको ही अंकित किन रंग तूलि से।"[5]

(3) मानवतावादी :— कलाकार जागतिक कुछ द्वन्द्वों, मिथ्याडम्बरों एवं धर्मोन्माद से पीड़ित मानवता को मुक्त कराने के लिए प्रयासरत है —

1- मदन दहन, नया समाज, पृ0 82

3-से 5 तक— स्वप्न और सत्य (सोवर्ण) पंत, क्रमशः पृ0 58, 59, 62

"अधोमुखी लघु स्वर्ग सम्प्रदायों में सीमित
लटके हैं अगणित त्रिशंकु से बहुमत पोषक।"[1]

(4) विचारक :— वह इस विषमता विशृंखलता को देख उसके सुख सौविध्य की कल्पना करता है जहाँ वर्गहीन समाज सुख से रह सके —

"वर्गहीन से तंत्रहीन हो जन समाज जब
प्राप्त कर सकेगा अभिमत पार्थिव जीवन का
रूढ़िबद्ध कुण्ठित कुत्सित संस्कार युगों के
उच्छेदित हो जायेंगे मानव अन्तर से।"[2]

खेचर

खेचर 'दिग्विजय' का नायक है। वह पहला व्यक्ति है जो अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुआ। पृथ्वी की कक्षा को पार कर वह अन्तरिक्ष का चक्कर लगाकर पुनः पृथ्वी पर लौटता है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(1) वैज्ञानिक :— वह वैज्ञानिक है। यान के चलाने में वह दक्ष है। यान में आरूढ़ होकर वह अन्तरिक्ष से यान के यंत्रों की सूचना देता है —

"कार्य ठीक कर रहे यान के यंत्र यथाविधि,
जात हूँ मैं, दिशापाल अनुकूल दीखते।"[3]

(2) भावुक :— खेचर वैज्ञानिक होते हुए भी भावुक है, कवि हृदय है। गगन रँग द्वारा दिङ्मण्डल के समाचार पूछने पर वह अपने अनुभव बतलाता है कि उसे असीम आनन्द की प्राप्ति हो रही है —

"रजत नील प्रभ स्वप्न लोक में विचर रहा हूँ। शुभ्रकान्ति के भाव मौन-निःस्वर सागर में।
डूब रही निःस्पंद चेतना भारहीन हो xxx मन तन्मय हो रहा निखिल का महत् स्पर्श पा।"[4]

(3) देशप्रेमी :— उसे अपने देश के प्रति अत्यधिक लगाव है। वह अपनी धरती को माँ मानता है। उसकी महत्ता की अभिवृद्धि हेतु सर्वस्व समर्पण करने को उत्सुक है —

"अब धरती पर उतर मातृ भू की पद रज को, चूम नमन कर अन्तरिक्ष के रजत हर्ष को।
माँ के चरणों पर अर्पित कर, जन जन में मैं स्वर्ग स्वास भर दूँगा, गोपन अनुभव कह।"[5]

इस प्रकार खेचर के चरित्र में विज्ञान का ज्ञान, कवियों की भावुकता एवं देशप्रेम के तत्व मिलते हैं।

1- स्वप्न और सत्य (सौवर्ण) पन्त, पृ० 78
2- वही, पृ० 87-88
3- दिग्विजय (सौवर्ण) पन्त, पृ० 95
4- दिग्विजय, पन्त, पृ० 95
5- वही, पृ० 98-99

पुरूरवा

यह उर्वशी(जानकी वल्लभ शास्त्री एवं दिनकर) का नायक है। उसके बाह्याभ्यन्तर अनेक गुणों का उल्लेख कवि जानकी वल्लभ शास्त्री एवं दिनकर ने किया है। वह वीरता ज्ञान, तेज, प्रताप, समृद्धि, त्याग, सरसता तथा मनोज्ञता में कार्तिकेय, बृहस्पति, सूर्य इन्द्र, कुबेर, आकाश एवं पुष्प, कामदेव के समान है —

"कार्तिकेय-सम शूर, देवताओं के गुरू सम ज्ञानी,
रवि-सम तेजवन्त, सुरपति के सदृश प्रतापी, मानी,
धनद-सदृश संपन्नी, व्योमवत् मुक्त, आदत-निष्ठ त्यागी,
कुसुम-सदृश मधुमय, मनोज्ञ, कुसुमायुध-से अनुरागी।"[1]

(1)सौन्दर्य :— राजा पुरूरवा अप्रतिम सुन्दर है। उसका शरीर कनक-पर्वत को काटकर बनाया गया प्रतीत होता है —

"ये कर्ण स्वर्ण-कुण्डल-मण्डित यह कण्ठ कम्बु।
सौन्दर्य-सरोवर का सौरभमय विकच अम्बु।"[2]

"यह ज्योतिर्मय रूप?प्रकृति ने किसी कनक पर्वत से
काट पुरूष-प्रतिमा विराट निज मन के आकारों की,
महाप्राण से भर उसको फिर भू पर गिरा दिया है।"[3]

इस प्रकार का सौन्दर्य तो अमरों को भी अप्राप्त है-सहजन्या कहती है —

"और परम सुन्दर भी/ऐसा मनोमुग्धकारी तो होता नहीं अमर भी।"[4]

(2)पराक्रमी :— पुरूरवा अतुल पराक्रमी है। दैत्य से उर्वशी को मुक्त कराया था —

"रूको वैविजो, वो पुरूरवा मिट्टी का रखवाला-
पर ऊपर भी आ सकता है, शून्य न रहे निराला।"[5]

चित्रलेखा कहती है —

"राजर्षि निडर हैं, तेजस्वी हैं, शूर हैं, पर असुर शूर जितना उतना ही क्रूर है।"[6]

"नहीं बढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर/
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरने को।
तब भी प्रतिष्ठान पुर वन्दित है सहस्र मुकुटों से।"[7]

1-उर्वशी, दिनकर, पृ0 25 3-उर्वशी, दिनकर, पृ0 59 4- उर्वशी, दिनकर, पृ0 8
2-पाषाणी, जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ0 37 5- पाषाणी, जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ033
6- वही, पृ0 35 7- उर्वशी, दिनकर, पृ0 34

(3) अप्रतिम प्रेमी :— यद्यपि राजा विवाहित है किन्तु अद्वितीय सुन्दरी उर्वशी को देख उनका मन उसे प्रेम करने के लिए विवश हो गया। जब से दैत्य से उर्वशी को मुक्त कराकर लौटे है तभी से उसके वियोग में विकल है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनकी मर्म पुकार से उर्वशी अवश्य व्याकुल होकर गगन से उतर आयेगी —

"मेरी मर्म पुकार मोहिनी वृथा नहीं जायेगी।आज न तो कल तुझे इन्द्रपुर में वह तड़पायेगी।[1]

उद्यान में जब दोनों का प्रथम मिलन हुआ तो राजा मर्यादा छोड़कर आलिंगन करते हुए अपने हार्दिक भावों को व्यक्त करता है —

"और प्रेम-पीड़ित नृप बोले क्या उपचार करूं मैं?सुख की इस मादक तरंग को कहाँ समेट धरूं मैं?
महा चाहता सिन्धु प्राण का कौन अकूल किनारा? हुआ चाहती किसे हृदय को फोड़ रक्त की धारा?
प्राणों की मणि अयि मनोज्ञ मोहिनी, दुरन्त विरह में, नहीं झेलता रहा वेदनाएँ क्याक्या दुस्सह मैं?
दिवा रात्रि उन्निद्र पलों में तेरा ध्यान सँजोकर, काट दिये आतप वर्षा हिमकाल सतत रो-रोकर।"[2]

(4) विनम्र :— राजा परम विनम्र है —

"कुछ नहीं मैंने किया क्या? मानवोचित कर्म।
आर्त का हो त्राण, राजा का यही तो धर्म।"[3]

सुकन्या के पधारने पर आर्य परम्परा के ही अनुसार उसे नमस्कार करते हैं तथा कुशलता के विषय में प्रश्न करते हैं —

"इलापुत्र मैं पुरू पदों में नमस्कार करता हूँ।
देवि तपस्या तो महर्षिसत्तम की वर्धमती है?
आश्रम-वास अविघ्न, कुशल तो है अरण्य-गुरू कुल में?"[4]

(5) उत्साही :— राजा उत्साही है —

"स्पष्ट कहो, कोई हो, मेरा धनुष आत्म-निर्भर है।
बाण प्रखर हैं कृपाण यम का अग्रज सोदर है।"[5]

उर्वशी के अन्तर्धान होने पर राजा के उत्साही एवं रौद्र रूप के दर्शन होते हैं —

"लाओ मेरा धनुष, सजाओ गगन-जयी स्यन्दन को,
सखा नहीं बन शत्रु स्वर्ग-पुर मुझे आज जाना है।
लाओ मेरा धनुष यहीं से बाण साध अम्बर में
अभी देवताओं के मन में आग लगा देता हूँ।"[6]

1- उर्वशी, दिनकर, पृ0 17
2- वही, पृ0 21
3- वही, पाषाणी, शास्त्री, पृ0 38
4- उर्वशी, दिनकर, पृ0 109
5- पाषाणी, जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ0 34
6- उर्वशी दिनकर, पृ0 113

भगीरथ

'गंगावतरण' के नायक भगीरथ हैं। अपने पितरों के उद्धार के लिए गंगा को समर्थ मानकर उसके आगमन हेतु कठिन तप करते हैं तथा अन्त में उन्हें अपने कार्य में सफलता मिलती है। उनके निम्न गुणों का उल्लेख गंगावतरण में हुआ है —

(1)प्रबल पुरूषार्थवान् :— स्वर्ग से गंगा आनयन जैसे कठिन कार्य को करने का उन्होंने संकल्प लिया था। यदि पुरूषार्थ प्रबल हो तो कोई कार्य असम्भव नहीं है। सूत्रधार कहता है——

"हो पुरूषार्थ प्रबल तो कोई भी अनहोनी बात क्या?
असिधारा व्रत लिया भगीरथ ने था ऐसा ही कभी।
सम्भव कर दिखलाया कहते जिसे असम्भव है सभी।"[1]

(2)दृढ़ता :— संकल्पित इच्छा सेप्रत्येक वस्तु प्राप्त होती है। भगीरथ कहते हैं —

"गंगा को लाना ही होगा लाना ही होगा उन्हे,
स्वर्ग छोड़कर इस धरतीपर आना ही होगा उन्हे,
इतना तप पर्याप्त नहीं प्राणों की आहुति शेष है।
तिल-तिल कर जल जाऊँगा मैं आत्मा की द्युति शेष है।"[2]

उन्हे तपस्या से विरत करने में रम्भा और उर्वशी भी सफल नहीं हुई। सूत्रधार उनकी दृढ़ता के सम्बन्ध मेंकहता है —

"यही एक संकल्प एक व्रत-एक टेक एकाग्रता।"[3]

परिणामस्वरूप ब्रह्मा का कमलासन हिल उठा और उन्हें भगीरथ की कामना को पूरा करना पड़ा।

गौतम

सिद्ध तपस्वी हैं। उन्होंने अपने तपोयोग से अहल्या के माता-पिता के भाललिपि में परिवर्तन कर वंश वृद्धि का वरदान दिया था। उन्होंने अहल्या को भ्रष्टा समझकर 'पाषाणी' होने का शाप दिया था। उनकी निम्न विशेषताओं का उल्लेख पाषाणी में हुआ है —

(1)प्रेमी :— गौतमअपनी पत्नी अहल्या को अत्यधिक चाहते हैं।उसके म्लान मुख को वे नहीं देख सकते हैं —

"हे देवि किस रहा मुख मुक्ताश्रमसाव नमित ज्यों सान्ध्य कमल।
क्या बात तुम्हारा चित चंचल/क्या बात तुम्हारे दृग छल छल।"[4]

1-पाषाणी,शास्त्री, पृ0 17-18   4- पाषाणी,शास्त्री, पृ0 82
2- वही, पृ0 24
3- वही, पृ0 24

(2) संयमी :— अद्वितीय सुन्दरी अहल्या को पत्नी रूपमें पाकर भी वे तपस्वी रूप में विख्यात रहे हैं। इसका कारण उनका संयम ही है। तनिक वासना को सुख कारक नहीं मानते हैं—

"संयम की यही अपेक्षा है, पागलपन क्या सुखदायक है।
स्वर संयम ही संगीतकि उल्लसित गायक क्या गायक है?"[1]

(3) क्रोधी :— गौतम ने जब अहल्या को पर-पुरुष अनुरक्त देखा तो ईर्ष्यालु होकर वे अहल्या को लाने के उद्देश्य का स्मरण कराने लगे —

"यज्ञ पत्नी तुम बनो इस व्याज/था तुम्हें लाया हुआ यह काज।"[2]

किन्तु इस कार्य में विफलता मिलने के कारण वे अहल्या पर कुपित होते हैं। वे नारी हृदय के रहस्य को समझने में अक्षम सिद्ध हुए —

"भेद नारी हृदय का यह भेद/ एक क्या समझे न चारों वेद।"[3]

और वे पाषाणी होने का शाप दे बैठते हैं। इस प्रकार गौतम सिद्ध ऋषि और असफल प्रेमी के रूपमें चित्रित हुए हैं।

द्रोण

द्रोणाचार्य ने ब्राह्मण से क्षत्रिय धर्म स्वीकार किया है। गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण में उनकी निम्न चारित्रिक विशेषताएँ उल्लखित है —

(1) अद्वितीय वीर :— भीष्म पितामह के मरने के बाद द्रोण का ही कौरव सेना के नायक बने। लगातार पराजय मिलने पर दुर्योधन उनकी वीरता का स्मरण कराता है —

"चाहे तो निखिल विश्व गति को बदल दे।
रौंद डाले तारिकाएँ पीस डाले भू पर भी।"[4]

(2) परान्नभोजी :— युद्ध में पराजय मिलने पर दुर्योधन, द्रोणाचार्य पर आरोप लगाता है कि वह अन्न कौरवों का खाता है किन्तु मन उनका पाण्डवों के साथ है। इसीलिए अन्तःकरण के द्वारा धिक्कृत होने पर वह कहता है —

"ब्राह्मण गुरु द्रोण हत प्रभ हत ज्ञान,
केवल परान्नभोजी रह गया हाय आज।"[5]

(3) पक्षपाती :— दुर्योधन उन पर पक्षपाती होने का आरोप लगाता है। वह उसे प्रच्छन्न शत्रु कहता है —

1- पाषाणी, शास्त्री, पृ0 84
2- वही, पृ0 96
3- वही, पृ0 98
4- अशोक वन-बन्दिनी, तथा अन्य गीतिनाट्य-उदयशंकर भट्ट पृ0 82
5- वही, पृ0 83

"इसलिए कि प्रच्छन्न शत्रु मित्र बन आए हैं
धोखा हुआ मुझको अपने ही मित्रों से।"[1]

इसी तरह उसकी आत्मा उसे धिक्कारती है कि उसने कौरवों का साथ क्यों नहीं दिया। पक्षपात के कारण ही वह विद्यादान में एकरस नहीं रहे। अश्वत्थामा को शिक्षा देना, एकलव्य से अँगूठा कटवा लेना इसके उदाहरण हैं। अपने जीवन कृत्यों पर पश्चात्ताप करता हुआ वह ग्लानि करता है —

"आता है याद आज शूल मर्म मूल तक
छिद जाता मेरा मन घृणा होती मुझको।"[2]

संन्यासी

वह एक नगरी का राजा था जो गृह-कलह के कारण अपने छोटे भाई को शासन सौंप संन्यासी बन गया। उसके चारित्रिक गुणों का उल्लेख 'सूखा सरोवर' में हुआ है —

(1) आडम्बर विरोधी :— सरोवर के सूखने पर पुरोहित धर्म के नाम पर प्रजा को उत्तेजित कर रहा था, उस समय संन्यासी कहता है —

"उठो, मत माँगो भ्रम आडम्बर से
झूठ से, प्रपंच से।"[3]

(2) स्पष्टवक्ता :— वह निर्भीक होकर जनता को राजा से पानी माँगने के लिए कहता है, उसे इस बात का भय नहीं है कि राजा उसे दण्ड दे सकता है —

"जाकर कहो/स्पष्ट शक्ति से कहो,
हमें पानी दो/ हमें मरना नहीं है।"[4]

वह राजा को भी प्रजा से कन्धा मिलाने का उपदेश देता है।

(3) जनप्रतिनिधि :— वह सच्चे अर्थों में राजा था क्योंकि आज भी संन्यासी को जनता श्रद्धा दे रही है। छोटा राजा कहता है —

"नगरी का एक भाग अब भी/श्रद्धा दे रहा है उसी राजा को।"[5]

सरोवर देवता भी उसकी आँखों में प्यासी जनता के विह्वल चित्र देखता है —

"मैंने देख लिया आँखों से? सबका चित्र है तुम्हारे पास।"[6]

जनता पर आए हुए संकट को बलि द्वारा दूर करने की बात को सुनकर वह अपने को प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि —

1- अशोक वन-बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य-उदयशंकर भट्ट पृ० 8।
2- वही, पृ० 93 3- सूखा सरोवर, लक्ष्मी नारायण लाल, पृ० 21 4- वही, पृ० 28
5- वही, पृ० 71

"मैं दूँगा बलि/ऐसी बलि जैसी कि प्रतिश्रुत हो देवता से।"[1]

(4)अनासक्त :— वह राजा होते हुए भी अपने को मात्र प्रजा का सेवक समझता है। उसे राज्य लिप्सा नहीं है —

"मैं तो कुछ भी नहीं हूँ सब कुछ प्रजा है।
पता नहीं किस निर्मम ने/किस अमानवीय क्षण ने
किस मनोबल से/ निर्मित किया था/ सिंहासन को।"[2]

हनुमान

'संशय की एक रात' में यदि राम महामानव का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा लक्ष्मण लघु मानव की सशक्त जिजीविषा और संघर्ष के प्रतिनिधि हैं तो हनुमान उस सहज मानवत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मूल्यों, नैतिक आग्रहों से रहित सहज व्यक्तित्व के आधार पर सम्पूर्ण स्थिति का विश्लेषण करते हैं। इस दृष्टि से उनका चरित्र जीवन्त, सशक्त तथा पुनरन्वेषित है। वे मात्र आज्ञापालक नहीं है, वरन् अपने स्वामी को कर्म एवं पौरुष का मंत्र देने वाले निष्ठावान् सहयोगी हैं। जब उन्हें पता चलता है कि संशयों से ग्रस्त राम, सीता-हरण को व्यक्तिगत समस्या मानते हैं तो वे लघुमानव में सन्निहित शक्ति एवं पौरुष का व्याख्यान करते हैं। नन्हें से वाले कोटि-कोटि साधारण जन ने यदि रामेश्वर तट पर एकत्र हो कर विशाल समुद्र पर सेतुबन्ध का वह पराक्रम पूर्ण कार्य नहीं किया होता तो सीता उद्धार शायद राम की व्यक्तिगत समस्या बनी रहती। सीता अयोध्या और जनकपुर की होने पर भी स्वतंत्र चेता हर भारतीय के लिए अपहृत स्वतंत्रता की प्रतीक है —

"हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल प्रतीक हैं।
रावण अशोक वन की सीता/हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता।"[3]

हनुमान उपनिवेशवाद के घोर विरोधी है —

"हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश/ रावण या किसी अन्य का उपनिवेश हो-
यह स्वीकार नहीं अब/ किसी मूल्य पर।"[4]

वे जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस साम्राज्यवृत्ति के द्वारा उनकी समूची जाति अर्धसत्ता घोषित कर दी गयी है। वे विवश होकर अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं।

"हमने राक्षस एक ऊँचे/दास भाव से/ कहते हैं नर नहीं/ वानर पद
प्राप्त किये/ तौल में हम भोज्य पदार्थों से बिकते हैं/गरम सलाखों /प्रत्येक
कुकुमन देह लिखी है/ वे गुलाम हैं।"[5]

इस प्रकार परम्परित भक्त हनुमान आधुनिक काल के पीड़ित जन-समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1-पूजा सरोवर, पृ0 117, 2-पूजा सरोवर, पृ053-54, 3से5तक-संशय की एक रात, पृ064, 65-66, 65

विभीषण

विभीषण के चरित्र को नरेश मेहता ने नये साँचे में ढालकर उसमें आधुनिक संक्रमण युगीन सन्दर्भों को योजित करने का सफल प्रयास किया है। विभीषण रावण का अनुज है। वह रावण को सन्धि की राय देने के कारण निर्वासित है। वह राम की शरण में आता है और लंका की पराजय का कारण बनता है। अपने देश हित को त्याग कर दूसरे देश के आक्रान्ता के साथ मिल जाना देशद्रोह कहा जाता है। इसी विभीषण देशद्रोही कहा जाता है। नरेश मेहता ने उसके चरित्र में नवीनता लाने का प्रयास किया है। स्वत्व रक्षार्थ वह युद्ध को अनिवार्य स्वीकार करता है। वह युद्ध को मंत्रणा नहीं दर्शन मानता है —

"युद्ध मंत्रणा नहीं/ एक दर्शन है राम/ अन्तिम मार्ग है/
स्वत्व और अधिकार अर्जन का।"[1]

राम जहाँ युद्ध के मूल्यगत स्वरूप के विषय में चिन्तित हैं, वहाँ विभीषण की बेचैनी मूलतः इस तथ्य को लेकर उत्पन्न हुई है कि युद्ध में कौन पक्ष उसके राष्ट्र(लंका) का रहेगा। विभीषण खण्डित व्यक्तित्व का शिकार है। राम के चरित्र में तो वह कवि द्वारा आरोपित है, पर विभीषण के चरित्र में उसका नियोजन स्वतः ही है। राष्ट्रद्रोह मनुष्य को एक अजीब अन्तर्द्वन्द्व में डाल देता है —

"द्वन्द्व/मुझमें कहीं पर है/ मुझे सालता है/ स्वयं का संघर्ष/मैं भी विभाजित हूँ।"[2]

विभीषण के राष्ट्र-प्रेम को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में राष्ट्र के प्रति प्रेम होता है। युद्धोपरान्त लंका की क्या स्थिति होगी, इसे सोचकर मन ही मन अत्यन्त दुखी होता है— सोने की लंका राख हो जायेगी —

"अपने राष्ट्र के प्रति/ क्या यही कर्तव्य है मेरा/ उस पर हो रहे/
इस आक्रमण में साथ दूँ।
इस युद्ध के उपरान्त/ मेरे सामने/ मेरे राष्ट्र का/अनागत कल/
अनावृत धू-धू जल रहा है।।"[3]

इन्हें इस बात की शंका है कि भावी पीढ़ी उसे राष्ट्र द्रोही के रूप में स्मरण करेगी। इस कल्पना से उनका अन्तर्मन प्रकम्पित हो उठता है —

"कल जब हमारे तर्क मर जायेंगे/ तब/ हमें क्या कह कर पुकारा जायेगा।
राष्ट्र संकट के समय/ मैं आक्रमण के साथ था? राज्य पाने के लिए।"[4]

1- संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृ0 71
2- वही, पृ0 71-72
3- वही, पृ0 72-73
4- वही, पृ0 75-76

"प्रत्येक क्षण मेरा सोचना/ यहीं पर टूट जाता है/ अपने देश की इस दुर्दशा का। कौन कारण है?"[1]

इस प्रकार उसका चरित्र विद्रोही चरित्र है। वह न्याय का ही पक्ष लेता है।

दक्ष

सती उसकी कन्या है, जिसने पिता की आज्ञा न मानकर शंकर से विवाह कर लिया। इसीलिए दक्ष शंकर से वैमनस्य रखते हैं। उन्होंने विशाल यज्ञ का आयोजन किया जिसमें सभी ऋषि मुनि एवं देवता आमंत्रित किए गए किन्तु शंकर को न तो आमंत्रित ही किया गया न ही उन्हें जामाता होने के कारण यज्ञ भाग दिया गया। परिणामस्वरूप शंकर की क्रोधाग्नि में उनका समस्त परिवार नष्ट हो गया। उनके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ "एक कण्ठ विष - पायी में उल्लिखित हैं —

(1) क्रोधी :— प्रजापति दक्ष बहुत क्रोधी स्वभाव के हैं। शंकर से अप्रसन्न होने पर उन्हें अपना जामाता भी नहीं स्वीकार करते —

"जामाता? मैं तो उसको सम्बन्धी कहने में/खुद को अपमानित अनुभव करता हूँ।"[2]

पत्नी के बारम्बार समझाने पर भी उनका क्रोध समाप्त नहीं होता —

"वह जिसने घर की परम्परा तोड़ी है/वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है।
जिसके कारण/मेरा माथा नीचा है सारे समाज में/ मेरे ही घर अतिथि रूप में आए/ यह तुम क्या कहती हो?"[3]

"सारे ब्रह्म लोक से उसे/बहिष्कृत करके छोड़ूँगा मैं।"[4]

क्रोधाविष्ट होकर अनआमंत्रित सती को कैलाश लोक भेज देने की बात कहता है या फिर सती सामान्य प्रजा की भाँति यज्ञ क्रिया देखे —

"नहीं/ उसको कैलाश लोक पहुँचा दो।"[5]

"सती से अपेक्षित था/ उसका या शंकर का/कोई स्थान नहीं है जब
तो चुपचाप खड़ी/प्रजा में खड़ी होकर / यज्ञ का सम्पादन देखे/या लौट जाए।"[6]

वह बहुत हठी स्वभाव का है। पत्नी के बारम्बार समझाने पर भी उसका हठ समाप्त नहीं होता "मेरा दृढ़ निश्चय है/मेरे आयोजन में/शंकर का कोई स्थान नहीं होगा।"[7]

क्रोधी एवं हठी स्वभाव के कारण ही उनका सर्वनाश हुआ।

---

1 से 7 तक :— एक कण्ठ विषपायी , दुष्यन्त कुमार पृ0 संख्याएँ क्रमशः :— 12, 11, 14, 25, 26-27, 32,

शंकर

शंकर इसके नायक है। सती इनकी पत्नी है। पैशाग्नि में जलने के समाचार को सुनकर क्रोधित शंकर गण भेजकर यज्ञ-विध्वंस कराते हैं। साथ ही वह सती के शव को लेकर त्रैलोक्य विनष्ट करना चाहते हैं। उन्हें जहाँ एक ओर देवाधिदेव कहा गया है वहीं दूसरी तरफ सामान्य व्यक्ति के समान आचरण करते हुए दिखाया गया है। उनकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्न हैं —

(1) देवत्व :— शंकर महादेव कहलाते हैं। यह उनका देवत्व विश्वविश्रुत है —

"शंकर का देवत्व/लोक में स्वयं सिद्ध है।"[1]

इन्द्र भी शंकर को देवाधिदेव कहता है —

"वे शिवशंकर/अविनाशी शिवशंकर/देह-युक्त, देह-मुक्त, भोग-राग-हीन,
तत्वज्ञानी/वि संन्यासी शिव शंकर।"[2]

शंकर सृष्टि के सृजन एवं पालन कर्ता हैं। वे मन वाणी से परे ब्रह्म हैं —

"प्रकृतेः पुरुषस्यापि जगतो योनि बीजयोः। परब्रह्म परस्त्वं च मनोवाचामगोचरः
त्वमेव विश्व सृजसि पास्यत्सि निवतमत्स/सर्व कर्म फलानां हि सदा दाता त्वमेव हि।"[3]

"हे सर्वारंभ प्रवर्तक/धाता प्रपितामह/हे ओंकार/हे वषट्कार/हे स्वधाकार/
त्रिगुणात्मा, निर्गुण/प्रकृति-पुरुष से परे शम्भु।"[4]

(2) परम्पराभंजक :— वे गतानुगतिक कभी नहीं रहे। विवाह की सामान्य मर्यादा का उल्लंघन कर उन्होंने सती से प्रेम विवाह किया। अंधविश्वास, पुरानी, परम्परा को उन्होंने तोड़ा है —

"क्योंकि वे सदैव/ऐसी झूठी परम्पराओं के भंजक रहे हैं।"[5]

(3) कालजयी :— उन्होंने हलाहल को कण्ठ में धारण किया है —

"मुझे पता है/इस त्रिलोक में/ महादेव का एक कण्ठ केवल विषपायी।"[6]

(4) पत्नी-प्रेम :— शक्ति के बिना शिव शव मात्र हैं। उन्होंने प्रेम विवाह किया है, अतः सती के प्रति उनकी अटूट आसक्ति है। सती के मरने के बाद उनका प्रेम चरमसीमा पर पहुँच गया। वे सती के शव को कन्धों पर लटकाये सर्वत्र घूमते हैं — वरुण कहते हैं —

"आपको विदित है प्रभु शंकर कैलासनाथ/अपने स्कन्धों पर/
भगवती सती का अधजुलसा शव लटकाये/गहन मनस्ताप की विषमता से बरबस।
रह-रहकर अब तक भी/वीररमणी-सुता का मुख/देखते, बिलखते हैं।"[7]

प्रिया ने उनके व्यक्तित्व को विखण्डित कर दिया है जिससे उन्हें संसार सारहीन लग रहा है—

---

1 से 7 तक — एक कण्ठ विषपायी, दुष्यन्तकुमार, क्रमशः पृष्ठ संख्यायें — 13, 54-55, 73, 75-76, 53, 124, 54

"आह, प्रिया/ अब क्या रह गया शेष/ सूना सा लगता है सारा कैलाशदेश।"[1]

"प्रियाहीन व्यक्तित्व विखण्डित/ जगह-जगह से तोड़ दिया।प्रिया हीन संसार और मैं
देख रहा हूँ। अपने जीवन पर तम का विस्तार।"[2]

उन्माद की अवस्था में वे शव को अलकनन्दा से जाकर पुरानी स्मृतियों को सजग करने की बात करते हैं —"अलकनन्दा की ओर चले अब प्रेयसि/वहाँ तुझे मैं/स्नान कराऊँगा उस जल में
फिर चन्दन से माँग भरूँगा/वन्य प्रसूनों से मैं अपनी/प्रेयसि का शृंगार करूँगा।
फूट फूटकर रोऊँगा कुछ देर वहाँ पर/फिर बाहों में तुझे उठाकर,
हृदय लगाकर/ सुधियों का आह्वान करूँगा।"[3]

तभी कुबेर भी कह उठते हैं —

"शिव शंकर को/ दक्ष सुता से गहन मोह है।"[4]

पत्नी-प्रेम के कारण वे देवलोक में आक्रमण करते हैं।

<u>(5) क्रोधी :—</u> शंकर कल्याणकारी होते हुए प्रलयंकर हैं। वे सृष्टि-संहारक भी देव हैं।दक्ष-सुता के योगाग्नि में जल जाने के कारण उनका क्रोध प्रचण्ड हो उठा। अपने गणों को भेजकर उन्होंने यज्ञ विध्वंस करवाया। दक्ष का समस्त परिवार इस क्रोधाग्नि में भस्मसात हो गया।इस पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। ब्रह्मा कहते हैं —

"मस्तक में खौल रहा गंगा जल/औ त्रिनेत्र ज्वाला के स्फुलिंग बरसाते।"[5]

वरुण भी उनकी उद्विग्नता का वर्णन करते हैं —

"पर्वत के हिम-मंडित शिखरों पर/भाल-सा त्रिशूल गड़ा/व्याकुल से चरण पुनः
इधर-उधर रखते हैं। औ उनके नेत्रों से अग्नि-वृष्टि जारी है।"[6]

इससे सभी को अनिष्ट की आशंका है —

"कुछ पता नहीं है कब/ बम बोले महादेव/ वक्र दृष्टि से निहार।
कर दें संघातक कोई प्रहार।"[7]

उन्हें अपने कृत्यों पर क्षोभ है —

"धिक् मेरा जीवन/ जिसका प्रतिशोध अधूरा।"[8]

अन्त में वे निर्णय करते हैं —

"सम्प्रति केवल/बल की भाषा/शक्ति-प्रदर्शन/सम्प्रति केवल, कुरुप व्यूह
रचना/वीर मर्दन।"[9]

इस प्रकार महादेव शंकर जहाँ एक ओर देवाधिदेव, परब्रह्म हैं वहीं दूसरी ओर मानवीय गुणों से युक्त हैं।

---

1 से 9 तक :— रमाकान्त त्रिपाठी, दुष्यन्तकुमार, एक कंठ विषपायी — 87, 78, 82, 82, 42, 54, 59, 72, 80-81

सर्वहत

यह वक्ष का सेवक है। सामान्य कोटि का पात्र होते हुए भी उसका चरित्र असामान्य है क्योंकि यह विध्वंश की घटनाओं का यह तटस्थ द्रष्टा रहा है तथा युद्धोपरान्त समस्याओं का भोक्ता। वह स्वयं कहता है —

"युद्ध? और रक्तपात........। वक्ष और देव/ और शंकर की सेनाएँ/
ये तुम क्या कहते हो/ मैंने वह कुछ भी नहीं देखा/ इस दुखान्त नाटक का
पटाक्षेप/ मेरे मंच पर आने से पूर्व हो चुका था/ सारे दर्शक/ सारे अभिनेता
चले जा चुके थे/ मैं तो केवल/निर्देशक की इच्छाओं का अनुचर था/
मात्र भृत्य/मैं यह नाटक क्यों देखता भला/xxx हाँ पटाक्षेप होने पर/
मंच की सज्जा सामग्री को सँजोने के लिए/किसी भृत्य को आना चाहिए था/
मैं यथा समय आया हूँ।"[1]

कोमल स्वभाव :— सर्वहत बहुत भावुक है। दुखित वीरिणी को देख वह दुखी हो उठता है—

"देवि आप धैर्य धरें/ आपके ललाट पर उभर आई/पीड़ा की रेखाएँ
देखी नहीं जाती।"[2]

कोमल स्वभाव के कारण ही युद्ध की विभीषिका को सह नहीं सका और वह विक्षिप्त हो गया। वह ब्रह्मा से कहता है —

"सारे नगर में ताजा/ जमा हुआ रक्त है/ और सड़ी हुई लाशें हैं।
मुड़ी हई हड्डियाँ है।xxx सिर्फ लोग नहीं है तो क्या हुआ?
लोगों के न होने न होने से/क्या कोई युद्ध की महत्ता कम होती है?"[3]

व्यक्तिपरिचय पूछने पर वह कहता है —

"मैं कौन हूँ..? इस स्थिति में/ मुझको यह सोचना पड़ेगा।
शायद मैं राजा हूँ/ शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ। या मैं इस
राज्य की प्रजा हूँ/ या शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ/ और सब कुछ हूँ।"[4]

आधुनिक प्रजा :— सर्वहत वक्ष का भृत्य होते हुए भी वह उसकी प्रजा है, जिसने युद्ध को भोगा है। विष्णु के पूछने पर कि वह इस प्रकार की पीड़ा क्यों भोग रहा है। सर्वहत उत्तर देता है —

"शासक की भूलों का उत्तरदायित्व/ प्रजा को वहन करना पड़ता है।
उसे गलत मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है। और मैं मनुष्य ही नहीं हूँ।
मैं प्रजा भी हूँ।"[5]

---

1 से 5 तक :— एककण्ठ विषपायी, क्रमशः पृ0 संख्याएँ — 48, 33, 45, 46, 49

आज की आधुनिक प्रजा की भी यही स्थिति है। स्वार्थवश नेता युद्ध करते हैं जिसके भयंकर परिणाम प्रजा भोगती है। लेखक भूमिका में लिखता है —"उसमें राज्य-लिप्सा तथा युद्ध मनोवृत्ति का मारा हुआ, सर्वहत नाम का एक नया समाविष्ट हुआ जो अनायास उभर कर आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन गया।"[1]

<u>संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का प्रतीक :—</u>

इस के यह विध्वंस की विभीषिका को सर्वहत सहन नहीं कर पाया। युद्धोप-रान्त अनेक समस्याएँ उभर कर सामने आती हैं। सर्वहत उन सांस्कृतिक मूल्यों का भोक्ता है। ब्रह्मा-विष्णु के सम्मुख वह अपनी भूख को व्यक्त करता है किन्तु रोटी न मिलने पर वह कहता है — "तुम भी बुभुक्षित हो। मैं भी बुभुक्षित हूँ। हम सब बुभुक्षित हैं
ये सारी दुनिया बुभुक्षित है ......।"[2]

उसकी विक्षिप्तावस्था बोधेश वरुण उसे शंकर की हिंसा का जीवित प्रतिरूप कहता है। किन्तु उसे संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का स्तूप कहते हैं —

"यह तो युद्धोपरान्त उग आई? संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का
एक स्तूप है — अन्याय/ पक्षपात।"[3]

<u>अशोक</u>

अशोक 'उत्तरप्रियदर्शी' का नायक है। जिसकी क्रूरता तथा उसके शासन की घटनाओं का चयन 'अज्ञेय' ने किया है। अपनी क्रूरता के निदर्शन के लिए उसने नरक का निर्माण कराया था, जिसमें स्वयं फँसने के बाद बौद्ध भिक्षु की पारमिता करुणा से परिचय पाकर उसका हृदय परिवर्तित होता है। उसके व्यक्तित्व में निम्नलिखित तत्व हैं —

<u>(1) अहंकारी नरेश</u> :— अनेक युद्धों में विजय पाने के कारण वह अहंकारी हो गया। अपनी सत्ता का निदर्शन वह चतुर्दिक देखना चाहता है। वह मंत्री से नरक की माँग करता है —

"मैं नहीं सुनूँगा/ नहीं सहूँगा, नरक चाहिए मुझको।
इन्हें यन्त्रणा दूँगा मैं, जो प्रेतशत्रु ये मेरे तन में।
एक फुरहरी जगा रहे हैं।xxxxxx
मेरा शासन है अनुल्लंघ्य। यन्त्रणा/ नरक चाहिए मुझको।"[4]

किन्तु उसके अहंकार पर करारा धक्का उस समय लगता है, जब नरक-नरेश की क्रूर यंत्रणा बौद्ध-भिक्षु पर आरूढ़ हो जाती है। यह अशोक को सहन नहीं हो पाता है। भिक्षु ऐसी परमसत्ता का उल्लेख करता है, जिस पर लौकिक शासन नहीं चलता है। बौद्ध भिक्षु की पार-

---

1-आधार कथा, एकान्त त्रिपाठी, पृ०51, 2- वही, पृ052. 3-उत्तरप्रियदर्शी पृ०40-41

मिता करुणा से प्रभावित होकर अशोक मुक्त हो जाता है और उसकी गणना त्रिरत्नों में होने लगती है।

(2)सौन्दर्य :— उसके पुरुषोचित सौन्दर्य का चित्रण नाट्यकार ने किया है —

"वृष-कन्धर, उत्तम्बबाहु/ उन्नत ललाट, ऋजु भ्रौं,
नासिका दर्प-स्फीत।"[1]

(3)चक्रवर्ती नरेश :— शस्य श्यामला, आसमुद्र धरती को उसने अपने आधीन किया है —

"जय करके आसमुद्र, इस महादेश को
सुजला सुफला सुरसा
मणि-माणिक्य धनी श्रीमन्ती पुण्य-धरा को।"[2]

स्त्री-पात्र

सीता

राम कथा की नायिका- सीता' के चारित्रिक विविध पक्षों का उद्घाटन गीतिनाट्यों में हुआ है।

(1)अतिथिसत्कार कर्त्री :— वह अतिथियों का सम्मान करना जानती है। पुष्पवाटिका में सखियों सहित राम-लक्ष्मण को देखकर वह कहती है —

"अपने घर आये का आदर/ बहन सदा समुचित है।"[3]

इसी कारण लक्ष्मण रेखा से घिरी सीता भिक्षा-याचन के लिए आगत यति वेषधारी रावण को वह भिक्षा देकर संकट को बुलाती है।

(2)शक्ति-रूपिणी :— अवतारवादी भक्तों ने सीता को शक्त्यवतार से लेकर आदि शक्ति -रूपिणी के रूप में चित्रित किया है। लक्ष्मण, माँ सीता पर अपार भक्ति रखते हैं। वे उन्हें अनादि-सृष्टि कर्त्री कहते हैं —

"जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु अज/ कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि-ब्रह्म, सुरासुर/ जड़-चेतन मिले हुए जीव जग
बनते पलते हैं, नष्ट होते हैं अन्त में/ सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती
हैं।आदि शक्ति-रूपिणी/शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है।माता हैं
मेरी वे।"[4]

1- उत्तरप्रियदर्शी, अज्ञेय, पृ0 27
2- वही, पृ0 26
3- सीता - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 81
4- पंचवटीप्रसंग-निराला, पृ0 219-20

(3)करूणामयी :— सीता का हृदय दयालु है। पुष्पवाटिका में पुष्पचयन करते हुए सुलक्षणा को अधिक पुष्प चुनने के लिए मना करती है, क्योंकि लतिकाओं में लगे पुष्प अद्भुत शोभायुक्त प्रतीत होते हैं, पुष्पविहीन लतिकायें सूनी हो जायेगी तभी सुलक्षणा कहती है —

"जैसी इच्छा, हृदय तुम्हारा, कितना करूणामय है।"[1]

(4)लक्ष्मी की प्रतीक :— सीता अयोध्यावासियों को प्राणाधिक प्रिय थीं। उनके निर्वासन से लोगों को लगा कि उनके देश की लक्ष्मी चली गयी। रथवान् कहता है —

"महाराज को हमारा ध्यान ही नहीं आया? और देश की लक्ष्मी देश से चली गयी।"[2]

(5)स्वतंत्रता की प्रतीक :— संशय की एक रात में संवादों के माध्यम से सीता को जन-जन की अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक कहा गया है —

"सीतामाता/ भले ही राम की पत्नी हों /किसी की वधू/ किसी की दुहिता हों/ पर/हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल/ प्रतीक हैं/रावण अशोक वन की सीता/ हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता।"[3]

(6)आदर्श प्रेमिका :— उन्होंने राम से प्रेम किया था जिसके कारण उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। सीता कहती है —

"रगड़े जाने पर ही हीरक चमकता/तपने पर ही होता कांचन शुद्ध है।
प्रेम गहन होता है जलते प्राण में/ यही सिखा लाया है प्रेमी भाग्य में।"[4]

सीता का समर्पण में विश्वास है —

"प्रेम समर्पण में खिलता है प्राण के/उज्ज्वल होता आत्मत्याग के निकष पर
उज्ज्वलतर होता जाता वह विरह में। प्रेम अतनु है,देह वासना से गलित"[5]

वे स्वयं कहती हैं कि पत्नी नहीं प्रेमिका हैं उन्होंने राम से विवाह न करके स्वयंम्वर भूमि में तन मन न्यौछावर कर राम के गले में वरमाला डाली थी —

"मैं पत्नी नहीं, प्रेयसी हूँ/नहीं प्रेयसी नहीं,प्रेमिका/राम की प्रेमिका/
मैंने राम से विवाह ही नहीं किया/ मैंने राम से प्यार किया है।
मेरे पिता ने मेरी आँखे बन्द करके/ इनके हाथों में मेरा हाथ नहीं सौंपाथा।
मैंने स्वयंवर रचाया था/जिसमें सारी भरत-भूमि के युवराज आये थे।
मैंने अपने हाथों से/ अपने ही मन की प्रेरणा से/ इनके गले में वरमाला डाली थी।मैंने इनके ऊपर अपना तन-मन न्यौछावर किया था।"[6]

1-सीता, गुप्त, पृ0 68, 2- अग्निलीक-भारतभूषण पृ020, 4-संशय की एक रात, पृ064
4-लोकायतन सन्दिनी-उदयशंकर भट्ट पृ032 5- वही, पृ0 8 6- अग्निलीक, पृ0 46

प्रेम के कारण ही उन्होंने राम के साथ वन जाना स्वीकार किया। यह कोई आज्ञा या कुल की परम्परा नहीं थी। सीता कहती है —

"जब इन्हें वनवास मिला था/ तो क्या कोई सोच भी सकता था।
कि मैं इनके साथ चल पड़ूँगी/मेरे श्वसुर तो यह बात सुनकर ही दंग रह
गये थे।मेरी सास ने मेरी भेंट भरकर मुझे रोका था/पर मैं नहीं रुकी,
क्योंकि मैं इन्हें प्यार करती थी / जहाँ ये न हों वहाँ मैं कैसे रह सकती थी।[1]

वन के लम्बे चौदह वर्ष पग-पग पर काँटे, विपदाएँ, सुनसान बियाबान, जंगली जानवर, निर्झर, दुर्गम पहाड़ और ऊबड़खाबड़ घाटियाँ इत्यादि हँस-हँस कर पार की। राम की थकान को माथे लगाती रही। हरण होने पर राम के समाचार पाने के लिए व्याकुल रहती थी।राम की प्रतीक्षा में साँसे गिनती रही। राम के कहने पर अग्निपरीक्षा हेतु तत्पर हुई।

"किन्तु राम के बिना मुझे सब शून्य है।"[2]

<u>(7)स्वाभिमानिनी</u> :— सीता के मन में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा है —

"मैं भिखारिणी नहीं किसी प्रतिदान की,
मेरा अपना ध्येय स्वच्छंद स्वत्व है।"[3]

रावण के यहाँ बन्दिनी सीता अपना स्वाभिमान नहीं खोती है। रावण से सीता कहती है —

"जान बंदी, गर्व का गिरि सामने/य रहा है शील निज अभिमान के।"[4]

राम द्वारा परित्यक्त होने पर वे स्वाभिमान पूर्वक बच्चों का पालन पोषण करती है।अश्व-मेध अवसर पर प्राप्त आमंत्रण को अस्वीकार कर दर्प पूर्वक कहती है —

"जानते हैं गुरुदेव/महाराज क्या कहते हैं। उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा करके
यह निश्चय किया है। कि मैं उनके साथ जाऊँ और अश्वमेध यज्ञ के लिए एकत्र
ऋषियों, मुनियों, पण्डितों, राजगुरुओं और प्रजा-जनों के सामने
अपनी पवित्रता सिद्ध करूँ / मैं अयोध्या की महारानी, राम की परिणीता
मैं आँखों में आँसू भरकर/आँचल पसारकर/अपने स्वामी के चरणों पर सिर
रखकर/~~[illegible]~~ अपने पुत्रों की सौगन्ध खाकर कहूँ। कि मैं पवित्र
हूँ और यह लोकापवाद मिथ्या है। हाय यह सुनने के पहले मेरे प्राण क्यों न
निकल गए।"[5]

यदि यही करना था तो पहिले ही यह करना क्या हुआ था। अब उनकी आँखों से दूध का परदा उठ गया है। वे राम का परित्याग करती हुई कहती है —

1-अग्निलीक, भारतभूषण पृ0 48 2— अशोक वनबन्दिनी-उदयशंकर, पृ0 33
3- अशोक वन बन्दिनी, पृ0 33 4- वही, पृ0 13 5— अग्निलीक-पृ0 42

"आज मैं भी राम को छोड़ती हूँ/ अब मैं स्वतंत्र हूँ मुक्त हूँ/अपने आप में पूर्ण हूँ
आप अपनी निर्देशिका, आप अपनी कर्त्री, और आप अपनी भोक्ता हूँ।"[1]

(8)समान अधिकारों की समर्थिका :—सीता पति-पत्नी के समान अधिकारों की बात करती है। यदि राम भी सीता को प्यार करते थे, तो जिस प्रकार राम के वनवास मिलने पर उसने उनका अनुगमन किया था, उसी तरह सीता-निर्वासन की राजाज्ञा देकर राम भी सीता के साथ वन चले जाते, यही उनका आदर्श होता —

"ऐसा ही प्रजा का मन रखना था/ तो मैं तो तब मानती
जब वे राजा की तरह मुझे दण्ड देते/ और फिर/प्रेमी की तरह मेरे साथ चले
आते/ मैं भी तो ऐसे ही वन गयी थी।"[2]

इस प्रकार सीता भारतीय गृहिणी, सतीनारी, स्वाभिमानिनी, स्पष्टवादिनी इत्यादि अनेक गुणों से युक्त नारी है, जिसने अपने आत्मबलिदान से सिद्ध कर दिया कि वह सच्ची धरित्री-पुत्री है।

सुरभि

सुरभि 'अनघ' की नायिका है। वह उच्चवंशीय बाला है जिसका पालन-पोषण मालिन के घर में हुआ है। वह मघ के लोकोपकारी कार्यों को देखकर उस पर अनुरक्त होती है किन्तु अपने प्रेम को गोप्य ही रखना चाहती है। मघ की माँ जब घायल हो जाती है, तो सुरभि बड़ी लगन से उसकी शुश्रूषा करती है। मघ की माँ उसकी प्रशंसा करती है —

"दुर्लभ सुता सुरभि जैसी है? बेटा सजीली भी कैसी है।"[3]

प्रेम में त्याग की महत्ता को स्वीकार करती है। उसका विश्वास है कि त्याग के बिना प्रेम कोरा राग है। मन को समझाती है —

"प्रेम करता है तो कर त्याग/ नहीं तो है वह कोरा राग।"[4]

मघ के साथ ही वह भी लोकोपकार का व्रत धारण करती है। मघ स्वयं उसके कार्यों का उल्लेख करता है — "बड़ाई क्या करूँ तेरी/ सहायक तू बड़ी मेरी
कि मैं जो भार लेता हूँ/ तुझे ही सौंप देता हूँ।
जहाँ सेवा अपेक्षित है/ वहीं झट तू उपस्थित है।"[5]

मघ केअतिरिक्त वह अन्य किसी से विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। वह कहती है —

"न छोड़ूँगी न छोड़ूँगी/चरण ये दो/करे कोई यत्न ये दो।
न छोड़ूँगी न छोड़ूँगी/ इन्हीं पर जन्म जोड़ूँगी।"[6]

1-अग्निलीक, पृ0 55 4- अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 91.
2- वही, पृ0 52 5- वही, पृ0 92 6- वही, पृ0 96
3- अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 52-53

हर दीन दुखी की वह सहायिका बनती है। वह धैर्यशीला युवती है। मघ का मृत्युकाल होने पर वह धैर्य नहीं खोती। मघ की माँ को धैर्य धारण कराती है —

"पत्थर का हृदय करो कातर न हो। जो कुछ दे भगवान धैर्यपूर्वक सहो।

जब हो कर्म समाप्त, फलाफल है तभी/डिगते हैं क्या धीर मृत्यु से भी कभी।"[1]

सुरभि स्वाभिमानिनी है। विपन्नावस्था में मघ की माँ दुष्ट ग्रामभोजक के घर जाना चाहती है किन्तु सुरभि उसे रोकती है —

"जाने दूँगी किन्तु न मैं तुमको वहाँ/ जाने में अपमान समझती हूँ जहाँ।"[2]

इस प्रकार सुरभि आदर्श प्रेमिका, लोकसेविका, स्वाभिमानिनी सकल्प परायणा युवती के रूप में चित्रित है।

शूर्पणखा

शूर्पणखा रामकथा को युद्ध भूमि तक पहुँचाने में सहायिका होती है। रावण की बहन शूर्पणखा अद्वितीय सुन्दरी है। प्रकृति उसकी अनुचरी है। उस जैसी ललाम बामा कभी चित्रित नहीं होगी। पंचवटीप्रसंग में उसका अनिन्द्य सौन्दर्य अंकित है —

"मीन मदन फाँसने की बंशी सी विचित्र नासा/फूल दल तुल्य कोमल लाल येकपोल गोल। चिबुक चारु और हँसी बिजली सी/योजन गन्धपुष्प जैसे प्यारा यह मुखमण्डल। फैलते पराग दिग्मण्डल आमोदित कर/खिंच आते भौंरे प्यारे देख यह कपोत कण्ठ/बाहु वल्ली कर सरोज/ उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि नितम्ब भार-चरण सुकुमार। गति मंद मंद।"[3]

प्रथम वह राम के समक्ष अपना प्रणय निवेदन करती है —

"मचल रहा मानस मम/इच्छा यह पूर्ण करो/ कामिनी की कामना अपूर्ण नहीं रखते पुरुष।"[4]

किन्तु बाद में वह लक्ष्मण के पास जाती है किन्तु असफल होने पर क्रोधित हो उठती है तभी लक्ष्मण उसे विरूप कर देते हैं।

तारा

'तारा' गीतिनाट्य की नायिका है। एक तरफ उसके शरीर में वासना का उद्दाम वेग है, तो दूसरी तरफ पति बृहस्पति के लिए उसके मन में भक्ति है —

"नाथ शान्ति दो यही विनय है शान्ति दो/मनोवृत्ति की चंचल गति है क्या करूँ केवल अवलम्ब आपके चरणों में/प्रभु है स्वामी मैं हूँ प्रभु की सहचरी।"[5]

1-अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 113,
2- वही, पृ0 114 3—पंचवटीप्रसंग, पृ0224-25
4-पंचवटीप्रसंग, पृ0 233
5-तारा, भगवतीचरण, पृ0 58

चन्द्रमा को देखकर उसे अपना यौवन भार लगता है—

"सुन्दरता की सजीव प्रतिमूर्ति-सा।पाप वृत्ति पर तुम विजय पा सकोगे, नहीं माता, उफ कैसा अभिशापित व्यंग्य यह? माता, माता, यह वाचन असह्य है।"[1]

चन्द्रमा के प्रणय निवेदन पर वह शिष्य और गुरु-पत्नी के सम्बन्धों को उल्लिखित करती है—

"तुम मेरे रक्षक हो, भक्षक मत बनो/हाथ जोड़ती हूँ-इस निर्बल हृदय को दिखलाओ सन्मार्ग तुम्हारा धर्म है/पाप मार्ग की ओर न प्रेरित तुम करो।"[2]

चन्द्रमा के आग्रह पर निवेदन-अस्वीकार नहीं कर पाती —

"तो फिर आओ चले पतन को ही चले/अगर पाप में ही सुख है तो पापही हमदोनों बन जायें एक होकर रहें/अलग न हो हम और नरक भी स्वर्गहो।[3]

एक ओर जहाँ वह पतिव्रता है, वहीं दूसरी ओर उसमें कामुक युवती के भी लक्षण मिलते हैं।

मत्स्यगन्धा

धीवर कन्या 'मत्स्यगन्धा' गीतिनाट्य की नायिका है। इतिहास में वह सत्यवती के नाम से विश्रुत है। शैशव के अवसान एवं यौवनागम के समय उसका हृदय चंचल और अधीर हो उठता है। हृदय के तार झनझना उठते हैं, वह भोली किशोरी, मुग्धा रूप में उपस्थित होती है। यौवन सुलभ अभिलाषाओं के मचलने पर सखी से पूछती है —

"जानता नहीं मन, यौवन की क्या लहर/कहता जगत् जिसे होगी वह कैसीकला? कौन जागताहै, कौन सोता मेरे पास छिप/जान सकता कठिन/किन्तु देखती यही कि कोई, राग सा बजाने मेरे प्राणों की वीन पर/चल चल आता है।कौन है बता तो वह।"[4]

उसे अपनी सामाजिक स्थिति का भली प्रकार बोध है। दरिद्र कन्या चिर-यौवन का वरदान लेने में ठिठकती है —

"मैं दरिद्र केवट की बेटी हूँ उपाय-हीन।एक उत्पातसी निरर्थ धराधामपर। छोड़दो मुझे न व्यर्थ पात्र करो है अनंग/यौवनचषक का अनन्त मद नव-नव/ क्या करूँगी ले के इसे असहाय दीन हीन।"[5]

डा0विश्वनाथ भट्ट ने इस अस्वीकृति के सम्बन्ध में लिखा है —"अनंग प्रदत्त अक्षय यौवन के वरदान की प्रथम अस्वीकृति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कामवृत्ति का दमन है।"[6]

1-तारा, पृ0 61-62
2-वही, पृ0 67
3- वही, पृ0 68
4-विश्वामित्र और दो भावनाट्य, उदयशंकर भट्ट-पृ0 59
5- वही, पृ0 65
6-भारतीयनाट्य साहित्य -सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ नाटककार उदयशंकर भट्ट-पृ0 348

अनंग उसके मन में हलचल मचा देता है परिणाम स्वरूप वह वृद्ध पराशर के रति-याचना पर सर्वस्व समर्पण कर चिर युवती का वरदान माँगती है। किन्तु विधवा सत्यवती के रूप में उसे काम्य, एवं वरेण्य यौवन अभिशाप प्रतीत होता है —

"मेरा मन अग्नि-अश्रु बरसा न शान्त होता/द्विगुणित वासना भड़कती हुताग्निनी।
हन्त, हत यौवन का अन्त-हीन यह वेग/धूमिल निबिडतर घोरतर घनतर।"[1]

इस प्रकार मत्स्यगन्धा नारी की काम-भावना की प्रतीक है। डा0 नगेन्द्र ने लिखा है ——
("यौवन की दुर्दम आकांक्षा समस्त संसार को अपने में समा लेने की उत्कट अभिलाषा का नर्तन मत्स्यगन्धा की प्रेरक भावना है।"[2]

उदयशंकर भट्ट मत्स्यगन्धा को चिर यौवन का प्रतीक मानते हुए लिखते हैं — "शैशव के अवसान पर यौवन का उदय, प्राणों की साँसों में काम का संगीत, यौवन के खुमार में संसार का रँग जाना, जीवन का यह यौवन शाश्वत हो ऐसी कामना होना स्वाभाविक है। यौवन में वासना का उदय, वासना पूर्ति के लिए पुरुष समागम तज्जन्य आनन्द, संसार आनन्दमय दिखना भी स्वाभाविक है। फिर यदि यौवन की तृप्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाय तो मानस में जो हल-चल होती है, जो अशान्ति का संघर्ष ~~चल~~ मचता है, वही इसमें प्रतीक रूप में चित्रित है।"[3]

राधा

उदयशंकर भट्ट ने राधा गीतिनाट्य में विवाहिता राधा की कृष्ण विषयक आसक्ति, उसकी विरह वेदना एवं कृष्ण में उसका निलय वर्णित किया है। राधा के चरित्र में निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है —

(1) प्रेयसी :— राधा कृष्ण की अनन्य उपासिका, प्रेयसी है। यद्यपि भट्ट जी उसे विवाहिता दिखाकर इस प्रेम को परकीया रूप में वर्णित किया है। इस उद्दाम के समक्ष राधा को किसी प्रकार के सामाजिक बन्धन स्वीकार नहीं है —

"यही क्या मैं लाज तज मर्यादा-बन्धन तोड़, कुल-भय/त्याग सब कुछ बन वियोगिनी
मुक्त जीवन जी सकूँगी री।xxxxxx ब्याह से ही पूर्व बचपन में मुझे ऐसा लगा अलि,
है न कोई पति हमारा औ न हम नारी किसी की।"[4]

इस लगन के कारण राधा को श्वसुर से भी ताड़ना मिलती है —

"यह कुबेर कलंकदायिनी लांछिता कुलटा, कृतघ्न
क्या इसे है लाज कोई नहीं, सब क्या धो गँवाई।"[5]

1-विश्वामित्र और दो भावनाट्य-उदयशंकर भट्ट, पृ089 2-आधुनिक हिन्दी नाटक-नगेन्द्र, पृ0164
3-विश्वामित्र और दो भावनाट्य-उदयशंकरभट्ट पृ021-22भूमिका।
4- वही, पृ0 107 5- वही, पृ0 126

राधा, कृष्ण प्रेम में इतनी अनुरक्त है कि उस पर सभी कुछ अर्पण है —

"उस मुकुट-छवि-माधुरी पर सभी कुछ अर्पण हुआ है।"[1]

इस मोहिनी-मूर्ति के कारण राधा ने सभी मर्यादा भंग कर दी है —

"फेंकती हूँ सभी बन्धन शृंखलायें, मर्यादा सीमा/ अवधि सारी तोड़ डाली
इस अलौकिक व्यक्ति ने आ।"[2]

राधा को चतुर्दिक कृष्ण ही कृष्ण दिखायी देते हैं —

"वे यहाँ हैं/वे वहाँ हैं, हृदय में, विश्वास-व्रत में/कुसुम-कलियों में लता में
वृक्ष में सरिता-लहर में/ गगन में पाताल में, वसुन्धरा-जीवन-मरण में।"[3]

माँ की ताड़ना , सास-ससुर का भय भी उसे इस प्रेम से रोक नहीं सका। वह तो प्रिय चरण में गिरकर सर्वस्व समर्पण करने को उत्सुक है —

"प्रेम क्या यह नहीं कहता जगत् जिसको हृदय-तर्पण/मन-समर्पण, तन-विसर्जन,
प्राण प्रिय के चरण में गिर।"[4]

उसकी इसी निष्ठा प्रेम के कारण नारद भी पराजित हुए और उसे कृष्ण का चिर सान्निध्य प्राप्त हुआ। "राधा कृष्ण से निष्काम प्रेम करती है, उन्हीं के प्रति समर्पण-भावना से उन्हीं में विलीन हो जाना चाहती है। वह न तो सत्यगन्धा के समान, यौवन के चापल्य से उत्पन्न काम के आवेग से दूषित है और न मेनका के समान अशान्त और अस्थिर। वासना और सौन्दर्य के मोह जाल से मुक्त राधा के विवेक, कर्तव्य और निष्काम प्रेम-भावना के आगे कृष्ण को भी विनत होना ही पड़ता है।"[5]

"राधा आवेग कीप्रतिमूर्ति और उपचार निरपेक्ष एवं प्रतिदान शून्य प्रेम की प्रतीक है।"[6]

"राधा में सात्विक उदात्त स्त्रीत्व है। सात्विक स्त्रीत्व का चरम रूप जिसमें घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, छल, आदि कुछ नहीं। राधा के प्रेम में वासना नहीं है। वह प्रेम केसात्विक रूप का प्रतीक है। राधा का प्रेम, रूप का, भक्ति का और विश्वास का है।"[7]

मृदुला

'उन्मुक्त' की नायिका मृदुला में निम्न चारित्रिक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है —

(1)सेविका :— वह देश-सेवा के लिए अपने को अर्पित करतीहै। घायल हो या रोगी उसने अपनी परिचर्या से सबको मुग्ध कर रखा है। पुष्पदन्त कहता है —

1से 4 तक :-विश्वामित्र और दो भावनाट्य-उदयशंकर भट्ट, क्रमशः पृ0सं0 104, 105, 143, 115

5:- हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन, डा0गिरीशकुमार रस्तोगी, पृ0 173-74

6- आधुनिक हिन्दी नाटक-डा0 नगेन्द्र, पृ0 111

7-विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 22

"और मूल मर तुम भी/मृदुला बहन की पुनीत सेवा-सुश्रूषा/
पाके मिले जाने फलीभूत क्या उसने।"[1]

(2) उत्साही :— मृदुला उत्साही महिला है। देश पर आये हुए संकट का साहस से सामना करतीहै। सैनिक को भेजती हुई कहती है —

"जाओ बन्धु जाओ तुम शक्ति कहाँ जिसमें/गति अवरोध जो तुम्हारा करे
है निश्चिन्त पत्नियाँ सुहाग भरी सुख से/गाती है तुम्हारेजयगीत द्वीप भरमें।"[2]

(3) राष्ट्रप्रेम :— उसमें राष्ट्रप्रेम कूट-कूट कर भरा है। युद्ध के समय जयन्त को भेजती है। देशद्रोहियों के द्वारा फैलायी अफवाह के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता व्यक्त करती है —

"हारेगा, कुसुम द्वीप सुनती हूँ क्या अरे/कैसा कुविचार शून्य भावनाएँ कैसीये।"[3]

(4) दयालु :— मृदुला का हृदय बहुत दयालु है। सखी हेमा की निर्मम हत्या सुनकर उसका हृदय बहुत द्रवित हो जाताहै। दयार्द्र होकर ही उसने अन्न, नींद छोड़ लोगों की सेवा की है। पुष्पदन्त कहता है ——

"समझा मैंने कुसुम द्वीप का मातृ हृदय यह/कितना करूणाकलित दयामय
ममतामय यह।"[4]

इस प्रकार मृदुला आदर्श प्रेमिका है, जिसमें देश-प्रेम, उत्साह, कूट-कूट कर भरा है।

द्रौपदी

यह 'द्रौपदी' की नायिका है। महाभारत के मूल में द्रुपद कन्या द्रौपदी ही थी। कवि ने उसका जन्म यज्ञवेदी से बताया है। वह कुल के संहार का कारण बनेगी ऐसा यज्ञ का विधान था। स्वयंवर केअनुसार अर्जुन की पत्नी थी किन्तु परिस्थिति वश उसे पाँच पाण्डवों की भार्या बनना पड़ा। उसकेचरित्र के निम्नपक्षों का चित्रांकन भगवती चरण वर्मा ने किया है —

(1) सुन्दरी :— द्रौपदी कृष्ण वर्ण की होने पर भी अद्वितीय सुन्दरी थी। स्वयं गीतिनाट्यकार ने लिखा है —" वह परम सुन्दरी थी। उसका सौन्दर्य औरतेज उनकी विश्व में कहीं समता न थी।xxxx चारों ओर उसकी सुन्दरता की ख्याति थी।"[5]

"सब कहते रति की सी सुन्दरी सुकोमल मैं।"[6]

(2) दर्प :— उसका जन्म प्रतिहिंसा के लिए हुआ था।अतः उसमेंदर्प प्रबल मात्रा में है —

"आरक्त नेत्र, अनबद्ध केश/ अधरों पर दर्प-भरी तृष्णा
युग की हिंसा की केन्द्र-बिन्दु/द्रौपदी पाण्डवों की कृष्णा।"[7]

1- उन्मुक्त, सियारामशरण पृ0 28-29 5- त्रिपथगा, भगवतीचरण वर्मा, पृ0 63
2- वही, पृ0 35-36 3- वही, पृ0 59 4- वही, पृ0 52
6- त्रिपथगा, पृ0 72 7- त्रिपथगा, पृ0 72

(3)शक्ति की पुजारिन :— वह त्याग, करूणा, दया, कायरों का धर्म मानती है। सामर्थ्यवान् का ही अस्तित्व रहता है —

"त्याग-दया-करूणा?यह धर्म कायरों का है/त्याग दया-करूणा अधिकार के विरोध रूप।
उसका अस्तित्व जो समर्थ और शक्त है/त्याग-दया-करूणा-ये संस्कृति के अन्ध-कूप।"[1]

"उसकी दृष्टि में सूर्य, इन्द्र, रूद्र, विष्णु, शक्ति सम्पन्नता के कारण ही पूजित है।"[2]

(4)प्रतिहिंसा :— द्रौपदी में प्रतिहिंसा कूट-कूट कर भरी हुई है। इसी कारण उसका जन्म भी हुआ है। वह स्वयं कहती है कि वह क्रोध वैर घृणा का प्रतीक है —

"मेरा अस्तित्व क्रोध-घृणा-वैर का प्रतीक/ मैं वह संज्ञा जिसमें हिंसा का साधन है।
मेरे प्राणों में है प्रज्वलित विनाश ज्वाल/ मेरी प्रत्येक सांस प्रलयंकर क्रन्दन है।"[3]

प्रतिहिंसा के प्राबल्य के कारण ही वह कर्ण को सूतपुत्र कहकर अपमानित करती है और उसे अपनी प्रतिहिंसा की पूर्ति में बाधक समझती है —

"तुम तो कुरूकुल के क्रीतदास हो केवल/~~कलक~~ जिस कुल की मैं महानाश की ज्वाला।
जो निज प्रताप से भस्म कर सके कुरूकुल/उसकी ग्रीवा की मैं पूजा जयमाला।"[4]

महाभारत के बाद उसे ग्लानि होती है। उसकी आँखों में सूनापन है, रिक्तता है। वह कहती है-

"मेरे प्राणों में है रिक्तता असीम और/ मेरे नयनों में घिरता आता अन्धकार।"[5]

पितृ-कुल, पति-कुल के नरसंहार के कारण वह ग्लानिवश हिम समाधि ले लेती है। इस प्रकार द्रौपदी अद्वितीय सुन्दरी, स्पष्टवक्ता, शक्ति समर्थिका तथा हिंसा की प्रतिमूर्ति है।

स्नेहलता

'स्नेह या स्वर्ग' की नायिका स्नेहलता आश्रय की पुत्री है जिसके रूप सौन्दर्य पर स्वर्ग का जयन्त एवं पृथ्वी का अजेय मुग्ध है। अन्त में स्नेहलता अजेय को वरण करती है। उसके चरित्र की निम्न विशेषताएँ चित्रित हैं —

(1)रूप, गुणवती :— स्नेहलता अद्वितीय सुन्दरी होने के साथ ही गुणवती भी है। इसी कारण स्वर्ग निवासी जयन्त उस पर अनुरक्त है। उसके शील की प्रशंसा शुचिता भी करती है—

"पहले तो न्यून नहीं वह किसी देवी से/रूप गुण और किसी बात में तनिक भी।
मेरे मत में तो अंतरंग बहिरंग में/ उसमें विशिष्टता है देवनारियों से भी।"[6]

1-त्रिपथगा, भगवती चरण वर्मा, पृ0 74-75
2- वही, पृ0 75
3- वही, पृ0 77
4- वही, पृ080-81
5- वही, पृ0 110
6-स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्दास पृ02

(2)दृढ़ता :—स्नेहलता आधुनिक विचारों की नवयुवती है। वह स्वच्छन्द है। वर चयन में उसे मध्यस्थता या प्रलोभन स्वीकार नहीं है —

"होकर प्रभावित न मैं किसी प्रभाव से/निज मत देना ठीक समझूँगी बात को "[1]

अजेय द्वारा समझाने पर वह दृढ़ता पूर्वक कहती है, वह निर्बल नहीं है जिसके विपरीत बल-प्रयोग किया जा सके —

"अबला नहीं मैं जो पिता श्री बिना सोचे ही/मेरे मन और विपरीत रीति-नीति के।
पशु-सा किसी के हाथ यों ही मुझे सौंप दें।"[2]

सारतः स्नेहलता आधुनिक विचारों की दृढ़ नवयुवती है।

रेखा

सृष्टि की साँझ' की नायिका रेखा में निम्न चारित्रिक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं —

(1)नयी श्रद्धा :— जिस प्रकार श्रद्धा-मनु के द्वारा सृष्टि का निर्माण हुआ था, उसी प्रकार युद्ध से नष्ट सृष्टि को पुनः जीवित करने के लिए रेखा की खोज की जाती है। महामात्य कहता है — "अन्तिम आशा/ रेखा ही तो इस नई सृष्टि की आशा है।"[1]

(2)भावुक :— युद्ध में नष्ट सामग्री, मरणासन्न प्राणियों को देखकर वह दुखित होती है। प्राणी-विहीन पृथ्वी देखकर वह भावुक हो, कह उठती है —

"मैं देख रही हूँ यह सब क्या?निर्जनता।भीषण नीरवता/सब शान्त, मौन
कोई न कहीं/मैं कौन?कहाँ?किस अपर लोक से आई हूँ।"[4]

(3)स्पष्टवक्ता :— रेखा स्पष्ट वक्ता है, वह अजय से कहती है कि तुम्हारे अहंकार के कारण यह युद्ध हुआ, तुम्ही ने जनता को उत्तेजित कर युद्ध कराया —

"क्या अपराध किये?अगणित ग्रामों, नगरों की/प्रेममयी वसुधा का/रस पीकर जीने वाले
धरती के प्यारे नर-नारी/और निरपराध शिशुओं ने थे क्या पाप किए?'
हो गये स्वाहा के सभी भस्म/बस एक तुम्हारे अहंकार के अनुक्रम में।"[5]

इस प्रकार रेखा सृष्टि को जन्म देने वाली श्रद्धा, भावुक एवं स्पष्टवक्ता के रूप में उपस्थित होती है।

गान्धारी

धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी सती नारी है, जिसने अपने ऊपर ऐसे व्यक्तित्व का आवरण आच्छादित कर लिया जो धृतराष्ट्र के अन्धेपन से अधिक अन्धा तथा वैयक्तिक था। वह नैतिकता

1-स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्ददास, पृ० 24
2- वही, पृ० 46
3, 4, तथा 5 :- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, सिद्धनाथ कुमार, क्रमशः पृ० 51, 52, तथा 59

मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण को अन्धमनोवृत्ति कहकर उन्हें सामाजिक रूप में स्वीकारने के लिए मिथ्याडम्बर मात्र सिद्ध करती है। इन आडम्बरों से ग्रसित प्रधान नैतिकता वादी जगत से गान्धारी को घृणा थी जिसके कारण उन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी चढ़ा ली।

<u>पुत्र-प्रेम</u> :— उन्हें दुर्योधन से अधिक प्रेम था। पुत्र के दुःसमाचार वे सुनकर सहन नहीं कर पा रहीं — "महाराज/ मत दोहरायें वह/ सह नहीं पाऊँगी।"[1]

इसी कारण वे कृष्ण के अवतारी रूप सन्देह करती हैं —

"इसमें सन्देह है/ और किसी को मत हो/ मुझको है।"[2]

वह पुत्र-प्रेम के कारण जर्जर हो गयी हैं।

<u>सत्यप्रेम</u> :— गान्धारी को झूठा आडम्बर, दिखावा, नैतिकता का ढोंग पसन्द नहीं था। इसीलिए स्वेच्छा से उन्होंने आँखों पर पट्टी चढ़ा ली थी —

"मैंने यह बाहर का वस्तु-जगत अच्छी तरह जाना था/
धर्म, नीति, मर्यादा यह सब है केवल आडम्बर मात्र।xxxx
मुझको इस झूठे आडम्बर से नफ़रत थी
इसलिए स्वेच्छा से मैंने इन आँखों पर पट्टी चढ़ा रक्खी थी।"[3]

उन्हें माँ शब्द से घृणा है —

"माता मत कहो मुझे/ तुम जिसको कहते हो प्रभु/वह भी मुझे माता ही कहता है।शब्द यह जलते हुए लोहे की सलाखों-सा/मेरी पसलियों में धँसता है। सत्रह दिन के अन्दर/मेरे सब पुत्र एक-एक कर मारे गए/अपने इन हाथों से मैंने उन फूलों सी वधुओं की कलाइयों से/ चूड़ियाँ उतारी हैं।"[4]

"~~होगी अवश्य होगी जय/पर जीतेगा, दुर्योधन जीतेगा~~।"

कितनी दारुण व्यथा उन्हें सहन करनी पड़ी होगी। फिर भी वे विजय के प्रति आश्वस्त थीं

"जीत गया/ मेरा पुत्र दुर्योधन/मैंने कहा था/वह जीतेगा निश्चय आज"[5]

"होगी/अवश्य होगी जय/पर जीतेगा, दुर्योधन जीतेगा।"[6]

<u>क्रूरता</u> :— पुत्रों के शोक में गान्धारी के अन्तस्तल का स्नेह-स्रोत सूख गया। वे निष्ठुर हो गयीं। वे बारम्बार संजय से अश्वत्थामा के जघन्य कृत्यों को सविस्तार सुनती हैं। विदुर कहता है —

"हृदय तुम्हारा पत्थर का है गान्धारी।"[7]

वे इन कृत्यों को संजय की दिव्य-दृष्टि से देखना चाहती हैं। वे अपनी दृष्टि से अश्वत्थामा के शरीर को वज्रवत् बनाना चाहती हैं जिससे उनकी प्रतिहिंसा सन्तुष्ट हो सके —

1-अन्धायुग, धर्मवीर भारती, 1से 7 तक, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 19, 20, 21, 22, 23, 25, 80

"देखूँगी मैं अश्वत्थामा को/ वज्र बना दूँगी उसके तन को।"[1]

दुर्योधन के कुघात को देखकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगता है। वे कृष्ण को शाप दे देती हैं। कृष्ण द्वारा शाप स्वीकृत होने पर उनकी प्रतिहिंसा शान्त हो जाती है। निष्ठुरता समाप्त हो जाती है और वेदनशालु होकर कृष्ण के लिए रोने लगती हैं। परिणाम स्वरूप जंगल की भयानक आग में वे सर्वप्रथम समिधा बनती हैं।

इन्दुमती

'इन्दुमती' गीतिनाट्य की नायिका है जिसने स्वयंम्वर भूमि में अज को वरण किया था। वह अद्वितीय सुन्दरी है। लेखक ने उसके शरीर की कान्ति अराल केशों एवं नितम्बों का वर्णन किया है—

"तन रोचनागौर, चमत्कार विरचित/अराल केशी, नितम्ब गुर्वी/मृगांक मुख पर छाई अरूणिमा।[2]

"तुम छवि रूचिरा, यौवन मधुरा।"[3]

चतुरा :— इन्दुमती की वाग्मिता प्रशंसनीय है। सखी सुनन्दा स्वयम्वर भूमि में आसीन देश देशान्तरों से आगत राजाओं का वैभव-युक्त परिचय कराती है किन्तु इन्दुमती उनमें दोष निकाल-कर आगे बढ़ जाती है।

उर्वशी

यह उर्वशी' गीतिनाट्य की नायिका है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में दिनकर ने लिखा है—

"नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के निमित्त जब इन्द्र ने उनके पास अनेक अप्सराएँ भेजी, तब ऋषि ने अपने ऊरू को ठोक कर उसमें से एक ऐसी नारी उत्पन्न कर दी जो उन सभी अप्सराओं से अधिक रूपवती थी। यही उर्वशी हुई और उर्वशी नाम उसका इसलिए पड़ा कि वह उरू से जनमी थी।"[4]

उर्वशी के अयोनिजा होने का उल्लेख भी दिनकर ने किया है —

"मैं अदेह कल्पना, मुझे तुम देह मान बैठे हो/ मैं अदृश्य तुम दृश्य देखकर मुझको समझ रहे हो/सागर की आत्मजा, मानसिक तनया नारायण की।"[5]

कहना नहीं होगा कि महाकवि दिनकर ने उर्वशी की उत्पत्ति सम्बन्धी दोनों कथाओं को स्वीकार करने का प्रयास किया है।

(1)सुन्दरी :— उर्वशी अनुपमेय सुन्दरी थी ।

"हम सब उर्वशी न जाने क्यों इतनी है सुकुमारी/देवलोक की आभा से बढ़ मर्त्यलोक की यह नारी।"[6]

1- धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ0 116 (1)अन्धायुग, पृ0 85 6-पाषाणी, पृ043
3- वही, पृ0 123 4- उर्वशी , दिनकर, भूमिका- पृ0 क 5- वही, पृ0 73

सहजन्या ने उसे नन्दन वन की ऊषा, सुरपुर की कौमुदी, रति की साक्षात् प्रतिमूर्ति कहा है— कवि दिनकर की सम्पूर्ण सौन्दर्य कल्पना से उर्वशी का निर्माण हुआ है —

"इसीलिए तो सखी उर्वशी, ऊषा नन्दनवन की/सुरपुर की कौमुदी, ललित कामना इन्द्र के मन की। सिद्ध विरागी की समाधि में राग जगाने वाली/देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली।"[1]

कवि दिनकर ने अनेक स्थानों पर विभिन्न पात्रों से उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन कराया है। निपुणिका महारानी औशीनरी से उसके सौन्दर्य का वर्णन करती है —

"लगा, सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकली हो/याकि स्वयं चाँदनी स्वर्ण-प्रतिमा में आन ढली हो। उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रमद-उपवन/उदित हुई हो याकि समन्वित नारी श्री त्रिभुवन की।"[2]

"कुसुम कलेवर में प्रदीप्त आभा ज्वालामय मन की/चमक रही थी नग्न कान्ति वसनों से छनकर तन की। हिमकण-सिक्त-कुसुम-सम उज्ज्वल अंग-अंग झलमल था/मानों अभी अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।"[3]

इस रूप माधुरी का इतना प्रभाव कि मत्त गजराज, केसरी, शार्दूल पालित पशु के समान बन जाते हैं—"विषधर के फण पर अमृत वर्ति/उद्धत, अदम्य, बर्बर बल पर

रूपांकुश, क्षीण मृणाल तार। मेरे सम्मुख नत हो रहते गजराज मत्त,

केसरी शरभ, शार्दूल भूल निज हिंस्र/गृह-मृग समान निर्विष, अहिंस्र बनकर जीते।"[4]

<u>चिरन्तन नारी की प्रतीक</u> :— उर्वशी देशकाल से परे चिरन्तन अमर रूपसी सुकुमारी युवती है—

"मैं देशकाल से परे चिरन्तन नारी हूँ। मैं आत्मतंत्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा। रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हूँ।"[5]

उसके यौवन से तृप्त रूप-जलधि में डूबते-उतराते पुरूरवा उर्वशी को चिरन्तन नारी का प्रतिनिधि स्वीकार करते हैं —

"तुम त्रिकाल, सुन्दरी अमर आभा अखण्ड त्रिभुवन की/सभी युगों से सभी दिशाओं से चलकर आयी हो। इसीलिए, तुम विविध जन्म-कुंजों में पुलक जगाकर/सभी दिशाओं, सभी युगों को पुनः लौट जाओगी।

एक पुष्प में सभी पुष्प, सब किरण एक किरण में/ तुम संहित एकत्र एक नारी में सब नारी हो। प्रतियुग की परिचिता, रसाकर्षण प्रति मन्वन्तर का, विश्व-प्रिया कल्प ही, महारानी सब के सपनों की।"[6]

1—~~[illegible]~~, उर्वशी, दिनकर, पृ08 अंक 1,
2व 3 वही, पृ020 अंक 2 4— वही, अंक 3 पृ0 76 5— वही, अंक 3 पृ0 78
6— वही, अंक 3 पृ0 79

प्रेयसी :— उर्वशी अपने रक्षक पुरूरवा पर हृदय से अनरक्त है। प्रथम दर्शन के बाद ही वह अपने आप में नहीं रह सकी —

"xxxपुरूरवा-प्रेम-पगी वह/आंखें में उर्वशी नहीं है, लुटी, ठगी वह।"[1]

"जिस सुषमा के मदिर ध्यान में मगन-मुग्ध त्रिभुवन है/पुरुषरत्न को देख न वह रह सकी आप अपने में।"[2]

पुरूरवा के वियोग में वह खोयी-खोयी सी रहने लगी, मुख-श्री विलुप्त हो गयी —

"सखी उर्वशी भी कुछ दिन से है खोयी-खोयी सी/तन से जगी, स्वप्न के कुंजों में मन से सोयी-सी। खड़ी-खड़ी अनमनी तोड़ती हुई कुसुम-पंखड़ियाँ/किसी ध्यान में पड़ी गँवा देती घड़ियों पर घड़ियाँ। दृग से झरते हुए अश्रु का ज्ञान नहीं होता है। xxx मुख-सरोज मुसकान बिना आभा-विहीन लगता है।"[3]

उर्वशी तो प्रणयी के वक्षु-वलय के विक्रम-तरंग में बढ़कर आने वाली प्रेमिका है।

मातृत्व :— उर्वशी अप्सरा होते हुए उसका हृदय मातृत्व से परिपूर्ण है। वह मर्यादा बालक कोतिमानी, प्रसन्न, धर्मात्मा, विक्रमी, बनाना चाहती है — पुत्र को देख उसका हृदय शीतल हो गया —"अरी सुन्दना क्या कहती? ला दे इस हृदय-कुसुम को

लगा वक्ष से स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती हूँ।"[4]

पुत्र के लिए वह अपना बलिदान कर देती है।

अहल्या

अहल्या के जन्म के सम्बन्ध में लेखक कहता है कि उसके माता-पिता निःसन्तान थे। यौग-जाप से उनकी आशा पल्लवित न हुई तभी गौतम ने प्रथम सन्तान का वरदान देकर उन्हें पिता पद पर आसीन कराया। अतः प्रथम सन्तान होने के कारण राजकुमारी अहल्या को गौतम से विवाह कर आश्रम में रहना पड़ा। परिणाम स्वरूपउसका व्यक्तित्व वासना और धर्म के झूले में झूलता रहता है। वह कुंठित-व्यक्तित्व की महिला है, — वह कहती है —

बालापन में मुझे तपोवन मिला, मिला था स्नेह,

जौ पेड़ की धुआँ होम का और यूप की देह।"[5]

वह इन्द्र का स्वप्न देखती रहती है, परिणाम स्वरूप उसे पति से पाषाणी बनने का शाप मिलता है। इस प्रकार अहल्या, अतृप्तकामा सुन्दरी है।

1-पाषाणी, शास्त्री, पृ0 52

2 वे उर्वशी, अंक 1 पृ0 8 3— उर्वशी, अंक 1, पृ0 9 4— उर्वशी, अंक 4 पृ0 93

5— पाषाणी, शास्त्री, पृ0 79

मंजरी

यह 'मंजरी' गीतिनाट्य की नायिका है। योगी भैरवानन्द के यौगिक चमत्कार स्वरूप इसका जन्म हुआ था। वह अद्वितीय सुन्दरी है। राजा उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गया। उसके लम्बे केश लहरों के समान, चितवन बिजली के समान है। वह वन देवी के समान पावन है। और भैरवानन्द उसके सौन्दर्य की चर्चा करता है —

"विश्वमोहिनी इन्दु-सुन्दरी, सिन्धु नन्दिनी की प्रिया सखी।
राजाश्रित योगी के यश की प्रकटी मंगल-मूर्ति अनलखी।"[1]

मानिनी :— मंजरी सुन्दरी होने के साथ ही साथ मानिनी भी है। राजा के प्रणय निवेदन को उसने अस्वीकृत कर दिया था। उसे नारी के बल का स्मरण है। अत्यधिक प्रभाव पड़ने पर वह आत्महत्या को श्रेयस्कर समझती है।

इरावती

गीतिनाट्य की नायिका इरावती में निम्न चारित्रिक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं —

(1) सुन्दरी :— इरावती अनुपमेय सुन्दरी है। राजगुरु उसके सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार करते हैं — "इस भर आँख देखने पर लहरी केसरिया साँस को।

कौन सहेगा फुलडोर को? हरे रूप के बाँस को?
कौन सहेगा कनक-कमल के पुलकों भरे मृणाल को?
बाल सुरों की हर पद तल से लिपटे बाल मराल को।"[2]

नर्तकी :— इरावती उच्च कोटि की नर्तकी है। नृत्यकला के द्वारा उसने देवदासी के पद को पाया है —"देवदासी का पद देता हूँ गौरवपूर्ण।"[3]

"नृत्यकला में गहरी रुचि, संस्कार सुरुचि-सहजात।
मर्म धर्म का मधु पी- खिलने लगा सहज जलजात।"[4]

भिक्षुणी :— इरावती बौद्ध धर्म में दीक्षित थी किन्तु उसके रूप-ज्वाला के कारण वहाँ का वातावरण अपवित्र होने लगा, परिणाम स्वरूप उसे वहाँ से निष्कासित किया गया —

"दो इसे निर्मोक ही को निकाल/सड़ी मछली से सँवाला ताल।
महाश्रमण, स्थविर, श्रमण-वर्ग/जो नहीं था मनाता रे स्वर्ग।"[5]

स्वतंत्रता प्रेमी :— इरावती स्वतंत्र वातावरण में रहना चाहती है। देवदासी से रानी बनने पर उसे सन्तोष नहीं है। वह प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में जीना पसंद करती है —

स्वगुफा में वन की हिरनी, छिद्र जाल से घिरी हुई,
ज्ञात चले हो, आत्मग्लानि से प्रस्त न मुझ सी गिरी हुई।"[6]

1- भागामी, शास्त्री, पृ0 117   2- वही, पृ0 117

3से 6 तक :— इरावती, शास्त्री, क्रमशः पृ0सं0 — 71, 53, 53, 75, 60

<u>त्याग :—</u>

अग्निमित्र उसे रानी बनाने को कहता है, किन्तु उसे कोई बन्धन स्वीकार नहीं है वह तो ललित कलाओंकी ओर ध्यान देना चाहती है —

"स्वस्तु मैं जातीहूँ, पढ़ी जा चुकी पाती हूँ
कुछ भी बचा नहीं पढ़ना, स्वप्नफलक कोई गढ़ना।"[1]

इस प्रकार इरावती अद्वितीय सुन्दरी, नर्तकी, एवं त्याग की प्रतिमूर्ति है।

1- इरावती, जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ0 संख्या 80

तृतीय अध्याय

प्रमुख गीतिनाट्यों में भावबोध

प्रमुख गीतिनाट्यों में भावबोध

गीतिनाट्यों के तत्वों का विवेचन करते समय हमने रसावयवों का संक्षेप में विवेचन किया है जिनके आधार पर यहाँ गीतिनाट्यों में प्राप्त रसों का विवेचन किया जा रहा है। आधुनिक समस्याओं एवं उनकी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के कारण प्राचीन शास्त्र सम्मत रस के उदाहरण कम ही गीतिनाट्यों में मिलते हैं। नाट्यकारों ने रसांगों के एक दो अवयवों का उल्लेख कर अपना कार्य चलाया है, जिसका विवेचन नीचे किया जा रहा है। एक एक रस को लेकर गीतिनाट्यों में प्राप्त स्थलों का विवेचन यहाँ अपेक्षित है —

(1) शृंगार-रस :—

प्रेमियों के मन में संस्काररूपसे वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँच कर जब आस्वाद योग्यता को प्राप्त करता है तब उसे शृंगार रस कहते हैं। स्थायी-भाव-रति, नायक नायिका, आलम्बन-सखा-सखी, चन्द्र, उपवन आदि उद्दीपन, आलिंगन, चुम्बन, रोमांच स्वेद, कम्प, अनुभाव, उग्रता, मरण और जुगुप्सा को छोड़कर शेष लज्जा, हर्ष, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं। शृंगार रस संयोग और विप्रलम्भ के भेद से दो प्रकार का होता है।[1]

(क) संयोग-शृंगार :—

अनेक गीतिनाट्यों में संयोग शृंगार के स्थल मिलते हैं। लीला में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राम-सीता के पूर्वराग का वर्णन किया है। राम आश्रय, सीता आलम्बन, पुष्पवाटिका उद्दीपन एवं अभिलाषा से रतिभाव पुष्ट हुआ है —

"इनसे बातचीत करने को मेरा मन करता है।"[2]

इसी स्थल पर राम का लम्बी साँस लेना सात्विक अनुभाव व्यक्त हुआ है —

"मुझे उदास भाव की लम्बी साँसे सी आती हैं xxxx
इसे देखकर मेरा मन क्यों मुग्ध हुआ विधि जाने।"[3]

अनघ :— अनघ में मघ एवं सुरभि का रतिभाव वर्णित है जिसमें सुरभि-आश्रय, मघ आलम्बन अवहित्था लज्जा, व्रीडा आदि भाव रस की अभिव्यक्ति हुई है —

"चलती तो हूँ पर नैन न लज्जा करना। हो जायेगा अन्यथा आप ही मरना।
तुम कहीं यहाँ मुँह चोर पकड़ जाऊँगी। निज मकड़जाल में आप जकड़ जाऊँगी।।

1- काव्य दर्पण, रामदहिन मिश्र, पृ० सं० 179-81
2- लीला- गुप्त, पृ० सं० 88
3- वही, पृ० सं० 88-89

रख लेना मेरी लाज आज तुम बढ़कर। गड़ जाना कहीं न आप लाज में पड़कर।"[1]

<u>पंचवटी-प्रसंग</u> :— में निराला ने सीता - राम के संयोग शृंगार के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं। संचारीभावों से रति स्थायीभाव पुष्ट हुआ है। सीता पुष्पवाटिका के मनोरम दृश्य का स्मरण करती हैं —

"आती है याद आज उस दिन की/प्रियतम जिस दिन हमारी पुष्प-वाटिका में पुष्पराज बाल-रवि-किरणों से हँसते नव नीलोत्पल।साथ लिए तात का/घूमते सौम्य थे नयन-मनोरम [illegible] तुम।"[2]

एकान्त स्थल, सुखद समीर आदि से सीता का रति स्थायीभाव जाग्रत होता है —

"सुखद समीरण में विहग-कल-कूजन-ध्वनि/पत्रों के मर्मर में मधुर गन्धर्वगान।
और कहाँ पीती मैं श्रीमुख की अमृत कथा?"[3]

शूर्पणखा-सौन्दर्य वर्णन के समय निराला ने अनेक अनुभाव, शोभा, कान्ति, माधुर्य, का उल्लेख कर शूर्पणखा के मन में सुप्त रति को स्फुरित किया है —(पृ०सं० 224-225) उपेक्षा अवमानना से गर्व संचारीभाव व्यक्त किया गया है —

"पर मैं विजय-गर्व से/विजितों, पद-पतितों पर/ अति अवज्ञा की दृष्टि फेर लेती चन्द्रानन विश्वजयी।"[4]

किन्तु राम के सौन्दर्य को देख वह मुग्ध होकर अपना प्रणय निवेदन करती है —

"सुन्दर, मैं मुग्ध हो गई हूँ देख/ अनुपम तुम्हारा रूप।जैसी मैं सुन्दरी हूँ,
योग्यही हो मेरे तुम। मचल रहा मानस मम/इच्छा यह पूर्ण करो।"[5]

<u>तारा</u> — को देखकर चन्द्रमा के मन में रति स्थायीभाव जाग्रत होकर रस दशा को प्राप्त हुआ है, फलस्वरूप, तारा का सौन्दर्य उद्दीपन विभाव, कम्प आँखे झँपना, हृदय की गति बढ़ना, उत्कण्ठा हर्ष औत्सुक्य संचारी भाव उल्लेखित हैं —

"क्यों आँखे झप गयी और कम्पन हुआ। हृदय धड़कने लगा वेग से किसलिए।
ये अभिशापित अशुभ अपशकुन आह, रे। तारा गुरुपत्नी तारा तुम कौन हो।
धूम रहित तुम अग्निशिखा की ज्वाल हो। [illegible] उज्ज्वल-मुक्त हो तुम शीतल मृणाल हो।
अरे कौन हो सुन्दरता की पाल हो।"[6]

1-अनघ, गुप्त, पृ० 36 2-परिमल, निराला, पृ० 214
3- परिमल, निराला, पृ० 215 4- वही, पृ०225 5— वही, पृ० 233
6- तारा, भगवती चरण वर्मा, पृ० सं० 62

'मत्स्यगन्धा' :— में युवावस्था मत्स्यगन्धा के रति स्थायी का अच्छा वर्णन हुआ है। गंगा का किनारा, संध्या समय, सुखद वातावरण में उसके हृदय में सुप्त रतिभाव जाग्रत होता है—सिहरन एवं औत्सुक्य इसे प्रकट करते हैं —

प्रिय सखि, आज मम हृदय सिहर कैसी/प्रकृति हृदय ही या हुआ मुग्ध ऐसा आज
मानता नहीं है मन यौवन की क्या लहर/कहता जगत् जिसे होगी वह कैसी बला?
× × × × × ×
अतल हृदय-तल निर्मल अमन्द मन्द/उठती तरंग मेरे अंग-अंग प्राण में।"[1]

अनंग के चले आने पर जड़ता, मद, मोह, उन्माद आदि संचारी भाव के साथ कम्प रोमांच का वर्णन हुआ है —

"घूम-सा देखती अलात-चक्र ऐसा चित्त,
रह रह काँपती हैं रोम-राजियाँ निश्चित/ इष्ट सा मिला हा ही मिलन साहुआ अभिनव[2]

मत्स्यगन्धा और पराशर मिलन के समय संयोग श्रृंगार का अच्छा वर्णन हुआ है। अन्धकार में से ये आवाजें सुनायी पड़ती हैं —

"नाव यह कन्यकात्व, वह भी कलंक-हीन
माननीय होगा क्या/ री प्रभु है सदा अमोघ।
क्या न मेरा यौवन/ अनन्त सुख-राशियुत
एवमस्तु, एवमस्तु/ एवमस्तु-एवमस्तु।"[3] (मत्स्यगन्धा)

तपस्वी 'विश्वामित्र' की समाधि-भंग होने पर चतुर्दिक मादक, उद्दीपक वातावरण को देख कर उनका रति स्थायी स्मृत्यादि से व्यक्त हुआ है —

"है यह कैसा हुआ मंजु कान्तार है? कैसी है उद्दाम पुरानी सुख-सी
स्मृतियों की अति वेगमयी चल चित्रिका।"[4]

उसी समय अपूर्व सुन्दरी मेनका को देखकर वसन्तऋतु, एकान्त स्थल, उद्दीपन विभाव से जड़ता मद, हर्ष संचारी भावों से रति स्थायीभाव पुष्ट हुआ है —

"अरे, अरे तुम कौन मंजु मृदु कल्पना/विधि की हरि की सुरपति की या प्रकृति की,
रति की रतिपति की, मदन की, सुख की/कौन कौन तुम कौन यहाँ क्या कर रही/
मेरे अन्तर रोम-रोम में लीन हो?"[5] (विश्वामित्र)

('अप्सरा' में कलाकार के रति स्थायीभाव का उल्लेख हुआ है। अप्सरा आलम्बन, संगीत और अप्सरा को सौन्दर्य उद्दीपन, मद आवेग संचारी भाव है —

1-2-3-4-5 :— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, उदयशंकर भट्ट, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 59, 66, 77-78, 25, 26

"यह कैसी संगीत वृष्टि हो रही गगन से/या मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है।
कैसा आकर्षण यह कैसा सम्मोहन/ यह सौन्दर्य मधुरिमा कोई मेरे मन को।
जैसे कोई शोभा छाया मेरे मन से/लिपट गयी हो और उसी के संकेतों पर
मेरा जीवन नाँच रहा हो विस्मित हूँ मैं।"[1] (अप्सरा)

'राधा' —— में कृष्ण और राधा के संयोग के अनेक चित्र अंकित हैं। राधा आश्रय कृष्ण आलम्बन, यमुना का किनारा, शीतल मंद वायु- एकान्तस्थल, ज्योत्स्ना और वंशी धुन उद्दीपन विभाव, राधा का नाँचना, कटाक्ष, कृष्ण के साथ सम्भाषण रोमांच अनुभाव तथा मद, औत्सुक्य हर्ष संचारीभाव हैं ——

"फिर सुनाओ वही वंशी-तान गायक, फिर सुनाओ/
सुनूँ ले दृग के सजीवालोक-पथ उन्मुक्त चिन्ता।
काँपती सी गुनगुनाती सुन रही हूँ वही स्वर ले/वो उसी लय में भिगोकर उत्तरंगिनि
निज तरंगें।
भर उमंगें, विश्व-वन के पुलक में आशा संजोए/
ताल से गातीं, थिरकतीं, उभरतीं, फैलीं, भिलमिली।
आज मेरे लघु हृदय में विश्व का मद भर रही है। मैं सभी भूली कहाँ हूँ, कौन हूँ, क्या
रूप मेरा।"[2] (राधा)

उन्मुक्त :- में आश्रय गुलजार, आलम्बन मृदुला, एकान्तस्थल, मृदुला का सौन्दर्य उद्दीपन विभाव हर्ष संचारी भाव से संयोग श्रृंगार व्यक्त हुआ है ——

"तुमको तो देख रहा हूँ मैं अनिमिष से/तुमको जो मेरे इस जीवन की प्राण की
पुष्पित प्रसन्नलता, तुमको जो तुम हो/मेरे नयनों की ज्योति मेरी उर तन्त्री की
मंजुल मधुर गूँज। देखूँ और फिर क्या/ मेरी मनमोहिनी।"[3]

'कर्ण' में कर्ण आश्रय, द्रौपदी आलम्बन, उसका अनुपम सौन्दर्य उद्दीपन, अभिलाषा गुणकथन मोह आदि संचारीभाव हैं ——

"मेरे मानस में थी उमंग की लहरें/मेरी नस-नस में उष्ण रक्त संचारित,
मेरी साँसों में व्याप्त प्रणय की अविरल/थी रोम रोम में प्रेम भावना अंकित।
यों मंत्रमुग्ध सा सपनों में खोया-सा/द्रौपदी वरण की ले उर में अभिलाषा।"[4]

1- ज्योत्स्ना, पंत, पृ0सं0 94   2- विश्वमित्र और दो भावनाट्य, पृ0सं0 118, 119, 120

3- उन्मुक्त, सियाराम शरण गुप्त, पृ0 सं0 34

4- त्रिपथगा, भगवती चरण वर्मा, पृ0 सं0 16

'स्नेह या स्वर्ग':— मैत्रेय आश्रय स्नेहलता आलम्बन, स्नेहलता का सौन्दर्य एकान्त उद्दीपन विभाव, हृदय में मूर्ति स्थापित कर उसका पूजन अनुभाव एवं चिन्ता, हर्ष, वितर्क संचारी भाव से संयोग श्रृंगार व्यक्त है —

"मेरा मन जब था मृदुल बाल्यकाल में/एक मूर्ति अंकित हुई थी उस पर भी।
मूक रहा तन, मन-पूजन चला किया/भीतर ही भीतर रहा ही बाह्य उसका
संग रहता था वह भंग न हो गया था। अन्तरंग वृत्त कभी तुमसे कहा नहीं।"[1]

मेघदूत — में यक्ष-यक्षिणी, के मिलन में संयोग श्रृंगार के दर्शन होते हैं। यक्षिणी आलम्बन, यक्ष आश्रय, सौन्दर्य उद्दीपन मोह चिन्ता संचारी भाव से संयोग श्रृंगार व्यक्त हुआ है —

"कैसे जाऊँ तुम्हें छोड़कर प्रेयसि तुम मेरे प्राणों के मधुर वृन्त पर स्वर्ण-
कुसुम-सी/ खिलीहुई जोअपलक लोचन।
शोभा की झिलमिल पंखुड़ियाँ, बरसाती जब मादक सौरभ/ विस्मृत हो जाता है तनमन
नहीं प्रिये प्रेमी का अन्तर, प्रेयसि की प्रतिमा को तजकर/नहीं पूजता अन्य मूर्ति को।"[2]

'रजतशिखर' में युवक आश्रय युवती आलम्बन उपवन, मधुऋतु, एकान्त स्थल उसका सौन्दर्य कटाक्षादि उद्दीपन, रोमांच, अभिलाषा, हर्ष, आवेग संचारी भाव हैं —

"तुम्हें ज्ञात है मेरे जीवन के निकुंज में/तुम्हीं प्रथम मधुऋतु आई थीं जब प्राणों के
पल्लव मर्मर कर, स्वप्नों से सिहर उठे थे। मदिरारुण लपटों में उर की आकांक्षाएँ।
फूट पड़ी थीं, सहसा तुमको घेर चतुर्दिक, मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यों नव किसलय।
फूलों की ज्वालाओं से अन्तर प्रान्तर में/सुलग लालसाएँ अवचेतन की चिर संचित।"[3]

'कवि' में आश्रय कवि, अप्सरा आलम्बन, एकान्त स्थल भ्रमर गुंजन, सन्ध्या समय नायिका का अद्वितीय सौन्दर्य, उद्दीपन मधुर आलाप, मुग्ध दृष्टि, हर्ष-मोह, जड़ता संचारी भाव है—

"जोनूतन कलिका-सी/आकर्षक स्निग्ध मधुर/जो अनुपम मदिरा सी।
मादकता बरसाती/अपने अंचल को फहराती/इस शून्य विजन में
उतर रही मंथर गति से कवि क्यों अशान्त?यों मुग्ध और हतप्रभ हुए?"[4]

'सृष्टिकी साँझ' में स्वर्ग की अप्सरा को देख सेनानायक के मन में रति स्थायीभाव रस रूप में परिवर्तित होता है। आलम्बन अप्सरा, उसका सौन्दर्य एकान्त स्थल कटाक्ष, उन्मादक, पवन, उद्दीपन विभाव, आश्चर्य, रोमांच संचारी भाव वर्णित हैं —

"सुन्दरता का इतना प्रकाश। मेरीआँखें तो मुँद-मुँद जाती हैं बाले।
उड़ रही सुरभि। मादक, उन्मादक, सुमन-सुरभि/कंटकित हो रहा अंग-अंग।"[5]

1-स्नेह या स्वर्ग, पृ042 2-संगम पत्रिका, पृ02जन्1950, 3-रजतशिखर, पृ013
कवि, सिद्धनाथ, पृ0206-7, 5-सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक,-पृ0 66

'संघर्ष' — में शिल्पकार पंकज एवं उसकी पत्नी बेला के रति वर्णन में शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है। बेला आश्रय, पंकज आलम्बन, प्रेमपूर्ण आलाप, परस्परावलोकन, लज्जा, हर्ष, उत्कण्ठा संचारी भाव उल्लिखित हैं :—

"पंकज : बड़ी खुश हो बेला।

बेला : मैं खुश न होऊँ, तो दूसरा कौन होगा?

पंकज : आखिर बात क्या है?

बेला : मुझसे खुशी की बात पूछ रहे हो?

पंकज : क्यों?

बेला : क्यों का जवाब मैं नहीं देती।"[1]

'इन्दुमती' — में स्वयम्बरा इन्दुमती के अजदर्शन के समय संयोग शृंगार की अभिव्यक्ति स्नेह, स्निग्ध, रोमांच आदि अनुभाव तथा लज्जा संचारी भाव से हुई है —

"तब संकोच भरी चितवन से/इन्दुमती ने पलक उठाये/नयन हुए अनुरक्त देखकर अरूण भाव से फिर भर आये/कुसुमित अंग हुए रोमांचित/लाल हुआ गोरा चन्द्रानन चरण रूके, झुक गए नयन फिर मुग्ध हृदय का कर चित्रांकन।"[2]

'मदन दहन'— में पार्वती आश्रय शंकर आलम्बन, एकान्त स्थल, स्पर्श उद्दीपन, पुलक रोमांच स्वेद, अनुभाव तथा हर्ष, मोह, संचारी भाव के द्वारा संयोग शृंगार व्यक्त हुआ है —

"पुलकित अंगवती गिरिजा/लज्जित ~~मन~~ नयन प्रेम विगलित तन मूर्तिमयी छवि की रोक लिया मन बडे यत्न से संयम में औ लगे देखने।"[3]

पाषाणी'— मे गौतम अहल्या के संवादों में इस रस का वर्णन हुआ है। गौतम आश्रय, अहल्या आलम्बन, उसका लावण्य सौन्दर्य एवं समीप रहने की याचना उद्दीपन विभाव अभिलाषा गुणकथन आदि संचारी भावों से संयोग शृंगार पुष्ट हुआ है —

"आज मेरी मोद की सीमा नहीं/ यह न अटता, कुछ नव छोटी मही।
लालसा थी तुम कहो/ प्रिय मैं —'प्रिये' पूर्ण आज हुई झिझक फिर किसलिए?
पास आओ तो बताऊँ प्रेयसी, स्वर्ग में तुम सी न रम्भा, उर्वशी।"[4]

'भँवरी' — में राजा और रानी के मिलन में शृंगार रस का वर्णन हुआ है। राजा आश्रय रानी आलम्बन उसका सौन्दर्य एवं ऋतुराज बसन्त का आगमन, सुरभित वायु उद्दीपन विभाव और आह्लाद संचारी भाव है —

1—सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक- पृ0 119 2— धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ012।
3— नयासमाज-अगस्त पृ0 85 सन् 1952, 4—पाषाणी —शास्त्री, पृ095

"मुख दुकुल के बिना खुले/मुख की सुषमा पाटलन्सी,
होठों की निखरे अरुणाई/ परिणत बिम्बाफलन्सी।
× × × × ×
मलय-पवन बिखुराती अलकें/ सिहर लगाती उर में
प्राणों की वीणा बज उठती/ अनजानेसे सुर में।"[1] (पाषाणी, पृ0105)

<u>सुधा सरोवर</u> :— में राजकुमारी और पुरुष का उभयपक्षीय प्रेम होने के कारण परस्पर आश्रय, आलम्बन है। एकान्त स्थल उद्दीपन विभाव, पुरुष के समीप जाना, अश्रु, पूजन, अनुभाव तथा हर्ष आवेग संचारीभाव है —

"माथा उठाओ/चितवन दो मुझे/ये आँसू मेरे हैं/ ये भारी पलकें/मेरी हैं।
मैं हूँ वह, राजकुमारी। मेरे प्राण, पूजन करूँगी/आओ, पर्व है आज
मेरे नयन का, मेरे सूर्य/लो, मैं स्वयं अर्ध्य हूँ/समर्पित हूँ तुम्हें
झलमल यदि तारे अर्पित हैं/ मेरे अन्तस् के आँचल के दीवाले
पलकों के झिलमिल/माथे के घूँघट से/लो आरती है मेरी तुम्हें।"[2] (सुधासरोवर, पृ081)

<u>उर्वशी</u> :— में संयोग शृंगार के अनेक स्थल हैं। द्वितीय, तृतीय सर्ग में पुरूरवा-उर्वशी, के प्रणय-शृंगार तथा चतुर्थ सर्ग में च्यवन-सुकन्या के संयोग का वर्णन है। महारानी औशीनरी से निपुणिका, पुरूरवा और उर्वशी के प्रथम मिलन का वर्णन करती है कि चाँदनी रात में वृक्ष की छाया से उर्वशी जब बाहर आयी तो राजा ने व्याकुल होकर उसका आलिंगन कर लिया। उर्वशी आलम्बन, पुरूरवा आश्रय, चाँदनी रात, एकान्त स्थल उर्वशी का सौन्दर्य उद्दीपन विभाव व्याकुल होकर आलिंगन करना, मधुरवचन अनुभाव और मोह, स्मृति चपलता, हर्ष, आवेग संचारी भाव है —

"महाराज ने देख उर्वशी को अधीर अकुला कर/बाँहों में भर लिया दौड़ गोदी में
उसे उठाकर।××××××××
और प्रेम-पीड़ित नृप बोले,-"क्या उपचार करूँ मैं/ सुख की इस मादक तरंग को कहाँ
समेट धरूँ मैं?"[3] (उर्वशी, दिनकर, पृ0 21)

पूर्व वियोग का स्मरण कर अश्रु-अभिलाषा, उन्माद से पुरूरवा उसका वर्णन करते हैं —

"प्राणों की मणि, अयि मनोज्ञ मोहिनी, दुरन्त विरह में/नहीं झेलता रहा वेदनाएँ
क्या-क्या दुःसह मैं?"
दिवा रात्रि उन्निद्र पलों में तेरा ध्यान सँजोकर
काट दिये आतप वर्षा, हिमकाल सतत रो-रो कर।
× × × × × × × ×
"धरते तेरा ध्यान चाँदनी मन में छा जाती थी,

चुम्बन की कल्पना अंग में सिहरन उपजाती थी।"[1]

उन्माद की अवस्था का अच्छा वर्णन हुआ है। पुरूरवा कहते हैं कि वियोगकाल में मेघों में छिपकर वह राजा का मन हरती थी, चन्द्रमा की आड़ से संकेत करती थी। प्रत्येक फूल में राजा को उर्वशी का मुख दिखायी देता था —

"मेघों मेघरन्ध्र छिपी मेरा मन तू हरती थी,
औरओट लेकर विधु की संकेत मुझे करती थी।
फूल-फूल में यही इन्दु-मुख आकर्षण उपजा कर,
छिप जाता सौ बार विहँस इंगित से मुझे बुलाकर।"[2]

इसी प्रसंग में पुरूरवा द्वारा उर्वशी का अनुगमन, पल्लवदल से व्यजन, पुष्पादि से उसके अंगों को सज्जित करने में संयोग शृंगार हर्ष, आवेग, वितर्क संचारी भावों से पुष्ट हुआ है। निपुणिका कहती है —

"जिधर-जिधर उर्वशी घूमती, देव उधर चलते हैं।
तनिक श्रान्त यदि हुईं, व्यजन पल्लव-दल से झलते हैं।
निखिल देह को गाढ़ दृष्टि से पय से मज्जित करके,
अंग-अंग किसलय, पराग, फूलों से सज्जित करके,
फिर तुरन्त कहते "ये भी तो ठीक नहीं जँचते हैं,
भाँति-भाँति के विविध प्रसाधन बार बार रचते हैं।"[3]

उर्वशी के प्रेम को मद, हर्षादि संचारी भावों से व्यक्त किया गया है —

"और उर्वशी पीकर सब आनन्द मौन रहती है,
कदाचित पुलकातिरेक में मन्द-मन्द बहती है।"[4]

तृतीय अंक में दोनों का अबाध मिलन वर्णित है। गन्धमादन पर्वत पर दोनों के मधुरालाप अनुभावों का विस्तृत वर्णन हुआ है —

"वक्षस्थल पर इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो,
कसे रहो, बस इसी भाँति उत्पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर-पुट को कठोर चुम्बन से।
किन्तु आह, यों नहीं, तनिक तो शिथिल करो बाँहों को।"[5]

1-2-3-4-5:— उर्वशी, दिनकर, क्रमशः पृष्ठ संख्या — 21, 21, 23, 50, 59

दोनों के मिलन के उन्मादक चित्र उर्वशी में अंकित हैं। संयोग शृंगार के सभी सात्विक अनुभाव, व्यभिचारी भावों का वर्णन हुआ है —

"उफ़ री यह माधुरी और ये अधर विकच फूलों - से।
ये नवीन पाटल के दल आनन पर जब फिरते हैं,
रोमकूप, जाने, भर जाते किन पीयूषकणों से।
और सिमटते ही कठोर बाँहों के आलिंगन में,
चटुल एक पर एक उष्ण ऊर्मियाँ तुम्हारे तन की
मुझ में कर संक्रमण प्राण उन्मत्त बना देती हैं
कुसुमायित पर्वत-समान, तब लगी तुम्हारे तन से
मैं पुलकित-विह्वल, प्रसन्न मूर्छित होने लगती हूँ।"[1]

इसी तरह चतुर्थ अंक में सुकन्या-च्यवन के प्रथम दर्शन के समय संयोग शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है। आलम्बन सुकन्या, आश्रय च्यवन, लज्जा से मुसकुराना, बंकिम कटाक्ष उद्दीपनविभाव क्रोध का नष्ट होना, आह्लादित होना, मधुरालाप नेत्र तरल होना, हर्ष औत्सुक्य संचारी भावों से रस पुष्ट हुआ है —

"नयन रक्त पर नहीं कोप से आसव की लाली से।
सहसा फूट पड़ी स्मिति की आभा ऋषि के आनन पर,
× × × ×
ज्यों ही हुई सचेत कि लज्जा से मुसकुरा उठी मैं,
पट सँभाल कर खड़ी देखने लगी वंक लोचन से,
× × × ×
कहाँ मिला यह रूप, देखते ही जिसको पावक की
दाहकता मिट गयी, स्थाणु में पत्ते निकल रहे हैं।"[2]

इसी तरह कवि दिनकर ने सुकन्या के प्रेम का मोहक वर्णन कर संयोग शृंगार का अच्छा परिपाक किया है। च्यवन की प्रणय क्रिया के पुलकी सुकन्या अपादमस्तक अभिभूत हो उठी—

"लगा मुझे, सर्वांग देह की धारी टूट रही है
निकल रही है त्वचा तोड़कर दीपित नयी त्वचायें
चला आ रहा फूट अतल से कुछ मधु की धारा-सा
हरियाली से मैं प्रसन्न आकण्ठ भरी जाती हूँ।"[3]

1-2-3 :— उर्वशी, दिनकर, क्रमशः पृष्ठ संख्या — 59, 86-87, 88-89

(ख) वियोग-शृंगार :—

सम्मिलन का अभाव ही वियोग है। इसके चार भेद किए गये हैं—पूर्वानुराग मान, प्रवास, और करुण। इन सबका विवेचन गीतिनाट्यों में हुआ है, जिसका दिग्दर्शन निम्नपंक्तियों में कराया जा रहा है —

'मत्स्यगन्धा' में मत्स्यगन्धा के पराशर के सहवास के बाद उसकी स्मृति में वियोग शृंगार का वर्णन हुआ है जिसमें मत्स्यगन्धा आश्रय, पराशर आलम्बन, स्वप्न स्वत, सम्मिलन सुख, उपवन उद्दीपन विभाव, स्मृति मद, व्याकुलता, हर्ष संचारीभाव है —

"हा क्या हुआ, कैसा यह याद पड़ता न कुछ/रोम रोम बहा नवचेतन अनन्त आज, क्या कहा था याद आता। देता वरदान तुम्हें/ किन्तु प्रिये, प्रिय भी सदा न प्रिय लगता है—मैंने कहा धीरे धीरे' नाथ, वह इष्ट मुझे/' उन्होंने कहा था फिर एवमस्तु-एवमस्तु। मेरा प्राण कह उठा—'एवमस्तु प्रियतम।"[1]

'विश्वामित्र' में वियोग शृंगार का अच्छा वर्णन हुआ है। विश्वामित्र आश्रय, मेनका आलम्बन, आलिंगन रोमांच, वेपथु, अश्रु अनुभाव, मद, रोमांच कम्प संचारी भाव हैं —

"अरे, प्राण की निखिल ज्योति कम्पित हुई/ रोम-रोम में विस्मृति की लहरें उठीं स्मृतियों पर चित्रित करती-सी राग को/ घोर नशे-सी घूम रही हो नैन में अरे, अग्नि-सी सुलगाकर इस देह में/कहाँ गयी वो काम-भृकुटि चल बीच में।"[2]

व्याकुलता, हृदय की गति बढ़ जाना कम्प, श्वासोच्छ्वास का उद्दीप्त होना, बहुत मार्मिक ढंग से वर्णित हुआ है —

"हैं यह कैसा हुआ, हृदय यह क्या हुआ?अरे क्या हुआ अणु-अणु क्यों बेचैन है? हृदय काँपता, धड़कन उड़ती जा रही/श्वासों के संग नभ में पंख समेटकर अन्धकार है लहर-लहर सा घूमता।"[3]

उन्माद के कारण मेनका उन्हें सर्वत्र दिखायी दे रही है —

"देख रहे हैं देख रहे हैं प्राण शत/शत नैनों से बहु मंजु मनोरम मूर्ति तव तरु में किसलय में, कुसुम मकरन्द में/ अलि-गुंजन में, पवन प्रसार में ओस में, तुम यह, सुमनस, यहाँ, इधर ही तो खड़ी/ अरु चलूँ क्या, नहीं शिखर पर हँस रही[4]

वे मेनका का गुणानुवाद करते हैं —

1-2-3-4—— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, उदयशंकर भट्ट, पृष्ठ संख्यायें— क्रमशः—

79-80, 34, 36,, 35

"इन गुलाब की पंखुड़ियों पर हँस रहा/प्रिये तुम्हारा स्मय, विस्मय को चूमकर।
चम्पा की मकरन्द सुधा में उड़ रही/मुग्ध हृदय की मृदुल कोमलता, सरल।
अल्हड़पन मस्ती, मादकता, बेसुधी/ मुग्ध कम्पन में फूटा-सा यौवन चूमता।"[1]

इस वियोग के कारण विश्वामित्र मरण को भी अच्छा समझते हैं, मरण-उद्वेग आदि का वर्णन देखिए —

"अविचल सब उद्भ्रान्त हुआ प्रलयान्त भी, जीवन, जीवन मृत सा मेरा हो गया
वेगों में उद्वेग बरसा-सा जा रहा/ उद्वेगों में शून्य, शून्य में हृदय हैं।
× × × ×
फिर जीवन में साध क्या/ जीवन ही क्या, मरण-मरण ही तो भला।"[2]

<u>'राधा'</u> में राधा आश्रय, कृष्ण आलम्बन, एकान्त स्थल, कुंज, यमुना का किनारा, भ्रमर गुंजार, उद्दीपन विभाव, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रु अनुभाव, एवं आवेग, श्रम जड़ता, स्मृति संचारी भावों से राधा का वियोग वर्णित हुआ है ——

"पर न जाने मैं किसी के स्वप्न-सी क्यों खो रही हूँ।
आस ले अनुराग ले उत्ताल मानस में प्रलय कर,
किसी घन के बिन्दु सी किसलय, कुसुम, तृण, ताल में गिर
और गिर अंगार पर स्मृति-चिन्ह हाहाकार का ले?"[3]

<u>'स्नेह या स्वर्ग'</u> — में आश्रय अजेय आलम्बन स्नेहलता, एकान्त स्थल, चन्द्रमा, सुरभित वायु उद्दीपन विभाव, उठ-उठकर घूमना सात्विक अनुभाव, आवेग, जड़ता, स्मृति संचारी भावों से वियोग श्रृंगार पुष्ट हुआ है —

"किन्तु कालान्तक-सी थी पूनें हाय कल की/विकल हो हो उठा, कल न मिली पल भी।
उठ उठ-घूम-घूम कक्ष में गवाक्ष में/ कटी किस भाँति रैन कहूँ यह कैसे मैं/
जल जल मेरा जी जलाता जो अनल था/ फैल फैल चारों ओर श्वासानिल से बढ़ी।"[4]

<u>'मेघदूत'</u> में शाप के कारण यक्ष-यक्षिणी को वियुक्त होना पड़ा। आषाढ़ मास के बादलों को देखकर यक्ष का प्रेम उद्दीप्त होता है और वह मेघों को अपना संदेश-वाहक बनाता है। मेघ, यक्षिणी से उसका विरह वर्णित करता है। चित्र बनाना क्षमा माँगना, अनुभाव, स्मृति विषाद उन्माद संचारी भाव वर्णित है —

1-2-3 :— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, क्रमशः पृ० संख्या —37, 36-37-38, 100
4— स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्ददास, पृ० 5

(12)

"आठ पहर कसता रहता है, है न प्रियंगुलता में वह छवि/हरिणी में वह दृष्टि कहाँ है।"

सुन्दरि, प्रणय कुपित तेरी छवि/धातु राग से स्फटिक शिला पर

निर्मित कर जैसे ही प्रियतम/क्षमा माँगने आतुर होता/वैसे ही आँखों से आँसू

उमड़-उमड़ धुँधली कर देते/ दृष्टि यक्ष की।"[1] (मेघदूत)

पुरूरवा को देख उर्वशी अपना मन हार गयी थी। स्वर्ग लोक आने पर उसका दुख बहुत ही जाता था। पुरूरवा आलम्बन, उर्वशी आश्रय, प्रथम मिलन की स्मृति उद्दीपन विभाव एवं स्मृति मरण, अभिलाषा संचारी भावों से उर्वशी (शाल्मी) में विप्रलम्भ श्रृंगार पुष्ट हुआ है—

"क्या जिलाया था मुझे, इस भाँति मरने के लिए? तन किया था मुक्त, मन लाचार करने के लिए? स्वाद जीवन का मिला, जब वे मिले उस बार तुम/ फिर मिलो इस बार मैं तैयार मरने के लिए। कह रही हूँ, पास भी कब तक बचा सकता मुझे/तुम न आओ मैं जिऊँ सौ बार मरने के लिए।"[2]

'अशोक वन-बन्दिनी':— में सीता आश्रय, राम आलम्बन, किसलय अशोकवाटिका, पशुपक्षी तथा अन्य उद्दीपन विभाव, अश्रु, स्मृति संचारी भाव से वियोग श्रृंगार पुष्ट हुआ है —

"लौटे पंछी साँझ पड़े न मन/जाने किस वन कहाँ गगन में खो गया?

तन विवश है, उत्पाती स्मृतियाँ चलित/प्रिय की छवि को बाँध बाँध लाती पुनः

किन्तु हृदय की अश्रु सरित में डूबती/देख न पाती हूँ अभीष्ट मन राम को

साँसों की वीणा से निकले गीत वे/सुन पाते यदि एक बार भी, जानती

मेरी आशा के उज्ज्वल नभ में/उनकी मुसकानें की आभा आ गयी।"[3]

'उर्वशी' — में विप्रलम्भ श्रृंगार का अच्छा चित्रण हुआ है। पुरूरवा और उर्वशी के प्रथम दर्शन के बाद पूर्वराग रूप में वियोग वर्णन है। सबसे पहिले कवि दिनकर ने उर्वशी के पूर्वराग का उल्लेख किया है — विस्मृत सी रहना, उदास होकर पुष्प-पंखुड़ियों को नोचना, अश्रुपात, विवर्ण अनुभाव, चिन्ता, मोह, स्मृति जड़ता और विषाद संचारी भावों का उल्लेख है। सहजन्या उर्वशी के संबंध में कहती है ——

"सखी उर्वशी भी कुछ दिन से है खोयी-खोयी सी

बह तन से जगी, स्वप्न के कुंजों में मन से सोयी-सी।

खड़ी-खड़ी अनमनी तोड़ती हुई कुसुम-पंखड़ियाँ

किसी ध्यान में पड़ी गँवा देती घड़ियों पर घड़ियाँ।

1-संगमपत्रिका, पृ042, सन्1950, 2-पाषाणी, पृ049 3- अशोक वनबन्दिनी, तथा अन्य गीतिकाव्य, पृ0 1-2

दृग से झरते हुए अश्रु का ज्ञान नहीं होता है,

आया गया कौन, इसका कुछ ध्यान नहीं होता है।

मुख-सरोज मुसकान बिना आभा-विहीन लगता है,

कुमुद-चाँदनी श्री का चन्द्रानन मलीन लगता है।"[1]

पुरूरवा आलम्बन, उसके सौन्दर्य का स्मरण उद्दीपन, प्राणों के निकलने का प्रयास, स्वर्ग नीरस, मर्त्यलोक सुखद लगना, सन्तोष का लुप्त होना, आग भड़कना अनुभाव तथा ग्लानि चिन्ता, स्मृति विषाद संचारी भावों से उर्वशी का पूर्वराग पुष्ट हुआ —

"आज साँझ से सखी उर्वशी को न रंच भी कल थी,

नृप पुरूरवा से मिलने को वह अत्यन्त विकल थी।

कहती थी, यदि आज कान्त का अंक नहीं पाऊँगी।

तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊँगी।

× × × ×

तृप्ति नहीं अब मुझे साँस भर-भर सौरभ पीने से,

ऊब गयी हूँ दबा कण्ठ, नीरव रह कर जीने से।

× × × ×

जिसका ध्यान प्राण में मेरे यह प्रमोद भरता है,

उससे बहुत निकट होकर जीने को जी करता है।"[2]

इसी तरह पुरूरवा का प्रथम प्रेम प्रियतमा के अभाव में वियोग में परिवर्तित हो जाता है। उर्वशी का रूप सौन्दर्य उद्दीपन, आहें भरने की कामना, पश्चात्ताप, करना अनुभाव, चिन्ता स्मृति, आवेग, उन्माद, औत्सुक्य संचारी भावों का उल्लेख हुआ है —

"तन-प्रकान्ति मुकुलित अनन्त ऊषाओं की लाली-सी।

नूतनता सम्पूर्ण जगत् की संचित हरियाली सी।

× × × ×

फिर बोले" जाने कब तक परितोष प्राण पायेंगे?

अन्तरिक्ष में पड़े स्वप्न कब तक चलते जायेंगे?

जाने कब कल्पना रूप धारण कर अंक भरेगी?

कल्पलता जाने आलिंगन से कब तपन हरेगी?

× × × ×

मेरे अश्रु ओस बनकर कल्पद्रुम पर छायेंगे।

पारिजात-वन के प्रसून आहों से कुम्हलायेंगे।

1- उर्वशी, दिनकर, पृ० 9   2- उर्वशी, दिनकर, पृ० 13-14

मेरी मर्म-पुकार मोहिनी, वृथा नहीं जायेगी।

आज न तो कल तुझे इन्द्रपुर में वह तड़पायेगी।

या फिर देह छोड़ मैं ही मिलने आऊँगा मन से।"[1]

राजा पुरूरवा के उर्वशी पर अनुरक्त रहने के कारण महारानी औशीनरी में करुण वियोग के दर्शन होते हैं। पुरूरवा आलम्बन, उर्वशी के प्रति अनुरक्ति उद्दीपन, उर्वशी के लिए अपशब्द कहना, दैन्य विभाव संचारी भावों का वर्णन है —

"छीन ले गयी अधम पापिनी मुझ से मेरे पति को।"[2]

"पंथ जोहती हुई पिरोती बैठ अश्रु की माला।

वही आँसुओं की माला अब मुझे पिरोनी होगी।"[3]

"अरी कौन है कृत्य जिसे मैं अब तक कर सकी हूँ?

कौन पुण्य है जिसे प्रणय-वेदी पर धर न सकी हूँ?

× × × × ×

तब भी तो विधुरा-सदृश जोहा करती हूँ मुझ को,

सदा हेरती रहती प्रिय कोणों में निज सुख को।"[4]

शाप के कारण उर्वशी-पुरूरवा का वियोग होता है जिसे शाप हेतुक[5] वियोग कहा जा सकता है। उस भावी विरह की कल्पना कर उर्वशी दुखित होती है —

"गरज उठेगा भरत-शाप मैं पराधीन पुतली-सी।

खिंची हुई क्षिति छोड़ अचानक स्वर्ग चली जाऊँगी।

× × × × ×

यह धरती यह गगन, मृगों से भरी, हरी अटवी यह,

ये प्रसून, ये वृक्ष स्वर्ग में बहुत याद आयेंगे।

× × × ×

आह, गन्धमादन का वह सुख और अंक प्रियतम का।

वही स्वर्ग में भी अलभ्य है: उस आनन्द मदिर का,

इस सरस वसुधा पर, मैंने छक कर पान किया है,

व्याप गयी जो सुरभि, घ्राण में सुषमा चकित नयन में।

रोमांचक सनसनी स्पर्श-सुख की जो समा गयी है।

त्वचा-जाल, ग्रीवा, कपोल में ऊँगली की पोरों में।"[6]

---

1 उर्वशी, पृ0 16-17

2- वही, पृ0 22

3- उर्वशी, पृ0 24

4- वही, पृ0 26

5- काव्य प्रकाश, उल्लास, 4 रसभेद प्रकरण

5- उर्वशी, पृ0 97-99

'अग्निलीक' में सीता आश्रय, राम आलम्बन, एकान्त स्थल उद्दीपन विभाव, मूर्छा, अनुभाव आवेग, दैन्य, उग्रता, अमर्ष, स्मृति, विषाद, संचारी भावों से सीता का वियोग वर्णित है—

"आज सोलह वर्ष बाद/ जब बीती बातें किसी पूर्वजन्म की घटनाएँ लगती हैं —
तुमने अचानक/मेरी आँखों के सामने अपनी माया प्रसार दी है
और मेरा निभृत लोक थरथराने लग गया है।xxxxxxxx
पगली/अपने ही मन से आँख-मिचौनी। क्या तुम नहीं चाहती
कि कोई तुम्हें देखे और पहचान ले?'xxxxxx
यह मुझे बीच-बीच में क्या हो जाता है? कहाँ से उपज आती है यह दुर्बलता"[1]

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणों में विरह की अनेक दशाओं का वर्णन हुआ है किन्तु यहाँ विरह की दशाओं का विवेचन अनावश्यक नहीं होगा। "साहित्य-दर्पण" में लिखा है कि —

"अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥"[2]

अर्थात् अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ये दस कामदशाएँ हैं।

इनमें से दशम मरण को छोड़कर शेष सभी दशाएँ गीतिनाट्यों में मिलती हैं —

(1) अभिलाषा :—

"एक कामना एक बढ़ी है चेतना,
उनमें मिलकर अपने को पूरा करूँ।"[3] अशोक वन-बन्दिनी

(2) चिन्ता:— "पर न जाने मैं किसी के स्वप्न-सी क्यों खो रही हूँ।
आस ले अनुराग ले उत्ताल मन्मथ में प्रलय भर।"[4] (राधा)

(3) स्मृति — "क्या कहा था याद आता। देता वरदान तुम्हें
किन्तु प्रिये, प्रिय भी सदा न प्रिय लगता है।"[5] (मत्स्यगन्धा)

(4) गुणकथन— "तुममें विद्युत इन्द्रचाप है, इन्द्र घोष है गुरु गम्भीर
श्यामल वारिद तुममें उज्ज्वल भरा हुआ है निर्मल नीर।"[6] (मेघदूत)

(5) उद्वेग — "फिर बोले, 'जाने कब तक परितोष प्राण पायेंगे।
अन्तराग्नि में पड़े स्वप्न कब तक जलते जायेंगे।
जानें कब कल्पना रूप धारण कर अंक भरेगी?
कल्पलता, जानें, आलिंगन से कब तपन हरेगी।"[7]

1-अग्निलीक, पृ031-32, 2-साहित्यदर्पण 3/190, 3-अशोक वनबन्दिनी, पृ035
4-विश्वामित्र, पृ0100, 5-विश्वामित्र, पृ080, 6-संगमपत्रिका, 1950-पृ041, 7-उर्वशी, पृ017

(6) प्रलाप — "बाहर हो तुम नहीं हृदय में छिप रही
कि आँखों में ही घुम रही हो क्यों प्रिये?
किन्तु आँख में छिपी हुई को पकड़ लूँ
छिपे नहीं कर हाय, विधाता ने मुझे?"[1] (विश्वामित्र)

(7) उन्माद— "क्या जिलाया था मुझे, इस भाँति मरने के लिए?
तन दिया था मुक्त मन लाचार करने के लिए?"[2] (उर्वशी)

(8) व्याधि— "कौशिकी : (घबराकर) देवी, बहन,
क्या बात हुई? अरे क्या ये फिर अचेत हो गयी?
देवी : (धीरे-धीरे आँखें खोलकर) घबराओ मत बहन/ मैं ठीक हूँ।"[3]

(9) जड़ता— "और छोड़कर तुम्हें तुम्हारी सखियों के हाथों में
लौट जब मैं राज-भवन को, लगा, देह ही केवल
रथ में बैठी हुई किसी विधि पुर तक पहुँच गयी है,
छूट गए हैं प्राण उन्हीं उज्ज्वल मेघों के वन में,
जहाँ मिली थी तुम क्षीरोदधि में लालिमा लहर सी।"[4]

(2) करूणरस :— "इष्ट नाशादनिष्टाप्त्या शोकात्मा करुणो नुतम्।"[5]

के अनुसार इष्ट का नाश या अनिष्ट की प्राप्ति से करूण रस की उत्पत्ति होती है। इसका स्थायीभाव शोक है। इसमें अश्रुपतन, परिदेवन, मुखशोषण, वैवर्ण्य, निःश्वास आदि अनुभाव प्रकट होते हैं तथा निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता और औत्सुक्य, आवेग, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, श्रम, आलस्य, मरण, स्तम्भ, वेपथु, वैवर्ण्य स्वरभेदादि व्यभिचारी तथा सात्विक प्रकट होते हैं।[6]

'मत्स्यगन्धा' में अनंग (प्रियवस्तु) के चले जाने पर मत्स्यगन्धा के चित्त की व्याकुलता शोक रूप में प्रकट हुई है। अनंग आलम्बन, यौवन का न स्वीकार करना, प्राकृतिक पर्यावरण उद्दीपन विभाव, रोमांच, स्वप्न, स्मृति से करूण व्यक्त हुआ है —

"जाने कहाँ पाई सखि, खोजती पलक डाल/हृदय छिपाये हुए आके... न जाने कौन स्वप्न-सा समया और विस्मृति विद्रुमवन/यौवन की छाया एक, सिहरन भर गया भर गया रोम-रोम अंग-अंग प्राण शत/शत-शत मद-मद, शत-शत हाहाकार।"[7]

1- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 36   2- पाषाणी, पृ0 49   3- अग्निलीक, पृ0 30
4- उर्वशी, पृ0 32   5- दशरूपक, पृ0 184 धनंजय।   6- रससिद्धान्तः स्वरूप-विश्लेषण आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृ0 353
7- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 67

राजा शान्तनु के मरने के बाद विधवा सत्यवती के विलाप में करूण रस पुष्ट हुआ है- अनंग का प्रवेश उद्दीपन, रूदन, प्रलाप, निःश्वास, मूर्छा, अनुभाव तथा निर्वेद, अपस्मार ग्लानि, स्मृति, विषाद, एवं उन्माद संचारी हैं —

"मेरा स्वर्णहीन हुआ हाय, पुष्प-बाण बन/आता' औ' उमंग हुई भार है अनन्त की मेरा मन अग्नि अश्रु वर्षा न शान्त होता/दिग्भ्रमित वासना बढ़कती हुताग्नि-सी हाय, यह उषा नित आती बरसाती आग/ रक्त-सा उबाल देती देह का छनन्छन घूमता शरीर यन्त्र घूमते नगर ग्राम/घूमता है नील नभ जगत अलात-सा।"[1]

'राधा'— में कृष्ण के शोक का वर्णन बहुत सूक्ष्म रूप में हुआ है। राधा का निर्जीव होना उद्दीपन विभाव, कम्प अनुभाव, स्मृति विषाद संचारीभाव हैं —

"यह हुआ क्या हो गया क्या प्रेम -पावन मूर्ति राधा
सुरूप मनव तत्व की अनुराग की आधार-सरिता
राधिका की और कोई नहीं थी यह श्वास विभ्रम,
प्रेरणा, हेला हँसी, मुस्कान मंजुल पूर्ण-जीवन।"[2]

'सृष्टि की साँझ'— में रेखा का करूण व्यक्त हुआ है, पति आलम्बन मरघट, भस्म होना उद्दीपन विभाव, रूदन प्रलाप अनुभाव, ग्लानि, स्मृति विषाद, उन्माद संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"विस्तृत निर्जन मसान/जल-जल कर बुझी चिताएँ/बिखरी हैं अस्थिय
उफ, आह, उमड़ने लगी अधीकैसी स्मृतियाँ उफ सर्वनाश हो गया,
× × × ×
बस एक अभागिन शेष रहीहूँ रोने को मैं भी क्योंजीव रहूँ।"[3]

'अन्धायुग' में गान्धारीआश्रय, आलम्बन पुत्र, पुत्र वधुओं का चूड़ी उतारना, सिन्दूर पोंछना अनुभाव आवेग, विषाद स्मृति संचारी भाव उल्लिखित हैं —

"सत्रह दिन के अन्दर/ मेरे सब पुत्र एक एक कर मारे गए
अपने इन हाथों से/मैंने उन फूलोंसी वधुओं की कलाइयों से
चूड़ियाँ उतारी हैं/ अपने इस आँचल से/सिंदूर की रेखाएँ पोंछी हैं।"[4]

1- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 88-89

2- वही, पृ0 148-49 3- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य, पृ0 52-53

4- अन्धायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 संख्या 22

'मदनदहन' में काम के नष्ट होने पर रति के मन में करुण रस जाग्रत हुआ। पति की राख उद्दीपन, स्तम्भ, कम्प अनुभाव आदि उल्लिखित हैं —

"यथा समय चेतन होते ही देखा रति ने ढेर राख का। अपने सम्मुख पड़ा हुआ था।
मूक हो गयी वज्र-पीड़ित सी/जैसे वाणी महाशोक से कील हो गयी थर थर कँप कर
लगी देखने अपने प्रिय को, भस्म धरा पर पड़ी हुई थी।"[1]

'भँवरी' में योगी आश्रय, भँवरी आलम्बन, उसकी लाश उद्दीपन, उन्माद, ग्लानि, संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"भँवरी गयी, मैं भी जाता/अपनी करनी पर पछताता/पर पछताने से होता क्या?
पाषाण-प्राण यह रोता क्या/xx भँवरी तुझे मैंने मारा/मैं पतित अधम मैं हत्यारा।"[2]

'सूखा-सरोवर' में करुणरस के अनेक स्थल हैं। सरोवर का पानी सूख जाने पर वहाँ के निवासी दुखित हो जाते हैं। नगर निवासी आश्रय, प्रियवस्तु, (जल) आलम्बन घुटने टेकना विषाद, स्तम्भ आदि संचारी भाव हैं —

सब : (सरोवर के सम्मुख घुटने टेककर)
हाय यह क्या हो गया। सरोवर का पानी। हाय यह क्या हो गया।
(चकित एक दूसरे को देखते रह जाते हैं)
प० व्यक्ति पूरे दस घण्ट हो गए इसे सूखे।"[3]

दूसरा स्थल तृतीय अंक में है। पुरुष आश्रय, राजकुमारी आलम्बन, प्रतिध्वनित आवाज उद्दीपन, विषाद उन्माद संचारी भाव उल्लिखित हैं —

पुरुष : (दर्द से कराह उठता है)
आह तुम फिर शून्य में मिल गयीं
बोलो, ओ मेरी प्रिया/किस पथ से गईं तुम।"[4]

'उर्वशी' में अचानक महाराज पुरूरवा के सन्यासी बन जाने पर महारानी औशीनरी की उक्तियों में करुण-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। आँसू बरना, अश्रुपात अनुभाव, दैन्य स्मृति विषाद संचारी भावों का उल्लेख लेखक ने किया है —

" "किन्तु हाय हो गयी वृथा साधना सकल जीवन की,
मैं बैठी ही रही ध्यान में जोड़े हुए करों को,
चले गए देवता बिना ही कहे बात इतनी भी,
हतभागी उठ जाग देख मैं मन्दिर से जाता हूँ।

1- नयासमाज, पत्रिका, 1952(अगस्त) पृ0 85-86   2- पाषाणी, शास्त्री, पृ0 141
3- सूखा-सरोवर, लक्ष्मीनारायणलाल, पृ0 18-19,   4- सूखा सरोवर, पृ0 102

याग-यज्ञ व्रत-अनुष्ठान में किसी धर्म-साधन में
मुझे बुलाये बिना नहीं प्रियतम प्रवृत्त होते थे।
तो यह अन्तिम व्रत कठोर कैसे संन्यास सधेगा।
होकर शून्य यामिक, त्याग मुझ संन्यासिनी प्रिया को?
मुझे गाँस यह सदा हृदय-तल में सालती रहेगी
मेरा ही सर्वस्व हाय, मुझसे यों बिछुड़ गया है।"[1]

'एक कण्ठ विषपायी' में सती के मरने पर शंकर के शोक का वर्णन किया गया है। सती आलम्बन, शंकर आश्रय, रूदन आदि अनुभाव चिन्ता, विषाद, नैराश्य, ग्लानि, संचारीभावों से करूणरस पुष्ट हुआ है —

"प्रियाहीन-संसार? और मैं देख रहा हूँ/ अपने जीवन पर/तम का विस्तार
और मैं देख रहा हूँ। मैं अपने से ही/ अपने की हार/और मैं देख रहा हूँ
धिक् मेरा देवत्व/ कि जिसकी कायर गाथा/धिक् मेरी सामर्थ्य,
कि जिसने टेका माथा।"[2]

इसी अवसर पर कवि ने शंकर द्वारा सती के शव को स्नान कराना, चन्दन से माँग भरना शृंगार करना जैसे अनुभावों रूदन, आलिंगन संयोग समय के स्वर्तों का स्मरण स्मृति उन्माद, संचारी भावों के करूण रस की अच्छी व्यंजना की है —

"अलक नंदा की ओर चलें अब प्रेयसि वहाँ तुझे मैं/ स्नान कराऊँगा उस जल में
फिर चन्दन से माँग भरूँगा। वन्य प्रसूनों से मैं अपनी
प्रेयसि का शृंगार करूँगा। फूट-फूटकर रोऊँगा कुछ देर वहाँ पर
फिर बाहों में तुझे उठाकर/ हृदय लगाकर/सुधियों का आह्वान करूँगा।"[3]

'अग्निलीक' में राम का शोक वर्णित है, राम आश्रय, सीता आलम्बन, सीता का भूमिप्रवेश उद्दीपन, रूदन, प्रलाप, अनुभाव ग्लानि मोह विषाद संचारीभाव उल्लिखित है —

"एक बार फिर/स्वर्ग मेरे हाथ में आकर निकल गया? और मैं देखता रह गया।
जैसे एक करवट कहीं लपकी/और मुझे पत्थर बना गयी/ क्या मैं रो रहा हूँ?
नहीं, मैं रो नहीं रहा हूँ/ भीतर ही भीतर टूट रहा हूँ। मेरे प्राणों के टुकड़े हो रहे हैं।
और मैं उन्हें पूरे मनोबल से थाम रहा हूँ/ क्योंकि ये सचमुच ही टूट गए तो मेरा
जीवन ही खण्डहर बन जायेगा।"[4]

1- उर्वशी, पृ० 124 2- एक कण्ठ विषपायी, पृ० सं० 71-72

3- एककण्ठ विषपायी, पृ० 82 4- अग्निलीक, पृ० 60

(3) वीर रस :—

मानव मन में साहसिक कार्यों के करने के लिए जो एक प्रकार का उत्साह विद्यमान रहता है, वही फिर वीर रस का स्थायीभाव है। शत्रु, दीन याचक, तीर्थ पर्वादि आलम्बन, शत्रु का पराक्रम, याचक की दीनदशा उद्दीपन, रोमांच, गर्वीली वाणी, आदर, सत्कार आदि के साथ अनुभाव एवं गर्व धृति स्मृति हर्ष मति, असूया आवेगादि संचारीभाव है।[1]

'सीता' :— में वीर रस के कई स्थल हैं। विश्वामित्र द्वारा राक्षसों के कुकृत्यों का वर्णन करने पर दशरथ का उत्साह जागृत होता है। आलम्बन, राक्षस, उनके कुकृत्यों का समूह उद्दीपन, अपनी वीरता का कथन अनुभाव, आवेग, उग्रता, गर्व, संचारीभाव उल्लिखित हैं—

"इन हाथों के लिए कहीं कुछ कठिन नहीं है/ जहाँ बढ़े ये विजय आप आ गयी वहीं है॥
आज्ञा दीजे देव, खेल-सा कर दिखलाऊँ/निशाचरों में प्रौढ़ पुण्य की समता पाऊँ
रण के सारे खेल खेलकर बैठा हूँ मैं/ दैत्यों के भी वार झेलकर बैठा हूँ मैं।"[2]

दूसरा स्थल स्वयम्बर सभा का है। जनक के निराश वचनों को सुनकर लक्ष्मण का उत्साह वर्णित है। इसमें धनुष आलम्बन, जनक के चुनौती भरे निराश वचन उद्दीपन विभाव अपनी वीरता का वर्णन अनुभाव, आवेग, उग्रता गर्व संचारी भाव हैं —

"क्या है यह प्राचीन पिनाक, कहो उठा लाऊँ मैनाक
जो है जलधि-गर्भ में मग्न/कहो, सुमेरू करूँ मैं भग्न।
कहो, उखाड़ूँ दिग्गज-दन्त/ अवनि उठाऊँ यथा अनन्त।
कहो छीन लूँ यम का दण्ड/ खण्ड करूँ ब्रह्माण्ड अखण्ड।"[3]

'अनघ' :— में मघ के अनेक सोत्साहपूर्ण कृत्यों का वर्णन है। इसमें आश्रय मघ, कर्मनिष्ठा आलम्बन, यश की आकांक्षा उद्दीपन, कार्यसिद्धि के लिए सतत प्रयास, धृति, गर्व, मति संचारी भाव हैं —"मेरा प्रयत्न पूरा/चाहे रहे अधूरा/पर मैं उसे करूँगा/सब विघ्न-भय तरूँगा।"[4]

'अनघ' में धर्मवीर का भी अच्छा उदाहरण है। मघ आश्रय, शराबी आलम्बन, उसका लड़खड़ाना उद्दीपन, सेवा करना अनुभाव, धृति संचारीभाव से वीर रस परिपुष्ट हुआ है —

"भ्रातः मान वचन मेरे/पैरों पड़ता हूँ तेरे। तू जा, मैं फिर आ लूँगा,
प्रथम धर्म्म निज पालूँगा, उलटा हुआ ज्ञान जिसका /भार हमीं पर है उसका।
जाऊँ उसे सँभालूँ मैं जन-सेवा-व्रत पालूँ मैं।"[5]

1- काव्यदर्पण, रामदहिन मिश्र, पृ0 192-93, 2- सीता-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 26

3- सीता, पृ0 104 4- अनघ, गुप्त, पृ0 सं0 100

5- अनघ, गुप्त, पृ0 सं0 31।

'पंचवटी प्रसंग :— में धर्मवीर का उल्लेख हुआ है, लक्ष्मण आश्रय, सीताआलम्बन, मातोपदेश उद्दीपन विभाव, हर्ष धृति, निर्वेद संचारीभाव हैं —

"जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा/ है माता का आदेश यही
माँ की प्रीति के लिए ही चुनता हूँ सुमन-दल/ इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता-
जानने की इच्छा भी नहीं है कुछ। माता की चरण-रेणु मेरी परमशक्ति है-
माता की तृप्ति मेरे लिए अष्टसिद्धियाँ —।"[1]

'विश्वामित्र'— में विश्वामित्र के उत्साह का वर्णन हुआ है। आश्रय विश्वामित्र आलम्बन, धर्म-निष्ठा, यश की आकांक्षा उद्दीपन विभाव, गर्व आवेग, उग्रता इत्यादि से कर्मवीर व्यक्त हुआ है —

"रच दूँ अपर विराट् ब्रह्म को मैं स्वयं/ रच दूँ हरि, हर और विधाता इन्द्र भी
रच दूँ अभिनव स्वर्ग, नरक, पाताल नभ/ रच दूँ मैं गन्धर्व, यक्ष किन्नर सभी।"[2]

'उन्मुक्त'— में युद्धवीर के कई स्थल हैं। जयकेतु आश्रय, लौहद्वीप के निवासी आलम्बन शत्रु द्वारा रण निमन्त्रण उद्दीपन, अपनी वीरता का कथन एवं प्रतिरोध करना अनुभाव। आवेग, उग्रता, धृति, गर्व संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"लौहद्वीप से हमें नव विजय-निमन्त्रण/प्रस्तुत हैं हम, शौर्य सुबल हम भी हैं रखते
जय पथ में भय-विघ्न, कहीं भी नहीं निरखते/लौहद्वीप की रहे न कैसी रण सज्जा।
हो उसकी रणनीति निपट निर्मम निर्लज्जा/सखि तब भी हम प्रतिरोध करेंगे साहस करके।[3]

दूसरे स्थल में गुणधर,— उत्साह का वर्णन है। आलम्बन शत्रुपक्ष, उद्दीपन शत्रु पक्ष की युद्ध कुशलता, आवेग स्मृति उग्रता, संचारीभावों के द्वारा युद्ध वीर रस पुष्ट हुआ है —

"सचमुच ही/मैं ऐसा विक्षिप्त हो उठा था कि न कुछ ही
देख सका क्या कहाँ हो रहा था उस रण में/ अपने में मैं न था किसी दुर्जय रण में
अपने में मैं न था, किसी दुर्जय रण में/मैं ढकेल-सा दिया गया था, सुधि तब आई
जब मैंने घनघोर शतघ्नी या उकसाई/ गरज उठी वह।"[4]

'कर्ण' — में युद्धवीर एवं दानवीर के अच्छे स्थल हैं। युद्धवीर कर्ण आश्रय, अर्जुन आलम्बन, सुयोधन की अधीरता, अर्जुन का शंखनाद, गर्वीली वाणी, प्रस्थान अनुभाव, गर्व धृति असूया, आवेग संचारीभाव से वीररस की पुष्टि की गयी है —

"मैं देखूँ तो छल कपट आज केशव का/देखूँ है किसमें शक्ति कि मुझको छू ले।
मैं कर्ण करूँगा सेना का संचालन/ मैं कर्ण चल रहा कुरुक्षेत्र को मथने।

1- परिमल, निराला, पृ0219, 2- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ012
3- उन्मुक्त, सिया0गुप्त, पृ010 4- उन्मुक्त, पृ0 69

मैं विजय का वरण करूँगा निश्चय।"[1]

दानवीर "नहीं दान में कर्ण कभी पीछे रहा/माँगो अपना दान छद्मवेशी अरे।

ब्राह्मण बन आए हो मेरे द्वार पर/ तुम्हें मिलेगा दान वचन मेरा तुम्हें।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण में आश्रय कर्ण, आलम्बन ब्राह्मण, याचक का दीनवचन उद्दीपन गर्व संचारी भाव से दानवीर रस पुष्ट हुआ।

स्नेह या स्वर्ग में अजेय आश्रय, जयन्त आलम्बन, शत्रु की ललकार उद्दीपन शस्त्र संचालन, सिंहनाद अनुभाव, आवेग, उग्रता संचारीभाव हैं —

"चमक-चमक हाँग चहु चौंधियाते थे। करते थे वार दोनों उछल-उछल के

पैंतरे पलट उन्हें दोनों ही बचाते थे/ चूकते परन्तु जब कौन नहीं चूकता,

बजते प्रहार तब वर्मों पर उनके/ झन्-झन और छूटती थीं चिनगारियाँ।"[2]

'लौहदेवता' — में कर्मवीर के अनेक उदाहरण है। पुरूष आश्रय, मशीन आलम्बन, भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न समाप्त होना उद्दीपन, धृति, गति आवेग संचारी भावों का वर्णन है —

"हाथ बढ़ाते चलो/साथियो, हाथ बढ़ाते चलो।

ये हाथ रूके, तो यंत्र अभी रूक जाएगा/भावी सुख का सुर्णे स्वप्न अभी चूकजायेगा।

जग का भविष्य है खड़ा तुम्हारे हाथों पर/ अपने हाथों जग के भविष्य की मूर्ति बनाते चलो।"[3]

'दिग्विजय' —में खेचर आश्रय, अभेद्य आकाश आलम्बन, आकाश की दूरी और उसकी रहस्यात्मकता उद्दीपन, प्रक्षेपास्त्र लेकर विचरण करना अनुभाव, दृढ़ता चिन्ता, स्मृति संचारी भावों से कर्मवीर व्यक्त हुआ है —

"पार कर रहा महाद्वीप मैं पलक मारते/स्मरण आ रही बहु विशेषताएँ देशों की

जन भू के वैचित्र्य भरे सुन्दर जीवन की। याद आ रही सुहृदों की, स्वजनों की प्रतिक्षण

स्मरण कर रहे होंगे वे भी निश्चय मुझको।सोच रहे होंगे मेरे अद्भुत साहस की।"[4]

'उर्वशी' के अपहरण के समय शास्त्री ने वीर रस का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।पुरूरवा आश्रय, उर्वशी आलम्बन, उसका करूण क्रन्दन उद्दीपन, गर्व, वीरता, गर्जनादि से उत्साह स्थायीभाव रसदशाको प्राप्त हुआ है —

"यह लो मैं आ गया कौन तो तुम सब? है कैसा डर?

दुर्विनीत वह सुर कि असुर है? नर है अथवा किन्नर?

1-2- त्रिपथगा, वर्मा, पृ0क्रमशः 12, 38 3- स्नेह या स्वर्ग, पृ0 82

4- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक-पृ0 96 5- सौवर्ण, पूर्व, पृ0 97

स्पष्ट कहो, कोई हो, मेरा धनुष आत्म-निर्भर है,

बाण प्रभाकर हैं कृपाण यम का अग्रज सोदर है।"[1] (उर्वशी)

<u>गंगावतरण</u> :— में भगीरथ की तपस्या में कर्मवीर का उदाहरण मिलता है। भगीरथ आश्रय, गंगा आलम्बन, उसकी उद्धारक शक्ति उद्दीपन, दृढ़ता आदि से यहाँ वीर रस पुष्ट हुआ है।

"गए वर्ष वर्ष बीतते, सिर न भगीरथ का झुका,
तन बन गया शिराओं का वन मन का रथ न कभी रुका।
गंगा को लाना ही होगा, लाना ही होगा उन्हें
स्वर्ग छोड़कर इस धरती पर आना ही होगा उन्हें
इतना तप पर्याप्त नहीं? प्राणों की आहुति शेष है।
तिल-तिल कर जल जाऊँगा मैं, आत्मा की द्युति शेष है।"[2] —'गंगावतरण'

<u>'सूखा-सरोवर</u> — में छोटा राजा आश्रय, बड़ा राजा आलम्बन, सिंहासन प्राप्त करना, उसे छोटा कहना, उद्दीपन, आवेग, गर्व, उग्रता संचारीभाव है —

"बैठ लूँगा कल प्रातः काल/ इस सिंहासन पर बैठकर दिखा दूँगा।
सैन्य शक्ति जिसमें है/ बल-सत्ता है जिसमें/
सब सिद्धि उसमें है/ वही तथ्य निर्माता है।"[3]

<u>'उर्वशी'</u>— भरत शाप वश उर्वशी के अन्तर्धान होने पर पुरुरवा की उत्साह भरी बातों में वीर रस का वर्णन मिलता है। उर्वशी का स्वर्ग चले जाना आलम्बन है, इसमें देवों का शाप होने की आशंका उद्दीपन है, धनुष आदि को माँगना तथा गर्वोक्ति कहना अनुभाव है और गर्व एवं असूया आदि संचारीभाव है—

"लाओ मेरा धनुष सजाओ गगन-जयी स्यन्दन को।
सखा नहीं, बन शत्रु स्वर्ग-पुर मुझे आज जाना है।
और दिखाना है, बाहकता किसकी अधिक प्रबल है,
भरत-शाप की या पुरुरवा के प्रचण्ड बाणों की।
उठो, बजाओ पटह युद्ध के, कह दो-पौर जनों से
उनका प्रिय सम्राट स्वर्ग से वैर ठान निकला है,
साथ चले जिसको किंचित भी प्राण नहीं प्यारे हों।"[4]

1- धाधानी, जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ० 96
2- वही, पृ० 23-24
3- सूखा-सरोवर, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० 58
4- उर्वशी, दिनकर, पृ० 113-14

'संशय की एक रात' में लक्ष्मण के उत्साह में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि राम संशयग्रस्त हैं। वे उत्साहित होकर कहने लगते हैं —

"हमारी जलती हुई आँखों में/ बँधी हुई मुट्ठी में/ भिंचे हुए ओठों
इन थाभित पैरों में/ संकल्पित प्रज्ञा है।वर्चस्वी निष्ठा है। उत्सर्गित इच्छा है।[1]

वे कहते हैं कि जब तक जीवन है कर्म और वर्चस को कोई छीन नहीं सकता है —

"तो फिर/ शपथ है बन्धु, मुझको मेरे ही बाण की
आज की बाड़वी साँस की/ आज्ञा करें राम/ देखें फिर पौरुष इस बन्धु का।
दूसरी बार होगा/ सागर का मन्थन अब। यदि यह बाधा है सिन्धु
अगस्त्य के आचमन सा/ सोखेंगे।xxx लंका मिल यदि ध्रुव पर भी होती तो
बाण नहीं पाती बन्धु, लक्ष्मण के पौरुष से।"[2]

यहाँ लक्ष्मण आश्रय, रावण आलम्बन, राम का अन्तर्द्वन्द्व उद्दीपन, गर्व, अमर्ष, उद्वेग संचारीभाव हैं।

'एक कण्ठ विषपायी'— में शंकर आश्रय, देवता आलम्बन, सती का मुर्दा शरीर उद्दीपन आवेग, गर्व, उग्रता, जड़ता, उन्माद, संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"सम्प्रति केवल/ बल की भाषा/ शक्ति-प्रदर्शन/सम्प्रति केवल/युद्ध,व्यूह रचना
अरि-मर्दन/ओ मेरे आत्मज, योद्धाओं/अरे अभागों/औ डाकिनियों,शाकिनियों
औ प्रेतो जागो।"[3]

(4) हास्य रस :—

जहाँ विकृत वेषभूषा, रूप,वाणी,अंग-भंगी आदि के देखने सुनने से हास का स्थायीभाव परिपुष्ट हो वहाँ हास्य रस होता है। विकृत या विचित्र वेषभूषा,व्यंग्यभरे वचन, उपहासास्पद व्यक्ति की मूर्खता भरी चेष्टा का दर्शन या श्रवण, व्यक्ति विशेष के विचित्र बोलने चालने का अनुकरण, हास्योत्पादक वस्तुएँ, छिद्रान्वेषण निर्लज्जता आदि आलम्बन हास्यवर्धक चेष्टाएँ उद्दीपन, कपोल-कण्ठ, का स्फुरित होना, आँखों का मिचना, मुख का विकसित होना पेट का हिलना आदि अनुभाव, अश्रु कम्प, हर्ष, चपलता, श्रम, अवहित्था, रोमांच, स्वेद, असूया, निर्लज्जता आदि संचारीभाव हैं।"[4]

1- संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृ015,
2- वही, पृ0 17
3- एककण्ठ विषपायी, पृ0 80-81
4- काव्यदर्पण, पृ0 212

'लीला' — में धीर आलम्बन, राम आश्रय, धीर की आश्चर्यमय बातें उद्दीपन, चपलता गर्व संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"बाल किशोर रीछ बन जाऊँ। चीते की छलांग मारूँ
कहो, सुअर - सा सीधा भागूँ। जल-थल में न कहीं हारूँ।"[1]

'ओ उर्वशी' — (शास्त्री) में विदूषक के हास्यपूर्ण वर्णन में हास्यरस पुष्ट हुआ है। आश्रय पुरूरवा, आलम्बन विदूषक, विदूषक की चेष्टायें उद्दीपन, मुस्कराहट हँसी अनुभाव, हर्ष, चपलता, उत्सुकता, संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"(मूँछें निचोड़ कर) बोलने वाला कभी क्या हारता? हाँकता हूँ डींग कब झख मारता? (चापलूसी की भावभंगिमाओं के साथ) महाराज, प्रताप यह सब आपका। कान तक ६ खींचे हुए शर-चाप का।
मैं अकेला तो नहीं हँसता यहाँ/ हँस रही धरती कि नभ हँसता यहाँ।"[2]

'मंजरी' — में विदूषक आलम्बन, व्यंग्यात्मक स्वर एवं हास्यास्पद क्रियाएँ उद्दीपन, हँसी, हर्ष संचारीभाव के द्वारा हास्य रस परिपुष्ट हुआ है —

"टटके-टटके लाल-सरीखे, सिन्दुवार के फूल
जगा दैव के रही, कि फूला/ यह विचकित आमूल
धरती बैठी हुई सजाकर/ अपने हाथों थाल,
महाराज- त्रिभुवन यौवनमय/क्या वसन्त का काल।"[3]

'इरावती' — में नर्मसचिव, आलम्बन, व्यंग्यात्मक वाणी उद्दीपन, हर्ष, चपलता, निन्दा संचारीभाव हैं —

"स्थूल शरीर सूक्ष्म प्रज्ञा/ भावुक उर तुन्दिल पेट
विषम समन्वय मृग मृगेन्द्र का/ रक्त-हीन आखेट।
लोक पुरुष पटके त्रिशूल/ खटके न किसी को नाद।
सन्त-महन्त किन्तु लेते जब/ वाग्विलास का स्वाद।"[4]

'अग्निलीक' — में चरण आलम्बन, हास्यास्पद क्रियाएँ उद्दीपन, चपलता, हर्षादि संचारी भाव हैं —

"क्या मैं तुम्हें चरण दीखता हूँ? हः हः हः हः / मैं चरण नहीं हूँ देवी,
मैं भूत हूँ भूत?xxxxx देवी, मैं तो कहता हूँ/ तुम भी पागल हो जाओ।
बड़ा आनन्द आता है/ जब छौंट छू-मन्तर/ यह देखो, यों छू-अऊँऊँऊँ।"[5]

1- लीला-कुन्त, पृ0 12 2- पाषाणी, शास्त्री, पृ0 44-45
3- पाषाणी, शास्त्री, पृ0 108 4- इरावती, पृष्ठ 55 5- अग्निलीक, पृ0 34-35

(5) वीभत्स रस :—

"वीभत्स रस का स्थायीभाव जुगुप्सा है, जो किसी अनभिमत, गर्हणीय अथवा उद्वेलक वस्तु को देखकर या सुनकर अथवा गन्ध, रस तथा स्पर्श दोष के कारण उत्पन्न होती है।"[1] श्मशान, शव, चर्बी, सड़ा मांस, रुधिर, मलमूत्र, दुर्गन्ध, दृश्य, घृणोत्पादक वस्तु और विचार आलम्बन विभाव, गीधों का मांस नोचना, मांस खाने जीवों या मांसार्थ युद्ध, कीड़े-मकोड़ों का बिलबिलाना, आहत आत्मीय का छटपटाना, कुत्सित रंग रूप आदि उद्दीपन विभाव, आवेग, मोह, व्याधि, जड़ता, चिन्ता, वैवर्ण्य उन्माद, निर्वेद एवं ग्लानि दैन्य आदि संचारीभाव हैं।"[2]

'सृष्टि का आखिरी आदमी' — में घृणास्पद दृश्य आलम्बन, दुर्गन्ध, चीख पुकार उद्दीपन आवेग, व्याधि, ग्लानि संचारीभाव हैं —

> छोटे छोटे बच्चे-बूढ़े/ तरूण औरतें, झुलस रही हैं।
> भुने माँस की तीखी-कड़वी बदबू से सर घूम रहा है। कड़ुवा काला धुआँ
> झुलसते हुए नगर की/ अन्तिम चीख पुकारों का दम घोंट रहा है।
> लाशें सड़े हुए कीचड़ में तैर रही हैं।"[3]

'सृष्टि की साँझ' में घृण्य दृश्य आलम्बन, कंकाल, विष्ठा, दुर्गन्धि उद्दीपन, चिन्ता, निर्वेद विभाव, अपस्मार संचारीभाव हैं—

> "ये न्यूयार्क मास्को — जैसे समृद्ध नगर/ जल रहे अभी भी धू-धू कर
> उड़ती कैसी दुर्गन्धि आह। कैसी सड़ाँध। xxx कंकाल ढेर के ढेर/
> धरा पर बिखरे हैं।"[4]

'अन्धायुग' में कुष्ट से गलित अंग वाला अश्वत्थामा आलम्बन, दुर्गन्धि उद्दीपन, विभाव विभाव, ग्लानि संचारी भावों जुगुप्सा भाव पुष्ट हुआ है —

> "नहीं नहीं/ ऐसे इतना कुरूप/अंग अंग गला कोढ़ से/ रोगी पुत्ती-सा दुर्गन्धयुक्त
> अंगों पर फोड़े लिए/गले हुए जख्मों से लिपटी हुई पट्टियाँ
> पीप, थूक, कफ से सना जीवित रहेगा वह।"[5]

'गुरुक्षेत्र का आन्तोनिरीक्षण' :— में रक्त मांस से सना युद्धस्थल आलम्बन विभाव दुर्गन्धि श्वान शृगालों की पुकार गृद्ध उद्दीपन विभाव, ग्लानि, निर्वेद व्याधि, आदि संचारीभावों से

1- रससिद्धान्त, स्वरूप, विश्लेषण, पृ0 372   2- काव्यदर्पण, पृ0 217
3- स्वर्णकी विविध, पृ0 195,   4- सृष्टिकी साँझ, पृ037,   5- अन्धायुग, पृ0 98

जुगुप्साभाव व्यक्त हुआ है —

"युद्ध का न अन्त देख पाऊँगा विपन्न मैं?स्त्रियों औ' युवाओं की पुकार सुन पड़ती है।
गिद्धों के झपट्टों में मांसखण्ड उड़ते/धीरे-धीरे टूट रहे साम्य के शिला-शिखर
देख धीरे-धीरे टूट रहा इन्द्रियों का सदृज्ञान/अवरुद्ध करता-सा मार्ग श्वास तन का।

'एक कण्ठ विषपायी — में वीभत्स रस का वर्णन है। दक्ष के यज्ञ-विध्वंस के बाद नरसंहार को देख दक्ष का विध्वस्त राज सर्वहत की घृणा उभर कर सामने आती है। ताजा रक्त, शव आलम्बन, चील गिद्ध, मक्खियों का समूह उद्दीपन विभाव, मुँह फेरना, तड़फड़ाना अनुभाव उन्माद संचारीभाव का उल्लेख है —

"कौन कहता है/ यहाँ कुछ भी नहीं है शेष/यहाँ शेष ही तो है सब कुछ
देखो.../ सारे नगर में ताजा/जमा हुआ रक्त है/और सड़ी हुई लाशें हैं।
मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं/क्षत-विक्षत तन है/ और उन पर चिल्लाते हुए
चीलों और गिद्धों के झुण्ड और मक्खियाँ हैं।xxxxxxxxx
सिर्फ लोग नहीं है तो क्या हुआ? लोगों के होने न होने से
क्या कोई दृश्य की महत्ता कम होती है?"[2]

'उत्तरप्रियदर्शी' — में अशोक द्वारा बनवाये हुए नरक की यंत्रणा को देखकर जुगुप्सा उत्पन्न होती है। पत्थरों से मनुष्यों को पीसना, उनको कोल्हू में डालना, तेल से भरे उत्तप्त कड़ाह में अंगों का झुलसना वर्णित है —

"मेरे पत्थर/ उनको तोड़-तोड़ कर पीसें/मेरे कोल्हू/ उन्हें पेर लें
लाल कड़ाहों में भरे उनके अवयव/चटपटा उठें धा धा मरोड़
मेरे गज उनको उत्तप्त अंकुशों से बेध/ उछालें, पटकें, रौंदें।"[3]

(6) अद्भुत रस :—

"विभावादि के संयोग से विस्मय नामक स्थायीभाव ही अद्भुत रस के रूप में व्यक्त होता है। लोकोत्तर वस्तु अथवा इसका प्रधान विभाव है।%xxxx नयन विस्तार, अनिमिष दृष्टि, रोमांच, अश्रु, स्वेद, स्तम्भ, वेपथु, साधुवाद, हाहाकार, कर-चरण-अंगुलि भ्रमणादि को अद्भुत रस में प्रकट होने वाले अनुभाव कहा जायेगा। आवेग, संभ्रम, जड़ता, हर्ष, गर्व, स्मृति, मति, श्रम, धृति, भय, तर्क, वितर्क, चिन्ता, प्रलयादि उसके व्यभिचारी भाव माने जाते हैं।"[4]

1- अशोक वन-बंदिनी तथा अन्यगीतिनाट्य, पृ0 104   2- एककण्ठ विषपायी, पृ0 45
3- उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 47   4- रससिद्धान्त, स्वरूप, विश्लेषण, आनन्दस्वरूपदीक्षित, पृ0367-
367-68

'करूणालय' में चलती नौका का रूक जाना आलम्बन विभाव, आश्रय का देखना उद्दीपन विभाव, औत्सुक्य वितर्क, आवेग संचारीभाव से विस्मय स्थायीभाव रस दशा को प्राप्त हुआ है—

"प्रभो, स्तब्ध है नाव, न हिलती है। अरे/देखो तो इसको क्या है, है हो गया।"[1]

'लीला' में अद्भुत रस के अनेक स्थल हैं। बरात आश्रय, राम का ताड़का मारना जैसा लोकोत्तर कार्य आलम्बन, वध के दृश्य को देखना उद्दीपन, स्तम्भ अनुभाव सम्भ्रम, भय, निर्वेद जड़ता संचारी भाव उल्लिखित हैं —

१" (कौशल्या)— अब मेरा क्या कर्तव्य-कर्म? हा, भूल गया क्या मैं स्वधर्म?
इस बालक का कैसा प्रभाव/ देकर भी उर में घोर घाव
बन रहा प्रशंसा-पात्र हाय, अवसन्न हुआ क्यों भाव हाय।"[2]

इसी तरह से धनुर्भंग प्रकरण में राम और जनक का विस्मय व्यक्त हुआ है —

"राम अरे खींचने के ही संग/यह कोदण्ड हुआ क्यों भंग?
जनक—हुआ अहो, क्या स्वप्न-विलास/अब भी मुझे नहीं विश्वास।"[3]

'विश्वामित्र' — में तपस्वी विश्वामित्र को देखकर मेनका का विस्मय व्यक्त हुआ है। समाधिस्थ विश्वामित्र को देखकर मेनका का विस्मय व्यक्त हुआ है। समाधिस्थ विश्वामित्र आलम्बन, चिन्ता वितर्क आदि संचारीभाव हैं —

"यह क्या यह क्या उठा हुआ हिम पुंज सा/जीवित मृत या नराकार कैसा सखी?[4]

'शिल्पी' — में मूर्तिकार द्वारा निर्मित मूर्ति को देख जनसमूह विस्मय करता है। मूर्ति, आलम्बन, उसका सौन्दर्य उद्दीपन, औत्सुक्य, हर्ष संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"ओह रजत निर्झरिणी सी उन्मुक्त छटा में/ उमड़ रही जो प्राणों की चंचल छाया सी
अपनी ही शोभा में तन्मय तुहिन फेन का/शीतल अंचल फहराए, यह शिल्प स्वप्न सी
शरद चन्द्रिका है शायद।"[5]

'अप्सरा' में कलाकार का आश्चर्य निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है —

"यह कैसी संगीत-सृष्टि हो रही गगन से/या मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है?
कैसा आकर्षण है यह कैसा सम्मोहन, यह सौन्दर्य मधुरिमा, कोई मेरे मन को
जैसे बरबस खींच रहा हो, क्या है यह सब/ प्राणों की व्याकुलता, जीवन की व्याकुलता।[6]

उपर्युक्त उद्धरण में अप्सरा आलम्बन, उसका सौन्दर्य, नर्तन उद्दीपन, स्तम्भ, गद्गद अनुभव, भ्रान्ति, औत्सुक्य, हर्ष, वितर्क, संचारीभावों के द्वारा अद्भुत रस पुष्ट हुआ है।

1—करूणालय, पृ० 14, 2— लीला—पृ० 57-58 3— लीला, पृ० 107

4— विश्वामित्र और बाव नाट्य, पृ० 15, 5— शिल्पी, पृ० 22, 6— शिल्पी, पृ० 94

'स्नेह या स्वर्ग'— में विमान को देख स्तब्धता और चपलता का आश्चर्य व्यक्त हुआ है। विमान आलम्बन, उसकी कान्ति, विचित्रता, उद्दीपन, आकाश की ओर ध्यान से देखना, स्तम्भ अनुभाव कौतुक, भ्रान्ति, जड़ता वितर्क, संचारीभाव हैं —

"(सहसा आकाश पर दृष्टि पड़ने से चौंककर) रे यह क्या यह क्या?
आकाश की ओर देखकर — सुन्दर सुनहरी, सजीली एक बदली।
और उस अम्बुद की आड़ में? xx हाँ आड़ में xx कोई चित्र चित्रित सी वस्तु
xxx किन्तु यह क्या? xxx अरे अरे रम्य रथ। xxx हाँ हाँ यह रथ है।"[1]

'कवि' में अप्सरा को देख उसके विस्मय का वर्णन है। अप्सरा आलम्बन, आकाश से उतरना उसका सौन्दर्य उद्दीपन, एकटक देखना, मुग्ध और हतवाक् होना अनुभाव, कौतुक, भ्रान्ति जड़ता, हर्ष, वितर्क, संचारीभाव हैं —

"कवि, क्यों अशान्त/ यों मुग्ध और हतवाक् हुए? मैं मुग्ध आज
हो रहा देखकर तुम्हें देवि, तुम कौन परी-सी सन्ध्या की/हो उतर पड़ी
इस धरती पर/तुम कहो कौन? किस स्वर्ग-लोक से आई हो?
तुम कौन कौन-स्वप्न हो? विस्मय हो? ओ मेरे कवि? आश्चर्य-चकित
तुम हो न तनिक, आश्चर्य-चकित सचमुच हूँ मैं/ ऐसी छवि देखी थी न कभी
मैंने जग में।"[2]

'सृष्टि की सांझ' में विचित्र दृश्य देखकर सेनापति कौतूहलपूर्ण आश्चर्य से भर उठता है—

"पर यह क्या देख रहा हूँ यह नया देश, यह नया देश, किरणें सुन्दरता की देखो,
जगमगा रहीं। सौन्दर्य-देश, इतना प्रकाश/सुन्दरता का इतना प्रकाश,
मेरी आँखें तो मुँद-मुँद जाती हैं चले। ऐसी नगरी तो/ मैंने भी न कभी देखी।"[3]

उपर्युक्त उदाहरण में अद्भुत देश आलम्बन, सेनानायक आश्रय, अद्भुत देश का सौन्दर्य उद्दीपन, चिन्ता, हर्ष, भ्रान्ति, वितर्क संचारीभाव हैं।

'सौवर्ण' में सौवर्ण को देखकर देवी के आश्चर्य में अद्भुत रस व्यक्त हुआ है —

"कौन, कौन तुम तप्त स्वर्ण से दारुण सुन्दर/ धरा गर्भ के गुह्य तपस से प्रकट सुपर्ण?
मरुतों के तुरगों पर चढ़ मर्मर हर हर कर/ जन मन को करते आन्दोलित सिंधु
उच्छ्वसित। जीवन क्रन्दन में बज उठता नया गान अब/मन की मूर्छा में जग पड़ती
नयी चेतना।"[4]

1- स्नेह या स्वर्ग, पृ0 13-14 2- सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक-पृ0
3- सृष्टि की सांझ और अन्य काव्यनाटक-पृ0 65-66 4- सौवर्ण, पृ0 44

आलम्बन, सौवर्ण, आश्रय का बार बार देखना उद्दीपन, औत्सुक, हर्ष, आवेग, संचारीभाव उल्लिखित हैं।

'स्वप्न '-सत्य' में अद्भुत रस के अनेक स्थल हैं। कलाकार स्वर्गिक सुषमा को देख विस्मय से स्तब्ध रह जाता है —

"अह, क्या सूक्ष्म अनेकों स्तर हैं स्वर्गलोक के/कैसा सम्मोहन है सद्यः स्फुट वर्णों का।

यह प्राणों का हरित स्वर्ग सा लगता सुन्दर/जीवन की कामना जहाँ हिल्लोलित अहरह।

शस्य राशि सी श्यामल, शत वर्णों में मुकुलित/इन्द्रिय कुसुमों से गुंजित, मधु गन्धोन्मादन।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण में कलाकार आश्रय, स्वर्ग आलम्बन, उसका सौन्दर्य उद्दीपन, औत्सुक, और हर्ष संचारी भाव हैं।

'उर्वशी' में पुरूरवा-वर्णित स्वप्न, प्रसंग में अद्भुत रस का वर्णन है। दृढ़ता, औत्सुक, मोहादि संचारी भावों का उल्लेख है —

"स्वप्न ही कहो, यद्यपि मेरे मन की आँखों के

आगे अब भी सभी दृश्य वैसे ही घूम रहे हैं

जैसे सुप्ति और जागृति के धूमिल द्वाभ क्षितिज पर

मैंने उन्हें सत्य, चेतन, सुस्पष्ट, स्वच्छ देखा था

किन्तु भीत मैं नहीं गर्त के अतल, गहन गह्वर में

जाना हो तो उसी धीरता से प्रदीप्त जाऊँगा।"[2]

इसी तरह स्वप्न समाप्त होने के बाद सुकन्या के आगमन(पृ0110) तथा अचानक उर्वशी के लुप्त होने के बाद समय (पृ0 112) अद्भुत रस की व्यंजना हुई है।

'संशय की एक रात' — में छाया को देख वानर सेनाओं के साथ राम का आश्चर्य व्यक्त हुआ है। छाया के हाथ में पक्षी होना एवं वर्षा में वस्त्र न भीगना उद्दीपन विभाव, दृढ़ता औत्सुक संचारीभाव हैं —

"कौन हो तुम? ठहरो/भी छलने/ कौन से प्रयोजन के लिए/घूम रहे कुंजों पर?

उत्तर दो/राम को उत्तर दो/बोलो क्या चाहते हो?"[3]

'उत्तरप्रियदर्शी' में नाटकीय परिवेश में भिक्षु का अनासक्त रहना, घोर तथा अशोक के लिए आश्चर्यकारक है। प्रियदर्शी आश्रय, भिक्षु आलम्बन, शीतल वायु का बहना उद्दीपन स्तब्ध पड़ता औत्सुक्य, वितर्क संचारीभाव से अद्भुत रस पुष्ट हुआ है —

1- सौवर्ण, पृ0 77 2- उर्वशी, दिनकर, पृ0 100 और 105

3- संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृ0 38

"क्यों ज्वालाएँ नहीं छू रहीं तुमको? नहीं सालते/ वज्राघात यम के?
और क्यों एक सुगन्धित शीतल/कुलराती-सी सांस/तुम्हारे चारों ओर बह रही है
जीवन्त स्वच्छन्दी? क्यों कैसे किस चमत्कार-बल से / तुम नचिकेत मुक्त हो?
ओ संन्यासी, आह, आ ह।"[1]

(7) भयानक रस :—

भयदायक वस्तुओं के देखने या सुनने से अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायीभाव होकर परिपुष्ट होता है, तब भयानक-रस उत्पन्न होता है।"[2] इसका स्थायीभाव भय है। भयदायक वस्तुएँ आलम्बन, भयानक वस्तुओं का उल्लेख उद्दीपन कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, स्वर भंगादि अनुभाव एवं चिन्ता, शंका, दैन्य, अपस्मार संचारी भाव हैं।

'करुणालय' — में घोर आकाश गर्जन से भय स्थायीभाव की पुष्टि की गयी है। हरिश्चन्द्र आश्रय, नौका ले चलने का आदेश अनुभाव, वैवर्ण्य स्तम्भ, त्रास, शंका चपलता संचारीभाव हैं —

"यह कैसा उत्पात, चलो जल्दी करो/ माँझी, तट पर नाव ले चलो शीघ्र ही।"[3]

'सृष्टि का आखिरी आदमी' — में भयानक रस उल्लिखित है मुर्दा आलम्बन, भीड़ आश्रय, मुर्दे का पुनः उठकर चलना बादल गर्जन उद्दीपन, रोना, चिल्लाना भगना अनुभाव तथा चिन्ता त्रास, शंका संचारीभाव हैं —

"भाग रही है भीड़ नगर में हाहाकार मच रहा है।
वह मुर्दा स्वयं हाथ से बाँहों को थामे/ फौलादी छाया-सा
डगमग बढ़ता जाता है पश्चिम को। वह जिधर-जिधर जाता है भगदड़ मचती है।
सड़कों पर सन्नाटा छाता/गरज रहा है रह रह करवटों का बादल।"[4]

'लौह देवता' — में प्रकृति के भयंकर कृत्यों को देखकर स्त्रीपुरुष भयभीत हो उठते हैं। मेघ गर्जन धरती का काँपना, झंझावात, उल्कापात उद्दीपन विभाव है। जड़ता, दीनता, त्रास, मूर्च्छा संचारी भाव उल्लिखित है —

"कभी बिजलियाँ हैं अपनी तलवार चलातीं? कभी वज्र गिरता/उल्का आता पृथ्वी पर
झंझावात कभी उठता है। वज्र घोषाडम्बर करता है/ धरती डोल डोल जाती है।

1- उत्तरप्रिय दर्शी, पृ0 60   2- काव्यदर्पण, पृ0 199

3- करुणालय, पृ0 14   4- स्वर्णकिरण, पृ0 193

प्रलय काल निष्ठुर झन्झरा/ होंगे निगल जाने को पल में/बारम्बार उमड़ आता है।
कुछ जीव हम इस धरती के/ मूर्छित होकर रह जाते हैं।"[1]

'मेघदूत' में कुबेर के शाप से यक्ष भयभीत हो जाता है।कुबेर का शाप आलम्बन, यक्ष आश्रय, प्रिया विरह उद्दीपन, से नैराश्य, जड़ता आदि संचारी भाव से भयानक रस पुष्ट हुआ है-"हाय क्या करूँ वज्रपात सा/ कठिन दण्ड यह।"[2]

'अन्धायुग' — में गिद्धों के आसमान में मड़राने पर प्रहरी उसे अपशकुन मान भयभीत होते हैं। गिद्ध, आलम्बन, प्रहरी आश्रय, गिद्धों का आसमान में मड़राना, अँधेरा, आँधी की ध्वनि उद्दीपन, नीचे छिपना, अनुभाव शंका त्रास चिन्ता संचारी भाव हैं —

"झुक जाओ/ झुक जाओ/ ढालों के नीचे छिप जाओ/ नरभक्षी हैं
ये गिद्ध भूखे हैं। मौत जैसे ऊपर से निकल गई
अपशकुन है/ भयानक यह। पता नहीं क्या होगा/ कल तक इस नगरी में।"[3]

'मदन दहन — में काम के भस्म होने पर देवताओं का भय रस रूप में परिणत हुआ है, शंकर आलम्बन, देवता आश्रय, आलम्बन के नेत्र लाल होना, तीसरा नेत्र खुलना अग्नि की की धार निकलना, उद्दीपन विभाव, रोना, चिल्लाना, कम्प अनुभाव, आवेग,दैन्य, त्रास संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"खुल गया भाल रुद्र का सर्वनाश, वन्हियों की ज्वालाएँ फूट पड़ीं
छूट पड़ीं अग्निधार-अग्निधार दुर्निवार/सृष्टि संहार कर मनों कालकूट की महानदी-
फूट पड़ी।"
ले अनन्त नाश की,ज्वालामुखी ग्रास की? और तब देखा जब भय को प्रकट रूद्र
चीख उठे दिग्गज,लोक लोक काँप उठे/देवगण चिल्ला उठे: रोको प्रभु रोको प्रभु।"[4]

'दिग्विजय' — में नौध्वनि आलम्बन, खेचर आश्रय, मेघगर्जन, वज्रनिपात उद्दीपन कम्प भौचक्का रह जाना, लड़खड़ाना अनुभाव, शंका, चिन्ता, जड़ता संचारीभाव है —

"गरज उठा लो अम्बर टूट रहीं शत विद्युत/गूढ पुरातन , रोषहीन अन्तरध्वनि उठती।संकट क्षण, दिक् संकट क्षण यह। कुछी हुई/ चिनगारी सा,अब बैठ रहा मन आत्म पराजित। मात्र यंत्रवत् कार्य कर रहे मन,तन अवयव।लगता है लड़खड़ा उठेंगे पग हू वो छू"[5]

1-सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक ,सिद्धनाथ कुमार, पृ0 87-88
2- संगम पत्रिका, सन् 1950, पृ0 3
3-अन्धायुग, पृ0 14-15 4- नया समाज, पृ0 85, अगस्त 1952
5- सौन्दर्य, पृ0 101, पंत।

'उर्वशी' — में भयानक रस के दो स्थल हैं। तपस्वी च्यवन की समाधिभंग होने पर सुकन्या उनकी रोषाग्नि से भयभीत होती है। ज्वाला का निकलना उद्दीपन, निष्कम्प चैतन्यहीन, भयभीत स्तब्ध खड़ा होना अनुभाव, शंका चिन्ता, जड़ता संचारीभाव हैं —

> "पर नयनों के खुलते ही उद्भासित रक्त-युगल से,
> लगा, अग्नि ही स्वयं फूट कर बढ़े चले आते हों,
> रंच मात्र भी हिलती नहीं निष्कम्प चेतना-हीना
> खड़ी रही उस भय स्तब्ध,-पीड़िता क्रांत मृगी-सी
> जिसकी मृत्यु समक्ष खड़ी हो मृग-रिपु की आँखों में।"[1]

इसी तरह पुरूरवा के स्वप्नदर्शन से उर्वशी भयभीत हो जाती है। भरत शाप आलम्बन, व्याकुलता, पानी माँगना, अनुभाव, शंका चिन्ता, विषाद संचारी भावों के द्वारा भयानक रस पुष्ट हुआ है —

> "आह, क्रूर अभिशाप, तुम्हारी ज्वाला बड़ी प्रबल है।
> अरी, जली मैं जली अपाले और तनिक पानी दे।
> महाराज, मुझ हतभागी का कोई दोष नहीं है।"[2]

'एक कण्ठ विषपायी' :— में भयानक रस का अच्छा चित्रण हुआ है। शंकर जैसे दामाद के प्रति किया गया अपराध आलम्बन, वीरिणी आश्रय, अचानक महामात्य के गुप्तचर का आगमन उद्दीपन, आँख फड़कना, जी अकुलाना, आँखों के सामने अँधेरा छा जाना अनुभाव, शंका चिंता मूर्छा संचारी भाव से भयानक रस पुष्ट हुआ है —

> "मेरी बाईं आँख फड़कने लगी अचानक/ सहसा बैठे-बैठे मेरा जी अकुलाया।
> अभी-अभी/ मेरे हृत्कंपन की गति/ जैसे तेज हो गयी/ आँखों के सामने।
> अँधेरा-सा घिर आया/ ऐसा लगता है जैसे कोई अनिष्ट होने वाला है।"[3]

इसी तरह से सती के आत्मदाह करने पर नन्दी के रौद्र रूप को देखकर द्वारपाल भयभीत हो जाता है। वह महादेवी से कहता है —

> "महादेवि, उसका वह रौद्र-रूप देखकर/ अनेक जन्तु/ सहम हो गए पूर्ण।
> 'औ' फिर/ जिस वेग से गया है वह/ यज्ञ छोड़/ महादेव शंकर के पास
> असंभाव्य ऐसी दुर्घटना की/ सूचना देने के लिए/ उसकी कल्पना-मात्र
> मेरा हर रोम कँपा जाती है/ महादेवि क्या होगा?"[4]

उपर्युक्त अंश में नन्दी आलम्बन, द्वारपाल आश्रय, नन्दी का रौद्ररूप, उसका शंकर के पास जाना उद्दीपन, वेपथु एवं कल्पना करना मानसिक अनुभाव तथा शंका स्मृति विषाद संचारी भाव है।

1- उर्वशी, पृ0 86, 2- उर्वशी, पृ0108, 3- एककण्ठ विषपायी-पृ0 22-23
4- एककण्ठ विषपायी, पृ036 5-

(8) रौद्र-रस :—

जहाँ विरोधी दल की छेड़खानी, अपमान, आदि से प्रतिशोध की भावना जाग्रत होती है, वहाँ रौद्र रस होता है। विरोधी दल के व्यक्ति आलम्बन, उनके द्वारा किए गये अनिष्ट कार्य, अपकार, कठोर वचन आदि उद्दीपन, मुखमण्डल पर लाली दौड़ जाना, भौंह चढ़ाना आँखें तरेरना, दाँत पीसना, होंठ चबाना, हथियार उठाना, ललकारना, गर्जन, तर्जन दीनता वाचक शब्द प्रयोग अनुभाव, उग्रता, अमर्ष, चंचलता, उद्वेग, मद, असूया, श्रम, स्मृतिआवेग, संचारी भाव तथास्थायीभाव क्रोध है।"[1]

'करुणालय' में रौद्र रस के दो स्थल हैं — पितृआज्ञा की अवज्ञा के कारण हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित पर कुपित होकर कठोर वचन कहता है। इसमें हरिश्चन्द्र आश्रय, रोहित आलम्बन, विलम्ब से लौटना उद्दीपन, आवेग, अमर्ष, उग्रता, संचारीभाव हैं —

"रे पुत्राधम, तूने आज्ञा भंग की/मेरी अब तू योग्य नहीं इस राज्य के।"[2]

इसी तरह शाली सुव्रता, अजीगर्त को उसके कार्यों के लिए धिक्कृत करती है— इसमें अजीगर्त आलम्बन, सुव्रता आश्रय, अजीगर्त की जघन्यता उद्दीपन उग्रता आवेग, संचारीभावों के द्वारा रौद्र रस परिपुष्ट हुआ है —

"रे रे दुष्ट! बना है ऋषि के रूप में/ निरा वधिक रे नीच अरे चाण्डाल तू।"[3]

'सीता' में जनक द्वारा वीरों का अपमान करने पर लक्ष्मण अपने गुरुजनों का अपमान समझते हैं अतः वे अपना क्रोध उग्रता एवं अमर्ष संचारियों से व्यक्त कर कहते हैं —

"बस, बस और/होगा अब न सह्य और/अधिक नहीं सुन सकते कान,
आप पूज्य हैं पितासमान/फिर भी फिर भी यह अपमान/सह्य नहीं जैसे विषवाण।"[4]

उनके मुख नेत्रों का आरक्त होना आदि अनुभावों का उल्लेख है —

"हुआ अरुण मुख, लोचन घूर्ण।"[5]

इसी तरह से लक्ष्मण के कटु वचनों को सुनकर परशुराम के हृदय में उत्पन्न क्रोध गर्जन, तर्जन अनुभाव तथा अमर्ष, आवेग गर्व संचारियों से रौद्र रस पुष्ट हुआ है —

"अरे मूढ़ मुझसा कुल शूर/कौन बड़ा ब्राह्मण है अन्य?
अरे अधम अद्भुत, अजान/तू मुझको वह ब्राह्मण जान-
जिसने बल से बारम्बार/ किया क्षत्रियों का संहार।"[6]

1- काव्यदर्पण, रामदहिन मिश्र, पृ0 196

2- करुणालय, प्रसाद, पृ0 27-28   3- करुणालय, पृ034 , 4-सीता-पृ0183

5- सीता, पृ0 186,   6- सीता- पृ0 112-13

'अनघ' में राजा द्वारा अनीतिवश मघ को शूली देने पर वैश्य रूपिणी सुरभि कुपित होकर राजा को कटु वचन कहती है। यहाँ सुरभि आश्रय, राजा आलम्बन, मघ को शूली देना उद्दीपन, धिक्कृत करना अनुभाव, आवेग, अमर्ष, उग्रता, संचारीभाव हैं —

"महाराज धिक्कार तुम्हें धिक्कार तुम्हें है, न्यायासन का नहीं तनिक अधिकार तुम्हें है।"[1]

'पंचवटी-प्रसंग'— में शूर्पणखा का प्रणय असफल होने पर वह उग्र होकर अपना क्रोध व्यक्त करती है। राम आलम्बन, प्रणय को ठुकराना उद्दीपन, अपमान करना कटुवचन अनुभाव ईर्ष्या, असूया, उग्रता संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"धिक है नराधम तुझे/ वंचक कहीं का शठ/ विमुख किया तूने उसे।

आई जो तेरे पास/ चाव से/ अर्पण करने के लिए जीवन-यौवन नवीन।"[2]

'तारा' में चन्द्रमा एवं तारा के विश्वासघात से बृहस्पति कुपित होकर उन्हें शाप देते हैं। बृहस्पति आश्रय, अनिष्ट कर्म उद्दीपन गर्जन-तर्जन अनुभाव, अमर्ष, उग्रता आवेग, असूया संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"यह क्या? यह क्या? यह क्या अरे/ कैसा यह विश्वासघात-उफ वासना।

× × × × × ×

तारा, तारा कुलटा पापिन राक्षसी/ और चन्द्र-गुरु-द्रोही पापी चन्द्र तुम।

× × × × × × ×

ए कृतघ्न उद्भ्रान्त तुम्हारा नाश हो।"[3]

'विश्वामित्र' में विश्वामित्र आश्रय, मेनका आलम्बन, गर्व, उद्वेग संचारियों से विश्वामित्र का क्रोध व्यक्त हुआ है —

"क्या तू मुझको नहीं जानती यज्ञमति/ मैं हूँ विश्वामित्र प्रतापी महामुनि।

मैं चाहूँ तो क्षण में ही नव सृष्टि कर/ तुझ जैसी उत्पन्न करूँ शत नारियाँ।"[4]

'उन्मुक्त' में घायल शत्रु आलम्बन, कुसुमद्वीप निवासी आश्रय, शत्रु द्वारा विस्फोट करना उद्दीपन शत्रु को पीटना, उसका कन्धा पकड़ना अनुभाव, उन्माद श्रम, उत्साह, आवेग, उग्रता संचारीभावों के द्वारा यहाँ रौद्र रस पुष्ट हुआ है —

"उस मृत का तनु क्रुद्ध कुसुम सैनिक थे घेरे/ कोई उसको खींच रहा था कुटिल कचों से

कोई उसको बेध रहा था निज किरचों से/कोई कोई पदाघात करते थे बढ़कर

पीछे के कुछ अन्य किसी का स्कन्ध पकड़कर / पंजों के बल उठे हुए बकते थे कितना

वे सब थे उद्ग्रीव बुभुक्षित वन्य पशुओं से/सक्रय प्रकोपोल्लसित।"[5]

1- अनघ, पृ0 127 2- परिमल, निराला, पृ0 234-235

3- मधुकण, भगवती चरण वर्मा, पृ0 69 4- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ027

5- उन्मुक्त, पृ0 79-80

'द्रौपदी' में द्रौपदी आश्रय, दुर्योधन आलम्बन, भरी सभा में निवस्त्र करना तथा युधिष्ठिर का मौन रहना उद्दीपन गर्व उग्रता संचारी भाव है —

"कपट-चाल में पतियों को करके अपने वश/ अरे नराधम, तुझे हो गया इतना साहस।[1]

'कर्ण' में कर्ण आश्रय, द्रौपदी आलम्बन, व्यंग्य वचन उद्दीपन, विभाव तथा अवहित्था विशेष विशेष अमर्ष संचारी भाव के द्वारा रौद्र रस पुष्ट हुआ है —

"मौन कर्ण, लाछित, अपमानित, हत-प्रभ/उसके नन्दनन्दन की सकल हरीतिमा

झुलस गई उस स्वयंवरा की घृणा के/व्यंग्यवचन के झोंके के उत्ताप से।"[2]

'कर्ण' — में कर्ण आश्रय, द्रौपदी आलम्बन, व्यंग्य वचन उद्दीपन विभाव तथा अवहित्था विशेष अमर्ष संचारी भाव के द्वारा रौद्ररस पुष्ट हुआ है —

"मौन कर्ण, लाछित, अपमानित, हत-प्रभ? उसके नन्दनन्दन की सकल हरीतिमा

झुलस गयी उस स्वयंवरा की घृणा के/ व्यंग्यवचन के झोंके के उत्ताप से।"[2]

'मेघदूत' में कुपित कुबेर के शाप के समय रौद्र रस की व्यंजना हुई है।कुबेर आश्रय, यक्ष आलम्बन, कर्तव्यभ्रष्टता उद्दीपन, आरक्त नेत्र, शाप अनुभाव तथा आवेग, उग्रता, संचारीभाव उल्लिखित हैं —

"वह यक्षेश्वर रौद्र रूप धर चले आ रहे ज्वलित श्रृंग से

प्रेम पाश में बँध पत्नी के/भूल गया है राज-काज तू/मूढ़ भ्रष्ट कर्तव्य ज्ञान से शून्य काम के वशीभूत हो।

पुष्पशरों से मर्माहत तू/ भूल गया कर्तव्य श्रेष्ठ है।"[3]

'सृष्टि की साँझ' में आश्रय सेनापति, आलम्बन अजय, द्वारा रेखा से विवाह करके आनन्दित होना उद्दीपन विभाव, विकृति रेखाएँ, नेत्र लाल होना, ईर्ष्या आदि संचारीभाव उल्लिखित हैं—

"मैं देख रहा/विकृति की रेखाएँ खिंचती/आ रहीं तुम्हारे मुख मण्डल पर झुलसातीसी।

आँखों में जाग रही/प्रतिहिंसा की ज्वाला।"[4]

'अन्धायुग' में अश्वत्थामा आश्रय, पाण्डव का आलम्बन, अधर्म द्वारा दुर्योधन सहित सभी कौरवों का वध उद्दीपन, उन्माद गर्व, असूया, आवेग, उग्रता, संचारीभावों के द्वारा यहाँ रौद्र रस का परिपाक हुआ है —

"माता गान्धारी/ मैं कहता हूँ धैर्य धरो/ जैसे तुम्हारी कोख कर दी है पुत्रहीन इन्होंने

वैसे ही मैं भी उत्तरा को कर दूँगा पुत्रहीन/जीवित नहीं छोड़ूँगा उसको मैं

कृष्ण चाहे सारी योगमाया से रक्षा करें।"[5]

1-त्रिपथगा, पृ0 105, 3- 3-संचय पत्रिका, पृ03 सन् 1950,

2- वही, पृ017 4- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक, पृ0 76

5-अन्धायुग, पृ085

'मदन-दहन' में शंकर आश्रय, काम आलम्बन, उसके द्वारा सम्मोहन बाण का प्रयोग उद्दीपन, आरक्त नेत्र, ललकारना अनुभाव, गर्व, आवेग, उग्रता संचारीभाव है —

"मुझको तपोभ्रष्ट करने को कामदेव, यह नीच वासना
दुर्वासित मति यहाँ आ गया ठहर ठहर फलभोग मूढ़मति।
तत्क्षण ही क्रोध आ गया, भौंह चढ़ी नेत्र लाल-लाल हुए।"[1] (नयासमाज, अंक 52 पृ० 85)

'उर्वशी' में भरत शाप में रौद्र रस की व्यंजना हुई है। उर्वशी आलम्बन, भरतमुनि आश्रय, उर्वशी का विकृत नृत्य, ताल, मुद्रायें आदि उद्दीपन, अमर्ष से रौद्र रस परिपक्व हुआ है—

"शक्र-चक्र की कुमारी भी तो अबुद्ध है। व्यर्थ रूप-रचना धिक् धिक् पापी सुन्दरता।
अमृत कला में गरल मिलाने की तत्परता। अब समझा लालसा नई सुलगी है तन में
अब समझा कामना नई पनपी है मन में। तुझे शाप देता, कला नहीं तुझसे सधती।[2]

'अशोक वनबन्दिनी' में रावण आश्रय, सीता आलम्बन, सीता द्वारा अनादर उद्दीपन गर्व, ईर्ष्या, आवेग संचारी भावों के द्वारा यहाँ रौद्र रस का परिपाक हुआ है —

"तीलियों की तरह तारक तोड़ दूँ। जोड़ दूँ भू को गगन से जोड़ दूँ
चाहते ही विश्व का घट फोड़ दूँ। उस कड़ाही में भरा सागर सलिल
पी सकूँगा चाहने पर सिन्धु को। कौन समता कर सका तपिश की।"[3] (अशोक० पृ० 17)

'उर्वशी' — में पुरूरवा का क्रोध उस समय व्यक्त हुआ है जिस समय उन्हें ज्ञात होता है कि उर्वशी स्वर्ग चली गयी है। देवता आलम्बन उर्वशी का स्वर्ग गमन उद्दीपन गर्व असूया, अमर्ष, संचारी भावों से रौद्र रस का परिपाक हुआ है —

"लाओ मेरा धनुष यहीं से बाण साध अम्बर में/ अभी देवताओं के मन में आग लगा देता हूँ। फेंक प्रखर, प्रज्वलित वन्हिमय विशिख दृप्त मघवा को/ देता हूँ नैवेद्य मनुजता के विरुद्ध संगर का।"[4] (उर्वशी, पृ० 113)

'एक कण्ठ विषपायी' — में रौद्र रस के अनेक स्थल हैं। दक्ष प्रजापति शंकर से इस लिए कुपित हैं कि उन्होंने सती जैसी अबोध किशोरी को बहका कर उससे विवाह कर लिया है। शंकर आलम्बन, दक्ष आश्रय, दक्ष के घर की परम्परा तोड़ना, उनके यश पर कलंक लगाना, वीरिणी द्वारा शंकर को अतिथिरूप में बुलाने का आग्रह करना उद्दीपन विभाव, अमर्ष, उग्रता, उद्वेग, असूया आदि संचारी भावों से दक्ष का क्रोध रस रूप में परिणत हुआ है —

"शंकर के मोह में सती ने/अपने/अथवा पति के/दुर्भाग्यों को उकसाया है।
तुमको ललकार देता हूँ/सारे ब्रह्म लोक से उसे/ बहिष्कृत करके छोड़ूँगा मैं।
उन दोनों ने केवल मेरी/बाह्य प्रतिष्ठा खण्डित की है? उनकी आत्म-प्रतिष्ठा का भ्रम
तोड़ूँगा मैं।"[5] (एककण्ठ विषपायी, पृ० 14)

(9)शान्त रस :—

संसार से अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्वज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त रस की प्रतीति होती है। संसार की असारता का बोध, या परमतत्व का ज्ञान आलम्बन, सज्जनों का सत्संग, तीर्थाटन, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण का अध्ययन सांसारिक झंझटें आदि उद्दीपन, दुखी दुनिया को देखकर कातर होना, झंझटों से घबराकर संसार त्याग की तत्परता अनुभाव, धृति, मति, हर्ष, उद्वेग, ग्लानि, असूया, निर्वेद, जड़ता संचारीभाव तथा स्थायीभाव निर्वेद या शम है।[1]

'अनघ' में मघ की संसार विषयक कल्पना में इसकी निस्सारता का वर्णन है जिसमें शान्त रस पुष्ट हुआ है। इसमें संसार की निस्सारता आलम्बन, निर्वेद, धृति, मति, संचारीभावों के द्वारा यहाँ शान्त रस पुष्ट हुआ है —

"बदले अपने लाख रंग यह/ छोड़ेगा क्या सहज ढंग यह/स्वयं स्वप्न है स्वप्नसंग यह
झूठी छाँह खिलौना है। विषम विश्व का कोना है।"[2]

'पंचवटी'प्रसंग' में भ्रम पूर्ण संसार की नश्वरता आलम्बन, निर्वेद, विबोध, संचारीभाव उल्लिखित हैं

"एक ही है दूसरा नहीं है कुछ/ द्वैतभाव ही है, भ्रम/तो भी प्रिये
भ्रम के ही भीतर से/ भ्रम के पार जाना है।"[3]

'तारा' में बृहस्पति तारा को संसार की नश्वरता पर उपदेश देते हैं। यहाँ पर बृहस्पति आश्रय, संसार की निस्सारता आलम्बन, निर्वेद मति, विबोध संचारी भावों के द्वारा यहाँ शान्त रस परिपुष्ट हुआ है —

"मृगतृष्णा सा यह संसार असार है। यही ज्ञान जीवन का केवल सार है।
वैभव सुख ऐश्वर्य भोग के चार दिन। यह सब है कल्पना भ्रान्ति के राज्य में।"[4]

'विश्वामित्र' में निर्वेद भाव का वर्णन उस समय हुआ है जिस समय विश्वामित्र को तत्वज्ञान प्राप्त हुआ कि मेनका के साथ रहते उनकी तपस्या ही नहीं क्षीण हुई बल्कि वे संसार में अनुरक्त होते जा रहे हैं। इसमें ग्लानि, निर्वेद मति, संचारी भावों से शान्त रस का परिपाक हुआ है—

"दैव हा, गरल अमृत के धोखे में मैं पी गया/मणि के भ्रम मैंने काँच खण्ड लेकर चला।"[5]

उन्हें अपने अपलाप पर ग्लानि होती है —

"हाय, सत्य से अनृत बनकर ठग रहा/क्या इतना अपलाप तपस्वी का हुआ।"[6]

1—काव्यदर्पण, पृ0 221-22   2— अनघ, पृ0 7   3— परिमल, निराला, पृ0230
4— मधुकण-भगवती प्रसाद वर्मा, पृ0 57   5— विश्वामित्र और दो भावनाट्य-पृ0 84
6— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 44

'उत्तरप्रियदर्शी' में अशोक युद्ध नरक की यातना में पीड़ित मानव को देख भिक्षु बौद्ध होगया। उसे संसार की नश्वरता का बोध हो गया। नरकग्रस्त जीव आलम्बन भिक्षु आश्रय, संसार की निस्सारता अनुभाव —

"क्या यह अनजान कोई— किन्तु सबका सत्य/क्योंकि उसको ज्योति कर ने छू लिया कुछ है बच की प्रतिमा— संसरण ही दुःख है।"[1]

(10) वात्सल्य रस :—

इसका स्थायीभाव वत्सलता या स्नेह। पुत्रादि सन्तान को इसका आलम्बन है। उसकी चेष्टाएँ उसकी विद्या, बुद्धि तथा शौर्यादि उद्दीपन हैं। और आलिंगन, स्पर्श, शिरश्चुम्बन एकटक उसे देखना, पुलकादि भाव अनुभाव तथा अनिष्ट शंका, हर्ष, गर्व, आदि उसके संचारीभाव हैं।"[2]

'करुणालय' में आकाशवाणी से पुत्र बलिदान की आज्ञा सुनकर हरिश्चन्द्र का हृदय ममतालु हो उठता है — रोहित आलम्बन, मोह चिन्ता संचारी भावों के द्वारा यहाँ वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है —

"आह, देव यदि आप जानते समझते। कितनी ममता होती है सन्तान की।"[3]

'लीला' में विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना के समय वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है — दशरथ आश्रय, वन की भयंकरता उद्दीपन, मोह, शंका, स्मृति संचारीभाव है —

"किन्तु पत्र तुम मुझे प्राण से भी हो प्यारे। हो सकते हैं प्राण कहीं प्राणों से प्यारे? बड़े व्रतों से हाय, हुए हैं जन्म तुम्हारे/आँखों से क्या अलग करूँ आँखों के तारे?"[4]

'अनघ' में मघ के समाजोद्धार के कृत्यों में व्यस्त देख माँ का हृदय दयार्द्र हो उठता है। मघ को खाना खिलाये बिना खाना नहीं खाती है— निम्न उदाहरण में पुत्र के बिना खाना न खाना अनुभाव, मोह संचारी भाव है —

"जब तक खिला न दूँ तुझको/ भूख नहीं लगती मुझको।"[5]

पुत्र के राजबन्दी बनने पर उसका वियोग वात्सल्य मुखरित हो उठता है। गर्वशोक इत्यादि से यह भाव व्यक्त किया गया है —

"मुझको है गर्व तुम्हारे कर्म पर/मेरा सुत बलिदान हुआ है धर्म पर
माना दारुण शोक सहूँगी वत्स मैं/ पर गौरव के साथ रहूँगी वत्स मैं।
सबको है यह ज्ञात कि तुम निर्दोष हो/ मेरे लुटते हुए सुकृत के कोष हो।"[6]

1-उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 50 2- रससिद्धान्त स्वरूपविश्लेषण, पृ0 295
3-करुणालय, पृ0 15, 4- लीला, पृ0 27-28 5- अनघ, पृ0 30
6- अनघ, पृ0 116

इसी तरह मय का पिता अमोघ पुत्र को राजद्रोही सुनकर मूर्छित हो जाता है— निम्न उदाहरण मैंतम्ब अनुभाव तथा शोक, मूर्छा इत्यादि का उल्लेख हुआ है —

"हा (मूर्छा) अरे, जन गिरा क्यों व्यक्त हो/हे पथिक आश्वस्त हो, आश्वस्त हो।"[1]

'विश्वामित्र' में शकुन्तला की बालक्रीड़ाओं में वात्सल्य रस वर्णित हुआ है। मेनका उसे देखकर अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार है। इस सुख के समक्ष तो स्वर्ग, अमृत, मान सम्मान सभी हेय हैं —

"देखो, अयि देखो, हम दो का स्वर्ग यह/डोलता छल-पल हीन मधुर पीयूष सा
विश्व वार दूँ स्वर्ग वार दूँ सैकड़ों/ होता है जी अनुपम छवि को देखकर
श्वासों का वैभव उड़ाकर ले उड़ूँ/नभ में शशि का गर्व तोड़ूने।"[2]

शिशु बालिका आलम्बन, मेनका आश्रय, भोलाभाला मुख सौन्दर्य उद्दीपन, अभिलाषा गर्व, मोह, संचारीभावों से यहाँ वात्सल्य रस है।

'कर्ण' में वियोग वात्सल्य का अच्छा चित्रण हुआ है। कर्ण को देखकर कुन्ती मातृत्व व्याकुल होने लगता है। यहाँ कुन्ती आश्रय, कर्ण की वीरता उद्दीपन एकटक देखना, वैवर्ण्य, अश्रु अनुभाव, जड़ता हर्ष, आवेग, संचारीभाव हैं —

"कुहरा का आवरण हट गया स्वयं ही/ वह निवर्णमुख हिम -सा मुरझाया हुआ।
भरे हुए थे नेत्र और अपलक-विमुग्ध/देख रही थी वह तेजस्वी कर्ण को।"[3]

'उर्वशी' में वात्सल्य रस के अनेक स्थल हैं। शिशु आलम्बन, उर्वशी आश्रय, आँखों की निश्छलता, टुकुर-टुकुर देखना उद्दीपन, पुचकारना, वक्ष से लगाना, अनुभाव, हर्ष, गर्व, औत्सुक्य संचारीभावों से वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है—

अरी देखती नहीं लाल कीनन्हीं-सी आँखों में/ अब भी तो सुस्पष्ट स्वर्ग के सपने झलक रहे हैं। टुकुर-टुकुर सन्तुष्ट भाव से कैसे ताक रहा है? मानो हो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी समर्थ देवोपमा। × × × × × × × × × × × ×
अरी जुड़ाना क्या इसको? ला, दे, इस हृदय-कुसुम को/लगाकर से स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती हूँ।"[4]

इसी तरह से आयु को देखकर पुरूरवा के हृदय में वात्सल्य का सागर उद्वेलित होने लगता है—

" उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन गीतिनाट्यों में शृंगार, वीर, अद्भुत और रौद्र और शान्त रस का विवेचन अधिक हुआ है। करुण, वात्सल्य, वीभत्स और हास्य रस का प्रयोग कम हुआ है। अनेक गीतिनाट्यों में रसांगों का पूर्ण और सम्यक्

1- अनघ, पृ0 126 2- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 43
3- त्रिपथगा, पृ0 22 4- उर्वशी, पृ0 93 अंक 4 5-

सम्मिलित नहीं हो सका। इनमें एकाध अंशों का उल्लेख मात्र किया गया है। जैसे करुणालय लीला, अनघ, कर्ण, रजतशिखर, लौहदेवता, सौवर्ण, शिल्पिनय, संशय की एक रात और अग्निलीक। इन गीतिनाट्यों में संयोग शृंगार के लिए पंचवटी प्रसंग, मत्स्यगन्धा, इन्दुमती उर्वशी, वियोग के लिए —विश्वामित्र, राधा, मेघदूत, करुण के लिए — मत्स्यगन्धा, मदन-दहन, मंजरी, वीर के लिए — स्नेह या स्वर्ग, वीभत्स के लिए — सृष्टि का आखिरी आदमी, अंधायुग, अद्भुत के लिए — विश्वामित्र, स्वप्नसत्य, उत्तरप्रियदर्शी, भयानक के लिए — अंधायुग, एककण्ठ विषपायी, रौद्र के लिए — तारा, अंधायुग, आलोकधन्विनी शान्त के लिए — अनघ, गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण, उत्तरप्रियदर्शी और वात्सल्य के लिए उर्वशी, अच्छे गीतिनाट्य हैं। वैसे रस-विवेचन की दृष्टि से तारा, विश्वामित्र मत्स्यगन्धा,कवि, सृष्टि की सांझ,अंधायुग, सूखा-सरोवर, उर्वशी और एक कण्ठ विषपायी महत्वपूर्ण गीतिनाट्य हैं।

चतुर्थ अध्याय

गीतिनाट्यों में चित्रित अन्तर्द्वन्द्व

प्रमुख गीतिनाट्यों में चित्रित अन्तर्द्वन्द्व

गीतिनाट्य के तत्वों का विवेचन करते हुए हमने अन्तर्द्वन्द्व का सैद्धान्तिक निरूपण किया है। उसी के आधार पर प्रमुख गीतिनाट्यों में अन्तर्द्वन्द्व का स्वरूप उद्घाटित किया जा रहा है —

करूणालय :—

इसनाटक के अन्तर्द्वन्द्व के अनेक स्थल हैं, हरिश्चन्द्र की नौका स्तब्ध हो जाने, एवं पुत्र- बलि देने के अवसर पर उसका मन द्विविधाग्रस्त हो जाता है। किन्तु विवश होकर वह पुत्र-बलि देने के लिए तत्पर हो जाता है —

"आह देव यदि आप समझते/कितनी ममता होती है सन्तान की।
देव जन्मदाता हूँ फिर भी अब नहीं/ देर करूँगा बलि देने में पुत्र को।"[1]

यह बातें सुन रोहित के मन में पित्राज्ञा तथा जीवन-लोल्य के प्रति तर्क-वितर्क होने लगते हैं। वह सोचता है कि पित्राज्ञा श्रेष्ठ है, धर्ममय है किन्तु निरर्थक आज्ञा पालन योग्य नहीं है —

"पिता परम गुरू होता है, आदेश भी, उसका पालन करना हितकर धर्म है।
किन्तु निरर्थक मरने की आज्ञा कहीं, कैसे पालन करने के है योग्य यों।"[2]

किन्तु दूसरी तरफ जीवन की लालसा भी कम नहीं है। वह सोचता है कि देव या दैत्य का हमारे प्राणों पर कोई अधिकार नहीं है। जब तक वह सज्ञान न था, सुख का नाम उसे अज्ञात था। प्रकृति-प्रलोभन से वह नितान्त दूर था। तभी यह क्रूर बलि-कर्म क्यों नहीं सम्पादित कर लिया गया —"सुख किसका है नाम, तत्वमत वस्तु क्या, प्रकृति प्रलोभन में न फँसे थे, पास की

वस्तु न यों आकर्षित करती थी हमें, तभी क्यों न कर लिया क्रूर बलि-कर्म को।"[3]

अब उसके सामने नूतन प्राकृतिक रहस्य उद्घाटित हो रहे हैं। अब वह परिवर्तनशील प्रकृति को देखेगा। करूणालय में अन्तर्द्वन्द्व के विस्तार के अनेक अवसर थे किन्तु लेखक ने उनका लाभ नहीं उठाया। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि —" इस नाटक में गीतिनाट्य के प्राणतत्व मानसिक संघर्ष का बड़ा दुर्बल प्रयोग है। हरिश्चन्द्र की कर्तव्य-भावना और पुत्र-प्रेम के बीच संघर्ष बड़ा शिथिल है — करीब-करीब नहीं के बराबर।"[4]

इसी तरह रोहित के मन में चलने वाले अन्तःसंघर्ष के संबंध में सुषमा सिंहल ने लिखा है —" रोहित के मन में पिता के प्रति कर्तव्य भावना और जीवन-लालसा में जो अन्तःसंघर्ष

1से 3 तक :— करूणालय, क्रमशः पृ० — 15, 17, 18

4— आधुनिक हिन्दी नाटक — डा० नगेन्द्र पृ० सं० 97

है, उसमें अवश्य कुछ शक्ति है किन्तु अजीगर्त से शुनःशेफ को खरीद कर पिता को बलि-कर्म के लिए सौंपने में इस शक्ति का ह्रास हो जाता है।"[1]

अनघ :— इस गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व-बहिर्द्वन्द्व के स्थल कम हैं। बहिर्द्वन्द्व का प्रथम स्थल है मघ एवं चोरों के बीच युद्ध का। मघ उनकी लाठी छीन कर फेंक देता है। मघ इसका नायक है। अन्तर्द्वन्द्व उसके मन में जन्म लेता है कि इस निर्दय विश्व के कोने में उसका बिछौना है। वह सोने या जागने की बात सोचता है तथा उसमें लिप्त होकर कार्य करने अथवा कार्यों से विरक्त हो जाने की बात व्यक्त करता है —

"निर्दय विश्व का कोना है, मेरा जहाँ बिछौना है।
पर मैं सो जाऊँ या जागूँ, xxxx डट जाऊँ या हटकर भागूँ।"[2]

वह पुनः विचार करता है कि इस संसार के हितार्थ इसमें प्रविष्ट होना अपने आप को फँसा देना है। बाह्य दिखावे में हँसी प्रकट होगी किन्तु सांसारिक कार्यों में लिप्त हो जाने के कारण परिणामस्वरूप रोदन ही हाथ लगता है —

"इसके हित भी इसमें धँसना, नहीं आप क्या उलटा फँसना?
है ऊपर, ऊपर का हँसना, भीतर केवल रोना है।"[3]

इस किंकर्तव्य-विमूढ़ स्थिति को पार कर वह अपने मार्ग का निर्धारण करता है —

"तो क्या अब भी और डरूँ मैं? रण में पीछे पैर धरूँ मैं।
बस, अपना कर्तव्य करूँ मैं :- हुआ करे जो होना है।"[4]

एक अन्य स्थल में मघ का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ है। मघ द्वारा ग्राम्य सुधार की योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी चतुर्दिक उसके विरोध का वातावरण बन रहा है। उसे अपने व्रत के संबंध में शंका हो रही है। वह मन को समझाता है कि इस दुनिया में कौन क्या कर रहा है? इसे न देखकर अपने कर्तव्य मार्ग पर अनवरत अग्रसर रहना चाहिए। विरोध की चिन्ता छोड़ देना चाहिए —

"मन अपने को आप सँभालो, कौन कहाँ क्या करता है तुम
इसे न देखो भालो/ कोई क्रोध-विरोध करे तो उधर दृष्टि मत डालो।"[5]

मघ को वैफल्य का भय भी नहीं है। विघ्न, भय, आपदाओं से भयभीत न होकर वह अपने मार्ग पर चलता है।

---

1. हिन्दी गीतिनाट्य — कृष्ण सिंहल, पृ० 85

2 से 5 :— अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, क्रमशः पृ०सं० 6, 6-7, 8, 100

इसकी नायिका सुकेशि है, जो मघ में श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम रखती है। यद्यपि उसका पालन-पोषण मालिन ने किया है तथापि वह मघ से विवाह करने की इच्छा रखती है। किन्तु लज्जावश कह नहीं पाती है। एक मन वहाँ जाने के लिए उत्प्रेरित करता है तो लज्जा उसके पैर पकड़ लेती है —

"मन डिगा न मुझको मैं न वहाँ जाऊँगी/चाहूँगी उनको वहीं वहीं पाऊँगी।

मैं नहीं टलूँगी, नहीं टलूँगी सुन तू/ ले बैठ गयी हूँ उठा ताव सिर धुन तू।"[1]

और वह प्रेम में त्याग की बात सोचती है। मन के अन्तर्द्वन्द्व को दबाती हुई कहती है—

"प्रकट कर चित्त न अपनी चाह/ मरम जो दे न मरम की थाह।

सिन्धु सम सह तू अन्तर्दाह/ और रह धीर गंभीर अथाह।"[2]

<u>पंचवटी-प्रसंग :—</u>

शूर्पणखा के चरित्र में द्वन्द्व का प्राबल्य है, वासनातिरेक के कारण वह नारी-स्वरूप लज्जा को भूल राम से प्रणय निवेदन करती है किन्तु निराश होने पर आहत दर्प फुत्कार कर उठता है।

<u>तारा :—</u> 'तारा' में भगवती चरण वर्मा ने मनोवैज्ञानिक ढंग से अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। यह अन्तर्द्वन्द्व उद्दाम यौवन और कर्तव्य भावना के रूप में चित्रित हुआ है। तारा नवयुवती है, जो अपनी कामवासना को तृप्त करना चाहती है किन्तु दूसरी ओर पति-प्रेम, धर्म-भावना उसके कार्य में बाधक होते हैं। वह यौवन-सुलभ मादकता से विह्वल है —

"किस अनन्त अज्ञात लक्ष्य की ओर तुम/प्रेरित करते रहते हो विचलित हृदय।"[3]

उसे आशंका है कि यह अवसर पुनः नहीं आयेगा —

"यह यौवन की मादकता तो क्षणिक है।

विकसित कुसुम पराग सदा रहता नहीं। वैभव का पल आया और चला गया।"[4]

किन्तु इस मनोभाव को वह भ्रम, पाप कह कर्तव्य की आराधना करना चाहती है —

"अनुचित है जीवन का कलुषित पृष्ठ है। भ्रम है भ्रम है निपट पाप की प्रेरणा।

है कर्तव्य प्रधान और आराधना।"[5]

किन्तु यह आराधना अन्तःप्रकृति की अथवा पति की हो, इस विषय को लेकर वह द्विधाग्रस्त है—

"आराधना, अरे किसकी आराधना/ मनोभाव की और प्रकृति के नियम की।

या स्वामी के पुण्य चरण-रज की? अरे।"[6]

---

1 एवं 2—अनघ, गुप्त, क्रमशः पृष्ठ 37, 9।

3 से 6 तक :— तारा, भगवती चरण वर्मा, क्रमशः पृ0—56, 56, 56, 56,

उसकी जो अभिलाषा है वह पति से पूरी नहीं हो पा रही है, वह कहती है —

"मुझे चाह है, रस की पावन प्रेम की। उस विस्मृति की उस अनन्त संगीत की।
जिसमें निज ममत्व को सहसा भूलकर/ हो जाऊँ मैं मग्न और कर दे मुझे।
प्रबल प्रेरणा प्रथम प्रेम की प्रवाहित। भावुकता के विस्तृत तीव्र प्रवाह में।"[1]

बृहस्पति तृष्णा के प्राबल्य को पाप कहकर उसे दमन करने का उपदेश देते हैं। जिसके कारण वह अपने मन की भावनाओं को दबाकर स्थिर चित्त होती है। इस संबंध में डा० बच्चन सिंह का कथन है —"तारा में इदम्(इड) और नैतिक मन(सुपर इगो) का ही संघर्ष है और बृहस्पति नैतिक मन की दुहाई देकर तारा के उद्वेग को दूर करना चाहते हैं।"[2]

किन्तु तारा को अपने मनोभावों को अधिक देर तक दबाना सम्भव नहीं हो पाता और चन्द्रमा को देखते ही यौवन-सुलभ रूद्ध कामनाएँ पुनः उद्वेलित होने लगती हैं —

"नहीं अरे, फिर वह विरोध की भावना। नहीं, कौन वह व्यक्ति नहीं पर पुरूष है।
पाप वृत्ति तुम विजय पा सकोगे नहीं। अरे व्यर्थ है व्यर्थ तुम्हारी प्रेरणा।"[3]

इस मार्ग में मन चलने को लालायित है किन्तु पथ उसे अज्ञात है —

"आह तुम्हारी प्रबल प्रेरणा कठिन है, इस अभागिनी का यह पथ अज्ञात है।"[4]

वह अपने को दबी हुई तृष्णा की भीषण आग मानती है। स्पष्ट है कि इस समय इदम् का प्राबल्य है। चन्द्रमा के प्रणय-निवेदन करने पर, पाप-पुण्य की व्याख्या सामने आने पर उसका इदम् कुछ दुर्बल पड़ता है, वह कहती है —

"तुम मेरे रक्षक हो, भक्षक मत बनो। हाथ जोड़ती हूँ इस निर्बल हृदय को।
दिखलाओ सन्मार्ग तुम्हारा धर्म है, पाप मार्ग की ओर न प्रेरित तुम करो।"[5]

किन्तु चन्द्रमा के तर्कों से वह मौन हो जाती है। उसके मन में नैतिक भावना और कामनाओं में द्वन्द्व होता है और वासनाभिभूत होकर चन्द्रमा के समक्ष आत्म-समर्पण कर देती है। इदम् की सुपरइगो पर विजय होती है। वह कह उठती है —

"यदि है धर्म मार्ग पर ही करूण व्यथा, तो फिर आओ चलें पतन को ही चलें।
अगर पाप मैं ही सुख है तो पाप ही, हम दोनों बन जाँय एक होकर रहें।"[6]

इस प्रकार नाटककार ने प्रथम चरण में इदम् की क्षणिक पराजय दिखायी है तथा बाद में अवरूद्ध इदम् प्रबल होकर सुपर इगो(नैतिक मन) को उच्छन्न कर देता है। यह प्रक्रिया नितान्त

---

1 तारा, वर्मा, पृ०56   2- हिन्दी नाटक- डा० बच्चन सिंह, पृ० 172

3-6:— तारा , भगवती चरण वर्मा, क्रमशः पृष्ठ संख्या — 61, 64, 67, 68

स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है। अन्तर्द्वन्द्व के संबंध में डा0 शान्ति मलिक ने लिखा है — "इसमें गीतिनाटक के प्राणतत्व मानसिक संघर्ष के आरोह-अवरोह की बड़ी सशक्त एवं विशद अभिव्यक्तिहुई है।"[1] डा0सिद्धनाथ कुमार ने इस संघर्ष को सहज प्रवृत्ति और बौद्धिक नियंत्रण का बड़ा संघर्ष कहा है।[2]

<u>मत्स्यगन्धा :—</u>

इसमें मत्स्यगन्धा के अन्तर्जीवन से संबंधित अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण हुआ है। उसके शरीर में यौवन करवटें बदल रहा है। यह यौवन उसके प्राणों में ज्वार उत्पन्न करता है। कामावेश के कारण वह अपने साथ किसी को सोता अनुभव करती है —

"मानता नहीं है मन, यौवन की क्या लहर, कहता जगत् जिसे होगी वह कैसी बला?
कौन जागता है, कौन सोता मेरे पास छिप?"[3]

उसमें मनोविकृति भी दिखायी देती है —

"जाने कैसा हो रहा है, कैसा यह हो रहा है, मेरी सब इच्छा की सीमाएँ बिखरतीहैं,
कैसे मैं अनन्त बन किन्तु हुई लक्ष्यहीन?"[4]

उसकी अतृप्त आकांक्षा अनंगरूप धारण कर सामने आती है। "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह छाया पात्र काम प्रवृत्ति का मूर्तिमान रूप है, जो मत्स्यगन्धा का मनोविकार बनकर उसके सामने आता है। इसी मनोवैकृति वश मत्स्यगन्धा में सहजबोधावस्था मनोवृत्ति के दर्शन होते है।"[5] काम उसे वरदान देना चाहता है किन्तु उसका मन सामाजिक बन्धन तोड़ नहीं पाता —

"तो अनंग ओ अनंग मैं दरिद्र केवट की बेटी हूँ उपाय-हीन।
छोड़ दो मुझे न व्यर्थ पाश करो हे अनंग।"[5]

अनंग के वरदान की अस्वीकृति के बाद वह दुखित होकर सोचती है, इस वर्णन में उसकी मानसिक उद्वेलन का अच्छा चित्रण हुआ है —

"हाय वह यौवन का वरदान क्यों न लिया, क्या न अभिमान मिला यौवन निखिलका।"[6]

यह दुर्दान्त काम जो बढ़ है उसकी ग्रन्थि सुलझ नहीं पाती है —

"यह ग्रन्थि यह ग्रंथि सुलझेगी या नहीं, उस दिन देखा था क्षणिक वह दुर्दान्तकर।
हाय, वह कण्ठ अवरोध कर देने वाली, बाहुकर सुबकर पिपासा न शान्त होगी?"[7]

यह वासना उसे तृप्त शृंखला में जकड़ लेती है। उछल-उछल कर प्राण बाँधने को तत्पर रहता है। दूसरी तरफ पराशर का हठ उससे रति दान माँगता है किन्तु मत्स्यगन्धा के हठ और बढ़

1-हिन्दी नाटकों कीशिल्प-विधि, का विकास, डा0शान्तिमलिक, पृ0455

2-हिन्दी एकांकी शिल्प विधि का विकास, पृ0367 3- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, बट्ट 59

(शेष प्रतीक अगले पृष्ठ पर)

का द्वन्द्व होता है। वह उसके दमित काम पर सामाजिक बन्धन लगाता है —

"यह तो अनय प्रभो, कैसे मान लूँ मैं यह। हीन जाति तो भी है समाज का अनन्त भय।
कैसे यह आप ही बतलाइये, बतलाइये न?"[1]

उसका वह अनविश्वास के बन्धन तोड़ने को तैयार नहीं है —

"अपयश, अपलाप, नारी के लिए हैं सृष्ट/जीवित ही नारी का मरण कर डालते।
कैसे तोड़ बन्धनों को जो अनादिकाल से हैं, आज मैं अपन्थ को चलूँ क्यों अनिर्देय पथ।"[2]

किन्तु पराशर के प्रबोध से उसका मन भी विषमलिंगी के सहवास का उत्सुक था, समर्पण कर बैठता है। बाद में वह यौन परितृप्ति की भावकता में वह उस समर्पण के संबंध में सोचती है — एक मन उसकी मधुरता का अनुभव करता है, तो दूसरा उसे रोक देने के संबंध में कहता है —

"मैं न कुछ कह सकी, रोक ही सकी न हाय, उन्हें इस कार्य से, अकार्य से विमूढ़ थी।"[3]

शान्तनु की मृत्यु के बाद उसकी वासना-पूर्ति का माध्यम समाप्त हो जाता है जिसके अभाव में वह प्यासी ही रह जाती है, जिससे उसमें निराशा और अशान्ति छा जाती है और मत्स्यगन्धा यौवन-दीप्ति से संघर्ष करती है —

"यौवन के सागर का अन्त ही नहीं है कहीं, मेरा मन तूफानों में उड़ा हुआ जा रहा।
मेरा स्वर्गहीन हुआ हाय, पुण्य, पाप बन, आशा औ उमंग हुई भार हैं अनन्त की।"[4]

अनुकूल परिस्थितियों में काम बलवान है किन्तु बन्धन युक्त, अतृप्त काम कष्टकर होता है —

"तुम मेरे अभिशाप, यौवन के अपलाप, ले लो, लो दिया जो ले लो अविलम्ब है अनीश
है असह्य भार यह दुर्वह प्रचण्डतर, दण्ड लघु कार्य का अमेय है महान है।"[5]

इस गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व का सफल एवं गम्भीर विवेचन हुआ है।

"जिन सघन भावों की अभिव्यक्ति गीतिनाट्य में अपेक्षित है, उनका निर्वाह करने में भट्ट जी को पूर्ण सफलता मिली है।"[6]

"सम्पूर्ण भावनाट्य में प्रकृत काम का दुर्दाम वेग मत्स्यगन्धा में हिलोरे ले रहा है वहाँ सामाजिकता और नैतिकता की एक भी नहीं चलती। कामोद्वेग और समाजगत नैतिक बन्धन ने मत्स्यगन्धा में मानसिक संघर्ष का तूफान्त विकास कर डाला है।"[7]

पिछले पृष्ठ के शेष प्रतीक :— 8—विश्वामित्र और दो भावनाट्य-पृ0 60

9— आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ0 311 डा0गणेश दत्त गौड़।

6— विश्वामित्र और दो भावनाट्य-पृ065 7— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ067

1—विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ072, 2— वही, पृ0 74, 3— वही, पृ080, 4—वही, पृ088

5— वही, पृ0 90

6— हिन्दी गीतिनाट्य— कृष्ण सिंह, पृ0 94

7— आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डा0गणेशदत्त गौड़, पृ0 310

विश्वामित्र :—

विश्वामित्र क्रोधी, तपस्वी, अहं प्रधान क्षत्रिय पुरुष था। उग्र अहं के कारण वह अपने को सृष्टि का नियामक कर्ता समझ बैठता है —

"मेरे तप का तीव्र तेज है बढ़ रहा, रवि-मण्डल को बेध ब्रह्म के शीर्ष तक।
फैला है अखिल जगत् परमाणु में। मिटा रहा हूँ सतत [illegible] काम्य को।
× × × × ×
बुझ सकते रवि मेरे भृकुटि निपात से, फट सकता ब्रह्माण्ड एक संकेत पा।"[1]

इतना ही नहीं, वे तो विधि, हरि हर के निर्माता होने तक का दम्भ भरते हैं —

"रच दूँ अपर विराट् ब्रह्म को मैं स्वयं/ रच दूँ हरि हर और विधाता एक भी
रच दूँ अभिनव स्वर्ग, नरक, पाताल, नभ रच दूँ मैं गन्धर्व यक्ष किन्नर सभी।"[2]

किन्तु कामावेग भला किसे नहीं कमजोर करता। मेनका एवं वसन्तागम के कारण उनका विराग, राग में परिवर्तित होने लगा —

"मेरी मूक समाधि और तप में सजग/होकर बरसी कौन राग की उफनती
नव स्वर्गिक संगीत सुधा अतिवेग से।"[3]

उनकी तपस्या का गगनचुम्बी भूधर किसी मनोरम धार में प्रवाहित होने लगा और तपस्वी विश्वामित्र मेनका को देखकर क्रोध भूल आश्चर्य में पड़ जाते हैं, जैसे उन्होंने कभी नारी देखी ही न हो, किन्तु मेनका से उपेक्षित होने पर उनका अहम् आहत सर्प जैसे फुंफकार कर बैठता है। अहम् अपने समक्ष अन्य की सत्ता स्वीकार नहीं करता है। नारी के प्रति आकर्षण को उनका मन बारम्बार स्वीकार करता है किन्तु उपेक्षा भी सह्य नहीं है —

"क्या तू मुझको नहीं जानती कुमति, मैं हूँ विश्वामित्र, प्रतापी, महामुनि।"[4]

विषम स्थिति के कटाक्ष से वे आहत होते हैं तभी उनका दूसरा उन्हें सचेष्ट करता है —

"नहीं, नहीं मैं स्वयं ब्रह्म ज्ञानी स्वयं/ होता मुझको कभी न कोई वेग है।
चलूँ चलूँ मैं फिर समाधि लूँ मग्न हो/ और विश्व को मुट्ठी में कर लूँ सतत।"[5]

किन्तु कामार्त मन बन्धन नहीं मानता। उसे प्रेम ही प्राण प्रतीत होते हैं। तपस्या निरर्थक सिद्ध हो रही है। मेनका उसे जप, तप, ध्यान और समाधि से अच्छी लगती है। मेनका के उपालम्भ देने पर वह अध्यात्म को प्रपंच और उसे सत्य कहता है। उसके न मिलने पर वह उन्मत्त होकर प्रलाप करते हुए मूर्छित हो जाता है। उसका अहं धुल जाता है। मेनका उसे जीवन के हास में अब सी मिली है। किन्तु शकुन्तला के जन्म लेते ही उसे अमृत के धोखे गरल पान का पता लगता है। उसे अपने अपलाप पर आश्चर्य होता है —

1— 5— विश्वामित्र और दो भावनाट्य—भट्ट— क्रमशः पृ0—11—12, 12, 25, 27, 29,

"हाय, सत्य से अमृत बदलकर हँस रहा/ क्या इतना अपलाप तपस्वी का हुआ।"[1]
उनका अन्तर्मन इस कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करता है —

"जीवन मेरा भूला अपने ध्येय को/चढ़ते चढ़ते भूधर के नीचे गिरा।
और स्वर्ग के द्वार खोल कर झांक कर/ लौट पड़ा आ गिरा कुण्ड में, नरक में।"[2]

मेनका उसके समक्ष अनेक प्रश्न रखती है। क्या विश्वामित्र के मन में इन्द्र विजित हरिश्चन्द्र से उच्चतम स्थिति पाने की आकांक्षा नहीं थी? क्या उसने अभी तक शक्ति, साधना का दुष्परिणाम नहीं देखा? ये प्रश्न उसके अन्तर्मन को मथित करते रहते हैं —

"अन्तर में घुटता-सा है यह धूम क्यों? फोड़ फेंककर इस शरीर से निकलता।
सब कुछ भ्रम-सा मिथ्या-सा लगता मुझे/ देख रहा हूँ सबकुछ खोया आज तो।"[3]

उन्हें यह तत्त्व-बोध होने लगा कि इस विश्व में कुछ भी स्थायी नहीं है। अहम् का विश्व में मिल जाना ही सार तत्व है —

"कुछ भी स्थायी नहीं विश्व में एक मैं/ का मिल जाना ही महान् में सार है।
क्या न आज फिर अहं खोजने को चलूं।"[4]

शिल्पी :—

शिल्पी में एक मूर्तिकार के अन्तः संघर्ष को स्थान दिया गया है। कलाकार ने परिश्रम से शिलाखण्ड में भंगुर जीवन को बन्दी बना लिया है, तभी उसका अन्तरमन उसके उल्लास को व्यर्थ करते हुए उसे प्रमादी न बनने का उपदेश देता है क्योंकि अभी तो कलाकार ने कला क्षेत्र में पदार्पण कर उसकी छाया मात्र ही पकड़ी है जबकि उसे स्वर्ग सोपान पार करना है—

"किन्तु नहीं, यह मात्र भावना का प्रमाद है। आत्म मुग्धता है, भावुक मन बहक रहा है।
कलाकार के अहंकार तू बाधक मत बन/तेरा यह शिशुओं का सा उल्लास व्यर्थ है।
हाय अभी तो तू छाया ही पकड़ सका है/अभी स्वर्ग सोपान पार करना है तुझको।"[5]

कलाकार संकल्प करता है कि वह युगात्मा को पाषाण पर प्रतिष्ठित करेगा —

"युग की आत्मा को युग जीवन के प्रतीक को/मुझे प्रतिष्ठित करना होगा मन्मथ मनकी
युग निर्मम पाषाण शिला पर कला स्पर्श से। तभी सफल होगा मेरा यह स्वप्नशिल्प का।[6]

अपने चिन्तन में मग्न कलाकार भावानुरूप मूर्ति न बन पाने के कारण उसे तोड़ डालता है। यहीं उसका अन्तः संघर्ष प्रबल हो जाता है, उसकी शिष्या कहती है —

"बाबा, इधर न जाने क्या हो गया आपको, आप सदा चिन्तित से खोए से रहते हैं
बार बार इन अनगढ़ पाषाणों को गढ़कर, तोड़फोड़ देते फिर उनको निर्ममता से।"[7]

1-4 विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य, भट्ट—क्रमशः पृ0 44, 47, 52-53, 53,
5, 6, 7:—शिल्पी, पंत, क्रमशः पृ0— 15, 16, 34

बात यह है कि कलाकार मानवात्मा के चिरन्तन सत्य को मूर्तित करना चाहता है किन्तु नित्य प्रति आदर्श बदलते हैं और कलाकार मूर्ति को तोड़कर अपना अन्तः संघर्ष व्यक्त करता है। वह कहता है —

"यही प्रश्न है आज कला के सम्मुख निश्चय/जो दुःसाध्य प्रतीत हो रहा कलाकार को।
बहिरंतर की जटिल विषमताओं में उसको/ नव समत्व भरना होगा, सौन्दर्य सुतुलित।"[1]

शिल्पी नवीन सभ्यता पर आक्रोश व्यक्त करता है, जो कुछ, विवेकों पर आधृत है। वह एक तरफ युगानुरूप मूर्ति का निर्माण करना चाहता है, तो दूसरी तरफ उसका दूसरा मन भावुक है, आदर्शप्रेमी है। मायवी है। ऐसा समन्वय करना उसकी शक्ति से परे है इसीलिए वह सोचता है —

"किन्तु हाय, इ जीवन की निर्मम वास्तवता/ बाँध नहीं पा रही मनुज आत्मा का वैभव
मिट्टी की जड़ता विरोध करती प्रति पग पर/नव प्रकाश के सौम्य स्पर्शों के प्रति निष्क्रिय।"[2]

और अन्त में कलाकार को अपने संकल्प को पूरा करने में सफलता मिलती है। पंत जी ने शिल्पी के अन्तःसंघर्षों को उपस्थित कर आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया है।

अप्सरा :—

आदर्श और यथार्थ के अन्तर्द्वन्द्व को पंत ने अप्सरा में कलाकार के माध्यम से व्यक्त किया है। उसके अन्तर्मन में मंद-मधुर संगीत लहरियाँ उत्पन्न होती हैं और कलाकार सजग होकर सोचने लगता है कि यह कैसा आकर्षण है?—

"यह कैसी संगीत वृष्टि हो रही गगन से/या मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है?
कैसा आकर्षण है यह, कैसा सम्मोहन।"[3]

उसका आकुल चंचल मन जीवन-पुलिन से टकराना चाहता है। उसे ऐसा लगता है कि कोई अप्सरा उसके भीतर समा गयी है। एक तरफ मन में उद्दाम आकर्षण है और दूसरी तरफ उसका विवेक है, दोनों के संघर्ष से उसके प्राणों में घोर अराजकता फैल गयी है —

"एक लहर के बाहुपाश से छूट दूसरी/लहरी के चंचल अंचल में बँध जाता है।
घोर अराजकता है प्राणों के प्रदेश में।"[4]

इस संघर्ष के समक्ष उसका मनोबल टूटने लगता है। उसे अध्ययन व्यर्थ प्रतीत होता है। आदर्श निष्प्रभ जान पड़ते हैं —

"हाय कहाँ खो गया समस्त मनोबल मेरे/आज निखिल अध्ययन मनन चिन्तन जीवनमय,

---

शिल्पी- 1 से 4 तक — क्रमशः पृ0 34, 37, 94, 95

व्यर्थ हो गया ज्योतिरंगणों से जगमग कर/निष्प्रभ पड़ते जाते हैं आकर्षण सुनहले।

तारकों से फीके पड़कर बुझते जाते/दीप ज्ञान के भेदों के घन अंधकार में।"[1]

पता नहीं किस अतल, अज्ञात, गुफाओं में यह तामसिक वृत्ति उठ कर उसके जीवन मूल्यों को नियन्त्रित कर रही है। बारम्बार प्रबोध देने पर भी उसका मन चंचल हो उठता है। यह वास्तविक है या भ्रम, कलाकार को अज्ञात है —

"चंचल हो उठता फिर फिर मन। यह क्या केवल? प्राणों का उद्वेलन है? या मन का भ्रम है? जीवन के ठूँठे पंजर में नव स्पंदन भर/ एक नई चेतना लपेट रही मानस को।[2]

दूसरी तरफ उसके अन्तर्मन से युगीन चेतन प्रतिध्वनित होती है —

("कौन पुकार रहा मुझको अज्ञात देश से/या यह मेरे ही अंतरतम की पुकार है।"[3]

उसके अन्तःशिल्पी को युग-चेतना का गीत, पुरुष-ध्वनियाँ उद्दीप्त करती हैं। आज के मध्यवर्गीय शिल्पी को सौन्दर्य चेतन का प्रतिनिधि बनना पड़ेगा :—

"युग आवेशों के कटु कोलाहल में उसको/नव जीवन की स्वर संगति करनी है व्यापक।[4]

इस कार्य के लिए उसे अपनी चेतना का उदात्ती करना पड़ेगा —

"एक नया चैतन्य, नया अध्यात्म धरा पर/जन्म ले रहा मानव अन्तर के शतदल में, अंतरैक्य के रश्मि सेतु में बाँध अलौकिक/भौतिकता को, साम्यवाद को आत्मसात् कर महागमन की, दिव्य अवतरण की मर्मर ध्वनि/गूँज रही अंतरतम के गोपन गह्वरों में।"[5]

और कलाकार ऐसा करने में समर्थ होता है।—

<u>राधा :—</u>

राधा के अन्तर्द्वन्द्व में मूल कारण कृष्ण प्रेम है। एक ओर परिवार प्रीति, पिता, है तो दूसरे किनारे पर कृष्ण का आकर्षण। कृष्ण प्रेम में वह इतनी विवश हो गयी है कि जल लेने हेतु कूप के स्थान पर यमुना पहुँच जाती है —

"क्या करूँ कैसे करूँ सब कुछ हुआ विपरीत जीवन
कूप पर जाती कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं
पैर ले जाते मुझे अनजान में यमुना नदी तट।"[6]

कृष्ण की छवि माधुरी पर राधा ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। वह लज्जा-मर्यादा, कुल बन्धन छोड़ कृष्ण से मिलने के लिए लालायित रहती है। मन की चाह बारम्बार उठती है —

---

1 से 5 तक — शिल्पी, पंत, क्रमशः पृ० 96, 96, 98, 101, 103

6— विश्वामित्र, और दो भावनाट्य, भट्ट— पृ० 103

"किन्तु रह रह मथन करती क्यों हृदय को यह हमारे?
क्यों हमारे प्राण में मानस विषय उठते हरे सुन।"[1]

उसका प्रेम सात्विक है किन्तु मन अभिलाषाओं का भाण्डार है। पृति द्वारा उपेक्षिता होने पर भी वह कृष्ण प्रेम में विमुख नहीं होती —

"नहीं मैं तो चाहती ही नहीं मैं क्या चाहती हूँ
कौन जाने जानती भी नहीं मन की प्रेरणाएँ।
× × × ×
किन्तु जाने और कुछ क्या कोई चुभता सा
हृदय को अंगार-सा तिल तिल जलाता बुझाता रह।"[2]

वह हृदय में अंगार भर कर सांसों में पीड़ा को छुपाकर कृष्ण साधना से तल्लीन रहती है। उसके इस प्रेम से कृष्ण भी पराजित होते हैं। इस प्रकार उसके संघर्ष में उदात्तता है, सात्विकता है और गौरव है।

<u>उन्मुक्त :—</u>

उन्मुक्त में अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा बहिर्द्वन्द्व को प्रमुखता दी गयी है। गुणधर को यह शंका है कि हम कुसुम द्वीप वासी युद्ध में पराजित होंगे अतः युद्ध में सम्मिलित नहीं होना चाहिए। वह पुष्पदन्त से कहता है —

"फिर भी न जाने किस अन्तर के कोने में/ कोई एक संशय हटाये नहीं हटता है।
ऐसे कुछ होगा नहीं, व्यर्थ यह सब है।"[3]

गीतिनाट्यकार ने अनेक स्थलों पर बहिर्द्वन्द्व का उल्लेख किया है —

"यानों की भी घहर गरज तोपों की दू पर,
धुआं विकट वह धुंआ प्रतिक्षण होकर गाढ़ा।"[4]

<u>द्रौपदी :—</u>

इसका जन्म ही प्रतिहिंसा स्वरूप हुआ है। अतः उसके हृदय में प्रतिहिंसा कूट-कूट कर भरी है। वह कहती है —

"मेरे मानस में अभिलाषा यह प्रबल कौन? मेरे नयनों में किस छवि की यह ज्वाला है।"[5]

उसे अपनी कुण्ठा का बारम्बार स्मरण आता है —

1- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, उदयशंकर भट्ट—पृ0 112 2- वही, पृ0 132-133

3- उन्मुक्त, सियारामशरण गुप्त, पृ0 27,

4- वही, पृ0 67 5- त्रिपथगा, भगवतीचरण वर्मा, 72

"सब कहते रति जैसी सुन्दरी सुकोमल मैं। मैं कहती शक्ति की अतृप्त तीव्र तृष्णा हूँ।"[1]
उसके आहत अहंकार को एक और ठेस लगती है जबकि उसका ब्याह भिखारी से होता है -

"आहत है मेरा मान और मन आहत/आहत मेरा नारीत्व और कोमलता।"[2]

किन्तु वह विवशता के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है। यह अहम् राजसूय यज्ञ के समय उत्तेजित हो जाता है और दुर्योधन पर व्यंग्य कसती है, जिससे महाभारत युद्ध होता है। अन्त में उसे अपने कृत्यों पर ग्लानि होती है —

"मेरे प्राणों में है रिक्तता असीम और/ मेरे नयनों में घिरता आता अन्धकार।"[3]

और वह हिम समाधि ले लेती है।

कर्ण :—

अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से कर्ण सशक्त रचना नहीं है। कर्ण अर्जुन युद्ध का वर्णन कर गीतिनाट्यकार ने बाह्यद्वन्द्व का वर्णन अवश्य किया है। शल्य, कर्ण से प्रतिहिंसक बनने के सम्बन्ध में पूछता है। वह द्रौपदी स्वयम्वर में अपमान की घटना सुनाकर कहता है कि उसके अपमान ने मेरे कोमल अंश को समाप्त कर दिया है —

"हे शल्य, चुकाना है मुझको ऋण उसका/अर्जुन के ताजे लोहू की अंजलि से,
उस राज्यश्री की हिंसा की देवी का/अभिषेक मुझे करना है अब नरबलि से।"[4]

वह जारज-पुत्र है इसका उसे खेद है —

"यह सूत पुत्र है नहीं शुद्ध तक-जारज/जारज समाज का कुष्ठ और मान्यता
का एक घृणित अभिशाप, जिसे वर्जित है/अपनी माता की या कि पिता की ममता।"[5]

स्नेह या स्वर्ग :—

इसमें अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व दोनों का चित्रण हुआ है। सर्वप्रथम बहिर्द्वन्द्व का चित्रण किया जा रहा है— स्नेहलता के रूपाकर्षण में आबद्ध पृथ्वी निवासी अजेय एवं देवेन्द्र पुत्र जयन्त में प्रतिस्पर्धा होती है जिसके परिणाम स्वरूप द्वन्द्व युद्ध में सन्नद्ध होते हैं। प्रारम्भ में दोनों घूरकर शक्ति का अनुमान करते हैं। चतुर्दिक जयध्वनि, नगाड़ों, घण्टों की ध्वनि होती है इसी समय दोनों प्रतिस्पर्धी कोलाहल से उत्तेजित होकर तलवार से वार करते हैं—

"चमक चमक असि चकाचौंधियाते हैं। करते हैं वार दोनों उछल उछल के,
पैंतरे पलट उन्हें दोनों ही बचाते हैं।"[6]

1-से 5 तक :- त्रिपथगा, वर्मा, क्रमशः पृ0 72, 82, 110, 19, 21
6- स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्ददास, पृ0 81-82

जब अजेय के पक्ष में पासा पड़ता था तो नर समुदाय साधुवाद करता और जयन्त के प्रबल होने पर सुर समुदाय धन्य-धन्य कर उठता था। रथारूढ़ होकर धनुर्बाण से युद्ध करते थे किन्तु रथ टूट जाने पर असियुद्ध, गजयुद्ध हुआ। युद्ध कुछ इसप्रकार का हुआ कि दोनों वीर निहत्थे हो गए, मल्लयुद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं बचा। दोनों दांत पीसकर भिड़ गए —

"दांत पीस भिड़ गये जानु और बाँहों से/होते हैं समान सुर नर घात में।"[2]

इस बाह्यद्वन्द्व को सुरराज आकर रोक देते हैं।

इस बाह्यद्वन्द्व ने अन्तःसंघर्ष को सजीव बनाया है। स्नेहलता के सामने विकट द्वन्द्व उपस्थित हुआ। उसके एक तरफ पृथ्वी निवासी अजेय है तो दूसरी तरफ सुरेन्द्र पुत्र जयन्त। दोनों नवयुवकों उस पर आकृष्ट हैं— वह किसे चुने —

"हाँ हाँ कठिनाई नहीं अल्प मेरे सामने/दिव्य है जयन्त और अद्भुत अजेय है।

मेरे लिए चुनना सरल नहीं, चपले।"[3]

अजय उसे बाल्यकाल से प्रेम करता चला आ रहा है और स्नेहलता भी उससे प्रेम करती है। जयन्त उसके समक्ष स्वर्गिक सुख सौविध्य की बात कहता है। उसे अजीब अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त देख उसकी सखी चपला कहती है —

"देवता से दिव्य नहीं कोई कहीं विश्व में/स्वाभाविक देखना जयन्त में है दिव्यता।

देखती सदा से तुम आयी हो अजेय को/ विस्मय, वह आज तुम्हें अद्भुत भासता।"[4]

अन्त में स्नेहलता स्वर्गिक सुखों को छोड़कर अजेय का चयन करती है। इस प्रकार इसमें अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्यद्वन्द्व का अच्छा समन्वय हुआ है।

<u>रजत शिखर :—</u>

'रजत शिखर' मानव की अन्तश्चेतना का प्रतीक है जिसमें जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संघर्षों का द्वन्द्व युवक के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है और युवक के मन में नाम हीन आशा आकांक्षाएं अतन्द्रित इन्द्रजाल बुनती है और वह मुग्ध होकर पृथ्वी से ऊपर उस चेतना प्रकाश को प्राप्त करना चाहता है —

"सोच रहा मैं कैसे प्राप्त करूँ बहिर्मोन्मत्त/मानस की उस निभृत रूपहली ऊँचाई को।"[5]

किन्तु वह मायावी छलनाओं में मोहित हो जाता है। इन्हीं दो द्वन्द्वों में युवक का मन दोलायमान रहता है —

1से 3 :— स्नेह या स्वर्ग— पृ0क्रमशः 84, 12, 12

4— रजतशिखर :— पृ0 7

5— वही, पृ0 8

"किन्तु हाय, मैं सौरभ मृगतृष्णा गन्ध अंध हो,

भटक रहा प्राणों की इस मोहक घाटी में।"[1]

वह अपने अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हुए कहता है —

"कैसे मैं जीवन के रंजित कर्दम से उठ,

भाव तृषित मृग-मरीचिका से मोह मुक्त हो

आरोहण कर रजत चेतना सोपानों पर

पहुँचूँ अन्तरमन की उस प्रज्वलित भूमि तक।"[2]

अपनी प्रेयसी से उपेक्षा मिलने पर वह कुण्ठित हो जाता है। उसका मानसिक विश्लेषण करता हुआ सुव्रत कहता है —

"उच्च ध्येय से पीड़ित है इनकी सुप्तात्मा/चेतात्मा पर विद्रूप प्रभाव रहा छुटपन से

अहमात्मा नित हीन भाव से रही प्रतारित/दमित वासना मार्ग खोजती तुष्टिपूर्ति का

जिससे संघर्षण रहता नित चेतन मन में।"[3]

वह युवक जागतिक दुख द्वन्द्वों को देखकर द्रवित होता है। मनुष्यों की दैन्यावस्था देखकर वह करुणार्द्र हो उन्हें उच्च धरातल पर ले जाने हेतु कटिबद्ध होता है।

कवि :—

गीतिनाट्यकार सिद्धनाथ कुमार ने कवि के आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति दी है। कवि स्वप्नजीवी है। उसके समक्ष कल्पना अप्सरा जैसा मोहक रूप धारण कर आती है जिससे आकृष्ट होकर कवि अपनी सुधि-बुधि भुला देता है। जागतिक दुख हाहाकार उसे सुनायी नहीं पड़ते। वास्तविक संघर्ष तो जीवन के आने पर होता है। वह कवि को स्मरण कराता है कि भावुकता में पड़कर वह अपनी स्थिति भूल गया —

"तुम जगत के सुख-दुख के गायक। भूल गए हो

सब कुछ हाहाकार जगत के?"[4]

कवि का मन विकल होता है। एक तरफ कल्पना उसे गगन-विहारी बनाना चाहती है तो दूसरी तरफ जीवन उसके आधार की ओर संकेत करता है। वह कवि का उद्देश्य स्पष्ट करता है —

"कवि कोलाहल-रत पंछी/जगत के क्रन्दन-हाहाकार/न छू पाएँ उसको।

कवि की यह बड़ी पराजय है/ यदि गा न सके/ वह जग के संग

यदि रो न सके/ जग के स्वर में।"[5]

1 से 3 तक — रजत शिखर, पृष्ठसंख्या — 8, 10, 20

4 से 4 और 5 :— सृष्टि की सांझ और अन्य काव्यनाटक-सिद्धनाथकुमार, पृष्ठसंख्या 216, 217

कवि इसी झूले में दोलायमान है। कभी तो उसे कल्पना के मादक स्वर्ग अच्छे लगते हैं तो कभी जीवन द्वारा प्रस्तुत वास्तविकता स्वीकार करता है। जीवन कल्पना की मादक सुन्दरता को क्षणिक बताता है जिससे कवि उससे रूष्ट हो जाता है। जीवन उसे जग के गायक की महत्ता स्मरण कराता है —

"जग देख रहा/ आतुर नयनों से आज/तुम्हारीओर तृषित।
तुम भूल न जाना अधरों की मादकता में रानी के ही।"[1]

कल्पना उसके मित्र पर व्यंग्य कसती है कि यह साथी कवि को कण्टक वन में भटकाना चाहता है, उसके उल्लास हास की नौका को क्रन्दन के सागर में निमग्न कराना चाहता है। कवि प्रथम चरण में कल्पना का पल्ला पकड़ता है। कवि का मन अशान्त हो जाता है —

"पर मेरा मन/क्यों अब तक शान्त न हो पाया/जैसा बन आया था
जीवन मेरे ही लिए/उठा जो गया/ लहर उत्पात की मेरे उर में
जो अब तक भी शान्त न हो पाई।"[2]

कवि अपने जीवन का लक्ष्य खोज रहा है। व्योमबाला के अंचल में मुँह छुपाकर जीवनयापन करना क्या सुखद पूर्ण होगा? तभी उसे संसार की हृदय विदारक ध्वनि सुनायी पड़ती है, जिससे उसका अन्तर्द्वन्द्व नयी दिशा ग्रहण करता है। उसे आश्चर्य है कि अब तक उसने करुणक्रन्दन क्यों नहीं सुना —

"यह रुदन और चीत्कार आह/मेरा अन्तर फट रहा अभी।
यह क्रन्दन का सागर उमड़ रहा/ जगजीवन के तट से टकरा/पर मैं उसकी
चंचल लहरों की धड़कन को/ सुन क्यों न अभी तक पाया?"[3]

वह मानवता को मुक्त कराने के लिए तत्पर होता है। एक मन कल्पना रानी को छोड़ने की बात कहता है —

मैं कवि हूँ/उसको मुझे मुक्त करना होगा। मैं चलूँ मिलूँ,
अपने साथी प्रिय जीवन से, xxxx तब ठुकरा दूँ/रानी को क्या?"[4]

वह रानी कवि के जीवन में मधुरिमा भरने आयी थी। दूसरी ओर वह अपना पथ भी नहीं भूलना चाहता। इन दोनों प्रवृत्ति-निवृत्ति का अच्छा संघर्ष यहाँ दिखाया गया है —

"मेरे सूनापन को भरने? कुछ सरस मधुरिमा लाई है/ मेरे सूखे से कानन में
पर रही मैं/ क्या भूल चलूँ। अपने पथ को? यह भी कैसे?
जग की आतुर आँखें/ हैं मुझको देख रही।[5]

---

1 से 5 तक — सृष्टि और कवि और अन्य काव्य नाटक — क्रमशः पृ0 221, 223, 225, 234, 234

और वह कल्पना के साथ उड़ने में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। अंत में कल्पना को भी उसके रंग में रंगना पड़ता है।

<u>सृष्टि की साँझ :—</u>

गीतिनाट्यकार ने अजय, वेदा, सेनानायक और महामात्य सभी के चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व का समावेश किया है। अजय जो एक देश का नेता था, जनता जिसकी वाणी पर अटल विश्वास करती थी, स्वार्थ पूर्त्यर्थ तृतीय विश्वयुद्ध में लिप्त हो गया। उसका अहं यह नहीं स्वीकार कर सका कि विपक्षी उसकी सत्ता को अस्वीकृत कर दें। इसी अहम् भावना के कारण उसने विपक्षी के सत्य विचारों को मिथ्या माना है —

"था मेरा अहम् सदा/मुझसे कहता रहता/केवल मैं ही हूँ सत्य।"[1]

यह इतो इस सीमा तक पहुँच गया कि —

"मैं यही चाहता था/ सब मेरी राह चलें/ मेरे विचार ही अपनायें
मेरे पद-चिन्हों पर आयें।"[2]

अतः जिसने इन विचारों को नहीं अपनाया, उसके प्रति

"जग गई घृणा की आग/ जगा विद्वेष/जगी ईर्ष्या तीखी।"[3]

परिणामस्वरूप ईर्ष्यान्ध होकर अहम् सर्वोपरि हो उठा, विवेक नष्ट हो गया —

"मैं अन्धा था|मेरे विवेक के नयन मुँद गए थे उस क्षण।"[4]

किन्तु अणु-युद्ध के कारण व्यापक नरसंहार, संस्कृति का क्षय, देखा तो उसके अहम् की तुष्टि हुई और उस पर विराग हावी हो गया। उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ, उसका अन्तर व्याकुल होने लगा —

"मेरा अन्तर हो रहा विकल/वसुधा का यह विध्वंस देख।
मैं देख नहीं सकता पल भर/ क्षत-विक्षत, आहत, हतप्राय/इस धरती को।"[5]

गतवैभव की स्मृतियाँ उसके मन में उथलपुथल मचाने लगी है। पेरिस, लन्दन, याकोहामा, टोकियो मास्को, हिमालय, आल्प्स, गंगा, राइन, मिसीसीपी की दुर्दशा देखकर उसका अन्तर हाहाकार करने लगा —

"मेरा अन्तरमी इन्हें देखकर/ चीत्कार कर उठता है।"[6]

इस प्रकार अजय का अन्तर्द्वन्द्व जो अहम् पर ठेस लगने के कारण उद्बुद्ध हुआ था, उसकी

---

1 से 6 तक सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक — सिद्धनाथ कुमार, क्रमशः पृ० संख्याएँ — 40, 40, 40-41, 39, 38, 39

उसकी पूर्ति होने पर वह मानवतावादी बन गया था। शेक्सपियर, गेटे, कालिदास, तुलसी सभी का साहित्य विलुप्तहो गया। अजय इन सबके बावजूद स्वप्नजीवी, कल्पक और आदर्शवादी हो बैठा। वह मनु होकर नयी सृष्टि की रचना में व्यस्त होना चाहता है —

"मैं देख रहा हूँ महामात्य। मैं देख रहा हूँ नई सृष्टि।"[1]

किन्तु उसका अन्तर चीत्कार करता है कि महासमर कीलपटों में जो भस्म हो गए हैं, क्या वे सब नयी सृष्टि में आ जायेंगे? और रेखा के समक्ष उसका अहम् गल जाता है। पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर वह शुद्ध कुन्दन होकर निकलता है।

सेनानायक जिसने इस युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, शान्ति, आदर्श, मानव के मनोमालिन्य को समाप्त करने के लिए युद्ध की सत्ता अनिवार्य मानता है। महामात्य एवं अजय जब नवीन सृष्टि की कल्पना उपस्थित करते हैं तो उसके मन का अहम् सृष्टि-निर्माता बनने को लालायित होता है —

"मैं सेनानायक/ महायुद्ध का जयी, वीर/ मैं नई सृष्टिका निर्माता।निर्माता।"[2]

किन्तु नैराश्य उसे विरत करना चाहता है। दिशाएँ नीरव, सब कामनाएँ मिथ्या, मृत्यु ही अन्तिम सत्य उसे प्रतीत होती है। तभी सृष्टि-निर्माता बनने की कुण्ठा स्वप्न मार्ग खोजकर उसकी अपनी कामना की पूर्ति करती है। कल्पना-कामना नारि, उसे सुमन-लोक में पहुँचाकर विलीन हो जाती है और सेनानायक स्त्री की कोमल-अंचल का अभिलाषी हो उठता है —

"व्योम टूट गिरा मैं उत्कण्ठा। मैं सचमुच कितना क्लान्त।
मेरे मन में कामना जागती है कैसी। मेरा मन माँग रहा है कुछ।"[3]

दूसरा मन उसे रोक रहा है —

"हो सावधान सेनानायक/ हैं दुर्बलताएँ जाग रहीं तेरे भीतर।"[3]

वह कहता है कि इस समग्र संसार में एक ही रेखा, नारी है, जिसने अजय से प्रणय-संबंध कर लिया है। यह सुनकर सेनानायक का अभिमानी अहम् फुत्कार कर उठता है —

"तो इससे क्या? नारी है जग में एक शेष। उसको है क्या अधिकार
करे वह एक व्यक्ति से प्रणय? दान दे एक पुरुष को,
और दूसरे तृषित् पिपासित रहें? अन्याय नहीं सह सकता मैं।"[4]

दूसरा मनजो सुपरइगो का प्रतिनिधित्व करता है उसे उद्वेलित बनने से रोकता है। वह मानव अन्तर की बाधा को समझाने का प्रयत्न करता है। वह समझाता है कि चार व्यक्तियों का समाज

---

1 से 4 तक :- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य-नाटक — सिद्धनाथ कुमार, क्रमशः पृष्ठ सं० 46, 64, 68, 68 69

शेष क्या है। अतः नये समाज बनाने के लिए सामाजिक बन्धनों को मानना ही होगा। किन्तु सेनानायक इस बन्धन को अस्वीकार करता है —

"स्वीकार न कर सकता मैं/ ऐसे नियम कभी/जिनकी कारा में घुट घुट कर
मेरी इच्छाएँ मिट जाएँ/ मेरी सब अभिलाषाएँ/आहत हो जाएँ।"[1]

मन उसे समाज-कल्याण के लिए त्याग की माँग करता है —

"कल्याण व्यक्ति से/ माँग रहा है त्याग, दान।
क्या विश्व-हेतु/अपनी इच्छाओं का/ तू दमन न कर सकता?"[2]

सेनानायक बलिदानी बनने को तैयार नहीं होता और महामात्य के समझाने पर भी वह अजय पर रिवाल्वर से आघात कर बैठता है। यह आघात उसके अन्तर्द्वन्द्व का कितना प्रतिनिधित्व करता है, दर्शनीय है।

इच्छा(ईड) प्रबल भी क्यों न हो? वह किसी का एकाधिकार स्वीकार नहीं कर सकता। अजय के न रहने पर नयी सृष्टि के भाग्य-विधाता बनने का गौरव भी तो उसे मिलेगा। अन्त में सेनानायक को महामात्य से भी युद्ध करना पड़ता है और दोनों समाप्त हो जाते हैं।

ऐसा ही अन्तर्द्वन्द्व महामात्य के मन का भी है। अणु-युद्ध के बाद नयी सृष्टि का बीज मंत्र उसने ही अजय के मन में फूँका था। अजय जैसे ही इस महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न होता है, महामात्य उपेक्षित हो जाता है। अपनी उपेक्षा कोई प्राणी सहन नहीं कर सकता। उसे लगा कि वह निष्क्रिय हो गया है —

"जीवन में कोई कर्म नहीं। मैं महामात्य/मेरा जीवन था कर्म-व्यस्त
मेरा हर क्षण था मूल्यवान। पर आज, आह मैं क्षुद्र जीव
सब ओर घिरा है अन्धकार/ कोई प्रकाश की किरण नहीं,
मैं जिसे देखकर जी पाऊँ।"[3]

उसके सामने जग की समस्या समाप्त हो गयी। सृष्टि निर्माण का आदर्श मिथ्या सिद्ध हुआ —

"मैं समझ रहा था जिसे स्वर्ग/ वह अर्थहीन मिट्टी निकला।
मैं कहता था आदर्श जिन्हें/ वे उड़ते हैं बन धूल आज।
आदर्शों के मेरे सब सपने टूट रहे।"[4]

वह अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है।

---

1 से 4 तक — सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य-नाटक — सिद्धनाथ कुमार, क्रमशः पृ0 70, 70-71, 72, 73

"मैं देख रहा इस नयी सृष्टि में/ मेरा कोई देय नहीं।

मैं इसके हित का अर्थहीन वाणी हूँ/ जो जाऊँगा/ इस महाशून्य में पल में ही।"[1]

यद्यपि महामात्य इस विचारधारा का है कि सृष्टि कल्याणहेतु इच्छाओं का दमन होना चाहिए किन्तु दूसरा मन दूसरे को स्वाधिकार सम्पन्न देखकर ईर्ष्यालु हो बैठता है। वह सेनानायक से कहता है —

"मैं भी मनुष्य/ मेरा अन्तर भी मचल रहा। मेरी रग-रग में भी है

तद् उबलता अब। मैं सहन न कर सकता तेरा स्वाधिकार।"[2]

परिणाम स्वरूप दोनों द्वन्द्व युद्ध करते हैं और आहत होते हैं।

देवा 'सृष्टि की साँझ' की नायिका है जो शान्ति की पुजारिनी है, किन्तु भीषण नर संहार को देख उसका हृदय विक्षिप्त हो जाता है और उसका मन आहत होकर लौकिक धरातल से असम्पृक्त हो जाता है —

"मैं स्वप्न देखती हूँ क्या यह/मैं कौन कहाँ पर आयी हूँ।"[3]

उसके मन में यह संघर्ष चलने लगा कि जब सारी धरती राख हो गयी है तो वह क्यों जीवित रहे- " मैं ही क्यों शेष रहूँ/ इस निर्जन पृथ्वी पर?

मैं भी क्यों जल कर/भस्म न हो जाऊँ पल में।"[4]

लौह-देवता :—

इसमें वैचारिक संघर्ष को महत्व दिया गया है। स्त्री-पुरुष की प्रार्थना से लौह-देवता प्रसन्न होकर मानवता के हित कुछ स्वर्ण मुद्राएँ लेकर ऐसी मशीन देता है जिससे मानव विकास कर सके किन्तु उस मशीन पर पुरोहित(पूँजीपति) का स्वाधिकार हो जाता है और वह मानव के श्रम का मूल्य देकर उत्पादन के उपभोग का अधिकारी बनता है। जनसमूह और दरिद्र होता जाता है, तभी पुरोहित स्वचालित मशीन प्राप्त करता है जिसमें मानव श्रम की आवश्यकता ही नहीं है। जनसमूह क्रोधित होकर मशीन को ही नष्ट करने का विचार करते है। बाद में उसके मूल कारणों को नष्ट करते हैं। इस प्रकार इसमें दिखाया गया है कि प्रथम स्थिति में मानव का श्रम से उत्पादित वस्तु पर अधिकार था किन्तु पूँजीपति युग में वह उपभोक्ता नहीं रहा। यहीं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है और बाद में पूँजीपति सभ्यता का नाश कर संघर्ष की दिशा दी गयी है।

संघर्ष :—

इसमें एक शिल्पकार के आन्तरिक संघर्ष को शब्दायित किया गया है। वह कला की साधना करे या पारिवारिक सुख सौविध्य के साधन जुटाये। यही आन्तरिक संघर्ष का मूल

1से 4 तक सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक -क्रमशः पृ074, 80, 52, 53

केन्द्र है। शिल्पी का मन उसे रक्त मांस का पुतला कहकर उसकी मानवीय भावनाओं को उत्तेजित करना चाहता है —

"मैं कहने आया हूँ पंकज/ तुम कलाकार ही नहीं/ नहीं शिल्पी केवल
तुम रक्त-मांस के पुतले भी मानव भी हो।"[1]

बात यह है कि स्वप्न जीवी, कल्पक मन भौतिक धरातल, भौतिक कामनाओं की उपेक्षा कर आदर्श में जीने का अभ्यासी हो गया है। इसीलिए कलाकार का मन उसे कामना मुक्त देखना चाहता है। कलाकार का स्वप्नजीवी मन यथार्थ के धरातल से भयभीत रहता है, अतः पलायनवादी होकर वह व्यस्त रहने का नाटक करता है —

"अवकाश नहीं मुझको इतना/ उलझूँ तुमसे।xxxxx
तुमने अपनी बातों में/ उलझा कर मुझको /साधना भंग कर दी मेरी।"[2]

अन्तः मन उसे सत्य दिखाना चाहता है कि भावनाओं में जीवन का सत्य नहीं मिलता। वह कलाकार को धरती पर खींच लाने की बात कहता है। कलाकार कहता है —

"मैं कलाकार, साधना-निरत/ कर रहा अभी मैं नवसृष्टि।"[3]

इस सृष्टि को मन मिथ्या कहकर उसे भ्रम युक्त कहता है तथा उसे जीवन के कठिन सत्य से परिचित कराना चाहता है किन्तु कलाकार का अहम् इसके लिए तैयार नहीं है —

"मैं कलाकार/जीवन के सत्यों का द्रष्टा/ मैं देख रहा हूँ उन्हें सतत।"[4]

मन उसे जगत सुखी करने की अपेक्षा परिवार सुखी करनेका उपदेश देता है। उसका पुत्र मोहन बीमार है। वह अच्छी दवा नहीं लापाता। पत्नी देवकी के सपने पूरे नहीं कर पा रहा है। मन इनकी याद दिलाता है तो कलाकार कहता है —

"मुझको अशान्त मत करोतनिक। उनकी स्मृतियों को सोने दोको मेरे मन।"[5]

पुरानी स्मृतियों के जागरण को कलाकार उचित नहीं समझता है क्योंकि संसार की नश्वरता का उसे बोध है —

"तुम दुनिया को रंगीन बना/ साधना-भ्रष्ट मुझको यों करने आए हो।
लेकिन मैं अपने पथ से भ्रष्ट नहीं हूँगा/ है मुझे ज्ञात,
इस दुनिया की यह चमक दमक/ यह रंगीनी,
सब नश्वर हैं, हैं क्षणिक, तुरत मिट जाएँगी।"[6]

कलाकार अपनी रचना कोअमर कहता है। कलाकार उसे पागल कहता है क्योंकि स्वप्नजीवी कल्पक अपनी कामना केअनुरूप ऐसे मिथ्या जगत की कल्पना कर लेता है, जो सत्य प्रतीत

---

1 से 6 तक :- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक - क्रमशः पृ० 111-12, 112, 113, 113, 117, 122

होता है। ऐसे कलाकार अपने चतुर्दिक ऐसे काल्पनिक खम्भों की सृष्टि कर लेते हैं, जिनसे निकलना बहुत कठिन होता है। मन उसके अनुरूप मिथ्या दृश्यों की कल्पना कर उसे दिखाता है, जिसमें उसकी मूर्तियाँ नष्ट हो रही हैं। अन्त में कलाकार का मोहक इन्द्रजाल टूटता है और वह अपने हथौड़े से मूर्ति तोड़ डालता है। इस प्रकार गीतिनाट्यकार ने ऐसे कलाकार का संघर्ष अंकित किया है जो हताशा से काल्पनिक दृश्यों का सृजन कर आयवी जगत में रहता है। इस मानसिक द्वन्द्व में व्यष्टि अचेतन की विजय होती है किन्तु समष्टि अचेतन में इस विनाश को देखकर पुनः निर्माण की भावना जाग्रत होती है।

अन्धायुग :—

गीतिनाट्यकार ने अश्वत्थामा युयुत्सु के अन्तर्द्वन्द्वों का अच्छा चित्रण किया है। युधिष्ठिर के अर्धसत्य के कारण अश्वत्थामा के मन की कोमल भावनाएँ नष्ट हो गयीं। वह सोचता है कि द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर के वचनों पर अटल आस्था थी। उसके वचनों को सुनकर वे निःशस्त्र हो गए और धृष्टद्युम्न ने उनकी हत्या कर दी। वह इस अमानुषिकता को नहीं भूल पाता और कहता है —

"भूल नहीं पाता हूँ/ मेरे पिता थे अपराजेय/अर्धसत्य से ही युधिष्ठिर ने उनका
वधकर डाला/ उस दिन से / मेरे अन्दर भी/जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण हत्या/युधिष्ठिर के अर्धसत्य ने कर दी।"[1]

उसे इस बात का आक्रोश है कि युधिष्ठिर ने नर और पशु में कोई भेद नहीं किया है। अतः वह भी पशु बन गया —

"उस दिन से मैं हूँ/ पशु मात्र, अन्ध बर्बर पशु।
किन्तु आज मैं शीलक अन्धी गुफा में हूँ भटक गया।"[2]

वह इस यातना से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करने को तत्पर होता है —

"आत्मघात कर लूँ? इस नपुंसक अस्तित्व से/छुटकारा पाकर
यदि मुझे/ पिछली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद/ इतनी यातना नहीं होगी।"[3]

उसकी जिजीविषा बड़ी प्रबल है और वह युधिष्ठिर की वाणी को सत्य करना चाहता है —

"किन्तु नहीं जीवित रहूँगा मैं/ अन्धे बर्बर पशु-सा
वाणी हो सत्य धर्मराज की।"[4]

---

1 से 4 तक ,:: अन्धायुग, धर्मवीर भारती, क्रमशः पृ० 34-35, 35, 35, 36

वह छिपकर हत्या करने का प्रयास करने लगता है। संजय को तटस्थ जानकर भी वह उसका गला घोंटने का प्रयास करता है। तटस्थ शब्द उसके लिए अर्थहीन हो गया है। वध मानसिक ग्रन्थि बन गयी है —

"मैं क्या करूं? मातुल, मैं क्या करूं? वध मेरे लिए नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिए मनोग्रन्थि/जिसको पा जाऊं / मारूंगा मैं।"[1]

दुर्योधन को अधर्मपूर्वक पराजित करने पर वह पाण्डवों को इसी नीति से मारने का संकल्प लेता है। वह वृद्ध याचक जैसी हत्या पाण्डवजनों की करना चाहता है।

"हाँ बिलकुल वैसे ही/ जब तक निर्मूल नहीं कर दूंगा/मैं पाण्डवजों को।"[2]

वह अपने ऊपर आरोपित मर्यादा को अस्वीकृत कर देता है —

"दुनिया की सारी मर्यादा बुद्धि/केवल इस निपट अनाथ अश्वत्थामा पर ही
लादी जाती है।"[3]

वह अपने को दुर्योधन द्वारा सेनापति घोषित कराना चाहता है। रात्रि में उलूक के कृत्यों से उसे एक दिशा प्राप्त होती है —

"मातुल, सत्य मिल गया/ बर्बर अश्वत्थामा को।"[4]

वह छिपकर पाण्डव शिविर में आग लगा देता है। वह उत्तरा की कोख भी सूनी करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार अश्वत्थामा का मन जो बहुत कोमल था, वह पाषाण होगया। उसके मन में जहाँ एक तरफ मान्यता थी, पिता की हत्या के बाद क्रूरता आ जाने पर उसका स्रोत विलुप्त हो गया और वह पशु बन गया।

युयुत्सु धृतराष्ट्र का पुत्र है, जो सत्य का पक्ष लेकर पाण्डवों की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुआ था। किन्तु कौरव नगरी में आकर माता के द्वारा उसका जो अपमान हुआ उससे उसके मन में यह द्वन्द्व चलने लगा कि क्या उसने सही नहीं किया?—

"अच्छा था यदि मैं/ कर लेता समझौता असत्य से,
अब यह माँ की कटुता/ घृणा प्रजाओं की/क्या मुझको अन्दर से बल देगी।"[5]

और वह सभी की घृणा का पात्र बना हुआ नदी के द्वीप सा कौरव समाज से असम्पृक्त हो जाता है। वह सोचने लगता है कि जिनकी हत्या उसने की है उन बन्धुओं का अन्त्येष्टि संस्कार किस मुँह से कर सकेगा। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व में जो आस्था रही है उपेक्षित होने पर भी अनास्था में परिवर्तित हो जाती है और वह कृष्ण विरोधी बनता है। सारयह

---

1 से 5 तक :— अन्धायुग, धर्मवीर भारती, पृ० क्रमशः — 38-39, 62, 63, 69, 56-57

है कि युयुत्सु के मन में यह अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है कि वह किस पक्ष का आश्रय ले। स्वाभाविक मन की प्रेरणा से किए हुए काम में जब उसको उपेक्षा मिलती है तो वह अनास्था वादी बनता है।

मदनदहन :—

इसमें कामदेव का अन्तर्द्वन्द्व संक्षिप्त रूप में अंकित है। काम आत्मदर्प का प्रतीक है। जब वह उसने असाध्यकार्य को करने के लिए कहा है —

"कौन दैत्य है कौन दनुज है माँग रहा जो मुझसे नाश
शक्तिहीन किसको मैं कर दूँ, भर दूँ किसमें प्रणय विलास।"[1]

समाधिस्थ शंकर को विचलित करने का प्रश्न करने पर यह कार्य उसे सौंप दिया जाता है। काम को दायित्व का बोध होते ही उसका मन विचलित होने लगता है —

"क्या कहा शिव को छेडूँ मैं स्वयंभू और/ काम साधूँ इन्द्र का और देवगण का भी।
नहीं नहीं मुझसे नहीं होगा यह/ कहाँ वे महान देव और मैं अतीव लघु।
जाऊँ क्या सुरों के हित जाऊँ क्या कठिन काम।"[2]

उसके मन की झिझक सत्य एवं स्वाभाविक थी। कहाँ भगवान शंकर जो सृष्टि का कल्याण-संहार करते हैं और कहाँ लघु कामदेव। फिर भी उसने दृढ़ता से काम लिया —

"मैं जाऊँगा देव करूँगा कार्य स्वामि हित।"[3]

प्राण पण से कार्य के लिए कटिबद्ध होकर काम जब शंकर को देखता है, तो उसका धैर्य स्थिर नहीं रह पाता —

"क्या होगा? कैसे होगा? यह कार्य सुरों का /नहीं नहीं यह स्वयं आग में जा पडूँगा।
फिर अब क्या मैं करूँ लौट ही जाऊँ तो क्या/सम्भव है यह नहीं असम्भव कार्य हमारा"[4]

स्वप्नसत्य :—

इसका नायक एक कलाकार है जिसके मन में आदर्श और यथार्थ का संघर्ष चलता है। कलाकार कल्पना का सहारा ले स्वर्गिक धरातल पर जा पहुँचता है, जहाँ जागतिक दुख द्वन्द्वों का सर्वथा अभाव है। जिसे देखकर वह मुग्ध हो जाता है —

"वह प्राणों का प्रेरित स्वर्गिक लगता सुन्दर/जीवन की कामना जहाँ हिल्लोलित बहरह।"[5]

किन्तु यथार्थ का धरातल बहुत कटु है जहाँ जाति, मत, धर्म, पंथ में विभक्त व्यक्ति बहुत ही संकीर्ण हो रहा है। ऐसे धरातल को देख वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है —

---

1 से 4 तक :— नया समाज, अगस्त 1952 क्रमशः पृष्ठसंख्या – 82, 83, 83, 84-85
5— सौवर्ण, पंत, पृ0 77

"कहाँ जाय/ मैं भटक गया हूँ किन लोकों में/ कुसम्नों से पीड़ित क्यों हो उठता अन्तर। क्यों विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर में।"[1]

और कलाकार का अवचेतन मन चीत्कार कर उठता है —

"ये कैसी चीत्कारें उठती अवचेतन मन से/नीचे उतर हृदय घुलता जाता विषाद से।"[2]

इस प्रकार कलाकार का एक मन सांसारिक कुरूपताओं को दूर करने के लिए कटिबद्ध होता है तो दूसरा मन उसे इन सांसारिक विभीषिकाओं से दूर काल्पनिक जगत में लेजाने के लिए प्रेरित करता है —

"बाहर जीवन का संघर्ष/ भीतर आवेशों का गर्जन।
भरा मौन प्राणों में क्रन्दन/उर में दुःसह व्यथा भार है।"[3]

और कलाकार का सुपरईगो आदर्श के सुनहले रंगों में खो जाता है।

गंगावतरण :—

इसमें भगीरथ के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व की काफी सम्भावना थी किन्तु कवि ने उसको पकड़ने का प्रयास नहीं कियाहै। भगीरथ गंगा-आनयन हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ है। क्या छोटा पक्षी आकाश को लाँघ सकता है? उसका मन बारम्बार पूछना चाहता है —

"लघु [illegible] विहग हो गगन में उड्डीन/कह रहा क्या अगम क्यों तू दीन।"[4]

किन्तु दूसरा मन महान उद्देश्य हेतु हिमालय में चढ़ने, समुद्र मंथन करने को तत्पर होता है। इस मन की दृढ़ता के सम्मुख स्वर्ग की अप्सरा पराजित होती है और उन्हें अपने अभीष्ट प्राप्त करने में सफलतामिलती है।—

पाषाणी :—

इसमें अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण हुआ है। राजकुमारी सुन्दरी अहल्या दुर्भाग्य वश आश्रम में गार्हस्थिक जीवन व्यतीत कर रही है। राजकुमारी के नेत्रों में भविष्य के स्वर्णिम सपने तैर रहे थे, किन्तु हुआ उलटा ही। चंचल मन का दीप पावन वन अंचल में कैसे जलेगा? यहाँ शिला का स्नेह वृक्ष की छाया मात्र उसे प्राप्त हुई है —

"बालपन में मुझे तपोवन मिला, शिला का स्नेह,
छाँव पेड़ की धुआँ होम का और धूप की देह।"[5]

पिता की प्रतिश्रुति के कारण [illegible] अकार्यहुआ है। उसे अपनी दुर्बलता पर आक्रोश है। गौतम से तपस्या मात्र की बातें करते करते उसका मन ऊब जाता है।

1से 3 तक सीपियाँ, पृ0 संख्या क्रमशः— 79, 79, 90

4-से 5 :— पाषाणी, पृ0 क्रमशः— 18,79

तरूणाई यदि मन की कोमलता है, तो तन क्यों तन जाता है —

"तरूणाई मन की कोमलता/ तो क्यों इतना तन तनता है।"[1]

गीतिनाट्यकार ने फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्तों का सहारा लेकर अहल्या की काम कुण्ठा संबंधी अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रांकन किया है। कोई अहल्या को पुकार रहा है। इस काल्पनिक प्रेमधारा में बहना उसे अच्छा लगता है —

"सौरभ भरी तरंग, शिथिल ये अंग उमंग अकाल —

कहाँ बहाए लिए जा रही? मैं तो हूँ बेहाल।"[2]

स्वप्न में ही इन्द्र के आगमन में उसका मन स्वागत करता है किन्तु सुपरइगो उसे तिरस्कृत करना चाहता है। इदम् और सुपरइगो का संघर्ष अच्छा बन पड़ा है —

"धिक् यही जो स्वर्ग का संचार है।पाप का तन पुण्य का शृंगार है।"[3]

कहना नहीं होगा कि अन्तर्द्वन्द्व के प्रथम चरण में सुपरइगो विजयी रहा किन्तु वह अपनी कामना पर अधिक देर तक संयम नहीं रख सकी।—

"स्वयं को मुझसे नहीं जाता छला। डर रही मैं किन्तु अपने आप से।"[4]

अहल्या को अपने अस्तित्व से आक्रोश है। वह स्पष्ट गौतम से कहती है।— गौतम उसके मन में कभी बसे ही नहीं। वह असफल जीवन को व्यर्थ मानती है। शापित होने पर वह अन्तर्द्वन्द्वों से जलते अपने जीवन की तृषित कहानी सुनाती है। इस प्रकार गीतिनाट्यकार ने उसके मन को अनावृत करने का अच्छा प्रयास किया है।

मंजरी :—

मंजरी में गीतिनाट्यकार ने बाह्य परिस्थितियों के संघर्ष को व्यंजित किया है। मंजरी जो किसी अन्य पुरूष की प्रेमिका है। योगिराज के चमत्कार के कारण राजा चन्द्रपाल के महल में आ जाती है। राजा उसे अपनी रानी बनाना चाहता है और ऐसा न होने पर वह मंजरी के पिता पर ससैन्य आक्रमण करने की धमकी देता है। मंजरी जीवन या मरण में से एक को चुनना चाहती है —

"मरण या जीवन? शिथिल अनजान।शेष पथ बलिदान ही है प्राण।"[5]

विवाह कर घुटन, तड़पन प्रतिदिन मरण को वरण करना है। —

"घुटन, तड़पन, मरण-जीवन भार। ठोस जीवन? खोखला व्यापार।"[6]

अन्त में वह आत्महत्या कर लेती है।

---

1 से 6 तक :— पाषाणी, जानकी वल्लभ शास्त्री, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ —

83, 90, 92, 94, 137, 138

<u>अशोकवनबन्दिनी :—</u>

इस गीतिनाट्य में सीता के आन्तरिक मनोव्यथा का उद्घाटन हुआ है किन्तु गीतिनाट्यकार को उसके अभिव्यक्ति की पकड़ ठीक से नहीं हो पायी। विश्वविजेता रावण उसका अपहरण कर अनेक प्रलोभन दे अपनी अंकशायिनी बनाना चाहता है और सीता का सुपरइगो उसे अस्वीकार करता है। वह राम विरह के शोक में तिल-तिल कर जलती है—

"किन्तु न मेरी कथाव्यथा का अन्त है/ मैं अपने से जूझ रही अनवूझ पथ।"[1]

किन्तु उनके सुपरइगो को शक्ति देने का आधार राम-प्रेम ही है —

"उनके मेरे दो मन चिंतन एक है। प्रतिबिम्बित होती रहती है चेतना।"[2]

इस प्रकार भौतिक आकर्षणों को त्याग कर सीता का सुपरईगो विजयी होता है।

<u>गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण :—</u>

दुर्योधन केआक्षेप से उनका अन्तर्मन जाग्रत हो गया है। इन कटुवचनों को सुनकर उनका अहं फुँत्कार उठा और वे पश्चात्ताप करने लगे कि यह सारा अपमान परान्नजीवी होने के कारण हुआ —

"ब्राह्मण गुरु द्रोण हतप्रभ, हत-ज्ञान/केवल परान्न जीवी रह गया हाय, आज।
कौन मम चेतना में डाहसी दहकती है।"[3]

उनके अन्तर्मन में से एक कटु सत्य उभरकर आता है कि वे क्या पाण्डवोंके प्रति कोमल भावना नहीं रखते थे। वे इस तथ्य को स्वीकार कर इसके कारणों की जानकारी देते है —

"इसीलिए कि पाण्डवगण मान करते हैं सदा।"[4]

छाया रूप में मन उनके कर्म और ज्ञान की असंगति का उल्लेख करता है —

"अन्न खाते कौरवों का चाहते न कल्याण/ जिन्होंने बनाया तुम्हें सेनापति अपना-
सोचो मन कभी से विवेक और निष्ठा से/कितनी असंगति है तुम्हारे ज्ञान कर्म में।"[5]

अपने मन को पाण्डवोंकी ओर उन्मुख होने के पीछे वे धर्म को कारण बताते हैं।

अतः छाया उसी पक्ष में जाकर मिलने की बात कहती है —

"फिर क्यों न साहस से त्याग इन कौरवों को-
स्पष्ट ही स्वधर्म हित पाण्डवों से जा मिले।"[6]

कौरवों का साथ देने के लिए जिसने उन्हें कहा था। जानकर पापी का साथ देना ब्राह्मणोचित कर्म नहीं है। उनका अहम् इन आक्षेपों को स्वीकार न कर अपने को विक्षुब्ध कहता है—

1-6 तक :- अशोकवनबन्दिनी, भट्ट, क्रमशः पृ0 — 28, 41, 83-84, 84, 84

"व्यर्थ मुझे दोष दो न व्यर्थ ही कलंक धरो,
मैंने नहीं पाप किया मैं विशुद्ध व्यक्ति हूँ।"[1]

छाया अट्टहास कर उसके इस दम्भ और कल्पित सत्यों को भ्रमात्मक सिद्ध करती है क्योंकि गुरुद्रोण ने सर्वप्रथम पाण्डवों को युद्ध से पूर्व प्रणाम करने पर विजयी होने का आशीर्वाद दिया था। किन्तु अपने अन्तर्मन से कौन जीत सकता है। निरुत्तरित द्रोणअपने को पुरुषार्थी होने का दम्भ करता है। उदाहरण के लिए द्रोण, द्रुपद प्रसंग को कहता है। छाया इसमें द्रोण की प्रतिहिंसा ही स्वीकार करती है। अन्त में द्रोण को अपनी भूलस्वीकार करना पड़ता है। द्रोण अहंकार वश किसी अन्य की सत्ता कब स्वीकार करता है। द्रोण अपने शिष्यअर्जुन की महत्ता का गुणानुवाद गाता है किन्तु उसका अन्तर्मन उसे पक्षपाती सिद्ध करता है कि वह अपने पुत्र को अधिक कुशल बनाना चाहता था —

"केवल यही था ध्यान अश्वत्थामा प्रिय पुत्र
पा सके अधिक ज्ञान और सब हेय हों।"[2]

यह सत्य सुन द्रोण तिलमिला उठता है —

"अरे नहीं, अरे नहीं, मर्म मत बेधो और/मेरी त्रुटियों के पृष्ठ और मत खोलो हाय।
मेरीअनुदारता का डंका मत पीटो और/ रक्षा करो, रक्षा करो, क्षुब्ध हो गया हूँ मैं।
आता है याद आज शूल मर्म-मूल तक/छिद जाता मेरा मन, घृणा होती मुझको।"[3]

द्रोण इसे स्वाभाविक कहकर आत्मसन्तोष पाने का प्रयास करता है, तभी छाया निषादराज एकलव्य की घटना का स्मरण कराकर यह कहती है कि इस प्रकार के जघन्य कार्य उसने किए हैं क्योंकि ब्राह्मण अनादि काल से ही अन्याय करता रहा है। स्वयं द्रोणाचार्य इसे स्वीकार करता है —

"हृदय विदीर्ण होता, कितना कठोर बना/मनुष्यता खो दिया, खो दिया विवेक भी।"[4]

इसी तरह द्रोण, द्रौपदी की विवस्त्रावस्था की कथा के लिए दर्शक होने के नाते पापी है। इस कथा का स्मरण करके वह व्याकुल होता है —

"मैं प्रक्षुब्ध वंचना से अभिभूत, अनुतप्त/जल रहा अपनीही साँसों की आग में।
कितना विक्षुब्ध मन कितना प्रतप्त तन/धूल गई मेरे विश्वासों की नींव सब।"[5]

जीवन की सांध्य वेला में द्रोण अपने कुकृत्यों का स्मरण कर पश्चात्ताप करता है और उसका अहम् समाप्त हो जाता है।

1से 5 तक :- ओंकारनाथ-चाँदनी, अट्टहास पृ० संख्याएँ — 85, 93, 93, 103,

सूखा सरोवर :—

इसमें बहिर्द्वन्द्व के अनेक स्थल हैं। प्रारम्भ में एक युवक राजा के विरोध में कटु-सत्य कहता है, जिसे पुरोहित पकड़कर दण्ड देने की बात कहता है —

"पकड़ लो इसे पकड़ लो/ मरोड़ दो इसके स्वर/ खींच लो जिह्वा।"[1]

इसी तरह द्वितीय दृश्य में राजा और छोटे राजा के मध्य युद्ध होता है। छोटा राजा खड्ग से वार करता है —

"राजा (वार बचाकर) निर्बल छोकरे, सावधान सावधान।

छोटा राजा (आवेश में) मैं लेकर रहूँगा प्राण। (निहत्थे राजा पर फिर खड्ग से आक्रमण करता है)"[2]

'सूखा सरोवर' में संन्यासी का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ है, वह नगरी का राजा रह चुका है। उसके मन में मोह और भोग में से एक चुनने के लिए अन्तर्द्वन्द्व उठता है और वह सत्य के मोह का परित्याग कर संन्यासी बन जाता है —

"जिन्होंने जन्म दिया/ जिन्होंने कर्म दिया। और मन पर उनका बोझ

उन सबका बोझ/ जिनसे आसक्ति है, पराजय है। बन्धन है।"[3]

सरोवर के सूख जाने पर उसके मन में फिर द्वन्द्व उभरता है कि प्रजा को सुखी करना उसका कार्य है। उसका नैतिक अहम् अपनी मनोव्यथा कहता है —

"मैं संन्यासी हूँ/ मेरे माथे पर कितनी रेखाएँ/ झुर्रियाँ कितनी शरीर में।

जितने चिह्न जितने दाग/ ऊपर हैं मेरे/ उनसे दुगने भीतर है।"[4]

किन्तु उसका दूसरा मन यह कहता है कि प्रजा को कष्ट से मुक्ति दिलाना राजा का कार्य है। और संन्यासी है किन्तु प्रजा की छटपटाहट देख उसका सुपरईगो देवता की चुनौती स्वीकार करता है—"मैं चुप निष्क्रिय था युगों से/क्यों दी तूने चुनौती मुझे?

जो कुछ धधक रहा था अन्तस् में/क्यों किया तूने व्यंग्य मुझे?

जितनी क्षति जितने घाव बाहर है/उससे असंख्य गुने भीतर छिपे हैं मेरे।"[5]

वह अपने इस तनाव को समाप्त करना चाहता है —

"हर तार रेशे में/हर ग्रन्थि हर छोर में/ अपनी परिधि है तनाव है

सबको तोड़ूँगा उधेड़ कर।"[6]

और वह सरोवर हेतु जल आनयन हेतु बलिदान करने को तत्पर होता है। इस प्रकार संन्यासी के व्यक्तित्व को त्याग और मोह ने विभक्त किया है तो, उसका सुपरईगो दुख पर संघर्ष में विजय प्राप्त करता है।

1-6 :— सूखा सरोवर, लक्ष्मीनारायण लाल, क्रमशः पृ० —15, 59, 63, 23-24, 45, 46

उर्वशी :—

उर्वशी के यौवन का अबाध रसपान करते हुए पुरूरवा का मन किस अतीन्द्रिय लोक में खो जाता है। उर्वशी कहती है —

"तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में/ मन से किन्तु विषण्ण दूर तुम कहाँ चले जाते हो?"[1]

इस स्थिति पर जब राजा विचार करता है, तो उसे इस अंकुश का ज्ञान नहीं है। वह कहता है—"आग है कोई नहीं जो शान्त होती/ और खुलकर खेलने से भी निरन्तर भागती है।[2]

किन्तु जिस समय उर्वशी के उद्दाम, तृषार्त यौवन का रसमय निमंत्रण मिलता है और राजा ललककर उसे पान करने को बढ़ता है, उसी समय प्रतिध्वनि उसकी चिंतन धारा को उत्तेजित कर देती है —

"किन्तु रस के पात्र पर ज्यों ही लगाता हूँ अधर को/घूँट या दो घूँट पीते ही
न जाने किस अतल से नाद यह आता। "अभी तक भी न समझा?
दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।"[3]

और राजा शिथिल होकर शान्त कामना वाला बन जाता है —

"टूट गिरती हैं उमंगें/ बाहुओं का पाश हो जाता शिथिल है।
अप्रतिभ मैं फिर उसी दुर्गम जलधि में डूब जाता/फिर वही उद्विग्न चिंतन फिर
वही पृच्छा चिरन्तन।"[4]

आन्तरिक चिन्तन के कारण शरीर का शिथिल हो जाना, बड़ा ही स्वाभाविक है। नारी पुरूष के शीतल होने का भाव शीघ्र समझ लेती है। दिनकर ने आन्तरिक मनोभाव के अनुकूल शारीरिक शीतलता या उष्णता का अच्छा विवेचन किया है। निराश राजा वामन इस सत्य को पकड़ना चाहता है। सौन्दर्य की आराधना का अनुसंधित्सु है, मन भटक कर पुनः वहीं लौट आता है —

"इस व्यथा को झेलता/ आकाश की निस्सीमता में/ घूमता फिरता विकल
विभ्रान्त। पर , कुछ भी न पाता।"[5]

तृष्णार्त मन उसे उर्वशी के अरूणिम कपोल, चम्पक सी देहयष्टि में डूब जाना चाहता है। हृदय में मधुर स्मृतियाँ बुलबुले के समान फूटने लगती है और वह प्रिया की गोद में गिर पड़ता है किन्तु जमने पर कामना शान्त नहीं होती है।

1-5 :— उर्वशी, दिनकर— पृष्ठ संख्याएँ क्रमशः — 35, 36, 36, 36-37, 37

"फिर कुंचित कोई अतीन्द्रिय आभास देता/ फिर अधर पुट खोजने लगते अधर को
और तब सहसा/ न जाने ध्यान खो जाता कहाँ।"[1]

पुरूरवा के इड और ईगो का अन्तर्द्वन्द्व उस समय से प्रारम्भ हो जाता है जब उसने उर्वशी की रक्षा की। उसके अपरूप सौन्दर्य को देख पुरूरवा का मन विकल हो जाता है और वह इन्द्र से उर्वशी के माँगने की बात सोचता है, जिसे उसका ईगो इसलिए अस्वीकार कर देता है कि क्षत्रिय भीख नहीं माँगते —

"कई बार चाहा सुरपति से जाकर स्वयं कहूँ मैं
अब उर्वशी बिना यह जीवन भार हुआ जाता है,
पर मन ने टोका क्षत्रिय भी भीख माँगते हैं क्या?"[2]

उर्वशी के मिलने पर उसका ईगो सन्तुष्ट नहीं होता क्योंकि जिस समय वह अपनी कामना पूर्ति में लगा रहता है, उसका ईगो दूसरी वस्तु की कामना करने लगता है और जिस समय ईगो अपने पौरूष की याद करके अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त करने का प्रयास करता है, वह फिर पिपासाकुल हो उठता है।

उर्वशी का अन्तर्द्वन्द्व भी दिनकर ने अंकित किया है। वह अप्सरा है जिसके लिए प्रेम विलास की वस्तु है, किन्तु राजा पुरूरवा से रक्षित होने पर उसके मन में पुरूरवा के पाने की ललक-उत्पन्न होती है। उसके सामने स्वर्ग का अपार वैभव है और दूसरी तरफ पुरूरवा का उद्दाम प्रेम, जिसके परिणाम स्वरूप यौवन का ढलना तथा यौनिक संतान जन्म करना है। वह स्वयं कहती है —

"नहीं दीखती कहीं शान्ति मुझको इस देव निलय में
खुला रहा मेरा सुख मुझको प्रिय के बाहु वलय में।"[3]

और वह स्वर्ग छोड़ भूमि पर स्वयं आती है तथा पुरूरवा को अनासक्त देखती है तो उसका मन फिर से विषादग्रस्त हो जाता है —

"यह मैं क्या सुन रही देवताओं के जग से चलकर
फिर मैं क्या फँस गई किसी सुर के बाहु वलय में।"[4]

एक तरफ उसके मन में उद्दाम यौवन की लालसा का सागर लहराता है और दूसरी तरफ उसे प्राप्त होता है — पुरूरवा की टूटती उमंग और शिथिल बाहुपाश। वह अपने कामप्रेम के द्वारा पुरूरवा को आध्यात्मिक शिखर पर आरोहण कराने का प्रयास करती है। उसे अपने रूप का अभिमान है जिसके कारण उसका मन ईगो का प्रतीक बन गया है। उसके

1-4 उर्वशी दिनकर, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 39, 32, 14, 36

अन्तर्द्वन्द्व का दूसरा रूप भी दिनकर ने चित्रित किया है — पुत्र और पति प्रेम के बीच उसका हृदय दोलायमान है —

> "हाय, दयित जिसके निमित्त इतने अधीर व्याकुल हैं,
> उनका वह वंशधर जन्म से वन में छिपा पड़ा है।
> और विवशता यह तो देखो, मैं अभागिनी नारी,
> दिखा नहीं सकती सुत का मुख अपने ही स्वामी को,
> कि न तो पुत्र के लिए स्नेह स्वामी का तज सकती हूँ।"[1]

इससे और अधिक अन्तर्द्वन्द्व एक नारी के लिए क्या हो सकता है? कि वह आत्मज पुत्र और प्रियतम में एक का चयन करे और यदि वह दोनों को मिला देगी तो भरत शापवश उसे स्वर्ग जाना पड़ेगा, अतः उर्वशी अपने पुत्र को सुकन्या-आश्रम में पालन पोषण के लिए छोड़ जाती है। दैववशात् पुरूरवा-पुत्र राजदरबार में आकर पिता से भेंट करता है, तो ऐल उर्वशी फिर से अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त हो उठती है —

> "लगता है कोई प्राणों को बेध लौह अंकुश से
> बरबस मुझे खींच इस जग से दूर लिए जाता है।"[2]

इस प्रकार उर्वशी जो प्रारम्भ में इड की प्रतीक थी, पुरूरवा से मिलकर सुपरईगो के माध्यम से अपने ईगो का उदात्तीकरण करती है जिसके विभाजित होने पर अब सुपरईगो का प्राबल्य हो जाता है और परिणाम स्वरूप वह पुनः स्वर्ग को लौट जाती है।

<u>संशय की एक रात</u> :—

इसमें राम संशयग्रस्त मानव रूप में चित्रित हैं। उनके व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी विचारों तथा आस्थाओं का संघर्ष दिखाया गया है। युद्ध तथा शान्ति, व्यक्ति तथा समूह को लेकर विरोधी निष्ठाओं का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ है। सीता-हरण को वे व्यक्तिगत समस्या मानते हैं और उसके लिए सामूहिक विपत्ति का आह्वान करना उन्हें उचित नहीं प्रतीत होता है, इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण वे बालुका राशि को पैरों से कुचलते रहे, सीता मुख बनाते रहे और बालुका-निर्मित सीता का चित्र सन्ध्या सन्ध्याकर्षण से उठे समुद्र के जल में विलीन होता रहा —

> कितनी बार/कितनी सांझ/ इस सिन्धु वेला तट/बिताई काट दी पर व्यर्थ।
> कितनी बार कुचला/बालुओं को/स्वयं के पद चिन्हों व्यूहों से

1-2 :- उर्वशी, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 94-95, 111

घिरे रहे/कुर्ग निर्मति रहे? सीता मुक्त बनाते।"[1]

इस गहन वितर्क की दशा में वे मुट्ठियाँ बाँध लेते हैं —

"क्या हो/ क्या न हो के प्रश्न ने/ बाँध दीं मुट्ठियाँ।"[2]

प्रति बार उन्हें अपनाये जाने वाले उपाय की सार्थकता अथवा व्यर्थता, नैतिकता अथवा अनैतिकता का सन्देह ग्रस्त कर लेता है। प्रतिवार रावण द्वार से शान्ति के उपाय व्यर्थ चले गये। वे ज्वारों घिरे विवश द्वीप में एकाकी रह जाते हैं। उन्हें अपने परिवार की चिन्ता है कि वे इन घटनाओं को सुनकर क्या सोचते होंगे। रावण के बन्दीगृह से क्या सीता का उद्धार नहीं हो सकेगा। उन्हें विवश तथा परतंत्र के भाव से इतिहास के हाथों के हथियार बनना स्वीकार नहीं है। इससे अच्छा तो यह है कि उनकी जीवन-यात्रा निरुद्देश्य भाव से अज्ञात, तिमिर-समूहों को चीरती हुई शून्य में विलीन हो जाय। लक्ष्मण को इस बात का आभास है कि राम के अन्तर्मन को कोई बात व्यथित किए हुए है जिसकी छाप, वे बालू पर राम के पगचिन्हों पर देखते हैं —

"क्या है अनीप्सित वह/ जो कि इस जल घिरी चट्टान पर/बैठे हुए राम को मथता है? पोर पोर/छोर छोर देता है/ निष्ठा को।"[3]

वे अपनी शंका लक्ष्मण से कहते हैं कि मनुष्य के अन्दर जो श्रेष्ठ एवं शुभकर प्रवृत्ति विद्यमान है वह युद्ध की ज्वाला में नष्ट हो जायेगी —

"मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है/ उसको ही/ मैं उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु।"[4]

वे नहीं चाहते कि उनकी वैयक्तिक समस्याएँ ऐसे कारणों को जन्म दें जो इतिहास में कुख्याति प्राप्त करें —

"व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ? क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें।"[5]

अकेले राम को वनवास की आज्ञा मिली थी, किन्तु उनके लिए अन्यों को वन में भटकना पड़ रहा है, पिता का निधन हो गया, माताएँ विधवा बन गयीं, पत्नी का हरण हुआ, पिता मित्र जटायु की मृत्यु हो गयी। उन्हीं के लिए अंगद को निरादृत होना पड़ा। हनुमान की देह जलायी गयी, ऊर्मिला को पति-वियोग सहन करना पड़ा। लंका अभियान में उनका व्यक्तिगत स्वार्थ है, जिससे उनकी मान्यता हिलने लगी। युद्ध या सन्धि के अनिर्णय से उनकी आत्मा विकल हो गयी। उनमें तीव्रवेगी अनिश्चय का आविर्भाव हो गया है। सीता के लिए

संशय की एक रात—नरेश मेहता — 1 से 5 तक — क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 3, 4, 13, 19, 20

युद्ध हो, यह उनकी बद्धमूल धारणा खण्डित होने लगी। दो संकल्प सामने आ गए

"दो सत्य/दो संकल्प/दो-दो आस्थाएँ

व्यक्ति मैंही / अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।"[1]

सामने लहराता, गम्भीर, गर्जन करता हुआ विशाल रत्नाकर और उसमें राम का अन्तर्द्वन्द्व मुखरित होता है, उत्तर देने वाला कोई नहीं है। वे सत्यान्वेषी तो हैं किन्तु वह सत्य यदि रक्त रंजित है तो उन्हें स्वीकार नहीं है —

"मैं सत्य चाहता हूँ/ युद्ध से नहीं/ खड्ग से भी नहीं

मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।"[2]

मानव रक्त पर पग रख कर आने वाली सीता उन्हें स्वीकार नहीं। बाण-विद्ध पक्षी की भाँति उन्हें जय भी नहीं चाहिए। इस प्रकार राम ऐसी सन्धि रेखा पर खड़े हैं जहाँ एक ओर व्यक्ति है तो दूसरी ओर समूह, एक ओर व्यक्तिगत सीता है, तो दूसरी ओर जन-जन की स्वतंत्रता की प्रतीक सीता है, एक ओर अन्धकार है तो दूसरी ओर नवीन मूल्यों का प्रकाश एक ओर गरजते सागर के इस पार वनवास है, तो दूसरी ओर उस पार युद्ध है। इसमें एक वरणीय है, दूसरा त्याज्य। सारे प्रश्नों के मूल में युद्ध ही है। वे अपना संशय दशरथ की आत्मा के समक्ष उपस्थित करते हैं। यही बात वे अंगद, परिषद् के सम्मुख रखते हैं कि युद्ध के बाद शान्ति निश्चित रूप होगी, इसे कौन प्रामाणिक रूप से कह सकता है। अन्त में वे अपने संशय को समूह को सौंप देते हैं। उनके अव्यक्त सन्देह, अपरिभाषित शंकाएँ तथा निर्मम प्रश्न अधूरे रह जाते हैं और वे आधे मन से युद्ध को स्वीकार करते हैं —

"ओ मेरे आधे व्यक्तित्व के/ अधूरे मन। इन गूँगे संशयों

अधूरी शंकाओं/ बहरे प्रश्नों का क्या होगा?"[3]

अब वे सबके निर्णय हैं। यह कैसी विडम्बना है कि उनका चिन्तन खड्ग करेगा और युद्ध ही उनका आचरण बनेगा। उन्हें इस बात का संशय है कि आगत पीढ़ियों में कभी कोई यह नहीं जान सकेगा कि दूर अतीत में कभी किसी ने युद्ध की अनिवार्यता पर प्रश्न-चिन्ह लगाया था।

इसी तरह से विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व भी बहुत सटीक रूप से वर्णित है। यु युद्ध-स्वाभिमान और राष्ट्र-प्रेम के बीच जिस स्थान पर वह खड़ा है, उससे उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। राष्ट्र-द्रोह व्यक्ति को अन्तर्द्वन्द्व में डाल देता है —

1-3 संशय की एक रात, क्रमशः पृ०23, 31, 83-84

"द्वन्द्व/मुझमें भी कहीं पर है/ मुझे भी सालता है,
स्वयं का संघर्ष/ मैं भी विभाजित हूँ।"[1]

यद्यपि विभीषण युद्ध को अनिवार्य मानता है फिर भी उसे इस बात का संशय है कि युद्ध में राम की विजयी सेना वही कुकृत्य अनाचार करेगी जो कि हर विजयी सेना करती है। वह अपने राष्ट्र का अनागत जलते हुए देखता है —

"मेरे सामने/ मेरे राष्ट्र का/ अनागत काल/अनबूझ धूपु जल रहा है।"[2]

वह अपने को देशद्रोही नहीं कहलाना चाहता —

"जब हम नहीं केवल/ युद्ध, ठण्डी शिला का/ इतिहास होगा।
जब हमारे तर्क तकमर जायेंगे/ तब/हमें क्या कहकर पुकारा जाएगा।"[3]
राष्ट्र-संकट के समय/ मैं आक्रमण के साथ। राज्य पाने के लिए?
इतिहास के इतने बड़े मिथ्यात्व को/ झुठलाने के लिए मेरा द्वन्द्व संशय/तर्क।"[3]

एक कण्ठ विषपायी :—

इसमें दक्ष प्रजापति के पुत्र सर्वहत का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ है। सर्वहत स्वभाव से बड़ा ही कोमल था, यज्ञ-विध्वंस का साक्षात् द्रष्टा था। अतः वह विक्षिप्त हो गया। ब्रह्मा द्वारा परिचय पूछने पर वह कहता है —

"मैं कौन हूँ, इस स्थिति में/ मुझको यह सोचना पड़ेगा।
शायद मैं राजा हूँ/ शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ।"[4]

वह दुःखान्त नाटक के पटाक्षेप होने के बाद इसलिए आया कि मंच की सज्जा सामग्री एकत्रित कर सके। किन्तु उसे युद्ध के परवर्ती प्रभाव के भोक्ता होने के संबंध में पूछा करते हैं, वह उत्तर देता है —

"क्योंकि यह,/विधाता के नियमों की विडम्बना है। चाहे न चाहे ? किन्तु
शासक की भूलों का उत्तरदायित्व/प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है।"[5]

वह रोटी का इच्छुक है किन्तु वह उसे मिल नहीं पा रही है। विक्षिप्तावस्था में वह कहता है—

"हम सब मर जायेंगे एक रोज/पेट को बजाते/ और भूख-भूख चिल्लाते
हम सब मर जायेंगे एक रोज।"[6]

1-3 :— संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृ0क्रमशः—71-72, 73, 75-76
4-5-6 :— एक कण्ठ विषपायी, दुष्यन्त कुमार, क्रमशः पृष्ठ — 46, 49, 64

वह बुबुक्षा के व्यापक प्रभाव को भी वर्णित करता है —

"ये भूखा होना/कोई बुरी बात नहीं है/ दुनिया में सब भूखे होते हैं,
सब भूखे/ कोई अधिकार और लिप्सा का / कोई प्रतिष्ठा का,
कोई आदर्शों का/ और कोई धन का भूखा होता है/ ऐसे लोग आस्तिक कहाते हैं
मांस नहीं खाते/ भूखा खाते हैं।"[1]

वह बड़े कष्ट से कहता है कि जीवन की भूख बहुत कम लोगों में होती है। वह देवताओं को खाने के लिए अपना हृदय देने की बात कहता है। उसे एकाकीपन भी बहुत खलता है —

"किन्तु/ मैं अकेला रह गया हूं अब/ बिलकुल अकेला
पूरे नगर में अकेला/ आह।"[2]

सर्वहत द्वारा युद्ध-परिषद् में दिखायी देता है। वह अपने पागलपन के कारण सभी को झकझोर देता है। इस प्रकार सर्वहत का मन जो शान्ति के समय स्वामि-भक्त, कोमल था, युद्ध की विभीषिका और युद्धोत्तर ह्रासमान सांस्कृतिक मूल्यों को सहन नहीं कर पाता है, उसका मन इस तनाव, इस संघर्ष और इस द्वन्द्व का के कारण विकृत हो जाता है।

प्रजापति दक्ष का अन्तर्द्वन्द्व भी संक्षिप्त होते हुए मार्मिक है। वह ईगो का प्रतीक है जिसकी कन्या सती, पिता से विद्रोह कर शंकर से विवाह करती है जिसे दम्भी और अहंकारी पिता सहन नहीं कर पाता। वह यज्ञ में शंकर को नहीं आमंत्रित करता क्योंकि उसके मन में एक तरफ पुत्री के प्रति प्रेम है तो दूसरी तरफ शंकर के प्रति तीव्र वितृष्णा इसी द्वन्द्व में उसका मन दोलायमान रहता है।

"वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है/ जिसके कारण
मेरा माथा नीचा है सारे समाज में/ मेरे ही घर अतिथि रूप में आए।"[3]

उसे अपनी सुता पर भी कोप है अतः वह सती को वापस कैलाश भेजना चाहता है। उसका ईगो इतना दृढ़ है कि वह पत्नी के उपदेश को भी अनसुना कर देता है —

"मेरा दृढ़ निश्चय है/ मेरे आयोजन में/ शंकर का कोईस्थान नहीं होगा
यही नहीं/ युग-युग तक/ किसी यज्ञ अथवा आयोजन में
उसको निमन्त्रण तक न जायेगा/ देखूं वह मेरा क्या करता है।"[4]

पत्नी के समझाने पर वह कुछ सोचने को विवश होता है —

"मेरे ही मन में दुर्बलता जाग्रत कर दी/चुपके से अन्तर में।"[5]

और अपने इस ईगो के प्राबल्य के कारण सर्वनाश का कारण बनता है।

1-5 तक :— एक कण्ठ विषपायी, क्रमशः पृष्ठ संख्याएँ — 65, 67, 11, 32, 29

शंकर जिनका कण्ठ विषपायी रहा है, कल्याणकारी देवता कहे गए हैं। जो मन से सुपरईगो के प्रतीक हैं किन्तु प्रियतमा सती के आत्मदाह के बाद उनका मन अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो गया क्योंकि एक तरफ उनका कल्याणकारी शिव रूप है तो दूसरी तरफ विनाशकारी और प्रियतमा के वियोग के बाद उनका विनाशकारी रूप ही प्रमुख हो गया। वे कहते हैं—

"देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़/ मैंने क्या पाया? निर्वासन-प्रेयसी वियोग।
मैं ऊब चुका हूँ/ इस महिमा मण्डित छल से/ अब मुझे स्वयं का
वास्तव में सत्य पकड़ना है/ जिन आदर्शों ने/ मुझे छला है कई बार
मेरा सुख लूटा है/ अब उनको तोड़ना है।"[1]

वे इस शोक के कारण अपने वास्तविक रूप को भूल स्वार्थी हो जाते हैं और उनका व्यक्तित्व विखण्डित हो जाता है —

"आह शोक ने मुझे/ अनचीन्ही स्थितियों में जोड़ दिया।
महाशून्य के अन्तराल में/ निपट अकेला छोड़ दिया।
क्रियाहीन व्यक्तित्व विखण्डित/ जगह-जगह से तोड़ दिया।"[2]

और अहं के प्राबल्य के कारण स्वर्ग पर आक्रमण कर देते हैं किन्तु विष्णु की नम्रता से उनके अहं की तुष्टि होती है, उनका अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है तथा उनका सुपरईगो पुनः एक कण्ठ विषपायी बनता है।

<u>उत्तर प्रियदर्शी :—</u>

इसमें अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा वर्णन नहीं है। सम्राट अशोक जब अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करता है, तब उसे अहंकार हो जाता है —

"राज-राज राजेश्वर/ परमेश्वर प्रियदर्शी/ आसमुद्र आक्षितिज
जहाँ जो दीख रहा है/ मेरा देवानां प्रिय का शासित है।"[3]

वह प्रेतों के उपद्रव देख अपनी अहम् वृत्ति का अपमान समझता है और उन्हें शासित करने के लिए नरक की रचना करवाता है। जहाँ बौद्धभिक्षु के चमत्कार सुन उसका अहम् प्रखर हो उठता है, वह सहन नहीं कर पा रहा है —

"यह क्या सुनता हूँ? विफल हुई यम-ज्वाला?
नरक ज्वालाएँ/ शमित हुईं? उत्तप्त कड़ाहों में खिल उठे
कोकनद-कमल?"[4]

1-2 एक कण्ठ विषपायी, क्रमशः पृष्ठ — 77, 71। 3-4 उत्तरप्रियदर्शी, अज्ञेय, पृ0क्रमशः 33
54

उसे विश्वास नहीं होता है —

"कभी नहीं छूटे हैं वस्तुपुकी - प्रतिकार। मोहान्ध
हो गए हैं प्रहरी, अविकृत अमात्य-मंत्री सब
क्षीण हो चुके हैं अतिवृद्ध थे।"[1]

वह अपनी सत्ता को सर्वोपरि देखना चाहता है। बोद्धभिक्षु उसे समझाते हैं कि नरक मन में ही होता है —

"जहाँ तुम्हारे अहंकार का। यम की सत्ता/ स्वयं तुम्हीं ने की उसके
तुम हुए प्रतिश्रुत/ नरक। तुम्हारे भीतर है वह। वहीं।"[2]

उस पारमिता करूणा को प्राप्त कर अशोक का अहम् गल जाता है, उसके बन्धन खुल जाते हैं।

अग्निलीक :—

निर्वासित सीता वाल्मीकि आश्रम में रहती हुई अपनी मनोव्यथा का उद्घाटन किसी से नहीं करती। परिणामस्वरूप उसका मन कुण्ठित हो गया और वह यथार्थ संसार से नितान्त असम्पृक्त रहने लगी। पौशिकी कहती है —

"बस इस तरह अपने मन को बन्द रखना ठीक नहीं/मैंने कितनी बार तुमसे कहा है
तुम्हारे मन में जो कुछ हो सब बता दो/कह डालने से जी हलका हो जाता है
पर तुम्हें यहाँ आये बरसों हो गए/फिर भी तुम हम सबसे अलग और दूर
इस सारे परिवेश से नितान्त असम्पृक्त / अपने ही किसी संसार में खोयी रहती हो।[3]

इसी समय रामाश्वमेध की सेना का आगमन होता है और उसके समाचार सुन कर उसका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ जाता है। शायद उनके गहरे मन में आशा का कोई तार अटका है —

"मेरे अनजाने ही मेरे मन में अब भी कहीं/आशा का कोई तार अटका है।
चेतना की किन्हीं अथाह गहराइयों में।"[4]

उन्हें मोह के प्राबल्य का बोध होता है। वे राम से दूर होकर उन्हें भुला देना चाहती थीं किन्तु इस सैन्य-अभियान को देखने की लालसा उमड़ती है। तभी उनका अन्तर्मन उनकी इस लालसा के रहस्य का उद्घाटन करता है —

पगली अपने ही मन से आँख-मिचौनी क्या तुम नहीं चाहती
कि कोई तुम्हें देखे और पहचान ले।"[5]

इस सत्य को सुनकर उन्हें अपनी दुर्बलता का बोध होता है और उनकी संकल्पशक्ति क्षीण होती है —

1-2 उत्तरप्रियदर्शी, अज्ञेय, क्रमशः पृष्ठ संख्या — 55, 61-62

3-4-5 :— अग्निलीक, भारतभूषण अग्रवाल , क्रमशः पृ0 24-25, 30, 32

"यह मुझे बीच-बीच में क्या हो जाता है? कहाँ से उपज आती है यह दुर्बलता
भीतर ही भीतर? क्या यही है मेरे संकल्प की शक्ति।"[1]

और वे अपनी मुट्ठी कस कर पीछे की ओर न देखने का संकल्प करती हैं। उन्हें विजय-यात्रा अश्वमेध, युद्ध-लिप्सा, में धन, जन का घोर अपव्यय प्रतीत होता है। क्योंकि इस विजय नाद के समक्ष प्रजा का हाहाकार दब जाता है। सीता अपने मन की कुण्ठा का उदात्तीकरण कर जन सामान्य का हित चिन्तन करने लगती हैं। उन्हें राम पर आक्रोश है। वे राम को दिग्विजयी नहीं आत्मजयी बनाना चाहती हैं किन्तु तुरन्त उनको मन सतर्क करता है —

"पर मैं क्यों सोचती हूँ यह सब/ और सोचकर क्यों थका जाती हूँ?
आखिर कौन हैं वे मेरे/ और मैं ही उनकी कौन हूँ? क्या मोह है मेरी इस चिन्ता का?
अपने वृत्त से निष्कासित और विच्छिन्न/ मेरी किसको अपेक्षा है।"[2]

इसमें राम के अन्तर्द्वन्द्व का भी अच्छा चित्रण हुआ है, सीता के धरा-प्रवेश के बाद, उनके सारे जीवन-मूल्य, उनकी मान्यताएँ, उनका त्याग ध्वस्त होते दिखायी देने लगे —

"नहीं, मैं रो नहीं रहा हूँ/ भीतर ही भीतर टूट रहा हूँ। मेरे प्राणों के टुकड़े हो रहे हैं, और मैं उन्हें पूरे मनोबल से कस रहा हूँ।"[3]

सच तो यह है कि व्यक्ति के जीवन से उसकी प्राणवत्ता निकल जाने पर वह अपने समूचे जीवन को ही नकार बैठते हैं। राम को लगता है कि नारी के कारण ही उन्हें स्वत्व से वंचित किया गया था। अतः उनके गहरे अचेतन मस्तिष्क में नारी के प्रति कुण्ठा तो नहीं बैठ गयी जिसके कारण वे सीता को अमान्य कर बैठे हों, राम कहते भी हैं —

"कहीं ऐसा तो नहीं है/ कि मैं मन ही मन नारी को अमान्य कर बैठा होऊँ
× × × × × ×
कहीं गहरे बहुत गहरे/ मेरे जीने में कोई बड़ी भूल थी/ कि मेरे सारे मन्तव्य उलट गये।"[4]

है राम की दृढ़ धारणा थी कि इस निर्वासन में सीता अपने मन को समझा लेगी किन्तु आज उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि यह कायरता ही सिद्ध हुई है। उन्हें अब यह बोध हो रहा है कि राम को ईश्वर कहकर, वेद, शास्त्र, पुराण, कुल मर्यादा के बन्धन में बाँध कर उन्हें मिथ्या, कल्पित लोक का वासी बना दिया गया है, वे कहते हैं '—

"मैं अपने जनों से असम्पृक्त और विच्छिन्न/ एक आत्म-लीन और स्वनिर्मित लोक में जिया हूँ।"[5]

1-2-3-4-5:—अग्निलीक, भारतभूषण अग्रवाल, क्रमशः पृष्ठ — 32, 33, 60, 60, 63

सीता निर्वासन के दृश्यों को स्मरण कर वे उत्तेजित होते हैं —

"जिस दिन मैंने वैदेही को वनवास दिया था/ उसी दिन मेरा हृदय विद्रोह उठा था पर मैंने उसे बलपूर्वक दबा दिया।"[1]

बात यह है कि मन के विरुद्ध कार्य करने पर वह विद्रोह कर उसे गवाह रखता है। यही राम के कहने का मन्तव्य है। अन्त में उन्हें सीता के त्याग की गरिमा का बोध होता है, और वे सीता की कल्पना को साकार करने के लिए संकल्प करते हैं।

इस प्रकार गीतिनाट्यों में प्राप्त अन्तर्द्वन्द्वों एवं बहिर्द्वन्द्वों पर विहंगम दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि बहिर्द्वन्द्व की दृष्टि से अनघ, उन्मुक्त, स्नेह या स्वर्ग सृष्टि की सांझ, सूखा सरोवर इत्यादि गीतिनाट्य प्रमुख हैं। यह बहिर्द्वन्द्व, अन्तर्द्वन्द्व को उद्दीप्त करने के लिए जहाँ प्रयुक्त हुआ है, वे गीतिनाट्य बहुत सफल हैं, जैसे स्नेह या स्वर्ग और सृष्टि की सांझ।

अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से इन गीतिनाट्यों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, ऐसे गीतिनाट्य जिनमें वास्तविक रूपसे अन्तर्द्वन्द्व है, मन में घात-प्रतिघात है और पात्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठता है तथा अपनीही प्रेरणा या बाह्य हस्तक्षेप से किसी एक मार्ग का चयन करता है जैसे — तारा, मत्स्यगन्धा, स्नेह या स्वर्ग, कवि, संघर्ष, अन्धायुग पाषाणी और संशय की एक रात और दूसरे प्रकार के वे गीतिनाट्य हैं, जिनमें अन्तर्द्वन्द्व की प्रखरता तो नहीं, किन्तु मनोव्यथा या किसी बाह्य कारणों या घटनाओं से मन द्विधा-ग्रस्त हो, संकल्प-विकल्प करतारहता है, जैसे — अनघ, शिल्पी, राधा, स्वप्न और सत्य, गुरु द्रोण, का अन्तर्निरीक्षण, सूखा सरोवर, इत्यादि। साथ ही ऐसे भी गीतिनाट्य हैं, जहाँ अन्तर्द्वन्द्व के लिए पर्याप्त अवकाश था किन्तु नाट्यकार की ग्रहण शक्ति या असमर्थता अथवा कथा-प्रवाह के प्राबल्य के कारण उसकी समुचित अभिव्यक्ति नहीं हो सकी। जैसे — करुणालय, विश्वामित्र, उन्मुक्त- उर्वशी, (जानकी वल्लभ शास्त्री) और इरावती। जिन गीतिनाट्यों में अन्तर्द्वन्द्व बड़ी सजगता से अंकित हुआ है, उनमें तारा, मत्स्यगन्धा, अन्धायुग, संशय की एक रात प्रमुख हैं।

प्रवृत्त्यनुसार प्राप्त अन्तर्द्वन्द्वों का विभाजन किया जा सकता है जैसे —कुप्रवृत्ति से सुप्रवृत्तियों की ओर चलने वाले अन्तर्द्वन्द्वों की दृष्टि से राधा, स्नेह या स्वर्ग, उत्तरप्रिय दर्शी एवं सद्वृत्ति की ओर उन्मुख अन्तर्द्वन्द्वों प्रधान गीतिनाट्यों में करुणालय, तारा, मत्स्य गन्धा, विश्वामित्र, पाषाणी, तथा प्रतिहिंसा के कारण असत्प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने वाले अन्तर्द्वन्द्व प्रधान गीतिनाटयों में अन्धायुग, द्रौपदी, कर्ण, गुरुद्रोण का अन्तनिरीक्षण इत्यादि

---

1 अग्निलीक , भारतभूषण अग्रवाल, पृ० संख्या — 65

प्रयुक्त है। कहना नहीं होगा कि गीतिनाट्यकारों ने जिन अन्तर्द्वन्द्वों का उद्घाटन किया है वे संबन्धित पात्रों की नितान्त एकान्त वैयक्तिक अनुभूति हैं जिन्हें नाट्यकारों ने मनोविज्ञान सम्मत तथा मानवीय धरातल की सहज संवेदना तथा घात प्रतिघात के रूप में उपस्थित कर अपनी तीव्र सूझ, मानवतावादी दृष्टि का परिचय दिया है।

पंचम अध्याय

गीतिनाट्यों की भाषा

शिल्प-विधान

(अ) शब्द-चयन (ब) मुहावरे (स) गुण (द) अलंकार तथा

(य) संवाद-योजना

पंचम अध्याय

गीतिनाट्यों की भाषा-शिल्प एवं संवाद योजना

भाषा :—

भावात्मक अनुभूतियाँ जब वाणी के कलात्मक सौन्दर्य से ओत-प्रोत होकर संगीत की सरस लय या गति, यति के साथ अभिव्यक्त होती हैं, तब इस अभिव्यक्ति को काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष या कलापक्ष कहते हैं। कवि में जितनी गहन अनुभूति होगी, अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट होगा। इसके लिए अनेक उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है। भाषा, गुण, अलंकार, छन्द इत्यादि का विवेचन शिल्प-विधान के अन्तर्गत होता है।

भाषा ही मौन भावों को मुखरित करती है। वह ही गीतिनाट्यकार साहित्यकार की प्रतिभा का उद्‌योतन कराती है। उसके संचित ज्ञान-राशि की शक्ति है। वह ऐसी चतुर चितेरी है, जो जीवन की मार्मिक अनुभूतियों का रागात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

प्रस्तुत अध्याय में गीतिनाट्य की शास्त्रीय मर्यादा का ध्यान रखकर उसके शिल्प-विधान का विवेचन किया जा रहा है। इसमें भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों की व्यावहारिक व्याख्या नहीं हो रही है। इसके अन्तर्गत गीतिनाट्यकार के कुशल शब्द-चयन, संयत-पद-योजना, मुहावरे गुण- अलंकार, छन्द, गीतिनाट्यों की भाषा का ही उद्‌घाटन होगा।

शब्द-समूह :— सार्थक शब्दों के प्रयोग में गीतिनाट्यकार जितना पटु होगा, प्रेषणीयता भी तदनुरूप सामर्थ्यवान होगी। भाषा में शब्द-समूह का सर्वाधिक महत्व होता है।

(1) प्रसाद — सान्ध्य, नीलिमा, शैवाल, तरंगायित, हिरण्मयवर्म, तमिस्रा, नियन्ता।

(2) मैथिलीशरण गुप्त — प्रच्छन्न, शरण्य, विच्छेद, रुधिराक्त, करुणोद्रेक, म्रियमाण, मौक्तिक शुल्क, कोध, विद्‌युज्ज्वाल, विच्छिन्नाघात, क्रव्य(अनर्थ) करुणावरुणालय, विधेय, औदार्य, सद्म, अकु, सारल्य, प्रागल्भ्य(लीला)।

(3) निराला — महोर्मि, रथ्योद्‌यान, नैश, मन्मथ, दिङ्मण्डल, उद्‌भासमान, सूक्ष्मातिसूक्ष्म।

(4) सियारामशरण गुप्त — प्लावन, रव्याम, शस्त्राहत, हरितच्चुता, रौप्य, निर्वापित, दीप, छत-छिन्न, अविश्रान्त, अनुपथ, आवर्त, तेजोदीप्त, पै-नैश्चल, स्फीत, दुरन्त, प्रमत्त-उत्सार, प्रवीरोचित, शौर्य-पूर्ति, तन्द्रित, निर्वेद।

(5) भगवतीचरण वर्मा— अविकल, मनोभाव, असह्य, प्राधान्य, अभीष्ट, उत्फुल्ल (तारा) विक्षुब्ध, विकम्पित, मूर्तिमान, क्रीडत, निःशंक, अनुरंजित, हरीतिमा, चेतन, धन्या, (कर्ण) आरक्त, निष्काम, अनवरुद्ध, रुद्ध, आहत, कम्पित, स्वयम्वरा, प्रज्वलित, क्रन्दन, प्रीतवास (द्रौपदी)।

(6) सेठ गोविन्ददास— प्रतीची, विभ्रान्ततम, मनःकामनाएँ, शर्वरी, श्वासानिल, अनन्ता, ज्योतिर्मय, उदग्र, अजरामर, अखण्ड, विद्युद्द्युति।

(7) उदयशंकर भट्ट— शीर्ष, कठिनतम, विराट्, अज्ञेय, उद्भ्रान्त, स्फीत, रक्ततम, सौख्य, लास्य, प्रतिलक्षित-(विश्वामित्र) गुंजित, उल्लसित, प्रफुल्ल-फुल्ल, विश्व विनर्तित, मुक्त-मुक्ततारिका, प्ररोह व्योम उद्दाम, शिंजिनी, कर्माकर्म (मत्स्यगन्धा) छिन्नमूल- समुज्ज्वल, आकण्ठ, वज्र-कीलित, ताडिता, विस्फुरित (राधा), सर्जन, दृक्, प्रसार, शनैः शनैः, अहर्निश, दक्षिणायन, कुंचित (अश्वत्थामा) दुरभिसन्धि, अनावृष्टि, प्रतिगामी, अज्ञान, गर्विणी, उज्ज्वलतर ग्रीष्मान्त, विनिर्मित, पुंजीभूत, हस्तामलक, वज्र-मुष्टि (अशोक वन-बन्दिनी) त्रस्त, प्रतिज्ञात, अयाचित, मूढन्मुख, विद्ध, अवरुद्ध, गह्वर (गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण)।

(8) सुमित्रानन्दन पन्त— क्रन्दन, द्रवित- मण्डित, मर्यादित, कुटज, स्मित, संतप्त, हरसिंगारचन्द्रिका, (मेघदूत) उन्मद, अतन्द्रित, आशाऽकांक्षाएँ, मर्मरित, महिमोज्ज्वल, निभृत रत्नछायाओं, प्रहसित, द्रोणी, सुप्तात्मा, निर्वाक्, ऊर्ध्व, (रजत-शिखर) हिल्लोलित, विस्फारित, आत्म-मुह्यता, स्पंदित, पुष्पस्नात, विपाटित, मर्त्य- लोक, विलुण्ठित, वर्धित, पुनरुज्जीवित-(शिल्पी), प्रेमार्द्र, गुंजरण, प्रक्षालित, छायाकृतियाँ, ऊर्ध्वांक, निम्नग, दृगपात, सरीसृप, महाऽगमन, हिल्लोलित- अप्सरा) नीराजन, सांस्कृतिक, संचय, मनःवत्, निभृत, तमसमय, मधुरिमा, यशः काय, गुंजरित, निःस्वर, वैकुण्ठ (सौवर्ण) बनती, पल्लवित, अलस-श्रान्ति विद् हिल्लोलित, अमरतावादी, तारकवत्, स्वान्त, सुखायः (स्वप्न - और सत्य) अतिक्रम, ज्योतिरंगन, निःसीम, तडित्-तरंग, अवगाहित, आरोहों, ध्यानावस्थित, रत्नारुण, आस्य, वैश्व-नियम, अमिताभा (दिग्विजय)

(9) धर्मवीर भारती— ह्रासोन्मुख, विगलित, कोमलतम, रत्न-जटित, रमणीय, गुम्फित, वैयक्तिक आनुमानिक, समर्पित, मनोविकृत, कृष्णार्पण, उद्धत, बर्बर, विषादग्रस्त, ध्वस्त अवध्य।

विदेशीशब्द

जयशंकरप्रसाद — मस्तानी, जल्दी, मौजी, उस्ताद, झूठा।

मैथिलीशरण गुप्त — जादू-टोना, मरम्मत, कैफियत, पागल, आखिर, अकड़, धोखा, बयार, सर्द, बदनाम, ख्वारी, बेदर्दी, जुआ, (अनघ) पंजा, हत्यारे, झाड़, माल, हक्का-बक्का, छक्का, मसान, (सीता)।

निराला — कायर, कलेजा, धड़कते, गोता, आजतलक, नजर, हरगिज, हजारों, दम

सियाराम शरण गुप्त — घमासान, टक्कर, चिट्ठी, धधक, झलक, हाँफ, काँटा, पुकार, गरज, तोप, याद, गोले, कराह, दूरी, ठिकाने, बेड़ी, तलाक।

भगवती चरण वर्मा — चाह, बाधाओं, भूल, गहरा, खेला, चीत्कार, कुलटा (तारा) मुखारें, लोहू, उजाड़ (कर्ण) जलन, कायर, पाँसा, दाँव, (द्रौपदी)।

सेठ गोविन्द दास — मार-काटा, फुफकार, फाड़ पैतरे।

उदयशंकर भट्ट — स्याहियाँ, पत्थर, कमजोरी, प्यारी, उफनती, बिजलियाँ, अक्खड़, धोखा, (विश्वामित्र) कलम, बुखार, (मत्स्यगन्धा) बदली, पागल, उफन (छाया) पुकार, घबराता, (मदनदहन) आग, ढीठ, महल, कमजोरी, (अशोक वन-बन्दिनी) जी-जान, नगाड़ा, जमीन, निशान (गुरुद्रोण का अन्तनि0)।

सुमित्रानन्दन पन्त — पागल- भूल, सुलग, बदलता, याद, मसि, लूट, उफ सवार, मुर्दों, घायल (रजतशिखर) गुलसुम, फिर्रा, बेकाम, धड़कन, गलबाँही, हाय, लथपथ (शिल्पी) फीके, पागल, पुकार, खण्डहर (आसरा) दरार, कायर, बर्फ ठण्डे, तूफान, आँधी, (सौवर्ण)।

धर्मवीर भारती — इंसान, मंजिल, नक्शा, रेगिस्तान, खून, मुर्दा, हजारों, कदम, अजब, लोथड़ों, शान, भीड़, आवाजें, सितारों, जिन्दा, बदबू, बदल जगह, बन्दूक, गड़बड़, तड़प, वर्दी, आसमान, खून, गोली, लाश, खुद, बेकाबू, आखिर, घबराहट, मरघट, कम्बख्तो, फैलादी चादर दीवार, सिपाही, जिन्दा, बेशर्म, झोपड़ी, मौके, इन्तजार, गुफा, जर्रा-जर्रा, इतनी नफरत, (सृष्टि का आखिरी आदमी) ज्यादा, अजब सूना, गलियारा, फर्शों, बोझ, मेहनत, मौत, खबर, खामोशी, बाजू, पोशाक, नफरत, सलाह, पसलियों, बाकी, बारीकी, खास, दासता जिल्लत, जख्म, खोटा, तीखी, फर्क, (अन्धायुग)।

नरेश मेहता — कुनबा, बाढ़।

सिद्धनाथ कुमार — ख़ालिस, शायर, शक्ल, सिसक, मुल्क, आदम, ताजमहल, मरघट उफ़, बाकी, मर्दों, हत्यारों, धड़कन, रग, लहू, (सृष्टि की सांझ) जरा, जमीन, बिजलियाँ, तलवार, उफ़नाते, ट्रैक्टर, शबनम, पैगम्बर शेक्सपियर, शॉफ, क़िस्सा, किस्मत, (लौहदेवता) जिन्दगी, चिड़ियाँ, कहानी, खुशी, तूफ़ान, आलीशान महल, (संघर्ष) तड़प गम, टुकड़े, तीखे, दुनिया, (कवि)।

रामधारी सिंह दिनकर — गला, पुकार, तस्वीर, उफ़ प्यार, फीकी, दर्द, बेचैन, आवाज।

लक्ष्मीनारायण लाल — आखिरकार, बन्दी, जवानी, कारागार, दीवारें, होश, पर्दा, शोर, झूठ, शरीर, किस्से, मुट्ठी, गली, धूप, तड़पना, तूफ़ान, चीख़, धोखा, दर्द, आवाजें,

दुष्यन्त कुमार — ख़ालिस, हक़, ज्यादा, बदनामी, चोट, चाल, पागल, मशाल, ताज़ा, लाशें, महल, कंगूरे, गर्दन, फ़ौरन, खूब, सिर्फ़, रोज, चेहरा, जरूर, लायक, अलावा, नारेबाजी, जिन्दगी, रोशनी, हत्यारे, जरा उफ़ गलत, फ़सलों, बरबाद, जख्मी, मुर्दे।

जानकी वल्लभ शास्त्री — याद, मशाल, पागल, पसीना, फाँस, गला, धूल, बोझ, फंदा, जीना, उफ़नता, पहिचान, (इरावती)।

भारत भूषण अग्रवाल — आखिर, जानवर, थोड़ा, दम, आदमी, चैन, सिर्फ़, बुरा, उम्र, बेदर्द, झूठा, कलेजे, धूल, तड़पते, हल्का, धोखा, कसाले, लाचार, दीवाना, कदम, फुसलाते, बाजी, बियाबान, जंगल, सुनसान, ऊबड़ खाबड़, घाटियाँ, सौदा, महल, चकनाचूर, आनन, फानन, तमाम, हत्यारा, इनकार, बटेरा।

मुहावरे

जयशंकर प्रसाद — आँख उठाना, विह्वल होना, स्तब्ध होना, बरस पड़ना, ।

मैथिलीशरण गुप्त — बात लगाना, अपने पर हँसना, रंग बदलना, जैसा-बोना वैसा काटना पीछे पैर धरना, तन बदन की सुधि भुलाना, नेत्र चमकना, सिर-चढ़ाना, सिर धुनना, सिर खाना, माथा फिरना, लीक पीटना, साँप को दूध पिलाना, तलवार तौलना, नाकों चने चबाना, लाले पड़ना, जी जान पर खेलना, मुँह न मोड़ना (अनघ) छाती दुगुनी होना, काम पड़ना, आँखों की ज्योति होना, गिरगिट की तरह रंग बदलना, हक्का-बक्का होना, छक्के छुड़ाना (सीता)।

<u>सियाराम शरण गुप्त</u> :— आँखों पर उठाना, रणभेरी बजना, ऋण चुकाना, नयनों की ज्योति होना, शीश पर धारण करना, वीर गति पाना, चरणों में प्राण अर्पित करना, लोहा लेना, पीछे पैर हटाना, खेत सूना करना, घुल-घुल घुलना, हृदय भरा, टूट पड़ना, कलेजा रह जाना, प्राण हथेली पर रखना, जहर पीना, आँख प्यासी होना,।

<u>भगवती चरण वर्मा</u> — भार सौंपना, आँख झेंपना, हृदय धड़कना, घुल-घुल मरना, चूर चूर होना(तारा) आसमान काँपना, विजय का वरण करना, हिंसा की चिनगारी सुलगाना, मंत्रमुग्ध होना, सपनों में खोना, ऋण चुकाना, प्राणों की भीख माँगना, दाँव लगाना, पीछे पड़ना, लोहा लेना, मुख मोड़ना(कर्ण)।

<u>सेठ गोविन्ददास</u> — जी जलाना, नाक भौं सिकोड़ना, खिल्ली उड़ाना, आग में घी पड़ना, छाती कड़ी करना, दाँव लगाना, आँखें फाड़ कर देखना, पाँसा पड़ना, दाँत पीसना, भौंह टेढ़ी करना।

<u>उदय शंकर भट्ट</u> — स्याही फिरना, बेसुध होना, नाच नचाना, गिरगिट-सा रंग बदलना, बिजली छू जाना, आँख फाड़कर देखना, आँखों में घूमना, हृदय काँपना, पीला पड़ना, हृदय में आग लगाना(विश्वामित्र) हृदय सिहरना, पलक बिछाना, बोझा उठाना, चित्त घूमना, प्राण उबलना, विमूढ़ हो जाना(मत्स्यगन्धा) हृदय का सुख छीन लेना, आँखों में आँसू भरना, हृदय जलना, स्वप्न में खोना, भार होना, हृदय डूबना, हृदय मचना, मन काँपना, प्राण तिलमिलाना पैरों तले धरती खिसकना, पानी-पानी हो जाना, तिल तिल कर गलना(राधा) धीरज खोना, हृदय घबराना, आँखों में अन्धकार छाना, आँख फड़कना, लम्बी-लम्बी साँस छोड़ना, आँख बचाना, आग में जा पड़ना, नेत्र लाल होना, राख हो जाना([illegible]) तिल तिल कर जलना, चींटी के पंख उगना, घर फोड़ना, ढोल पीटना, पत्थर की लीक, मणि कांचन योग, सूर्य को दीपक दिखाना, साँस फूल जाना(अशोक वन बन्दिनी) पक्ष लेना, धर्म की दुहाई देना, गर्व से फूल उठना, डंका पीटना, गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण)

<u>सुमित्रानन्दन पंत</u> — रोमांचित होना, हाथ बटाना, (रजत शिखर) माथापच्ची करना, सिर धुनना, आँख मिचौनी खेलना, (शिल्पी) फीका होना, गिरगिट-सा रंग बदलना(अप्सरा) चकित रह जाना, गागर में सागर भरना, दुर्ग ढह जाना, उथल-पुथल मचना, रीढ़ तोड़ना, पौ फटना, स्वप्न देखना, आकाश कुसुम होना, रंग बदलना, बाँहों में बाँधना, हँसी उड़ाना, (सौवर्ण) स्फटिक देखना, आँख मिचौनी खेलना, पहेली बुझाना, आँख मूँदना, (स्वप्न और सत्य)।

<u>धर्मवीर भारती</u> — करवट बदलना, दरार पड़ना, चेहरे पर स्याही छा जाना, गला घोंटना, चुटकी में मसल देना, हाथ आजमाना, कदम अड़ जाना, (सृष्टि का आखिरी आदमी) चूड़ियाँ उतारना, दम तोड़ना, आँखों में पर्दा छा जाना, जीवन का दाँव लगाना, अभिमान टूटना

<u>शिवप्रसाद कुमार</u> — आँखों में पर्दा पड़ना, आँख खोलना, नींव डालना, साँस घुटना, लहू उबलना, (सृष्टि की आखिरी साँस) सिहर उठना, दीवार खड़ी करना (लौह देवता) आँख फेरना तार-तार बज उठना, जीवन से भागना, धरती डोलना, आसमान बर्राना, आकाश फटना,

<u>रामधारी सिंह दिनकर</u>— धूम मचाना, देह ढीली करना, आग लगाना, तरस खाना।

<u>लक्ष्मी नारायण लाल</u> — घुटने टेकना, हाथ पर हाथ रखे बैठना, चुनौती देना, प्राणों की बाजी लगाना, गला घोटना, दम तोड़ना, आँख पथरा जाना,।

<u>दुष्यन्त कुमार</u> — कालिख पोतना, श्री गणेश करना, आँख फड़कना, जी अकुलाना, आँखों में अँधेरा छा जाना, रोम-रोम काँपना, पेट बजाना, धरती लाल हो जाना।

<u>जानकी वल्लभ शास्त्री</u> — पत्थर पिघलना, हृदय डोलना, मुख के लाले पड़ना, कसाले सहना, बाँह-पकड़ना, बल खाना, तिल-तिल कर जलना, नयन जुड़ाना, (गंगावतरण) पाँव पड़ना, तलवे सहलाना, नेह लगाना, अंगूर खट्टे होना, बैरी के खट्टे-खट्टे होना, चैन न पड़ना, डींगडींग हाथ मारना, लीक पीटना, (उर्वशी) पानी में आग लगाना, जीना दूभर होना, मन खिलना, रूठ बैठना (पाषाणी) गले की फाँस बनना, तन में आग लगाना, आँख बचाना, दाँत खट्टे करना, आँख मिलाना (इरावती)

<u>भारतभूषण अग्रवाल</u> — कलेजे पर पत्थर रखना, बैर न मिलना, पैर भारी होना, हाथ बढ़ाना, दिन लद जाना, अँधेरे में रखना, पान चबाना, हाथ की कठपुतली बनना, पत्थर की लकीर होना, दम भरना, मन मारना, मन फूलना, दंग रह जाना साँस गिनना, मन रखना, आँख के तारे होना, हक्का-बक्का रह जाना।

<u>अलंकार</u>

यह शब्द अलं – कृ के योग से बना है। इसकी व्युत्पत्ति 'अलं करोतीति अलंकार अथवा अलंक्रियतेऽनेनत्यलंकार की गयी है। दण्डी ने काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहा है।[1] वामन [2] काव्य सौन्दर्य को ही अलंकार मानते हैं। कुन्तक का कथन है कि विदग्धों की कथन भंगी वक्रोक्ति और वही अलंकार है।[3] आचार्य विश्वनाथ शब्द और अर्थ के शोभातिशायी अस्थिर धर्मों को अलंकार कहा है।[4] काव्य में अलंकारों की उपादेयता तथा उसके स्थान के संबंध में इतना निभ्रान्तरूप से कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य के अनिवार्य गुण होते हुए भी उसके सौन्दर्य को बढ़ाने में ~~सक्त~~ सहायक होते हैं। जैसे आभूषणों से बोझिल युवती सम्पन्नता की प्रतीक हो सकती है, उसी प्रकार अलंकार बोझिल काव्य कवि की आडम्बर प्रियता का सूचक है।

1- काव्यादर्श, 2/1
2- काव्यालंकार- सूत्र वृत्ति 1/1/2
3- वक्रोक्ति जीवित 1/10
4- साहित्य दर्पण, 10/1

अलंकार के वर्गीकरण के संबंध में अनेक मत हैं। शब्द अर्थ और उभय अलंकार, अर्थालंकार के वर्गीकरण के अनेक आधार हैं। यहाँ पर हम डा० वचन देव कुमार के शोध-प्रबन्ध 'रामचरित मानस में अलंकार-योजना' के अनुसार गीतिनाट्यों में प्राप्त अलंकारों का विवेचन कर रहे हैं। उन्होंने रुय्यक के वर्गीकरण को ही मान्यता दी है। शब्दालंकार, अर्थालंकार – सादृश्यमूलक -विरोधगर्भ, न्यायमूलक, शृंखलामूलक एवं गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार तथा वर्गीकरण बहिर्गत अलंकारों का उल्लेख उन्होंने अपने ग्रन्थ में किया है।[1]

कहना नहीं होगा कि गीतिनाट्यों में अलंकारों का प्रयोग प्रयासबद्ध रूप में नहीं हुआ है। यत्र तत्र प्राप्त अलंकारों का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

<u>शब्दालंकार :</u>— ~~वेदानुप्रास~~ —— <u>अनुप्रास</u> ——

<u>छेकानुप्रास :</u>— जहाँ व्यंजनों की एक बार आवृत्ति हो।

(1) पिता परम गुरु होता है।[2] (2) विषम विश्व का योना है।[3]

(3) पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।[4]

(4) सुरभि-समीरण में विहग कल-कूजन ध्वनि।[5] (पंचवटी प्रसंग)

(5) ये नव नवी तड़ाग तरंगित हैं जो अहरह।[6] (6) पारिजात पादपों से है हराभरा।[7]

वृत्यनुप्रास :— जहाँ व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति हो —

(1) धर्म बना बहुमूल्य बताता विभव को।[8] (2) उनका सारा शौर्य समर में सो जायेगा।[9]

(3) निरख वेदना विकल करे मुझको सदा।[10] (4) प्रबल प्रेरणा प्रथम प्रेम की प्रवाहित।[11]

(5) मन्द मारुतमलय मद से।[12] (6) यह समय असीम अखण्ड और अविभाजित।[13]

(7) करुणा की किरणें स्वप्नों को।[14] (8) वृष्टि बिना बन्दि बुझे उपल पिघल जाए।[15]

(9) सुजला सुफला सुरसा।[16]

<u>श्रुत्यनुप्रास :</u>— जहाँ एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों का प्रयोग हो —

(1) सुन्दर बने तरंगायित ये सिन्धु से।[17] (2) कलित कपोलों में प्रतिबिम्बित ललित लोल कुण्डलहैं।[18]

(3) फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल।[19]

1-रामचरित मानस में अलंकार योजना, (विषयतालिका) 2- करुणालय, पृ० 17

3- अनघ, पृ० 4-सीता- पृ० 24 5-परिमल-पृ०215

6-उन्मुक्त पृ० 53 7-स्नेह या स्वर्ग, पृ० 22 8- करुणालय, पृ०23

9- सीता, पृ०24 10-अनघ, पृ०118, 11-तारा, पृ० 57

12-विश्वामित्र, पृ०33 (विश्वामित्र और दो भावनाट्य) 13- कर्ण (त्रिपथगा) पृ018)

14-कवि-सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ० 211 15- गंगावतरण, पाषाणी, पृ017

16-उत्तरप्रियदर्शी, पृ026, 17करुणालय, पृ012, 18-सीता, पृ074 19-पंचवटीप्रसंग, परि० 224

(4)कमल के मकरन्द में पीता भ्रमर मधु मन्मन री।[1]

(5)रोती सी लाल लाल होती खूब जलती है।[2]

(6)नत मेरा हृदय अवतंस सन्धि को उन्मुख।[3]

यमक :— जहाँ सार्थक भिन्न अर्थ रखने वाले ~~शब्दों~~ ध्वनियों की आवृत्ति हो —

(1)पर-धर करके तू उड़ न जाय/पर बन कर पर से मुड़ न जाय।[4]

(2)सुमन सम उसको मन में चुन लूँ।[5] (3)किन्कर कर स्पर्श से।[6]

(4)लौह हो सुवर्ण-वर्ण कुन्दन बन जाए।[7]

(5)करते रहते सभी रात भर दीर्घ विदीर्ण तिमिर को।[8]

(6)विसुध-सुधा वसुधा पर झरना चाहती।[9]

वीप्सा :— मनोवेगों के प्राकट्य हेतु एक शब्द की जहाँ आवृत्ति हो —

(1)त्राहि-त्राहि करुणालय।[10]

(2)राम, राम, हा घोर अनर्थ।[11] (3)भ्रम है भ्रम है निपट पाप की प्रेरणा।[12]

(4)माता माता यह तुमने क्या कह दिया।[13]

(5)तेज तेज साँसे चलती हैं धड़क रही छाती है।

विजे, तू इस तरह कहाँ से बकी-बकी आती है।[14]

पुनरुक्त वदाभास :— भिन्न आकार वाले शब्दों के अर्थ में पुनरुक्ति मालूम हो —

(1)अभिलाषा हूँ इच्छाओं की अंग हूँ।[15] (2)मैं निष्कलंक मैं अकलुष मैं व्रतधारी।[16]

(3)विह्वल थी सारी सृष्टि वहाँ कातर थी जग की दृष्टि महा।[17]

(4)ये पर्वत रसमग्न, अहा कितने प्रसन्न लगते हैं।[18]

श्लेष :— श्लिष्ट शब्दों के द्वारा अनेक ज्ञापन श्लेष अलंकार है।[19]

(1)जीवन की आकुल आशा जब त्रस्त हो।[20] (2)ईश्वर करे भवानी से तुम आज योग्य वर पाओ।[21]

(3)मानस सरोवर के स्वच्छ वारि-स्पर्श समूह।[22] (4)जीवन सदैव सर्वथैव गतिशील है।[23]

(5)मेरी प्रत्येक विजय जीवन की एक हार।[24] (6)यह वंश द्रुम दावा लगाने जा रही है।[25]

(7)स्नेहहीन प्रदीपिका है जल रही।[26] (8)यो रत्न प्रसू हो रसा पुण्य प्रसवा हो।[27]

(9)मैं सुमनों की हृदय कहानी सुन रही।[28]

1-विश्वामित्र, (विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ033) / 2-मत्स्यगन्धा, वही, पृ059

3-इरावती, पृ013, 4-लीला, पृ049, 5-अनघ, पृ023, 6-पंचवटीप्रसंग, (परिमल221)
7-यशोधरा, पावाणी, पृ017, 8-उर्वशी, 3अंक 59, 9-इरावती, पृ024, 10-करुणालय 32
11-अनघ, पृ048, 12-तारा, पृ056, 13-द्रौपदी(त्रिपथगा पृ84 14- उर्वशी, अंक1पृ020
15-तारा, पृ066, 16-कर्ण(त्रिपथगा पृ018) 17-अनन्त-कृत-न्यायासमाप्त, पृ081, 18उर्वशी125
19-रामचरित मानस में अलंकार योजना, पृ060, 20-करुणालय, पृ023, 21-लीला, पृ073
22-पंचवटी0, (परिमल 221) 23-उन्मुक्त पृ024, 24-द्रौपदी(त्रिपथगा 110)

<u>वक्रोक्ति</u> :— जहाँ वक्ता के कथन को श्लेष या काकु के कारण श्रोता अन्य अर्थ ग्रहण करे —

(1) क्या मेरी आँखों में भरता गरल है/या कि सुधा जिससे तुम मर कर जी रहे।[1]

(2) अरे राजमाता समर्थ कुन्ती यहाँ/ सूत पुत्र से लेने आई दान है।[2]

(3) दाता को बिकवा कर छोड़ आये विश्वामित्र बड़े।[3]

(4) देखूँ कितना अभिमान कि कितना पानी।[4]

(5) साधु।साधु मेनके तुम्हारा भी मन कहीं फँसा है?
मिट्टी का मोहन कोई अन्तर में आन बसा है।[5]

(6) श्लेष — कहाँ व उच्च वह शिखर मान का जिस पर अभी विलय था।[6]

(7) काकु — सर्वदम देवान्तं प्रिय प्रियदर्शी निःशत्रु।[7]

<u>उपमा</u> :— जहाँ गुण धर्म की समानता के कारण दो वस्तुओं में तुलना की जाय —

(1) मान्धाता सम सदा विघ समय राज्य करो तुम।[8]

(2) सुन्दरता की सजीव प्रतिमूर्ति सा।[9] (3) मैं सदा धर्म पर दृढ़ जैसे ध्रुवतारा।[10]

(4) सामने उपस्थित-सा कुरुक्षेत्र फैला है।[11]

(5) चल दल सा हिल पड़ता उसका स्पन्दन।[12]

(6) समा गयी उर बीच बिखरा सुख संभार लता-सी।[13]

(7) केल फल-सा/सदा विनयी रहा।[14]

(8) मेरु शिखर पर गंगाधारा-सा यह लहराता हार।[15]

(9) मेरु शिखर से सुन्दर लगते।[16] (10) सभी मलिन मुख डरे-डरे से काँप रहे पीले पत्तों से।[17]

(11) उपमेय —अगम महिमा सिन्धु-सी है।[18]

(12) धर्मलुप्तोपमा — और दिखाई देते राजकुमार से।[19]

(13) वज्र सा कड़ा वह कौन।[20]

(14) हँसी बिजली-सी।[21] (15) मालोपमा — लाल-लाल ये चरण-कमल से कुंकुम से जावक से।[22]

पिछले पृष्ठ के शेष प्रतीक — 25— राधा, पृ0102, 26— पाषाणी, पृ0 94,
27— उत्तरप्रियदर्शी, पृ023 28— विश्वामित्र, पृ0 32

1-विश्वामित्र, पृ029, 2— कर्ण(त्रिपथगा) पृ0 23 3— लीला, पृ0 19
4- कर्ण(त्रिपथगा) पृ014, 5— उर्वशी, अंक1पृ011 6— उर्वशी, अंक3पृ077
7-उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 29 8— लीला, पृ022, 9—तारा, पृ061 10—द्रौपदी(त्रिपथगा) पृ080
11—कर्ण, पृ012 12—कर्ण(त्रिपथगा) पृ028, 13—उर्वशी, अंक2पृ031, 14—संशय0, पृ022
15-इरावती, पृ05 16—शिल्पी, पृ018, 17—मद नदहन(नयासमाज) पृ081, 18—करुणालय, पृ 38
19-करुणालय, पृ032 20—अनघ, पृ09 21—पंचवटी प्रसंग(परिमल) पृ024, 22—अन्वायुग, पृ022

(16) चली गई विस्मृति, अतीत-सी श्याम-सी/गत-सी घटिका, दिवस, रात-सी, वर्ष-सी।[1]

(17) रत्नमयी सी धरा यह/कुसुमिता श्यामला यह।[2]

(18) मैंने उन फूलों-सी वधुओं की कलाइयों से/चूड़ियाँ उतारी। (अन्धायुग पृ0 22)

रूपक :— उपमेय और उपमान में भेद मिटा देने पर उपमा ही रूपक अलंकार होता है —

(1) हे हे करुणा सिन्धु नियन्ता विश्व के।[3] (2) करता मधुस्नान सूर्य आज।[4]

(3) भव-नौका के नाविक है।[5] (4) बढ़ता हूँ माता के वात्सल्यामृत सागर में।[6]

(5) यौवन मदिरा से नाविक उन्मत्त है।[7]

(6) विरह-वह्नि के नवधूमी स्फुलिंग में/निज करुणा की आहुति डालो, डाल दो।[8]

(7) देखि चन्द्र-मुख पर फिर चिन्ता का घिरा राहु।[9]

(8) स्नेह-कणों के अक्षत उर्मिल।[10] (9) पर वह भी भटक गया असमंजस के वन में।[11]

(10) अपने अन्तर की अन्धगुफाओं के वासी।[12]

(11) अन्धेपन के अंधियारे में भटका हूँ।[13]

(12) चाटुकारिता-बीन बजे तो ठगी रहे हिरनी बनी।[14]

(13) उसके नंदनवन की सकल हरीतिमा/झुलस गयी उस स्वयम्बरा की घृणा के व्यंग्य वचन के शोलों के उत्ताप से।[15]

(14) कहीं कहीं विध्वंस कर गई काली रजनी।[16]

(15) दुरभिसन्धि पथ पर प्राणों की आस थे/युद्ध की दुर्दम श्वासों की वल्गा थी।[17]

(16) दग्ध कर मेरे प्राण विष-ज्वाल बान से।[18] (गुरु द्रोण का भी अन्तर्निरीक्षण)

(17) खुले गगन हिंडोरे पर किरणों के तार बढ़ाओ री।[19]

(18) परिस्थितियाँ धेनु हैं/दुहो इनको/निष्ठुर अँगुलियों से दुहो इनको।[20]

(19) युद्ध ऐतिहासिक फेन है।[21]

(20) युद्ध अनन्त का सागर/जिसके चरणों में आ पछाड़।[22]

1-विश्वामित्र, पृ0 34 2-बन्धुमती, (धूप के धान) पृ0 115

3-करुणालय, पृ0 31। 4-सीता, पृ0 53 5- अनर्ध, पृ0 29

6-परिमल, पंचवटी प्रसंग, पृ0 226, 7-तारा, पृ0 64, 8-विश्वामित्र, पृ0 35

9-द्रौपदी (त्रिपथगा) पृ0 73, 10-सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ0 85

11-अन्धायुग, पृ0 10, 12- अन्धायुग, पृ0 29, 13-अन्धायुग, पृ0 113, 14-पाषाणी, पृ0 99

15-कर्ण, (त्रिपथगा), पृ0 17, 16-उन्मुक्त, पृ0 8 17-अशोकवन तथा अन्य0, पृ0 1

18- अशोकवन0तथा0पृ0 83, 19-उर्वशी, पृ0 4अंक। 20-संशय की एक रात, पृ0 46

21-संशय की एक रात, पृ0 69, 22-उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 63

(21) व्यस्त हो गया उसमें/सुन्दर सर्वांग और पर्व,।[1]

(22) वह जीवन सरवर का पानी।[2]

(23) तोड़ चला बन्धन तन का मेरा मन मत्त पतंग।[3]

(24) लोचन भृंग छिपे भृंगों के/रूप कमल पर स्वयंवरा के।[4]

सन्देह :— प्रकृत में अप्रकृत के प्रति दोलित संशय को संदेह कहा गया है —

(1) या उमंग मन की थी या तरंग जल की थी/या फुहार मेघ की-सी छलकी छन्द गई।[5]

(2) सोने के कलश धरे निर्वासित स्वप्न हो।[6]

(3) अम्बर से ये कौन कनक प्रतिमाएँ उतर रही हैं।[7]

(4) यह छाया है कविता की या आत्मा का चित्र।[8]

(5) ये झेरियाँ यह चिंघाड़ यह घबराहट/यह क्या आया है?[9]

अपन्हुति :— जहाँ प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत की स्थापना की जाय वहाँ अपन्हुति अलंकार होता है।[10]

(1) नहीं कुछ नहीं तुम तो केवल प्रकृति हो।[11]

(12) राधिका थी और कोई नहीं, केवल कली का स्वप्न।[12]

(3) नहीं उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की।[13]

(4) युद्ध/मंत्रणा नहीं/ एक दर्शन है राम।[14]

(5) मैं पत्नी नहीं, प्रेयसी हूँ/ नहीं प्रणयी, नहीं प्रेमिका/राम की प्रेमिका।[15]

उत्प्रेक्षा :— जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाय —

(1) बिखुर गई है अल पद्मिनी मानों मधुप उड़े हैं।[16]

(2) मानो मधुप पराग सने।[17]

(3) वायु के झकोरे सेवन की लताएँ सब झुक जाती-भ्रमर बचाती हैं अंचल से मानो है छिपाती मुख।[18]

(4) है दिक् मण्डल मानों अंगार उगलते।[19]

(5) लगता है मानो नव आकांक्षा का तन धर/मूर्त हो उठा हो अनंग सदृश यौवन में।[20]

1-एकण्ठ विषपायी, पृ035, 2-मुक्ता-सरोवर, पृ012, 3-इरावती, पृ 39
4-ऋतुमती, पृ0117(धूप के धान)। 5- मत्स्यगंधा, पृ066, 6-स्नेह या स्वर्ण, पृ016
7-उर्वशी, पृ062 तैया, 8-इरावती, पृ020, 9-अग्निलीक, पृ026, 10-साहित्यदर्पण, पृ010/38
11-तारा, पृ 65, 12-राधा(विश्वामित्र और दो भावनाट्य) पृ0 149,
13-उर्वशी, अंक 1 पृ017, 14-संशय की एक रात, पृ071, 15-अग्निलीक, पृ046
16-लीला, पृ086, 17-अनध, पृ026, 18-परिमल(पंचवटीप्रसंग) पृ0224,
19-कर्ण(त्रिपथगा) पृ033, 20-शैलमी, पृ022, 21-

(6)लगता है मानो नव आयकिशा का तन धर/मूर्त होउठा हो अनेक बहुरूप यौवन में।

(6)भ्रमरों से भूषित कर उस प्रकार बना दिया/मानों मुख भागों पर कामदेव लिखा हो।[1]

(7)छिन्नभिन्न सिक्त कुसुम सम उज्ज्वल अंग-अंग झलमल था।

मानों अभी अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।[2]

(8)गन्धर्व, अप्सरा/उमड़-उमड़ आते हैं/अविश्रान्त/ये अमित प्रेत, तोड़कर मानों द्वार नरक कारा के।[3]

<u>तुल्ययोगिता</u> :— जहाँ अनेक उपमेयों अथवा उपमानों का एक धर्म वर्णित हो —

(1)निष्ठुर बन निश्चिंत भोगते बैठे रहे महल में

सुख प्रताप का यश का, जय का, कलियों का फूलों का।[4]

(2)जब राम बन गये थे/तो भरत वैरागी हो गए/और जब सीता वन में गईं/तो राम"।[5]

<u>दीपक</u> :— जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत में एक ही धर्म या क्रिया का वर्णन हो —

(1)मेघों में विद्युत सी, तरूवन में झंझा सी/अंधकार को चीर, नई चेतना छिटका ज्यों।[6]

(2)अब अब प्रकटे, घुरे, छिपे, फिर-फिर जो चुम्बन लेकर

ले समेट जो निज को प्रिय के क्षणिक अंक में देकर।"[7]

<u>प्रतिवस्तूपमा</u> — जहाँ उपमेय और उपमान के एक ही धर्म का वर्णन पृथक-पृथक शब्दों में किया जाय।[8]

(1)गन्ध है भिन्न भिन्न सुमनों/ काम है यों ही मनुज मनों का।'[9]

(2)दीप की लौ कान्तिमान हो जाती है जिस प्रकार बुझने के पहले कुछ पल।

चेतना संचरित हुई वर्ष में अन्तिम/उसने खोले निज नयन शान्त औ निश्चल।[10]

(3)आज म्लान मन दर्पण हुआ मुख कुहरे से तारक द्युति फीकी।"[11]

(4)पुरूषरत्न को देख न बच रह सकी आप अपने में

डूब गयी सुरपुर की शोभा मिट्टी के सपने में।"[12]

(5)रगड़े जाने पर ही हीरक चमकता/तपने पर ही होता कंचन शुद्ध है।'[13]

(6)उधर वे घुलते हैं।इधर हम तड़पते हैं।[14]

1-मदन दहन, (न्यासमाज) पृ083, 2- उर्वशी, अंक2 पृ020 3-उत्तरप्रियदर्शी, पृ035

4-उर्वशी, अंक3पृ032 5-अग्निलीक, पृ021, 6- शिल्पी, पृ0 15, 7-पर्व(त्रिपथगा)पृ040
8-उर्वशी, पृ025, अंक2, 8-साहित्यदर्पण, पृ0 10/49 के बाद 9-अन्तः पृ0 20

10- पर्व(त्रिपथगा) पृ0 40, 11- मदन दहन, (न्यासमाज) पृ0 81,

12-उर्वशी, अंक1पृ08, 13- अशोक वन बन्दिनी, पृ0 32 14- अग्निलीक, पृ0 21

दृष्टान्त :— जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो —

(1) सदुपदेश से दुष्ट शिष्ट होते नहीं/ गुड़ से सींचे निम्ब मिष्ट होते नहीं।[1]

(2) मणिरागमय लपटों में उर की आकांक्षाएँ/फूट पड़ी थीं सहसा तुमको घेर चतुर्दिक
मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यों नव किसलय।"[2]

(3) रविकुल की श्री जग ने पायी/कार्तिकेय ने ज्यों शंकर से।[3]

निदर्शना :— वस्तुओं का परस्पर संबंध सम्भव अथवा असंभव होकर अर्थ की प्रतीति के लिए आपस में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का बोध करें वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।[4]

(1) इसे देखकर मेरा मन क्यों मुग्ध हुआ विधि जाने
अथवा सच्चे रूपशील की महिमा कौन न माने।"[5]

(2) मरणासन्न मनुज पर जैसे हो जाता है व्यर्थ रसायन।"[6]

(3) कौन पताका बड़ा हो सदा सेनापति से/कौन ध्वजा संवर्धित हो सेनापति से।[7]

समासोक्ति :— जहाँ प्रस्तुत वस्तु के व्यवहार पर अप्रस्तुत वस्तु के व्यवहार का आरोप हो -

(1) बची हुई तृष्णा की शीतल आग हूँ।[8]

(2) यौवन का कन्यापन वह तब फिर किसे रुचेगा?
यहाँ देव मन्दिर में भी तब तक ही जन जाते हैं
जब तक हरे भरे, मृदु हैं पल्लव प्रसून तोरण के।"[9]

व्यतिरेक :— जहाँ उपमेय का उत्कर्ष या उपमान का अपकर्ष सकारण बतलाया जाय —

(1) कुछ आभा ही नहीं दृगों में, सरलता इतनी कहाँ मृगों में।[10]

(2) देवालय-सा दुर्गन्ध युक्त सरवर है/मानवता तो है भिखारिणी सा जीवित।[11]

(3) कुसुम और कामिनी, बहुत सुन्दर दोनों होते हैं/पर तब भी हा नारियाँ श्रेष्ठ हैं कहीं कान्त कुसुमों से
क्योंकि पुष्प हैं मूक और रूपसी बोल सकती हैं/सुमन मूक सौन्दर्य और नारियाँ सवाक सुमन हैं।[12]

(4) वो हमसे तो ये जानवर ही अच्छे हैं/ नियम से काम, नियम से आराम किसी बात की कोई चिन्ता नहीं। पर आदमी को कभी चैन नहीं मिलता सोता है तो सपने देखता है, जागता है तो छटपटाता है।"[13]

1-नीला, पृ0 35 2- रजत शिखर, पृ0 13 3- इन्दुमती(धूप के धान) पृ0 114
4-साहित्यदर्पण, पृ0 10/51, 5-नीला-पृ0 89, 6-मदन दहन, पृ0 82 (न्यायमार्ग)
7-[illegible], पृ0 79, 8- तारा, पृ0 65 9- उर्वशी, पृ0 84 अंक 4
10- अनघ, पृ0 21 11-[illegible], पृ0 29 12-उर्वशी अंक 3 पृ0 69
13- अग्निलीक, पृ0 12

विभावना :— जहाँ कारणाभाव होने पर भी कार्योत्पत्ति का वर्णन हो —

(1) तड़के बिना ही यहाँ कौंधती है तड़ित।[1]

(2) नहीं चढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरने को।
तब भी प्रतिष्ठानपुर वन्दित है सकल मुकुटों से
और राज्य-सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है।[2]

परिकरांकुर :— जहाँ विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग हो —

(1) रत्नाकर रत्नागार किन्तु उस पोत के।[3]

(2) हे रुद्र, हे भास्कर, हे अमित तेजस्वी/आपको प्रणाम है। वीरात्मा श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रीकण्ठ
पिनाकधारी अत्यन्त सूक्ष्म/रूप मृत्यु क्रोध रूप, आपको प्रणाम है।[4]

अर्थान्तरन्यास :— जहाँ सामान्य का विशेष या विशेष का सामान्य से पुष्ट किया जाय —

(1) किन्तु पुत्र तुम मुझे प्राण से भी हो प्यारे। हो सकते हैं प्राण कहीं प्राणों से न्यारे।[5]

(2) दीपक की लौ जाज्वल्यमान हो जाती है/है जिस प्रकार बुझने के पहले कुछ पल
चेतना संचरित हुई क्षण में अन्तिम/उसने खोले निज नयन शान्त औ निश्चल।"[6]

(3) सर्वगुण युक्त यह पक्ष बिना प्रेम के
ज्यों सद्भावरिक्त, अलंकारयुक्त काव्य हो।"[7]

(4) इसीहेतु विधि वश मैं तेरा याचक आज प्रिया से हीन
विफल याचना भली भलों से किन्तु खलों से सफल भली न।"[8]

(5) उफनाती नदियों की धारा जैसे तट को देती तोड़
मैं भी धर्म-अर्थ से उसमें दूँगा सब आकर्षण जोड़।
महत् कार्य को महत् पुरुष ही सदा लगाये जाते हैं।
तमोहरण के लिए सूर्य की शरण प्रजाजन जाते हैं।"[9]

(6) माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है?
गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देह की खोकर
पर, हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर।"[10]

1-स्नेह या स्वर्ग, पृ0 2 2- उर्वशी, पृ0 34, अंक 3, 3-स्नेह या स्वर्ग, पृ0 11

4- एककण्ठ विषपायी, पृ0 74, 5- सीता-पृ0 27, 6- पर्व (त्रिपथगा) पृ0 40

7-स्नेह या स्वर्ग, पृ0 37 8- मेघदूत, पृ0 4 (संयम) 9- मदन दहन-पृ0 8 (नयासमाज)

10-उर्वशी, अंक 1 पृ0 12

(7) पीटता जो ढोलजननी कीर्ति का/और था पुरुषार्थ था, मद गर्व का शून्य है वह, सत्य ही
उससे रहित/खोलता वह पात्र जिसमें अन्य जल।"[1]

<u>विरोधाभास</u> :— जहाँ दो वस्तुओं में वस्तुतः विरोध न हो, पर उसका आभास हो —

(1) मैं नारी हूँ कोमल मेरा अंग पर/प्राणों में है कुलिश समान कठोरता।[2]

(2) कितनी महानता भरी तुम्हारी लघुता।[3]

(3) आ जाता वसंत पतझर में/ प्राणों का स्पन्दन प्रस्तर में।[4]

(4) मैं हूँ दण्डित/लेकिन मुक्त हूँ।[5] (5) गूँगों के सिवा आज/और कौन बोलेगा मेरी जय।[6]

(6) तुम आदि हीन, तुम अन्त हीन, तुम हो पुराण, तुम हो नवीन।"[7]

(7) वह अवलोकन, चूल वयस कीजिससे छन जाती है,
प्रौढ़ा पाकरजिसे कुमारी युवती बन जाती है।"[7]

(8) अपने शोणित की अशरीर छुवन से (9) उत्तप्त कड़ाहों में खिल उठे/कोकनद कमल।"[8]

(10) तुम विष बरस सकि तो गहरी/अमृत करे जगपान।"[9]

<u>अर्थापत्ति</u> :— जहाँ दण्डापूपिका न्याय से अन्यार्थ का बोध हो —

(1) नितम्ब भार, चरण सुकुमार/गति मंद मंद/छूट जात धैर्य ऋषि मुनियों का
देवों —योगियों की तो बात ही निराली है।[10]

<u>कारणमाला</u> :— जहाँ पूर्व-पूर्व वर्णित वस्तु परवर्ती वस्तु के कारण रूप में प्रयुक्त हो —

(1) देखेगा तब जानेगा, जानेगा तब मानेगा।[11]

(2) सेवा से चित्त शुद्धि होती है। शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमांकुर।"[12]

(3) जीवन एक दुरूह साधना है यहाँ और साधना ही जीवन की शक्ति है।[13]

(4) उद्वेगों में शून्य शून्य में हृदय है और हृदय में आस शून्य ने ली निगल।"[14]

<u>प्रतीप</u> :— जहाँ उपमेय को उपमान या उपमान को उपमेय बना दिया जाय या उपमान की निन्दा की जाय वहाँ प्रतीप होता है —

(1) लहराते केश-जाल, जलद-श्याम से क्या कभी/समता कर सकती है
नील-नभ तड़ित्तारकाओं का चित्र ले।"[15]

(2) स्नेहलता तुल्य नहीं देव बालाओं में भी।"[16]

(3) है न प्रियंगुलता में वह छवि/हरिणी में वह दृष्टि कहाँ है।"[17]

1-अशोकवनबन्दिनी, पृ013, 2-द्रौपदी, पृ0 83, 3-कर्ण (त्रिपथगा) पृ025

4-शेफाली, पृ014, 5-6अग्न्यायुध, पृ0 127 6- मदन दहन (नयासमाज) पृ0 81

7-उर्वशी 2अंक पृ026, 8-उत्तरप्रियदर्शीपृ041, 54, 9- वरावती, पृ010,
10-परिमल-(पंचवटीप्रसंग) पृ0 225, 11-अनघ, पृ028, 12-पंचवटीप्रसंग, पृ0231,
13-द्रौपदी, (त्रिपथगा) पृ082 14-विश्वामित्र पृ037 (विश्वामित्र और दो भावनाट्य)

(4) पास आओ, तो बताऊँ प्रेयसी/स्वर्ग में तुमसी न रम्भा, उर्वशी।[1]

(5) जिसे देखकर पूर्ण चन्द्र की/सभी कलाएँ छिप जाती थी।"[2]

<u>अनन्वय</u> :— जहाँ एक ही वस्तु को उपमेय और उपमान दोनों ही बना दिया जाय —

(1) नारियों की महिमा-सतियों की गुण-गरिमा में
जिनके समान जिन्हें छोड़ कोई और नहीं।[3]

(2) किन्तु एक में तेरी समता उसको मिलती कहीं नहीं।[4]

(3) जो इरावती में, न किसी में।[5]

<u>उल्लेख</u> :— जहाँ एक ही वस्तु का विभिन्न प्रकार से वर्णन हो —

(1) धूम रहित तुम अग्नि शिखा की ज्वाल हो/उथलपुथल हो तुम शीतल मृणाल हो।[6]

(2) रति अनंग में, सुन्दरता में रूप हूँ। रागों में ध्रुव, सुखद भैरवी रागिनी।"[7]

(3) हिंसा की, नाश की, मरण की मैं प्रतिमा हूँ।[8]

(4) ब्रह्मा तुम विष्णु महेश तुम्हीं सतरज तम गुण अखिलेश तुम्हीं।[9]

(5) मेघ पवन में, घन में बिजली की प्रभा/मानव मन में रति, तू प्रेम तरंगिनी।[10]

(6) सुरपुर की कौमुदी, कलित कामना इन्द्र के मन की
सिद्ध विरागी की समाधि में राग जगाने वाली
देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली
रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, तृषा विश्वमयनर की।"[11]

(7) प्रतिमा प्रथम प्रणय की मन्दिर सुन्दरता का आदि
अन्विति सकल कलाओं की/ निश्छल निरुपम, निरुपाधि।[12]

(8) शब्द ही सत्य है, शब्द ही धर्म है/शब्द ही वेद है, शब्द ही ईश्वर है।[13]

<u>अतिशयोक्ति</u> :— प्रस्तुत वस्तु का असाधारण रूप में बढ़ा चढ़ा कर कहना —

(1) जो निज श्वास निकलते हैं अंग उन्हीं से जलते हैं।[14]

(2) यह रथ क्या मैं ब्रह्माण्ड उठा सकता हूँ।[15]

पिछले पृष्ठ के शेष प्रतीक — 15- पंचवटी प्रसंग(परिमल) पृ0224, 16-~~[illegible], पृ086~~ स्नेह या स्वर्ग पृ०2
17-~~[illegible]~~ मेघदूत, पृ042(संगम)

1-पाषाणी, पृ0 95, 2-एककण्ठविषपायी, पृ086, 3-पंचवटीप्रसंग पृ0220
4-मेघदूत(संगम) पृ042, 5-इरावती, पृ0 19, 6-तारा पृ062, 7-विश्वामित्र पृ0 26
8-द्रौपदी(त्रिपथगा) पृ0110, 9-मदन दहन([illegible]) पृ081 10-अशोकवन बन्दिनी, 40
11-उर्वशी, अंक1 पृ08 12-इरावती, पृ020-21, 13-अग्निलीक, पृ0 64
14-अनघ, पृ0 25, 15- कर्ण (त्रिपथगा) पृ0 35

(3) तीतियों की तरह तारक तोड़ दूँ/ जोड़ दूँ भू को गगन से जोड़ दूँ।[1]

(4) मेरे अश्रु ओस बनकर कल्पद्रुम पर छायेंगे। पारिजात वन के प्रसून आहों से कुम्हलायेंगे।[2]

मानवीकरण :— जहाँ उपमान को मनुष्यों के समान आचरण करते दिखाया जाय —

(1) रुक गया पवन कुछ सहमा-सा झुलसा-सा।[3]

(2) श्यामा सन्ध्या नील पात्र रत्नाकर-पुट में/ तना रही थी/बिखर रहे थे उसके कुन्तल।[4]

(3) नगर द्वार अपलक खुले ही है।[5]

(4) लम्बी साँस छोड़-छोड़ बहने लगी थी वायु।[6]

(5) मन्द कमल रोये थे कैसे/तड़पी थीं कलियाँ पत्तों पर
कुमुदनी कुढ़ती थी कमलों से/हंसिनि रोई थी हंसा से।[7]

कहना नहीं होगा कि गीतिनाट्यों में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है किन्तु अनुप्रास, उपमा रूपक बहु प्रयुक्त हैं। विश्वामित्र, उर्वशी(दिनकर) इरावती इस दृष्टि से सशक्त रचनाएँ हैं। नाट्यकारों ने हार्दिक अनुभूतियों के प्राकट्य को प्रमुख किया है। अलंकार पोषा बनाना उन्हें अभीष्ट नहीं, अतः कथाप्रवाह में अनायास रूप से अलंकार उल्लिखित हैं। पाश्चात्य अलंकारों में मानवीयकरण ही उल्लिखित है।

गुण

जिस प्रकार आत्मा की महत्ता प्रकट करने के लिए शारीरिक गुणों — त्याग, वीरता, उदारता की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार श्रेष्ठ काव्य के लिए रस रूप आत्मा के होते हुए भी उसको व्यक्त करने वाले शब्दों में भी गुण का होना अपेक्षित है। गुणों से युक्त होने पर काव्य की सरसता में वृद्धि अवश्यम्भावी है। मम्मट एवं विश्वनाथ ने तीन गुणों को स्वीकृत किया है —

माधुर्य :—

जहाँ किसी गुण के प्रभाव से चित्त आनन्द से द्रवित हो जाय अथवा जहाँ किसी काव्य में कर्णप्रिय सानुनासिक शब्दावली एवं यथासम्भव संगीतात्मकता हो, वहाँ माधुर्य गुण होता है। शृंगार, करुण व शान्त रस में माधुर्य गुण उत्कर्ष वर्धक माना गया है —

1- अशोक वन बन्दिनी, पृ० 17
2- उर्वशी, अंक 1 पृ० 17
3- वर्षा (त्रिपथगा) पृ० 33
4- उन्मुक्त, पृ० 85
5- अन्धायुग पृ० 26
6- स्नान वंदन, (मत्स्यगन्धा) पृ० 83
7- सूखा-सरोवर, पृ० 31

(1) हरे शालि के खेत पुलिन में रम्य हैं।
सुन्दर बने तरंगायित ये सिन्धु से,
लहराते जब ये मारुत-वश झूम के
जल में उठती लहर बुलाती नाव के।"[1]

(2) हे शाप-दग्ध दुष्यन्त लोक में, ही तुम रोओ-गाओ।
उनके गौरव की औरस्तनिक लघुता की हँसी कराओ।[2]

(3) सजल कमल से मंजुल मुख हैं, दृग युग जिनके चल हैं।
कलित कपोलों में प्रतिबिम्बित ललित लोल कुण्डल हैं।[3]

(4) मीन मदन फाँसने की बंसी-सी विचित्र नासा।
फूलदल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल/चिबुक चारु और हँसी बिजली सी/
योजन गन्ध पुष्प जैसे प्यारा मुख मण्डल।"[4]

(5) धरणी की यह सुमन मंजरी मृदुलान्दोलित। स्नेह-सुरभि की लोल लहर ही है उत्तोलित।"[5]

(6) खिले हुए कुसुमों का मधुर पराग हूँ विकसित यौवन की मैं नवी उमंग हूँ।
रूपराशि हूँ रूप-राशि की चाह हूँ। उठे और मिट जाय वही रस रंग हूँ।[6] (तारा)

(7) तभी तब मुझमें भी उल्लास और जीवन था, मेरे होठों पर चपल हास अनुरंजित
मेरे नयनों में रंग-बिरंगे सपने, रह रहकर होने लगते थे आन्दोलित।"[7] (कर्ण)

(8) अरे कहाँ हैं वासुदेव हे मेरे भ्राता, तुम अशरण के शरण निबल के हो तुम त्राता।
आज बहिन की लाज लुट रही जल्दी आओ, अभयदान का वचन दिया था उसे निभाओ।[8]

(9) स्निग्ध केश धूल भरे रहते थे उसके मैले और फैले हुए अस्त व्यस्त बखुआ।
चितवन थी न अब कब भरी उसकी, मीठे बोले वाले अब लोचन न लोल थे।"[9]

(10) ताल भूली रागिनी हूँ साज मेरा शिथिल सा री, मन्द मारुत मलय अब ले निशा का मुख चूमता है। साथ पहलु में छिपाये चन्द्र मद में झूमता है, कुसुम चषकों में किरण रस भर धरा मद पी रही है।"[10]

1- करुणालय, पृ0 12 2- अनघ, पृ0 35 3- लीला, पृ0 74
4- परिमल, पृ0 224 5- उन्मुक्त, पृ0 92 6- मधुपर्क, पृ0 66
7- त्रिपथगा, पृ0 15 8- द्रौपदी(त्रिपथगा) पृ0 106
9- स्नेह या स्वर्ग, पृ0 7 10- विश्वामित्र(विश्वामित्र और दो भावनाट्य) पृ0 33

(11) गुंजित पक्षी रव कुंज धाम/वन के मन-सी भर गई शाम/तन में मन में है काम काम।

उल्लसित सुमन उल्लसित पवन यह मुक्त सुमन, यह लग्न सुमन।[1] (मत्स्यगन्धा)

(12) आज कोकिल कण्ठ से भी सरस मीठा गान सुनकर

मुग्ध सी मैं हो गयी हूँ, हो गया तन-मन प्रफुल्लित।[2] (राधा)

(13) पुष्प सुरभि साकार हीन तनु हिम धवल कितनी कोमल स्निग्ध चाँदनी देह है?

अगरु धूम सी लहराती अलकावली और प्रतीक्षा से लम्बे नयन देखा है।[3]

(14) मदिर मदिर पुलक पुलक सी कुसुम खिली कली हुई सुरभि गंध भी तरंगित वनस्थली

सभी प्रदेश भर गए कुसुम कुसुम पराग से कि गा धरा उठी अचल बसन्त के सुहाग से।"[4]

(15) जब जब सपनों में पसार कर बाहु तुम्हें मिलने को आतुर।

उद्यत यक्ष खड़ा होता है, तब तब वन देवियाँ मध्य में

किसलय पुष्पों से ओसों के स्थूल बिन्दु बरसा देती हैं।"[5] (मेघदूत)

(16) यहाँ तितलियाँ रंग अंग भंगिमा दिखाती, वन अप्सरियों सी फिरती शोभा इंगित कर।

मौन ज्योतिरिंगण निशीथ के अन्धकार में, चमक चमक उठते प्रकाश के संकेतों से।"[6]

(17) गुंजित नीरव मुरली के स्वर,

कम्पित थर थर अम्बर सागर नृत्य निरत सब मुग्ध चराचर।

तृण तरु देते ताली मन मोहन वनमाली।"[7]

(18) मैं स्वप्नों के रथ पर आती मैं आलोक परस में जाती।

प्राणों के सौरभ से गुम्फित, छायातप में कंप लहराती।"[8] (अप्सरा)

(19) जाग रहे फूलों के कपोलों पर सोये/प्रेम मुग्ध बन्दी मधुकर उन्मन गुंजन कर।

पारिजात मंदार लताएँ लगी सिहरने/मुग्धाओं सी हरि चन्दन तरुओं से लिपटी।।[9]

(20) अस्य राशि सी श्यामल शत वनों में मुकलित/इन्द्रिय भृंगों से गुंजित मधु गन्धोन्मादन।

मदिरा की सरिताएँ बहती यौवन/उन्मद/अप्सरियों की नूपुर ध्वनि मथित करती मन।

अर्ध खिली कलियों सी कोमल देहलताएँ/ अंग भंगिमा भर नयनों को रखती अपलक।"[10]

(21) प्राणों की चिर चंचल परियाँ, शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ।

धरा स्वर्ग रचना मंगल में, करती आलिंगन है, नंदन अभिनन्दन है।"[11] (दिग्विजय)

1- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ0 57 3- अशोक वनबन्दिनी और अन्य गीतिनाट्य, 35

2- वही, पृ0 124 4- मदन दहन (नयागमाल) पृ0 84 5- संगम, पृ0 42

6- रजत शिखर, पृ0 5-6, 7- शिल्पी, पृ0 27 8- शिल्पी, पृ0 108

9- सौवर्ण, पृ0 36 10- सौवर्ण, (स्वप्न और सत्य) पृ0 77 11- वही, पृ0 104

(22) उस दिन जो अन्धायुग अवतरित हुआ जग पर
बीतता नहीं रह-रह कर दोहराता है।
हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं
हर क्षण अँधियारा गहरा होता जाता है।"[1]

(23) धरती फिर ऊपर उभर रही है।
एक स्वर्ग संगीत, घाटियों में घुँघुरू सा नाच रहा है।[2] (सृष्टि का आखिरी आदमी)

(24) कुसुमित अंग हुए रोमांचित, लाल हुआ गोरा चन्द्रानन
चरण रुके झुक गये नयन फिर मुग्ध हृदय पा कर चित्रांकन।"[3] (इन्दुमती)

(25) सीता मुख बनते/ सदा आँपी अँगुलियाँ
पर हाय/ यह बालू वाली जानकी
प्रति साँझ/ ज्वार बन्धु में समर्पित होती रही।"[4]

(26) तुम सुन्दरता की प्रतिमा हो/चंचल मादक/यह स्वर्णिम छवि/यह रूप जाल
ये चंचल बंकिम नयन/अधर पर खिलती यह मुस्कान।"[5] (सृष्टि की साँझ)

(27) बचनम में चमक रही अन्तर की आशा।
बालों के संग पलती जाती अभिलाषा।"[6] (लौह देवता)

(28) इसका अन्तर मचलेगा/आँखें चमकेंगी।
मुख की अंकित रेखाएँ/ अपने मौन स्वरों में गायेंगी।"[7] (संघर्ष)

(29) यह कौन परी/ जो नूतन कलिका-सी/आकर्षक स्निग्ध/मधुर
जो अनुपम मदिरा-सी/ मादकता बरसाती। (कवि)[8]

(30) याद आता है मदिर उल्लास में फूला हुआ मन।
याद आते हैं तरंगित अंग के रोमांच कम्पन।"[9]

(31) मिलन होय एक बार, पलकन धोऊँ पग पिया,
कर सोलह श्रृंगार, चन्दन चिता सँवार कर।"[10]

(32) प्रिया हीन संसार/ और मैं देख रहा हूँ।
अपने जीवन पर/ तम का विस्तार/ और मैं देख रहा हूँ।[11]

1- अन्धायुग, पृ० 130, 2- एकांकी विविधा, पृ० 200-1 3- धूप के धान, पृ० 121
4- संशय की एक रात, पृ० 3-4 5- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक-पृ० 67
6- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ० 94 7- वही, पृ० 109, 8- वही, पृ० 206
9- उर्वशी, अंक 3 पृ० 38 10- सूखा सरोवर, अंक 3 पृ० 86 11- एककण्ठ विषपायी, 71

(33) ये अपने स ही/अपने की हार।[1]

(मुग्ध नील नलिनी से अपने/ नयनों से/ ओ रात/

म्लात नीहार धुला उजला दुलार/कब होगी।"[2]

(34) ये गर्व स्वर्ण-कुण्डल मण्डित यह कण्ठ कम्बु।

सौन्दर्य सरोवर का सौरभमय यह विमल अम्बु।"[3] (उर्वशी, शाक्नी)

(35) कहाँ बयार लिए जा रही मैं तो हूँ बेहाल

सौरभ भरी तरंग सिंचित ये अंग उमंग उछाल।।"[4]

(36) स्वर्ण-ताम्र पिंजरित आम्र की, मंजु मंजरी आर्ई

पियें सुरभि केसर अशोक की गुन गुन गुन गुन गाई।"[5] (मंजरी)

(2) ओज :— जहाँ किसी रचना को पढ़ने या सुनने पर मन में उमंग, उत्साह आदि भावों का संचार होता हो और उसको जाग्रत करने के लिए कर्ण कटु शब्दों, संयुक्ताक्षरों- युद्ध-युद्ध धग्ग, आदि तथा [illegible] सामासिक पदावली का प्रयोग किया हो, वहाँ ओज गुण होता है। वीर, वीभत्स और रौद्र रस में इसकी स्थिति रहती है —

(1) जो है जलधि गर्व मैमन्त कहो सुमेरू करूँ मैं भग्न।

कहो उखाड़ूँ दिग्गज दन्त, अवनि उठाऊँ यथा अनन्त।"[6]

(2) मानव के दर्प से विक्षुब्ध आज पृथ्वी है मानव के क्रोध से विकम्पित है आसमान।

मानव की घृणा से दिशायें सहमी सी हैं, मानव की हिंसा में मृत्यु आज मूर्तिमान।"[7] (पर्व)

(3) हिंसक तू रे महाक्षोभ प्रतिपल परिवर्धित/तेरे मन में फूट पड़ा है दैत्य असंकित।

कितना वीर्य दुरन्त रूप तेरा दुर्दर्शन/नेत्रों से पिस तीव्रवन्हि का यह परिवर्षण।।"[8]

(4) आज पुरूष क्रुद्ध है, आज प्रकृति रूद्ध है।

आज कुरूक्षेत्र में, मचा विकट युद्ध है।"[9] (द्रौपदी)

(5) झंझावात क्या क्या नहीं फेंकता उखाड़ के वहाँ उठती है धरा और धराधर की।

धैर्य छोड़ ज्वालामुखी आग हैं उगलते आलोड़ित कल्लोलित हो उठता अम्बि की।"[10]

(6) तीलियाँ कीलहरू तारक तोड़ दूँ, जोड़ दूँ भू को गगन से जोड़ दूँ।

चाहते ही विश्व का घट फोड़ दूँ, इस कड़ाही मे भरा सागर सलिल।"[11]

1- एककण्ठ विषपायी, पृ० 71, 2- उत्तरप्रियदर्शी, पृ० 32

3- पाचाली, पृ० 37 4- वही, पृ० 90, 5- वही, पृ० 110, 6- तीता', पृ० 104

7- विपथगा, पृ० 11, 8- उन्मुक्त, पृ० 122 9- विपथगा, पृ० 109

10- स्नेह या स्वर्ग, पृ० 65 11- अशोक वन बन्दिनी, और अन्य गीतिनाटक-17

(7) गिद्धों के झपट्टों में मांस खण्ड उड़ते धीरे धीरे टूट रहे साहस के शीत शिखर।
धीरे धीरे टूट रहा इन्द्रियों का मधुर ज्ञान, अवरुद्ध करता था मार्ग श्वास तन का।"[1]

(8) क्रुद्ध काल रुद्र का सर्वनाश, वन्हियों की ज्वालाएँ फूट पड़ीं।
छूट पड़ी अग्निधार-अग्निधार दुर्निवार।
सृष्टि संहार कर मानो कालकूट की महानदी फूट उठी।"[2] (मदन दहन)

(9) लूट पीट छीन झपटी, हम भूत प्रेत हैं, सम्प्रदाय के कट्टरपंथी भूत प्रेत हैं।
रूढ़ि रीतियों के धर्मान्ध पिशाच प्रेत है, कायरता निष्ठुरता मानव की बर्बरता।
प्रतिनिधि है मानव धरती की बर्बरता का, भूमिकंप था वह मुर्दों के सम्प्रदाय का।"[3]

(10) सिंहासन लुट रहे टूटते छत्र रत्नप्रभ, ज्वलित तारकों से भू रज पर रूढ़ि रीति के।
दुर्ग ढह रहे विश्व भीति विश्वासों के गढ़, जिसकी संभृत उथल-पुथल मच रही धरा के।[4]

(11) कैसा हाहाकार तुमुल रणनाद हो रहा/शत शत वज्र कड़क उठते नभ को विदीर्ण कर।
प्रलय घोष से काँप रहे भू के दिगन्त वह/नरक द्वार खुल गया नाश का ज्यों जन भू पर।[5]

(12) धुँआ लपट, तोपें घायल घोड़े टूटे रथ रक्त मेद मज्जा मुण्ड,
खण्डित कबन्धों में टूटी पसलियों में
विचरण करता था अश्वत्थामा, सिंहनाद करता हुआ।"[6]

(13) धधकती उल्काओं से/ जो धरती का जर्रा-जर्रा झुलसा डालें पिघला डालें।
चूम रहा हूँ मैं अपने मुर्दा होठों से काला पत्थर
धधकों जो मुझे ज्वाला मुखि।"[7] (सृष्टि की आखिरी आदमी)

(14) हमारी जलती हुई आँखों में/ बँधी हुई मुट्ठी में
संकल्पित प्रज्ञा है, वर्चस्वी निष्ठा है।।[8]

(15) कंकाल ढेर के ढेर/ धरा पर बिखरे हैं।
लगता जैसे/सारी दुनिया मरघट बन
आज कराह रही।"[9] (सृष्टि की साँझ)

(16) उल्का आता पृथ्वी पर/झंझावात कभी उठता है।
हमें उड़ा देने को तुम सा इस भूतल से/वज्र घोष अम्बर करता है।
[illegible] धरती डोल डोल जाती है।"[10] (लौह देवता)

1- गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण, पृ0 104 2- नयासमाज, पृ0 85

3- रजत शिखर, पृ0 29-30, 4- सौवर्ण, पृ0 20 5- स्वप्न और सत्य(सौवर्ण, 89)

6- अन्धायुग, पृ0 81, 7- एकांकी विविध, पृ0 194

8-संशय की एक रात, पृ0 15 9- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ0 37-38

10- 10- वही, पृ0 88

(17) जो अट्टहास करता रहता है। अधरों में
जिसकी आँखों में/ लाल-लाल अंगारे/ जला करती प्रतिपल।
जो माँस रुधिर, हड्डियाँ/ हमारे तन का सारा जला-जला।[1]
एक प्रखर प्रज्वलित वन्हिमय विशिष्ट दृप्त मघवा को।
देता हूँ नैवेद्य मनुजता के विरुद्ध समर का।"[2]

(18) तूने द्वन्द्व युद्ध कर, अपने आपको ही टुकड़ों में बाँट दिया।
मैं नहीं टूटा। मैं सम्पूर्ण हूँ/ खड्ग तेरा टूटा। तू टूटा।"[3]

(19) आवर्ती पवन आग उगलेगी/ चूर्ण चूर्ण होगी गिरि मालाएँ
सिन्धु सूख जायेंगे। कह देना
होगा विनाश रुधिर वर्षण के साथ-साथ। पूरा ब्रह्माण्ड भस्म कर दूँगा।[4]

(20) मैं वज्र निष्करुण, अनुल्लंघ्य मेरे शासन में/ क्या पुण्य ममता निष्कासित।
मैं महाबल मैं सर्वतपी।[5]

(21) पग पग पर काँटे और विपदाएँ/ सुनसान बियाबान जंगली जानवर
गड्ढे और खोहें,
बरति, निर्झर औरउफनती नदियाँ/दुर्गम पहाड़ और ऊबड़खाबड़ घाटियाँ।[6]

(3) प्रसाद :— भाषा के प्रसाद गुण का संबंध उसके अर्थ बोध से है। जिन रचनाओं का अर्थ बिना बौद्धिक परिश्रम के समझ लिया जाय वहाँ प्रसाद गुण होता है —

(1) पिता परम गुरु होता है, आदेश भी, उसका पालन करना हितकर धर्म है।
किन्तु निरर्थक मरने कीआज्ञा कहो, कैसे पालन करने के है योग्य यों।[7]

(2) कौन धूप की बात कहे, लू लपट की बात रहे।
जो निज श्वास निकलते हैं, अब उन्हीं से जलते हैं।[8]

(3) अबल जन का जन्म सहन के अर्थ है, सोचो चिन्ता-भार वहन के अर्थ है।
किन्तु भीरु सु भाव भयंकर भाव है, उसका वैसा हृदय हीन बर्ताव है।[9]

(4) यदि प्रभो, मुझ पर सन्तुष्ट हो/ तो यही वर मैं माँगता हूँ।
माता की तृप्ति पर/बलि हो शरीर मन/ मेरा सर्वस्व सार/ [10](पंचवटी)

1- सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ023। 2- उर्वशी, अंक3, पृ0 113
3- सूखा सरोवर, पृ0 60-61, अंक 2 4- एककण्ठ विषपायी, पृ090,
5- उत्तरप्रियदर्शी, पृ046, 6- अग्निलीक, पृ0 49 7- करुणालय, पृ017,
8- अनघ, पृ0 25, 9- लीला-पृ0 31, 10- परिमल, पृ0 222

(5) कुसुम दूवीप है कुसुम दूवीप सर्वस्व हमारे/ हम सब है सर्वत्र सर्वदा सदा तुम्हारे।
तुम्हीं हमारी ज्ञान ज्योति अन्तः करणों में/अर्पित हैं ये प्राण तुम्हारे ही चरणों में।[1]

(6) पाप, पाप क्या है मनुष्य की भूल है। है समाज के नियमों की अवहेलना।
एक परिधि है आकांक्षा की चाह की, उसके भीतर रह कर चलना पुण्य है।[2] (तारा)

(7) जीवन की इस अन्तिम वेला में मुझे, यह भी सुनना पड़ा कि मैं असमर्थ हूं।
नहीं विप्र मैं दान तुम्हें दूंगा अभी, ले लो मेरे कवच स्वर्ण के तोड़कर।[3] (कर्ण)

(8) सत्य प्रेम दया त्याग करुणा के अवयव हैं, इनमें अस्तित्व है सृजन का इनमें क्रम है।
जो कि असत् निश्चय ही होना है उसे नष्ट, क्योंकि एक साधन भर विनाश और संभ्रम है।[4]

(9) प्रेम नहीं मृत्यु जयी बुद्ध जयी भी नहीं, जीवन जयी है सब तुच्छ जिसके बिना।
स्नेह बिना वर नहीं शाप है अमरता, ऐसा शाप अन्तहीन और चिरस्थायी जो।[5]

(10) यह सब कुछ भी नहीं जानती मैं यही, हृदय प्रेम आनन्द हमारी सृष्टि है।
क्षण-क्षण निर्मित होता है अनुराग यह और व्यग्र सा काल लीलता है जगत।[6] (विश्वामित्र)

(11) ठीक है समाज का प्रभाव अति दारुण है, किन्तु है समाज का विधान तो मनुज कृत।
छिन्न कर देता वही जो इसे बनाता कभी, मानव की प्रेरणा का फल ही नियम है।[7]

(12) उधर वह रवि हँस रहा है फुल्ल पुलकित लाल पीला।
क्षितिज की मृदु गोद से उठ खिन्न मुख अनुराग गीला।[8] (राधा)

(13) प्रेम समर्पण में खिलता है प्राण के, उज्ज्वल होता आत्मत्याग के निकष पर।
उज्ज्वलतर होता जाता वह विरह में प्रेम अतन है शोध वासना से गलित।[9]

(14) सत्य की विजय होगी धर्म की ही अन्त में,
धर्म जिसके है साथ जान सका यही कौन।[10] (गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण)

(11) महत् कार्य को महत् पुरुष ही सदा लगाये जाते हैं।
तमोहरण के लिए सूर्य की शरण प्रजा जन जाते हैं।[11] (मदन दहन)

(16) देख जलद तन देवी श्यामल प्रणयी जन हो उठते विह्वल
मिलन सुखी करते आलिंगन विरही उर कर उठते क्रन्दन।[12]

(17) कहते हैं कामिनी कनक साधक के पथ के, बाधक है, पर लक्ष्मी के चल पद क्षेपों से।
मेरा कंचन का मद कब का चूर्ण हो चुका।[13]

1- उन्मुक्त, पृ० 41, 2- मधुकण, पृ० 59, 3- त्रिपथगा, पृ० 41 4- त्रिपथगा, पृ० 111
5- स्नेह या स्वर्ग, पृ० 96, 6- विश्वामित्र और दो भावनाट्य, पृ० 44 7- वही, पृ० 72
8- वही, पृ० 99, 9- अशोक वनबन्दिनी और अन्य गीतिनाटक, पृ० 8 10- वही, 81-82
11- नयासमाज, पृ० 82 12- संयम, पृ० 2 13- रजत शिखर, पृ० 17

(18) रोली चन्दन का जन श्रद्धा का प्रतीक सा, मंगल तिलक सुशोभित है दक्षिण कर में स्थित उनकी चिर परिचित लाठी है जो बापू के दृढ़ निश्चय सी आगे बढ़ने को उद्यत है।[1]

(19) मैं ही शिव हूं मैं ही सुन्दर, मैं अन्तः सत्य अनश्वर।
मैं युग ताड़न से मुक्त आज फिर उतर रही वसुधा पर।"[2] अवतरा)

(19) कायरता से वंचना है प्रतिभावानों को, कायरता से क्षत रहा इतिहास मनुज का।
कायरता से विमुख हुआ प्रतियुग में मानव, निज अंतर सत्यों से सत्यों की पुकार से।[3]

(20) अँगड़ाई करती हैं कलियाँ/ मुग्ध मधुप करते रँगरलियाँ।
रिक्त पात्र में किसने मोहक/मादक मदिरा ढाली।"[4]

(21) रजत शीत मुक्त व्योम, निकट शुक्र औ सोम।
शोभा अनन्य प्रीति लोक में जगाओ।" [5] (दिग्विजय)

(22) अपने इन हाथों से, मैंने उन फूलों सी वधुओं की कलाइयों से, चूड़ियाँ उतारी हैं।
अपने इस आँचल से/सिन्दूर की रेखाएं पोंछी है।[6]

(23) रंग सुमन मणि चौक रत्न घट, सजे रत्न आसन चमकीले।
चित्रित हुआ स्वयंवर मण्डप, बिछे रम्य केसर पट पीले।"[7] (इन्दुमती)

(24) युद्ध/मंत्रणा नहीं/ एक दर्शन है राम,
अन्तिम मार्ग है/ स्वत्व और अधिकार अर्जन का।"[8]

(25) उग रहा क्षितिज पर नया चाँद/ यह नयी चाँदनी उतर रही।
यह नयी चाँदनी/ जगती की मधुमय आशा।"[9] (सृष्टि की साँझ)

(26) इस दुनिया की यह चमक दमक यह रंगीनी।
सब नश्वर हैं हैं क्षणिक, तुरत मिट जाएँगी।"[10] (संघर्ष)

(27) ये हरे हरे लम्बे/धानों के पौधे/झूम रहे अलमस्ती में
मानव की आशा/ थिरक-थिरक है नाच रही।"[11] (लौह देवता)

(28) हम मानवता को अन्न वस्त्र देने वाले/
केवल आशा के टुकड़ों पर हैं टिके हुए।"[12]

(29) काम धर्म काम ही पाप है, काम किसी मानव को,
उच्च लोक से गिरा हीन पशु जन्तु बना देता है।"[13]

1-शिल्पी, 18, 2- वही, पृ0102, 3- सोवर्ण, पृ0 20, 4- वही, पृ0 50, 5-वही93
6-अथायुग, पृ022, 7- धूप के धान, पृ0 115, 8- संशय की एक रात, पृ0 71
9-सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ082, 10-वही, पृ094, 11- वही, पृ0122
12- वही, पृ0230, 13- उर्वशी, अंक 3 पृ0 66

(30) जैसे हर मनुष्य/ अपनी सामर्थ्य और सीमा के भीतर/जीवित किसी सत्य से सहसा कट जाने पर/ व्याकुल हो उठता।"[1]

(31) प्रभु नयनन जो आँसू बरसा, वह जीवन सरवर का पानी।
डूब गया क्यों खोया किसने मन का मोती आँख का पानी।"[2]

(32) उसी शान्ति प्रज्ञा को पारमिता करूणा को।
बारम्बार प्रणाम। नमो बुद्धाय । नमो बुद्धाय।"[3]

(33) मरना पड़े समझ तो मरो यदि उद्देश्य महान हो।
बढ़े शिखर पर नगपति के दे मूल्य भले यह प्राण हो।"[4] (गंगावतरण)

(34) आज गगन गगन झुके, गौरव गिरि भूले।
मरु का सरवर लहरे अमल कमल फूले।"[5] (उर्वशी)

(35) मैं युवती तुम जरा जर्जरित इस बातें से सत्य को।
धर्म ज्ञान तप बूझा न पाए जता न पाए तथ्य को।"[6] (पाषाणी)

(36) प्रेमी मन तो कोमल होता, हँसते हँसते भी है रोता
ऐसी मरण बाँसुरी फूँकी धधक उठी जीवन ज्वाला।"[7] (मंजरी)

(37) हाय, वह पुरूष नारी के प्यार को क्या समझेगा
जिसके पिता ने तीन तीन ब्याह रचायें हों,
और जिसने अपनी आँखों के आगे प्यार का सौदा होते देखा हो।"[8]

करूणालय :— यह प्रसाद की प्रारम्भिक रचना है अतः इसमें भाषा का वह रूप देखने को नहीं मिलता है, जिसके लिए वे विश्रुत हैं। कुछ तत्सम प्रधान काव्यात्मकता से पूर्ण साहित्यिक तथा वार्तालाप से भिन्न भाषा का प्रयोग प्रसाद जी ने अपने गद्यन्नाटकों में किया है। करूणालय में सरल, अभिधा प्रधान माधुर्य गुण से युक्त भाषा प्रयुक्त है जिसमें प्रवाहमयता है।

सान्ध्य नीलिमा फैल रही है प्रान्त में,
सरिता के निर्मल विधु बिम्ब विभास है
जो नभ में धीरे धीरे है बढ़ रहा।"[9]

कहीं कहीं स्तोत्र-शैली के कारण तत्सम शब्दों का प्राधान्य हो उठा है।

1-एकण्ठ विषपायी, पृ0 2।   2-पूजा सरोवर, पृ0 12 अंक ।
3- उत्तर प्रिय दर्शी, पृ0 29   4- पाषाणी, पृ0 18
5- पाषाणी, पृ0 41,   6- वही: पृ0 100,   7- वही, पृ0 124-25
8- अग्निलीक, पृ0 49   9— करूणालय, पृ0 11

है ज्योतिष्मकनामी क्यों इस विश्व को
रजनी में तारा प्रकाश देते नहीं।[1]

प्रारम्भिक रचना होने के कारण स्थान स्थलों में भाषासम्बन्धी त्रुटियाँ दिखायी देती है। कहीं शब्दों को विकृत कर पुराने रूप में, या विभक्तियों का अभाव या अशुद्ध रूप में प्रयुक्त किया गया है। जैसे —

(1) क्षान्त हूजिए क्षमा कीजिए दीन को।[2]

(2) मैं शीघ्र अभी जाके यहाँ।"[3]

(3) सुव्रते, कहो कहाँ तुम फिर रही, मेरे जाने के बाद।"[4]

इसकी भाषा को देखकर ऐसा लगता है कि गद्य नाटक को पद्य में परिवर्तित किया गया है। भाषा की दृष्टि से यह प्रसाद की अपरिपक्व रचना है।

<u>अनघ</u> :— मैथिलीशरण गुप्त की इतिवृत्तात्मक प्रधान गीतिनाट्य है। तुकबन्दीप्रियता गुप्त में स्थान - स्थान पर मिलती है।

मरम्मत कभी कुओं घाटों की सफाई कभी हाट-बाटों की।
सब अपने हाथों करता है, गन्दगी से भी कब डरता है।"[5]

इस तुक-प्रियता के कारण अनघ में भी भर्ती के अनावश्यक शब्दों का बाहुल्य है। ऐसा लगता है कि एक पंक्ति में आये अन्तिम शब्द के अनुरूप अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है —

[illegible]

फैंकने लगी राह में कूड़ा वहाँ था मानो कोई बूढ़ा।
पड़ोसिन ने भी उसको रोका, कहा तो उसने बाकर टोका
कि बीता है तेरा सब यों ही, तुझे क्या उसकी चिन्ता यों ही।"[6]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं —

जिधर देखो झींगुरों की झीं झीं है सुनाई पड़ती सन सन सन है।'[7]

किन्तु बीच-बीच में माधुर्यपूर्ण, छोटे सरल समास युक्त वाक्य एवं अलंकृत भाषा प्रयुक्त है—

जिसका कोष खुला रवि से, शोभित हिम मौक्तिक-छवि से।'[8]

1- करुणालय, पृ0 31,
2- वही, पृ0 15
3- वही, पृ0 16
4- वही, पृ0 36
5- अनघ, पृ0 17
6- अनघ पृ0 18
7- वही, पृ0 22
8- वही, पृ0 26

<u>लीला :—</u> मैथिलीशरण गुप्त का दूसरा गीतिनाट्य है, जो भाषा की दृष्टि से अनघ से कुछ अच्छा है। यद्यपि इसमें भी अनावश्यक शब्दों का प्रयोग कर तुकबन्दी का निर्वाह किया गया है —

> जिसकी आढी पवि ले उजाड़ तो झाड़ू करके धरें झाड़।
>
> जाकर मख की ओर दौड़, जो बना रच अति विकट सौड़।"[1]

समास युक्त आनुप्रासिक-भाषा लीला में बहुत प्रयुक्त है —

> शीतल सुगन्ध परिपूर्ण मन्द करती है मानो नेत्र बन्द।
>
> वह चारु चन्द्रिका रजत-रात, चन्दन-चर्चित-सा-गगन-गात॥[2]
>
> खिले तमाल-कदम्ब-मालती-यूथी-सी फूली है।[3]
>
> कलित कपोलों में प्रतिबिम्बित, ललित लोल कुण्डल हैं।[4]

मुहावरों की दृष्टि से लीला सम्पन्न है।

> अच्छा हुआ चलें तो हम भी नौ-दो-ग्यारह हो जावें। (पृ०19)
>
> गुड़ से सीधे निम्ब मिष्ट होते नहीं। (पृ०35)
>
> जहँ सन्तन के पग परे कीन्हयो बँटाढार (पृ०60)
>
> छका-छका कर असुरों का छक्का आप छुड़ाय। (पृ०77)

लक्षणा, व्यंजना शक्ति से सम्पन्न तत्सम शब्दावली है जिसमें अलंकारों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग है। भावानुकूल शब्द सरल, सफल, भावात्मक बिम्बों के प्रयोग से लीला की भाषा आकर्षक है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'अनघ' और 'लीला' उस युग की रचनाएँ हैं, जिसे हम द्विवेदी युग कहते हैं। कहना नहीं होगा कि मैथिलीशरण गुप्त पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का बहुत प्रभाव है। गुप्त की इन रचनाओं में बौद्धिक अभिव्यक्ति अधिक है और हार्दिक अभिनिवेश कम है। सारांश यह है कि दोनों गीतिनाट्य इतिवृत्तात्मक प्रधान भाषा के प्रतिनिधि हैं। डा० कृष्ण सिंहल ने लिखा है —"द्विवेदी युग की रचना होने के कारण अनघ की भाषा-शैली पर भी उस युग का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।"[5]

<u>सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'</u> शब्द-शिल्प तथा भाषा-शैली के बहुविध प्रयोग करने वाले कवियों में अद्वितीय हैं। वे प्रतिपाद्य विषय-वस्तु भाव एवं प्रसंगानुकूल भाषा के प्रयोग में अत्यन्त सफल हुए हैं। जहाँ दार्शनिक विचारों या सिद्धान्त निरूपण करने का अवसर आया है, वहाँ भाषा

1- लीला, पृ० 49 2- लीला, पृ० 44 3- लीला, पृ० 85 4- लीला, पृ० 74

5- हिन्दी गीतिनाट्य, पृ० 87-88

भी क्लिष्ट प्रतीत होती है —

स्थूल से यह सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता
मन बुद्धि और अहंकार से है लड़ता जब/समर में मिल दूनी शक्ति जो मिलती है।[1]

कहीं कहीं दीर्घ समास बहुला पदावली प्रयुक्त है —

कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह/कोटि-इन्द्र-सुरासुर
जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग।[2]
मानस-सरोवर के स्वच्छ वारि-कण-समूह/हिमकर-कर स्पर्श से।[3]

माधुर्य गुण युक्त लघु-समास युक्त पंक्तियाँ भी हैं —

मीन मदन फाँसिबे को फाँसी-सी चिकन-नासा,
फूल-दल-तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल।[4]

आनुप्रासिक रचना तो स्थान-स्थान पर मिलती है —

चंचल तरंगिणी की तरल तरंगों पर
सुर ललनाओं के चारु-चरण-चपल नृत्य।"[5]
कोमल-कण्ठ, कामिनी की सुधा भरी आसावरी,
भ्रमर-स्वर कम्पित यह यूथिका झुकेगी जब।"[6]

कोमल मधुर, गत्यात्मक ~~संस्कृत~~ संस्कृतनिष्ठ शब्दों के साथ प्रवाहमयता तथा अलंकारों का प्रयोग अनेक बिम्बों का सन्निवेश इनकी भाषा की विशेषताएँ हैं। भावानुरूप छोटे एवं लम्बे वाक्य लघु एवं दीर्घ समास युक्त रचना 'पंचवटी प्रसंग' छायावादी युगीन काव्य-भाषा की रचना कही जा सकती है।

<u>उन्मुक्त</u> :— छायावादोत्तर युगीन रचना है किन्तु इसमें भाषा-शिल्प की दृष्टि से छायावाद का पूर्ण प्रभाव अंकित है। भाषा तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ, परिमार्जित है जिसमें एक ओर कृत्या, शतघ्नी आदि जैसे अप्रचलित शब्दों को स्थान दिया गया है। कहीं-कहीं विचारों के आधिक्य के कारण भाव क्लिष्ट एवं उसका प्रवाह शिथिल हो गया है।

क्रीड़ा घूर्णित उग्र तरंगों में उठ खेला/तेरा उर विक्षुब्ध
चढ़ा कब गगनांचल पर/अन्तर्ज्वाला क्षुब्ध गिरा जैसी करतल पर
× × × × ×
क्रोध वह्नि के वमनोद्गम में/समझा तूने सफल स्वजीवन पंखारोहित
तू ऊपर उड़ चला फिर क्यों तीव्र विमोहित।[7]

1- 2, 3, 4, 5, 6:— पंचवटी-प्रसंग-परिमल, पृ० क्रमशः — 228, 219, 221, 224, 215, 234

7—उन्मुक्त, पृ0 87

नवोन्मेष के पावन-पथ में मैंने हेरी
पुण्य स्वर्णिम ज्योति शिखा यह।"[1]

वैसे सर्वत्र प्रवाहमयी ओजगुण प्रधान भाषा प्रयुक्त है। छायावादी रचनाओं में चित्रात्मक, मधुर गत्यात्मक उपचारवक्रता प्रधान भाषा का बहुत प्रयोग हुआ है। सियाराम शरण गुप्त की भाषा प्रसाद, पंत जैसी तो नहीं है किन्तु चित्रात्मकता की दृष्टि से वे उन्हीं के समीप ठहरते हैं।

बाढ़ नव जीवन की आ गई है अपार
अतुल प्रवाह यह हो उठा प्रखर है
एक ही उमंग रंग एक ही ललक की
लाली यह उमड़ पड़ी है जन-जन में।"[2]
ले लेकर टक्करें शिलाओं से लहरियाँ
फेनोज्ज्वल भीम कान्त हो उठी हैं, मानो/तोल उठा लेंगी निज बाहों पर।"[3]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से भाषा में नयी कान्ति आ गयी है —

वह ज्वाल जो बुझी-बुझी थी, धर्-धर्-धर्-धर्
एक साथ ही भभक उठी तीव्र स्पन्दन से।"[4]

गीतिनाट्यकार ने व्यंजना-शक्ति का भरपूर उपयोग कर इस रचना को सशक्त बनाया है —

बड़ी कड़ी विष दंश कर गई रजनी काली/
नीली-सी पड़ गई यहाँ दिन की उजियाली।
सुस्वन हुआ निरुद्ध पवन का गन्ध मधुर था
लीन हो गया निखिल कर्म मुखरित पुर का।
कुंजकुल निश्चल नहीं गूँजती भ्रमरावलियाँ
सुरविमान में रुकी बैठी-सी कुसुमावलियाँ।"[5]

'उन्मुक्त' की भाषा की एक और विशेषता है कि उसमें निखार के लिए अमूर्त भाव के लिए मूर्त उपमान और मूर्त उपमान के लिए अमूर्त उपमान उपस्थित करने का प्रयास किया गया है—

वेग भरी कन्दुक सी घूमती विजय है। (उन्मुक्त पृ० 22)

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कि उन्मुक्त की भाषा के लिए कवि ने संस्कृत शब्द सम्पदा का भरपूर उपयोग किया है। ओजगुण प्रधान भाषा के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। गतिशीलता के लिए सफल बिम्बों की रचना की गयी है। सारतः भाषा की

1, 2, 3, 4, 5— उन्मुक्त, क्रमशः पृ० संख्याएँ — 51, 25, 26, 69, 8

दृष्टि से यह छायावादी युगीन भाषा या गीतिनाट्य कहा जा सकता है।

पाप, पुण्य की दार्शनिक व्याख्या पर आधारित होने पर भी 'तारा' की भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रवाहमयी है। दार्शनिक सिद्धान्तों के पल्लवन के लिए साहित्यकार शाब्दिक आडम्बरों का जो डिंडिमघोष करता है, तारा में उसका पूर्ण अभाव है। सरल भाषा में सिद्धान्तों की व्याख्या का एक उदाहरण निम्न है —

> है समाज के नियमों की अवहेलना/एक परिधि है आकांक्षा की चाह की।
> उसके भीतर रहकर चलना पुण्य है/उसके बाहर गये और बस पाप है।[1]

एक ओर जहाँ प्रौढ़ गम्भीर एवं विचार-प्रधान शैली का प्रयोग है, वहीं दूसरी ओर मधुर, प्रवाहमयी काव्यात्मक शैली के भी अनेक उदाहरण हैं।

> तुम सुगन्ध हो मैं समीर होकर बहूँ/तुम हो कुसुम भ्रमर मैं भ्रमता ही रहूँ।
> उषा रूप तुम मैं सुन्दर कलरव उठूँ/तुम हो लतिका मैं तरूवर बाधा बनूँ।"[2]

शब्दों की सुबोधता, मधुरता एवं सजीवता के साथ-साथ अनुप्रासिकता स्थान-स्थान पर मिलती है—

> मुझे चाह है रस की पावन प्रेम की/उस विस्मृति की उस अनन्त संगीत की।[3]
> उद्गारों के उद्वेलित उच्छ्वास में/ और उमंगों की उत्फुल्ल उठान में।[4]
> तुम उमंग की उल्लसित उच्छ्वास हो/तुम अनंग की अभिलाषित आवास हो।"[5]

शब्दों का सुसंचय, सुप्रयोग, व्यंजनावृत्ति, वर्णमैत्री तारा की अपनी विशिष्टता है — कर्म मार्ग संकीर्ण कण्टकाकीर्ण है(पृ0 64) प्रसाद एवं माधुर्य गुण से युक्त, अलंकृति के आग्रह से मुक्त, बिम्ब एवं प्रतीकात्मकता के कारण तारा की भाषा-शैली बहुत ही आकर्षक है।

<u>'कर्ण' और 'द्रौपदी'</u> — रेडियो के लिए लिखी गयी रचनाएँ हैं। अतः इनका भाषा-शिल्प भी रेडियो की सामर्थ्य, सीमा और उपकरणों के अनुकूल है। सरल, सुबोध, अभिधा, प्रधान मूर्त विधायिनी शक्ति-सम्पन्न शब्दों प्रयोग हुआ है —

> भीष्म तो पड़े हैं शरशय्या पर मृतक तुल्य/~~आचार्य~~ द्रोण वो परम गति कल को ही चुकी प्राप्त/आज है सुयोधन शीशहस्ता अवलम्बहीन/उसके चिंत मन में चिन्ता सी गयी व्याप्त।"[6]
>
> आरक्त नेत्र, अनबद्ध केश/अधरों पर दर्प भरी तृष्णा।
> युग की हिंसा की केन्द्र बिन्दु/द्रौपदी पाण्डवों की कृष्णा।"[7]

1, 2, 3, 4, 5 — तारा, मधुकर) क्रमशः पृ0 संख्या — 59, 66, 57, 62, 63

6— कर्ण(त्रिपथगा) पृ0 11 7— द्रौपदी(त्रिपथगा) पृ0 72

दार्शनिक अभिनिवेश एवं काव्यमयता के अभाव होने पर भी इन गीतिनाट्यों में प्रवाह मयता है किन्तु उक्त दोनों गीतिनाट्य 'तारा' के समक्ष उतने, तथा इसके स्तर के हैं। कहना नहीं होगा कि भगवती चरण वर्मा के गीतिनाट्यों में शब्दों के अभिधेयार्थ की यथार्थता, भाव - पोषकता, शब्द-मैत्री प्रवाहमयता एवं प्रभावोत्पादकता है। भाषा-शिल्प की दृष्टि से तारा उनकी श्रेष्ठ रचना कही जा सकती है।

'स्नेह या स्वर्ग' — की भाषा काव्यात्मक और बोलचाल के बीच की है। यथावसर कवि ने आनुप्रासिकता, भावानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है —

शोभित हिमांशु शुभ्र पूर्णिमा की शर्वरी,
तन को सुहाती मन मोहती है या सुन्न।
किन्तु बालानल-सी थी पूनें हाय कल की,
विकल हो हो उठा कल न मिली पल की।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में सुहाती और पूनों का बहुत ही सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

अधरों में कान्तासमी विभ्रान्त तम जो
जीवन की जिसके सदैव प्रतिवाटिका
चारू चन्द्रिका सी चटकीली रही भूत में।[2]

इसके साथ-साथ वर्ण-मैत्री, स्थान-स्थान पर मिलती है —

किन्तु तरूणाई अरूणाई और जीर्णता
शीर्णता का कोई प्रश्न उठता यहाँ कहाँ।"[3]

भाषा में प्रवाहमयता के लिए छोटे-छोटे क्रियायुक्त वाक्यों का प्रयोग हुआ है —

फिर यह जीवन है, यौवन है, धन है,
सुख है, सुहाग है, नहीं क्या स्वयं सोच लो।"[4]

वातावरण निर्माण करने के लिए सेठ गोविन्ददास ने ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है।

घन घन घन्टे बजे झल झल झालरें
ढम ढम ढोल ढक्का और भीम भेरियाँ।
सूड़ों को उठा के गज गर्ज उठे गाज-से
पटक पटक टापें ही से हय रोष से।"[5]

सारांश यह है कि सेठ गोविन्ददास ने तत्सम शब्दों के साथ साथ बीच बीच में तद्भव शब्दों का प्रयोग, वातावरण के अनुरूप शब्द विन्यास मुहावरे, शब्दालंकार के साथ ही अर्थालंकार

1, 2, 3, 4, 5—स्नेह या स्वर्ग, क्रमशः पृष्ठसंख्या— 5, 1, 9, 94, 8।

के सफल सन्निवेश से भाषा में कमनीयता गतिशीलता आ गयी है।

उदयशंकर भट्ट की दो तरह की रचनाएँ हैं एक उनके रेडियो आगमन के पूर्व विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा और राधा तथा दूसरे रेडियो-शिल्प से प्रभावित रचनाएँ। प्रथम प्रकार के गीतिनाट्य कवित्वमय क्षणों एवं कल्पना तथा भावावेग के परिणाम हैं, परिणाम स्वरूप इनकी भाषा भावुक एवं काव्यमयी है।

<u>'विश्वामित्र'</u> :— की भाषा में कलात्मकता, संयम, काव्यमयता , सजीवता एवं प्रवाहमयता है। इस गीतिनाट्य में आकर्षक शब्द-योजना के दर्शन होते हैं। भावानुकूल शब्द छोटे और बड़े वाक्यों में प्रयुक्त हैं —

> रच दूँ अपर विराट ब्रह्म को मैं स्वयं/रच दूँ हरिहर और विधाता चन्द्र भी।
> रच दूँ अभिनव स्वर्ग, नरक पाताल नभ/रच दूँ मैं गन्धर्व यक्ष किन्नर सभी।"[1]

ऊपर के उदाहरण में ओज प्रधान अर्थ की तुष्टि के लिए कवि ने एक ही क्रिया को अनेक बार प्रयुक्त किया है, जिससे कथन-भंगी में गरिमा आ गयी है। इसके विपरीत शृंगार प्रधान कोमल भावनाओं को प्रवाहमयी भाषा में प्रगट करने के लिए लम्बे लम्बे वाक्य, कई पंक्तियों के बाद क्रिया का प्रयोग हुआ है —

> ओ नारी के उज्ज्वल प्रेम विभोर जग/ओ मंजुल पंखुड़ियों के मृदु हास मधु।
> ओ पृथ्वी कीश्यामलता औन्नत्य है/भूधर की अति दृष्टि चन्द्र के हास ओ।"[2]
> पल सी घटिका, दिवस रात सी वर्ष-सी/युग-सी जीवन-सी बेला-सी प्रगति-सी।[3]
> तरू में किसलय में सुपुष्प मकरन्द में/अलि गुंजन में पवन प्रसर में ओस में।"[4]

संस्कृत की विभक्तियों के अनुसार उन्होंने विशेषण का प्रयोग किया है —

> हे निर्लज्जे साहसिके मानिनी/मेरे सम्मुख मेरा ही अपमान तू।[5]

अलंकारों के सफल सन्निवेश से जहाँ भाषा में लाक्षणिकता, चित्रमयता, तथा मूर्तिमत्ता आयी है वहीं भावों की तीव्रता भी दिखायी देती है —

> मन्द मारूतमलय मद से निशा का मुख चूमता है।
> साथ पल्लू में छिपाये चन्द्र मद में झूमता है।"[6]

भावावेग के कारण मुहावरों के प्रयोग का उन्हें ध्यान नहीं था किन्तु कुछ स्थलों में इसका स्वाभाविक प्रयोग हुआ है, जिससे भाषा का लोच, सौन्दर्य बढ़ गया है —

> यह क्या यह क्या अरे छू गई बिजलियाँ
> रंग बदलते गिरगिट-सा क्यों जा रहे?"[7]

1से 7 तक —विश्वामित्र और दो भावनाट्य(विश्वामित्र) क्रमशः पृ०सं० [12] 21, 34, 35, 28, 33; 29

'विश्वामित्र' – की भाषा पात्रानुकूल के स्थान पर भावानुकूल है। क्रोध, एवं आक्रोश के समय इस प्रकार के शब्दों का चयन किया गया है, जिससे भावोद्वेलन मूर्तिमन्त हो उठा है। दूसरी तरफ शृंगार, प्रेम आदि के लिए श्रुतिमधुर कोमल कान्त, मधुर शब्दों का विन्यास किया है, जिससे इसकी भाषा में लालित्य, आ गया है।

'मत्स्यगन्धा' :— भी विश्वामित्र की तरह भावोद्वेलन प्रधान गीतिनाट्य है अतः इसकी भाषा भी कल्पना से परिपूर्ण भावात्मक है। छोटे-छोटे पदों से बने चरणों में प्रवाहमयता बहुतआधिक है।

उल्लसित सुमन, उल्लसित पवन/वह मुक्त सुमन, यह लग्न सुमन।[1]

छोटे-छोटे समास बहुल पदावली मत्स्यगन्धा में सर्वत्र दीखती है —

मन्द-मन्द मारूत का प्राण-सा निखर रहा
मान-सा बिखर रहा शची के विलास-सा।"[2]
मंजु वृन्त-किसलय-तंतु में उलझती-सी।"[3]
भर गया रोम-रोम, अंग-अंगप्राण शत/शत शत नव नव शत शत हाहाकार।"[4]

विचारानुकूल शब्द चयन में उदयशंकर भट्ट बहुत पटु हैं। सामाजिक धार्मिक दार्शनिक नियमों की व्याख्या बहुत सरल स्वाभाविक शब्दों में की है। पराशर मत्स्यगन्धा को समझाते हैं।अपनी बात के लिए जिस शैली का उपयोग किया है वह द्रष्टव्य है —

देखो लघु सरिताएँ चलती विधान लिए
और बड़ी पावस में बाँध तोड़ चलती
मध्य रवि के लिए क्या कोई भी नियम है।"[5]

अर्थगाम्भीर्य एवं भावगाम्भीर्य के लिए नाट्यकार ने प्रश्नात्मक शैली का उपयोग किया है —

हा हा यह कण्ठ अवरोध कर भेद देने वाली/
दाह कर सुख कर पिपासा न शान्त होगी?
कौन तप्तश्रृंखला में जकड़ रहा है मुझे/उबल-उबल मेरा प्राण भाग उठता?"[6]

एक ही स्थान पर शब्दों की द्विरूक्ति, विरोधी भाव प्रकट करने वाले शब्दों के प्रयोग से कितना चमत्कार उत्पन्न हुआ है, यह कहने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। प्रेम-प्राप्त युवती आकाश-पाताल के कुलावे मिलाती हुई अपनी कल्पना को किस सीमा तक विस्तार दे सकती है, भट्ट जी ने लक्षणा एवं व्यंजना के सहारे किस चमत्कार के साथ प्रस्तुत किया है दर्शनीय है—

1से 6 तक —मत्स्यगन्धा(विश्वामित्र और दो भावनाट्य) क्रमशः पृ0 57, 58, 60, 67, 74, 75

यौवन के उठते ज्वार से मैं नाच रही/कोने-कोने युग के ओ सप्त रश्मि सीमान्तन।

अपने ही नेत्र की सुरश्मियों से धोने चली/धोने चली विधु का कलंक निज हास से।

मैं गगन जलन्धर मेघ मन्द्र गर्जन को/अपने ही यौवन के स्वर से हूँ साधती।"[1]

मेरे ही यौवन का प्रकाश उग्र रश्मि लिए/जीवन में रस का प्रवाह भरता है नित।

ओ अनादि सुन्दरी उषा के अनिन्द्य आनन को/चूमने की लालसा में दौड़ता-सा दीखता।[2]

कहना नहीं होगा कि मत्स्यगन्धा की भाषा तत्सम प्रधान श्रुतिमधुर, रसपेशल शब्दों से युक्त, प्रसाद एवं माधुर्य से सम्पन्न, काव्यात्मकता से परिपूर्ण आकर्षक एवं प्रवाहमयी है।

राधा की भाषा मत्स्यगन्धा एवं विश्वामित्र से अलग स्तर की है। इसमें तत्सम, संस्कृत निष्ठ शब्दावली का बाहुल्य है। दीर्घ समासों के कारण भाषा क्लिष्ट हो गयी है —

हृदय अन्तस्तर सुचेतन तन्तुओं के द्वार दुर्दम।

घट-कपट के अन्ध-श्रद्धा रूढ़ियों के बन्धनों के

और नर की अहम्-ईहा रचित विश्लथ स्रोत सब पथ।"[3]

हृदय वल्लभ स्नेह-कम्पित जिन्हें चुम्बन हेतु आकुल

अबल उच्छल-अचल-आशा दिवस में निशि स्वप्न पाती।"[4]

कहीं कहीं प्रत्ययों सन्धियों के कारण शब्द प्रवाह में व्याघात उपस्थित हुआ है —

धरा का कर दृग्विवारण सलिल इङ्गित प्राप्त करता।"[5]

(2) चन्द्रिका-विच्छुरित वेला मनहरण पल-पल प्रकृति की।"[6]

(3) और है उद्यान तरुक्षित विकर्तन रोपण विलोपन।[7]

(4) मैं श्वासोच्छ्वास-धूमिल लिखा करती विधि गगन पर।[8]

एकाध स्थल पर नाट्यकार ने संस्कृत के श्लोकों को उद्धृत किया है —

निन्दति चन्दनमिन्दु किरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।

व्यालनिलय मिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्।"[9]

काव्यात्मकता की दृष्टि से 'राधा' अन्य गीतिनाट्यों की अपेक्षा विशिष्ट स्थान रखता है।

उधर वह रवि हँस रहा फुल्ल पुलकित लाल पीला,

क्षितिज की मृदु गोद से उठ खिन्नमुख अनुराग-गीला॥"

चूमता मुख किसलयों का कुसुम का अनुरक्त आनन।"[10]

1-2—मत्स्यगन्धा(विश्वामित्र और दो भावनाट्य) क्रमशः पृ0सं0 82, 84

3से 10 तक—राधा(विश्वामित्र और दो0)क्रमशः पृ0सं0 118, 116, 116, 128, 129, 133, 144, 99

तात्विक शब्दों से कितना अर्थ गाम्भीर्य उत्पन्न किया गया है, यह अनुभव का विषय है। भावों का चमत्कृत, काव्यात्मक, अलंकृत तथा संस्कृत-निष्ठ भाषा में अभिव्यक्तिकरण 'राधा' में देखा जा सकता है —

देखती पृथुल धारा मेघ से होकर समुच्छित
मचलती आकाश से उन्मुक्त उतरेगी धरा पर
और जीवन में अनश्वर सुरभि-सी भरती हृदय को
विश्व की वासन्तिक में अमरवल्ली हो रहेगी।"[1]

प्रवाहमयता के लिए नाट्यकार ने वर्ण-मैत्री का बहुत प्रयोग किया है। कहीं एक पद में अनेक क्रियाओं का तथा कहीं अनेक पदों के बाद क्रिया का प्रयोग बहुत ही आकर्षक है —

विहग का रूत सुमन-मारूत दुग्ध-फेनिल इन्दु किरणें।[2]

स्वप्न झूलें प्राण झूलें और दिन को भूल जायें।
प्राण मेरे गुनगुनायें हृदय का आसव सभी ले।"[3]

लता प्रस्त कली हती, मद लुण्ठित है सौन्दर्य विगलित
सर्प सी मणिहीन मतमय। घन विनिःसृत दामिनी श्लथ।"[4]

कुसुम कलियों में, लता में वृक्ष में सरिता लहर में,
गगन में पाताल में, भूप-स्वरा-जीवन-मरण में।"[5]

तात्पर्य यह है कि संस्कृत-प्रधान शब्दावली, प्रसाद माधुर्य गुण से युक्त राधा की भाषा में चमत्कारिता दीर्घ-सामासिकता, प्रभावोत्पादकता एवं अलंकारों का सफल सन्निवेश है।

रेडियो से प्रसारित होने वाले गीतिनाट्यों के भाषा की सबसे बड़ी विशेषता होती है-शब्दों का सुसंचय सुप्रयोग एवं मूर्तिमत्ता। मदन दहन में इस प्रकार के अनेक स्थल है जिसमें शब्द-चित्र मूर्तिमन्त हो उठा है —

तत्क्षण ही क्रोध उठा, भौंहें चढ़ीं, नेत्र लाल-लाल हुए
और फिर तीसरा ज्ञान-नेत्र खुल गया।
×   ×   ×   ×
देवगण चिल्ला उठे रोको प्रभु/रोको प्रभु/ रोको प्रभो क्रोध को।
त्राहि त्राहि त्राहि त्राहि रक्षा करो रक्षा करो रक्षा करो रक्षा करो॥
क्रोध हरो, क्रोध हरो क्रोध हरो हे शिव।"[6]

1से 5 तक — राधा(विश्वामित्र और दो भावनाट्य)क्रमशः पृष्ठ0 108, 112, 140, 139, 143

6—मदन दहन, (नया समाज) पृ0 85

पदों की विवृत्तियों के माध्यम से क्रोध साकार हो उठा है। श्रृंगार, प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए श्रुतिमधुर पदावली प्रयुक्त है —

> क्रोध का अनन्त मद वसन्त पी उठा
>
> मदिर मदिर पुलक पुलक हँसे कुसुम खिली कली।"[1]

प्रार्थना स्थल पर भाषा संस्कृत-निष्ठा स्तोत्र-प्रधान हो गयी है —

> हे हे विरंचि हो नमस्कार, तुम सृष्टि मूल तुम निर्विकार
>
> ब्रह्मा तुम, विष्णु महेश तुम्ही सत, रज तम गुण, अखिलेश तुम्ही।"[2]

ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण से समन्वित इसकी भाषा चाक्षुष बिम्बों के साथ अनेक बिम्बों प्रतीकों की अभिव्यक्ति में पूर्ण क्षम है।

<u>'अशोक वन-बन्दिनी'</u> ——— की भाषा कोमल, परिमार्जित और काव्यात्मक है। तत्सम प्रधान शब्दों का बाहुल्य है —

> दुरभिसन्धि -पथ पर प्राणों के अश्व ये/कुछ की दुर्दम इच्छाओं की वल्गा खींचे।
>
> खींच रहे हैं मेरा स्मृति रथ शून्य में/ लक्ष्य हीन उद्भ्रान्त न जाने कौन दिशि।"[3]

इसमें रसानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। ओज गुण के लिए नाट्यकार ने तदनुरूप शब्दों का विधान किया है —

> तीलियों की तरह तारक तोड़ दूँ। जोड़ दूँ भू को गगन से जोड़ दूँ।
>
> चाहते ही विश्व का घट फोड़ दूँ। इस कड़ाही में भरा सागर सलिल।"[4]

अनेक स्थानों पर सूक्तियों से अर्थ-चमत्कार उत्पन्न किया गया है —

> रगड़े जाने पर ही हीरक चमकता/तपने पर ही होता कंचन शुद्ध है
>
> प्रेम मगन होता है जलते प्राण में/ यही लिखा लाया है प्रेमी भाग्य में।"[5]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से भट्ट ने वातावरण को सजीव बनाया है —

> धूँ-धूँ करके जलते हैं उत्तुंग गृह"[6]

कहना नहीं होगा कि छोटे-छोटे समास, अलंकारों से युक्त शब्दावली में भाव-पोषकता एवं मूर्ति-विधायिनी शक्ति का प्राबल्य है।

<u>गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण'</u> — विचार प्रधान गीतिनाट्य है, अतः इसकी भाषा शैली में विचारात्मकता दिखायी देती है। छोटे छोटे समास युक्त पदों का बाहुल्य है —

1-2— मत्स्य गन्ध(नया समाज) क्रमशः पृष्ठ 64, 65

3-6 — अशोक वन बन्दिनी, तथा अन्य गीतिनाट्य, ,— क्रमशः पृष्ठ 1, 17, 32, 42

[illegible]

(1) ब्राह्मण गुरु द्रोण हत प्रभ, हत ज्ञान/केवल परान्नभोजी रह गया हाय आज।[1]

(2) लगता है अन्ध-ज्ञान कूप में निमग्न पाप, केवल अनुताप ही मिला मुझे दुर्भाग्य से।[2]

बपौती और कबरी शब्द भी इसमें प्रयुक्त हैं —

(1) ज्ञान है बपौती नहीं किसी एक वर्ग की ही।[3]

(2) स्मृतियों की कबरी से केवल जुड़े हैं पर।"[4]

विचारानुकूल भाषा लिखने में उदय शंकर भट्ट बहुत पटु हैं। नैराश्य से पूर्ण द्रोण कितना विरक्त हो उठा है, द्रष्टव्य है —

जीवन भी व्यर्थ गया धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

एक भी न प्राप्त किया हाय मैंने ध्यान-धाम।

× × × ×

कितना विधूम मन कितना प्रतप्त मन/धुल गईं मेरे विश्वासों की नींव सब।

हिल गयी सारी ही पैरों की जमीन है/जिस पर खड़ा था मैं जिस पर खड़ा था मैं।[5]

प्रवाहमयता तो स्थान-स्थान पर मिलती है —

अरे नहीं, अरे नहीं, मर्म मत छेदो और/मेरी त्रुटियों के पृष्ठ और मत खोलो हाय।

मेरी अनुदारता का ढोल मत पीटो और/रक्षा करो रक्षा करो क्षुब्ध हो गया हूँ मैं।[6]

कहना नहीं होगा कि उदय शंकर भट्ट भाषा-शिल्प के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। श्रुति-मधुर कोमल कान्त, मसृण, मोहक शब्द चयन में बहुत पटु हैं। शब्द भण्डार बहुत विस्तृत है। साधारण बोल चाल के साथ लघु या दीर्घ समास प्रयुक्त करना उनकी भाषा की विशिष्टता है। संस्कृतनिष्ठ, तत्सम प्रधान व्याकरण-बद्ध शब्द प्रयोग करने में वे अतीव क्षम हैं। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा में लोच, मार्दव, सौष्ठव एवं सौकुमार्य की वृद्धि हुई है। उनकी भाषा की दूसरी सबसे बड़ी विशिष्टता है भावानुकूल शब्द-चयन। प्रवाहमयता के लिए नाट्यकार ने रसानुकूल और ओजप्रधान या सरल विचारात्मक विश्लेषणात्मक शैली का उपयोग किया है। आक्रोश की स्थिति में अभिव्यक्त करने के लिए कटु वर्ण, भावों के जागरण में सहायक हुई है। ऐसे स्थलों की भाषा सजीव, प्रभावमयी हो उठी है। प्रेम प्रसंगों, रम्य अवसरों पर मधुर, लालित्य पूर्ण शैली का प्रयोग हुआ है जिसमें माधुर्य, स्निग्धता, काव्यमयता कूट-कूट कर भरी गयी है। कुछ स्थलों को छोड़ कर दुरूहता का बहिष्कार किया गया है। एकाध स्थलों में अलंकृति का आग्रह है, वैसे प्रायः अलंकार स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त हैं, जिससे पद में

1से 6 तक- गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण, -अशोक वन बन्दिनी -क्रमशः पृ०सं० 83, 104, 100, 105, 104, 105

अर्थ गाम्भीर्य, अर्थ-चमत्कृति आ गयी है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उदयशंकर भट्ट की भाषा बहुत आकर्षक है और गीतिनाट्य के क्षेत्र में उनके भाषा संबंधी योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

सुमित्रानन्दन पंत, मूलतः छायावादी काव्य-धारा के कवि है। प्रसाद ने जिस काव्य-भाषा का सूत्रपात किया पंत ने उसे चरमोत्कर्ष रूप दिया। भाषा की अर्थशक्ति का जैसा परिज्ञान इन्हें है, अन्यत्र देखने को कम ही मिलता है। इनके गीतिनाट्य रेडियो-शिल्प से प्रभावित होने के कारण भाषा शैली की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। खड़ी-बोली को मृदुता और स्निग्धता प्रदान करने का श्रेय इन्हें ही दिया जा सकता है।

'मेघदूत' —— गीतिनाट्य कालिदास के मेघदूत पर आधारित है। अतः भावों की पुष्टि के लिए नाट्यकार बीच-बीच में मेघदूत के मूल श्लोक उद्धृत करता चलता है —

कश्चित् कान्ताविरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः।
शापे नास्तंगमित महिमा वर्ष भोग्येन भर्तुः ॥[1]

इस तरह अनेक श्लोकों के प्रयोग से संस्कृत भाषा से अपरिचित दर्शकों पाठकों को रस व्याघात उत्पन्न होता है। तत्सम-प्रधान शब्दावली का प्रयोग भावों के साथ अर्थ विच्छिन्न को समृद्ध करती है ——

कैसे जाऊं तुम्हे छोड़कर/प्रेयसि तुम मेरे प्राणों के
मधुर वृंत्त पर स्वप्न-कुसुम सी/खिली हुई जो अपलक लोचन।
शोभा की स्वर्णिम पंखड़ियाँ / बरसाती जब मादक सौरभ
विस्मृत हो जाता है तन मन।"[2]

विवरणात्मक शैली के लिए लेखक ने चलती भाषा का प्रयोग किया है ——

पहिले मार्ग सुनो जाने का/फिर सुनना सन्देश प्रणय का।
शीघ्र पेय है सहृदय जलधर/रुक-रुककर तुम शिखर-शिखर पर।"[3]

'शिल्पी' — का शब्द-भण्डार संस्कृत भाषामय है। शब्दावली सरस, सरल, संश्लिष्ट लघु सामासिक पदावली से युक्त है —

प्रस्तर के उर में युग जीवन का सम्पुट ही/हिल्लोलित हो उठा सुख जल आवेशों में।
मेघों विद्युत्सी, तरूवन में झंझा-सी/अंधकार को चीर नई चेतना शिखा ज्यों।"[4]

1-2:— मेघदूत, (संगम-पत्रिका) पृ0 2, 3

3-4— मेघदूत, (संगम) पृ0 4   4— शिल्पी, पृ0 14-15

इसकी भाषा में माधुर्य, चित्रोपमता और कोमलता की मात्रा विशेष है —

ध्यानाभ्यास में टाँगों को घुटनों से मोड़/ध्यान मौन अन्तः स्थित है कर्मठ युगद्रष्टा।

तपोमय, निर्वात अकंप शिखा-सी लगती/ऊर्ध्वदृष्टि अधरों के सम्मुख दक्षिण कर की।[1]

लाक्षणिकता सांकेतिकता और मूर्तिमत्ता स्थान-स्थान पर मिलती है —

मुक्त कौमुदी को निज पुलकित बाहु परिधि में
भरने को उत्सुक यह हंसमुख चन्द्रदेव है
लगता है मानो नव आकांक्षा का तन धर
मूर्त हो उठा हो अनंग सद्यः यौवन में।[2]

विचारानुकूल शब्द संस्कृत पद-योजना से प्रभावित है। वर्तमान परिस्थितियों का चित्रण होने किस कौशल से किया है, द्रष्टव्य है —

उद्वेलित हो रहा धरित्री का उपचेतन? गरज रहा युग आन्दोलित जन-जीवन सागर। नव आशा आकांक्षा के शिखरों में लहरा कर/अतल मग्न करने तड़ धरणी के पुलिनों को।"[3]

काव्यात्मकता प्रत्येक चरण में दिखायी देती है —

ओढ़ रजत निर्झरिणी-सी उन्मुक्त छटा में
उमड़ रही जो प्राणों की चंचल छाया सी
अपनी ही शोभा में तन्मय तुहिन फेन का,
झीना आंचल फहराए यह शिल्प स्वप्न-सी।[4]

तात्पर्य यह है कि प्रांजल संस्कृत-निष्ठ शब्दावली अलंकृति के कारण क्लिष्ट एवं काव्यात्मक होगयी है।

'अप्सरा' में सौन्दर्य चेतना का प्रतीक प्रधान गीतिनाट्य है, अतः इसकी भाषा भी प्रतीकात्मक है।

मैं शशि की रजत तटी पर बढ़ तारापथ से आती जाती।
मेघों के सतरंग शिखरों पर स्वप्नों के केतन फहराती।"[5]

शब्दों को मधुर मधुरतर बनाने की चाह के कारण पंत ने विशेषणों का समास पद्धति से प्रयोग किया है। दीर्घ समास बहुला पदावली तो अप्सरा में नहीं है किन्तु विवरणात्मक विशेषण के कारण भाव उलझ से गये हैं —

1-2-3-4- शिल्पी, क्रमशः पृ० सं० 19, 22, 36, 22

5— अप्सरा, पृ० 95 (शिल्पी)

एक नई चेतना लपेट रही मानस को/अपनी स्वर्गिक शोभा के अभिनव वैभव में।

पुलक पल्लवित हो उठता तन सूक्ष्मगन्ध से/स्वप्नों के रंगों में वेष्टित कर प्राणों को।[1]

वर्ण मैत्री भावात्मकता अप्सरा की भाषागत विशिष्टता है —

ये लुंठित कुंठित लहरें/ ये लुलित-पुलित लहरें

धरती को दाँतों से पकड़े। फिरतीं लोभी बाँहें पसार।[2]

बीच-बीच में मुहावरे अर्थ-चमत्कृत में सहायक हुए हैं —

गिर गिर के रंग कमल अगणित/युग परियों को कर बिम्बित।[3]

दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रस्तवन के लिए 'अप्सरा' में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग कर विचारात्मक दुरूहता को जन्म दिया गया है —

ईशावास्यमिदं सर्व कहते द्रष्टा ऋषि

उपनिषदों के जगती मैंने कुछ आप

वह भगवत सत्ता है जग की निखिल वस्तुएँ

ईश्वरमयी वही सत्य है सार रूप में।[4]

(2) महाप्राण की दिव्य अवतरण की मर्मर ध्वनि

गूँज रहीअन्तरतम के गोपन गह्नरों में

हिल्लोलित हो रहा धरा चेतना सिन्धु अब,

नव आवेगों के अति गति शीला प्रवेश से।[5]

सार यह है कि अप्सरा की भाषा संस्कृत निष्ठ, काव्यात्मक है। गीतिनाट्य में जिस साधारण, सरल भावात्मक भाषा की आवश्यकता होती है, अप्सरा में उसका पूर्ण अभाव है, क्योंकि इसकी भाषा में दुरूहता है।

'रजत शिखर' भी मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुद्ध प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। जो भाषा शिल्प की दृष्टि से छायावादी -शिल्प का प्रतिनिधित्व करता है। पंत सौन्दर्य वादी कवि हैं अतः उनके शब्द-चयन मधुर आकर्षक हैं। रजतशिखर की शब्दावली आनुप्रासिक, कोमल, सुसंगठित है। ध्वन्यात्मक शब्दावली इसकी विशिष्टता है —

(1) वन मर्मर की हरी भरी घाटी यह सुन्दर

कल-कल बहती जहाँ मुखर प्राणों की सरित्।[6]

(2) मौन ज्योति रिंगण निशीथ के अन्धकार में

चमक-दमक उठते प्रकाश के संकेतों से।"[7]

1, 2, 3, 4, 5— अप्सरा, (शिल्पी) क्रमशः पृ०सं० 96, 99, 100, 105, 103
6-7—रजतशिखर, पृ० 5, 6

उपचारवक्रता, लाक्षणिकता तथा बिम्बात्मकता स्थान स्थान पर मिलती है —

हँस हँस यौवन की सतरंग आकांक्षाएँ

इन्द्रधनुष दीपित भावों की भाव भूमि में।[1]

शुद्ध तत्सम संस्कृतनिष्ठ, वार्तालाप से भिन्न शब्दों का प्रयोग पंत ने किया है

इच्छाओं की मर्म गुंजरित इस प्राची में

नव प्रवृत्ति पथ रत्नखचित आभा सेतु सा।

अपनी शत रंगों की छायाएँ बिखेर कर

अपलक कर देता लोचन मुग्धा अप्सराएँ।[2]

किन्तु अतिशय काव्यात्मकता सभी स्थलों में नहीं है। यत्रतत्र मधुर, भावपूर्ण भावात्मक अनुभूतियों को चित्रात्मक, माधुर्य गुणोपेत, विशेषणों से युक्त शब्दावली में व्यक्त किया गया है—

तुम्हीं प्रथम मधुऋतु आई थीं नव प्राणों के/पल्लव मर्मर बन स्वप्नों से सिहर उठे थे।

मदिरारुण लपटों में उर की आकांक्षाएँ/फूट पड़ी थीं सहसा तुमको घेर चतुर्दिक।[3]

कितने मधुर, कोमल, गत्यात्मक शब्दों से प्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है, उपर्युक्त उदाहरण में द्रष्टव्य है। गीतिनाट्यकार ने यथावसर धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग किया है। मनोवैज्ञानिक शब्दावली प्रस्तुत है —

उच्च ध्येय से पीड़ित हैं इनकी सुप्तात्मा

बोधात्मा पर पितृ प्रभाव रहा बचपन से

अहमात्मा नित हीन भाव से रही प्रताड़ित

दमित भावना मार्ग खोजती क्षुधापूर्ति का।[4]

कहना नहीं होगा कि रजत शिखर में प्रतीकों के प्रयोग से भाषा में जहाँ अतिशय सुकुमारता काव्यात्मकता आयी है वहीं दूसरी ओर बोधगम्यता कम ही है। वैसे श्रुतिमधुर कोमल कान्त पदावली, उपमानों एवं विशेषणों के आधिक्य के कारण इस गीतिनाट्य में शाब्दिक आडम्बर अधिक प्राक्तन आचार्यों द्वारा स्वीकृत अर्थसौरस्य और शाब्दिक अभिनिवेश कम ही है —

'सौवर्ण' की भाषा तीन स्तरों की है। प्रथम स्तर की भाषा विवरणात्मक है जिसमें लम्बे लम्बे वाक्य विन्यास हैं। शब्द विधान सरल है —

दैन्य युद्ध मिट गये छट गये धूमिल पर्वत

घृणा द्वेष स्पर्धा के भय संशय पीड़न के

जन शोषण अन्याय अनय से मुक्त चराचर।

एक छत्र अब शान्ति साम्य स्वातंत्र्य प्रतिष्ठित।[5]

1, 2, 3, 4— रजतशिखर, पृष्ठ क्रमशः—8, 9, 13, 20, 5— सौवर्ण, पृ० 50

दूसरे प्रकार की शैली विचारात्मक है, जिसमें संस्कृत निष्ठ, प्रत्ययों से निर्मित शब्द प्रयुक्त हैं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार के शब्दों केप्रयोग से भाषा कुछ क्लिष्ट, भाराक्रान्त और प्रभावहीन हो गयी है —

(1) ध्वस्त हो रहे संस्कृतियों के सौध रत्न-निर्मत
भू लुंठित स्मृति शिखर ज्योतिर्मुख आदर्शों के
नष्ट भ्रष्ट संगठन सचेतन मानव मन के
धर्म नीति, आचार गिर रहे औंधे मुँह हो।[1]

(2) शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्व नहीं दो
एक सत्य ही विविध स्वरूपों में अन्तर्हित
परिवर्तन की अविच्छिन्नता ही शाश्वत है।[2]

भावों के अनुकूल कोमल या कठोर शब्द प्रयोग करने में पंत बहुत पटु हैं।

आज घोर शिविरों में आज बँटा भू जीवन/धुवा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुर्ग संगठित।
हिंस्र प्रचारों के झींगुर चीत्कार भर रहे/उग्र मतों कटु तर्कों वादों में उन्मन कर
रंग बदलते रह रह अवसर वादी गिरगिट/रहते अर्धपठित दादुर अपना मत।[3]

तीसरे प्रकार की भाषा काव्यात्मक है, जिसमें कोमल मधुर आकर्षक शब्द विधान है, बिम्बात्मकता, चित्रोपमता, अलंकृति इसकीविशेषता है —

वह देखो वह उपत्यका सौन्दर्य पल्लवित।
मौन चाँदनी छिटी जहाँ जीवन स्वप्नों की
रजत घाटियों सी अंकृत परिवेश सुरक्षित
सौरभ से श्लथ वायु मनोभावों से गुंजित।[4]

कहना नहीं होगा कि सौवर्ण की भाषा संस्कृतनिष्ठ, प्रसाद ओज, माधुर्य से सम्पन्न अलंकार एवं प्रतीक बिम्बों से युक्त काव्यात्मक है।

<u>'स्वप्न और सत्य'</u> आदर्श और यथार्थ के संघर्ष को अभिव्यक्त करने वाला गीतिनाट्य है, जिसका भाषा भी भावानुकूल है। पतझर को चित्रित करने के लिए ध्वन्यात्मक द्विरुक्ति पूर्ण शब्द प्रयुक्त हैं —

पतझर आया जग जीवन में पतझर आया/ मुरझर पड़ता युग, युग का मुरझाया वैभव
प्राण प्रकंपन समुच्छ्वसित सीत्कार छोड़ता/झिरझिर उठता आन्दोलित जनमन कानन।[5]

1, 2, 3, 4 — सौवर्ण, पूर्वोक्त पृ0 — 20, 21, 34, 22

5— स्वप्न और सत्य, पृ0 58

बात यह है कि सुन्दर-असुन्दर कोई वस्तु नहीं होती दृष्टिकोण उसे तदनुरूप बनाता है। प्रगतिवाद में शोषण, मध्यम एवं निम्नवर्ग की समस्याओं, विसंगतियों का चित्रण हुआ है, इसी तरह पंत ने 'स्वप्न और सत्य' में यथार्थवादी वस्तुओं का वर्णन तदनुरूप भाषा में किया है —

आज पुनः संगठित हो रहे शोषित पीड़ित/युग, युग के पंजर तोड़कर कुठ धरा गर्वित।

क्रान्ति दौड़ती दावानल सी भूमि कंप सी/महत् वर्ग विस्फोट हो रहा मानव जग में।[1]

तात्पर्य यह है कि गीतिनाट्यकार पंत ने सत्य का चित्रण करने के लिए उसकी माँग के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है तो दूसरी तरफ स्वप्न का चित्रण काव्यात्मक ढंग से किया है, जिसमें शब्द कोमल भावपोषक एवं आकर्षक है —

पलकों से सहता कोमल पल्लव से पदतल

नव स्वप्नों से नागिन वेणी रही गूँथते

शशि किरणों में पिरो सुनहले ओस कणों को

अश्रु हार पहनाते रहो विभूषित उर को।[2]

'स्वप्न और सत्य' में एक तरफ प्रवाहमयता के लिए छोटी-छोटी चरणों वाली पंक्तियाँ प्रयुक्त है — सपने भी तो कब के बीते मीठे सुख सब लगते तीते

धर्म नीति आदर्श सुनहले काम न आते लगते अपने।[3]

तो कहीं कहीं दीर्घ समासप्रधान चरण हैं —

जहाँ रेंगते दारुण वर्णोन्माद बढ़ाकर

जहाँ रूढ़ि जर्जर आस्था के झाड़ों पर

क्षुद्र अहंता के विषाक्त हैं नीड़ बसाए।"[4]

कहना नहीं होगा कि स्वप्न और सत्य की भाषा श्रुतिमधुर संस्कृतनिष्ठा शब्दावली लघुदीर्घ समासों से युक्त विशेषण उपमानों से अलंकृत भाषा काव्यात्मक है।

'दिग्विजय' :— वैज्ञानिक गीतिनाट्य है, अतः इसकी भाषा में विज्ञान जगत में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिससे वातावरण को वैज्ञानिक दृष्टि से सजीव बनाया गया है।

धन्य शब्द गति ज्योति वेग को भी अतिक्रम कर

दिक् प्रदेश से छूट आ रहा कौन यान यह।"[5]

पंत को जहाँ अवसर मिला है भाषा को काव्यात्मक बनाने का प्रयास किया है —

1, 2, 3, 4— स्वप्न और सत्य, पृ0 सं0 क्रमशः—64, 60, 78, 78

5— दिग्विजय —(सौवर्ण) पृ0 94

कृष्ण नील मुख पर स्मित रत्नारुण रेखा सा,
छिपा प्रभात-क्षितिज भ्रू की स्वर्णिम अभीप्सा।
× × × × ×
नील आस्य पर मन्दहास्य सर उज्ज्वल तारे,
जगमग करते विद्युद्दीपों से नभ करतल में।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमित्रानन्दन पंत के गीतिनाट्यों में शुद्ध संस्कृतनिष्ठ, परिमार्जित खड़ीबोली प्रयुक्त है। संस्कृत के प्रति अतिशय व्यामोह के कारण उनका शब्दविधान क्लिष्ट और जटिल हो गया है। उसमें छायावाद युगीन वायवीपन, मसृणता एवं सुकुमारता है, जिसमें ध्वन्यात्मकता के साथ गत्यात्मकता है। विदेशी शब्दों का प्रयोग बहुत कम, भाषा में प्रवाह है। यद्यपि साधारण व्यक्ति और पाठक रसानुभूति करने में बहुत अधिक सफल नहीं हो पायेगा तथापि भाषा में जो काव्यात्मकता एवं माधुर्य उपलब्ध है निःसन्देह वह अद्वितीय है। छायावाद युगीन शिल्प के सभी उपकरण उनके गीतिनाट्यों में उपलब्ध हैं।

'सृष्टि का आखिरी आदमी' की भाषा उर्दू बहुल शब्दावली खड़ीबोली है —

हजारों बच्चे बूढ़े पुरुष-स्त्रियाँ जल्दी जल्दी
कदम बढ़ाते चले आ रहे/ लेकिन ये कुछ अजब लोग हैं।[3]

भाषा में प्रवाहमयता है। वीभत्स परिस्थितियों का चित्रण इस प्रकार हुआ है —

इन्सान गली कूचों में पागल कुत्तों जैसे रोता है
चन्द्रमा खून के छींटों से मुँह धोता है/ तुम भी अपना कफन ले लो।[4]

ओजगुण के लिए नाट्यकार ने तदनुरूप शब्द-विधान प्रस्तुत किया है —

धधकती उल्काओं से/ जो धरती का जर्रा जर्रा झुलसा डालें पिघला डालें।
चूम रहा हूँ मैं अपने मुर्दा होंठों से काला पत्थर/धधकें ओ बूढ़े ज्वालामुखि।[5]

भावात्मक स्थलों की भाषा बहुत मधुर कोमल एवं गत्यात्मक है —

नई सृष्टि का पहला सूरज/खिले गुलाबों सी जिसकी रतनारी आभा।
ध्वस्त सृष्टि को फिर से आलोकित करती है।[6]

तात्पर्य यह है कि इस गीतिनाट्य की भाषा ओजगुण प्रधान है। उर्दू, फारसी शब्दों का बाहुल्य है। इनमें संगीतात्मकता एवं प्रवाहमयता है।

1—दिग्विजय-(सोवर्ण) पृ० 96—97

2-3, 4-5 — सृष्टि का आखिरी आदमी, क्रमशः पृ०सं० — 182, 194, 194, 201

जीवन के शाश्वत मूल्योंको नवीन परिस्थितियों में अनुकूल वातावरण में प्रस्तुत करने वाले गीतिनाट्यों में 'अन्धायुग' का अपना महत्व है। इसकी भाषा में संस्कृत शब्दावली का बाहुल्य है। अनेक स्थानों में संस्कृत के श्लोकों को उद्धृत किया गया है —

नारायणम् नमस्कृत्य नरम् चैव नरोत्तमम्
देवीम् सरस्वतीम् व्यासम् ततो जयमुदीरयेत्।[1]

(2) व्यपक्षेपाद्धर्मार्थं योर्जगत्क्षयो भविष्यति [2]

(3) स्वयम् यांति लुब्धक राजा
सहस्रौलानामन्तर ड्रोषीः प्रजा भविष्यन्ति। [3]

(4) जटा कटाह सम्भ्रमन्निलिम्प निर्झरीसज्ञ
विलोल वीचि वल्लरी विराजमान मूर्धनि
धगद्धगद्धगज्ज्वल ललाट पट्ट पावके
किशोर चन्द्र शेखरे रति प्रतिक्षण मम।[4]

तत्सम बहुल शब्दावली के बीच बोल चाल के बहुश्रुत उर्दू शब्द भी प्रयुक्त हैं, तथा नित, मास, बरस, सपने तद्भव शब्द भाषा को व्यावहारिक रूप देते हैं —

(1) मायावी है वह/ रूप धारण करता है नित नये नये।[5]

(2) दिन हफ्ते, मास, बरस बीते।[6]

दृश्यकाव्यानुरूप सर्वसुलभता के लिए धर्मवीर भारती ने शब्द चयन में जागरूकता और औचित्य का पर्याप्त ध्यान रखा है। लक्षणा शब्द शक्ति का विशेष प्रयोग करके अर्थ चमत्कार प्रगट करने का विशेष प्रयास किया गया है —

(1) गान्धारी पत्थर की उसके अंकित मुख पर/
जीवित मानव सा कोई चिन्ह न था।[7]

कहना नहीं होगा कि लेखक को इसमें पर्याप्त सफलता मिली है। भारती ने आनुप्रासिक शब्द योजना के साथ ही साथ साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया है। अन्धायुग में प्रसाद, माधुर्य गुण के साथ ओज गुण का विशिष्ट स्थान है। नाट्यकार दृश्य वातावरण को उपस्थित करने केलिए अत्यन्त प्रयत्न रत रहा है और शब्द विधान के माध्यम से उसने इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

नहीं नहीं इतना कुरूप/अंग अंग गला कोढ़ से/रोगी कुत्तों-सा दुर्गन्धयुक्त।[8]

उपर्युक्त शाब्दिक संरचना के स्थान पर एक अलग अवधारणामूलक भाषिक संरचना प्रस्तुत करती है। अंधायुग में भाषा कई स्तरों की है। कहीं विवरणात्मक शैली द्वारा लेखक ने निर्जीव सी

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7—अन्धायुग, क्रमशः पृष्ठ 9, 8, 10, 78, 51, 103, 47

भाषा में चित्रण प्रस्तुत किया है —

डरे हुए हाथी चिंघाड़ कर शिविरों को/चीरते हुए भागे
शय्या पर सोई हुई/स्त्रियाँ जहाँ थीं वहीं कुचल गयीं।[1]

'अन्धायुग' की भाषा का दूसरा स्तर वह है जिसमें वक्रोक्ति, लक्षणा एवं उपसर्गवक्रता, एवं चित्रात्मकता है —

(1) संजय मुझे देते हैं केवल शब्द, उन शब्दों से जो आकार चित्र बनते हैं,
उनसे मैं अब तक अपरिचित हूँ/कल्पित कर सकता नहीं
कैसे दुःशासन की आहत छाती से/रक्त उबल रहा होगा।
कैसे क्रूर भीम ने अंजुली में/धार उसे/ ओंठ तर किये होंगे।[2]

(2) मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा/ कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक/ जैसे रोगी मुर्दे के मुख में शेष रहता है
गन्दा कफ/ बासी थूक/ शेष हूँ अभी तक मैं।[3]

भाषा में उपर्युक्त विशेषताएँ होने का यह अर्थ नहीं कि भाषा सदोष नहीं है। श्रीकृष्ण के लिए जहाँ उन्होंने 'नीलमेघ-सा-तनु' साँवल कहा है, वहीं दूसरी ओर 'पीपल के दो चंचल पातों की छायाएँ/रह रह कर उनके कंचन माथे पर हिलती सी कहा है'[4] यह उपमान अनौचित्य पूर्ण है। इसी तरह जाने किसकी लोथों पर जा उतरेगा यह नरभक्षी गिद्धों का भूखा बादल।'[5] में किसकी के स्थान पर 'किनकी' होना चाहिए, यह वचन दोष का उदाहरण है।

तात्पर्य यह है कि अन्धायुग में तत्सम, संस्कृतनिष्ठ शब्दों के साथ उर्दू के बोलचाल के शब्दों का सन्निवेश है। प्रसाद, ओज, माधुर्य, गुणों से समन्वित इसकी भाषा में जहाँ प्रवाह है वहीं चित्रमयता है जहाँ कोमलकान्त, लक्षणा, व्यंजना से युक्त पदावली है, वहीं नाट्यात्मकता है, जहाँ अर्थगाम्भीर्य है, वहीं अर्थ सौरस्य है, अलंकारों का मणि काञ्चन योग है और है सफल बिम्बों का प्रयोग जिससे भाषा में अभिनव कान्ति आ गयी है। भावाभिव्यक्ति के लिए द्विरुक्ति प्रधान एवं अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग से इसकी भाषा बोलचाल की भाषा के समीप प्रतीत होती है।

भाषा की दृष्टि से 'इन्दुमती' सशक्त रचना है क्योंकि इसमें न तो भाषा को जान-बूझ कर बिगाड़ा गया है नहीं चेष्टापूर्ण निरर्थ शब्द प्रयुक्त हैं, न ही बोध-शून्य प्रतीक हैं, तथा भाषा संबंधी चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कोई दूर की कौड़ी ही लायी गयी है। शुद्ध, तत्सम प्रधान परिनिष्ठित शब्दावली है, जिसमें माधुर्य गुण का प्राधान्य है। इसके

1, 2, 3, 4, 5—अन्धायुग, क्रमशः पृ०सं० — 80, 18, 35, 120, 16

भाषा शैलीकी बड़ी विशेषता यह है कि विशेषणों का विशेष्य के लिंग वचन केअनुसार प्रयोग करना

(1) अलक वेणी, नितम्ब चुमी/ मृगांक मुख पर छाई अरुणिमा
 हिम वक्ष पर सुरचित पत्र रचना/रंभोरु रागरूपा ओक वसना।[1]

(2) लोचन भृंग छिपि भूपों के/ रूप कमल पर स्वयम्वरा के।
 चतुर सुनन्दा परिचय देती/ चली साथ में पीताम्बरा के।[2]

कोमल कान्त, श्रुतिमधुर शब्दों के साथ अलंकारों का आयासहीन प्रयोग कम ही स्थानों में देखने को मिलता है, किन्तु इन्दुमती में ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है कि पाठक बिना मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा —

 छन्दों में ज्यों शुचि ओस की? ज्यों हविष्य में गंगाजल है।
 जिनके यश के यज्ञ-धूम से/निर्मल सौम्यो शरद हुए है।[3]

सच तो यह है कि प्रवाहमयता, अर्थगाम्भीर्य, सीमित शब्दों से असीमित अर्थ की अभिव्यक्ति अलंकार बिम्बों के सफल प्रयोग की दृष्टि से इन्दुमती उत्तम रचना कही जा सकती है।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहींहै कि वस्तु के क्षेत्र की भाँति शैली और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी छायावाद नूतन विचारधारा लेकर आया था। उसने खड़ीबोली को भावानुकूल एवं संगीतमयता चित्रोपमता प्रदान कर भाषा में नवीन अप्रस्तुतों के चयन, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, वक्रतापूर्ण पद-विन्यास, का समन्वय कर उसमें मधुरता, लालित्य, लयात्मकता एवं गाम्भीर्य की योजना की है। छायावादोत्तर साहित्य भावकल्पना के व्यामोह का परित्याग कर यथार्थबोध के प्रति गहरा लगाव अभिव्यक्त हुआ है, जिसका प्रभाव भाषा शिल्प पर भी पड़ा है। पुराने शिल्प के माध्यम अपर्याप्त , पुराने उपमान मैले लगते हैं। वह टटकी अनुभूतियों, अभिव्यक्ति के माध्यमों की खोज में रत है। अतः उन्होंने शब्दों की केंचुल बदल कर उसमें नवीनता भरने की कोशिश कीहै। इन्होंने शिल्पगत प्रखरता, संकेतात्मकता, व्यंजनात्मकता, बिम्बधर्मिता आदि शैल्पिक प्रसाधनों की उपेक्षा कर बदलते हुए जीवन सन्दर्भों को व्यक्त करने वाली भाषा को विकसित किया है जिसमें तुक, लय आदि कीचिन्ता नहीं है, जिसके कारण भाषा बौद्धिक अनुभूतियोंको व्यक्त करने में रागात्मक कम गद्यात्मक अधिक हो गयी है। प्रतीक, बिम्बों के प्रयोग में अनुभूति की अभिव्यक्ति में प्रामाणिकता दिखायी देती है।

1-2-3 :— इन्दुमती, (धूप के धान) क्रमशः पृष्ठ 116, 117, 114

विद्यानाथ कुमार के गीतिनाट्यों की भाषा छायावादोत्तर प्रयोगवादी काव्यशिल्प से प्रभावित है। 'सृष्टि की साँझ' युद्ध और शान्ति की समस्या को लेकर लिखा गया है। जिसमें भाषा चलती बोलचाल की है। ऊपरी दृष्टि से शब्द प्रयोगों में कोई विशिष्टता नहीं दिखाई देती किन्तु उक्ति वैचित्र्य अन्तर्धारा के रूप सर्वत्र दिखायी देते हैं —

हम शान्ति चाहने वाले हैं/ पर शान्ति हेतु ही तो हमने
परमाणु बमों की धारा से/ धो दिया विश्व की धरती को।[1]

अनेक स्थानों में विवरण प्रस्तुत करने के कारण भाषा गद्यात्मक होगयी है —

तुम आँखें खोल जरा देखो/ कालिख पुत गई दिशाओं में
उठ रहा धुआँ/ पेरिस, लन्दन, यकोहामा/टोकियो नगर की
धुआती हुई चिताओं से/ ये न्यूयार्क, मास्को, जैसे समृद्ध नगर
जल रहे अभी भी धू धू कर।'[2]

कालिख पुतना, मुहावरा तथा धू धू कर जलना बंगला शैली का ध्वन्यात्मक शब्द है। लाक्षणिक पदावली का सुष्ठु प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है —

नभ आज कर रहा अट्टहास। फिर लगीं गरजने। आसमानी सातों समुद्र।
निस्सीम काल निस्सीम वायुमण्डल। सब हैं हँस रहे आज।[3]

प्रवाहमयता के लिए नाट्यकार ने द्विरुक्ति प्रधान क्रिया का उपयोग किया है —

यह प्रकृति हँस रही हँसने दो।
सागर हँसते हैं, हँसने दो।
पर्वत हँसते हैं, हँसने दो
आकाश हँसरहा, हँसने दो।'[4]

कहीं कहीं अनेक क्रियाओं का एक साथ प्रयोग कर क्रियात्मक बिम्बों की सृष्टि कर भाषा को गत्यात्मक एवं चमत्कार से युक्त किया गयाहै।

तुम अपने प्रतिद्वन्द्वी से जा टकराते
जूझते, मारते, मरते, लड़ते जी भर कर।[5]

तात्पर्य यह है कि सृष्टि की साँझ की भाषा में जहाँ एक ओर दैनन्दिन उपयोग में आने वाली सरल खड़ी बोली है, वहीं दूसरी ओर उसमें पर्याप्त काव्यमयता है।

'लौहदेवता' यांत्रिक विकास की अतिशयता से उत्पन्न समस्याओं का निरूपण करने वाला गीतिनाट्य है अतः इसकी भाषा भी वैज्ञानिक आविष्कारों का उल्लेख करने वाले शब्दों से युक्त विवरणात्मक शैली प्रधान है —

1, 2, 3, 4, 5 — सृष्टि की साँझ, क्रमशः पृ०सं०— 36, 37, 47, 47, 59

महाशक्ति ने हैं रच दिए। नवीन अलौकिक/

देखो वहाँ दूर लम्बे चौड़े खेतों में/चलने लगे शक्ति के ट्रैक्टर।[1]

तद्भव शब्दों एवं विदेशज शब्दों का उपयोग बड़े ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है —

भीख माँगते हैं हम जल का/लेकिन बहरे मेघ न सुन पाते हैं कुछ भी

जो, मदमाते इठलाते/ आने फिर देख चले जाते हैं।

हरी भरी खेती सब पल में जल जाती है।[2]

कहीं कहीं कुछ शब्दों के प्रयोग खटकते हैं। निम्न पंक्तियों में 'काँदो' शब्द ग्राम्यत्व दोष के कारण अच्छा प्रयोग नहीं कहा जा सकता है —

शासन क्या हम खाक करेंगे/ यहीं कीच-काँदों में

नित गलते सड़ते हैं।[3]

जिन भावनाओं की कवि अभिव्यक्ति करना चाहता है, उन्हें गम्भीर,सरस, भावों की सहज भाषा में व्यक्त करना कठिन है, इसे सहज रूप में समझा जा सकता है, किन्तु गीतिनाट्यकार सिद्धनाथ कुमार ने लौह देवता में बड़ी सरलता से उन्हीं भावों को अभिव्यक्त किया है—

मन की सीमाएँ देखोगे तो रो दोगे।

विरहाकुल हो, यक्ष रामगिरि पर रोते हैं

प्रियदर्शन के लिए तड़प कर रह जाते हैं

कोई साधन नहीं कि निज उफनाते उर को

भेज सके प्रणयाकुल उर तक प्राणप्रिया के/मेघों से विनती करते हैं

अर्घ्य चढ़ाकर कुटज पुष्प का। ले जाने को प्रेम संदेशा।[4]

सारांश यह है कि लौह देवता की भाषा में विवरणात्मक शैली में गद्यात्मकता है, भावात्मक या विचारात्मक शैली को काव्यात्मक रूप दिया गया है।

'संघर्ष' :—— विचारात्मक गीतिनाट्य है जिसमें एक शिल्पकार के अन्तःसंघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है कि कला का उद्देश्य क्या होना चाहिए। अतः इसकी भाषा भी विचारप्रधान है? पंकज की दृढ़ता को नाट्यकार ने जिन शब्दों में प्रगट किया है, द्रष्टव्य है —

प्रस्तर में जीवन जागेगा/मेरी साधना न हार कभी मानेगी।

मैं अपने हाथों से गढ़ दूँगा नहीं मूर्ति।

पत्थर जीवित जाग्रत बनकर मुस्काएगा/उसका अन्तर मचलेगा।

आँखें चमकेंगी, मुख की अंकित रेखाएँ/अपने मौन स्वरों में गायेंगी।[5]

1, 2, 3, 4—सृष्टि की साँझ(सृष्टि॰ और अन्य॰) क्रमशः पृ॰सं॰—92, 87, 100, 90

5- संघर्ष॰ (सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक) पृ॰सं॰ 109

ध्वन्यात्मकता शब्दों से शिल्पकला के वातावरण को सजीव बनाया गया है —

मेरी छैनी की खट्‌खट्‌ से ही क्या इस निर्जनता में जाग रहा मैं ही केवल।[1]

सूक्तियों से अनेक स्थानों में अर्थ चमत्कार उत्पन्न किया गया है —

पाषाणों में जीवन का सत्य नहीं मिलता।

सत्यों के फूल खिला करते हैं धरती पर।[2]

इस गीतिनाट्य में गद्यात्मक का प्राधान्य है —

पंकज — मिलता क्यों नहीं है, लेकिन काम में इस तरह उलझ/जाता हूँ कि कुछ याद ही नहीं रहता और मूर्तियाँ बेकार तो नहीं बना रहा हूँ, उनसे पैसे भी तो मिलेंगे।[3]

दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण नाट्यकार ने निम्न शब्दों में किया है —

धरती पर सब कुछ नश्वर है। क्षण-भंगुर है,

आशंका से जीवन का/प्रतिक्षण कम्पित है तूफान बवण्डर

उल्का झंझावातों का भय तो है ही।[4]

काव्यात्मकता के लिए भी नाट्यकार ने सरल भाषा का उपयोग किया है —

देखो मेरे उर में/ आकांक्षाएँ हैं जाग रही कितनी

मेरी पलकोंमें सपने उमड़ रहे कितने मेरी सांसें जग की

मंगल कामना किया करती सदैव।[5]

भाषा की दृष्टि से 'कवि' गीतिनाट्यों से भिन्न है। यद्यपि इसमें भी विचारात्मकता है किन्तु भाषा माधुर्य गुण समन्वित काव्यात्मक है।

(1) यह छायावन/सुषमा की पंखुड़ियाँ बिखेर/

दिशि दिशि में है आनन्द मगन/

गा रहा विहग-कल-कूजन के/शत शत गायन।[6]

आलंकारिकता, तत्सम शब्दोंके साथ तद्‌भव शब्दों का मुक्त प्रयोग इस गीतिनाट्य की विशेषता है।

वह कौन/ मेघमय आसमान से/ उतर रही

नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह/छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।

वह कौन कि जो/ अन्तर में पूनों के शशि-सी

है प्यार लुटाती बार बार।[7]

1, 2, 3, 4, 5—संवर्त(सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक) क्रमशः पृ०सं०109, 113, 116, 128, 118

6, 7 — कवि(वही) पृ० 205, 206

प्रवाहमयता के लिए नाट्यकार ने क्रियाओं को प्रधान रखा है —

> मैं सोच रही / मैं होती यदि यह चपल किरण
> जिस भाँति थिरकती मदमाती/ अलमाती मैं जाती
> फूलों के झुरमुट से/ अपने प्रियतम को/झाँक झाँक कर मैं छिप जाती।[1]

लक्षणा व्यंजना शब्द शक्तियों का सफल प्रयोग इस गीतिनाट्य में हुआ है —

> दुनिया वालो/ देखो भी इधर तनिक मुड़ कर
> ये सर्वहारा/सब मुझ प्यारे/अभिमन्यु वीर
> हैं झगड़ रहे/ इन कुत्तों से /फुटपाथों पर
> बस रोटी के/ नन्हें टुकड़े पाने को।[2]

सारांश यह है कि गिरिजाकुमार कुमार की भाषा साधारण बोल चाल की होते हुए भी उसमें काव्यात्मकता, स्थान स्थान पर मिलती है। शब्द चयन, तत्सम, तद्भव एवं विदेशी भाषाओं से किया गया है। ध्यान यह रखा गया है कि उसमें संस्कृतनिष्ठता न आने पाये और उनके प्रयोग में ग्राम्यत्व दोष भी न रहे। उनके गीतिनाट्यों में न तो प्रसाद के भव्य नाटकों जैसी अलंकार प्रधान काव्यात्मकता है और न मैथिलीशरण गुप्त या द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि साधारण लघु समासपदावली से जिन भावों, विचारों की अभिव्यक्ति की गयी है वह आकर्षक है। श्रुति मधुर शब्दों से सफल पूर्ण, संश्लिष्ट, बिम्बों का अंकन कम ही साहित्यकार कर सकते हैं। यह क्षमता तो उन्हीं साहित्यकारों में होगी जिन्हें शब्द में निहित विच्छिन्न वैभव का पूर्ण ज्ञान एवं प्रयोग करने का कौशल प्राप्त होगा। कहना नहीं होगा कि गिरिजाकुमार कुमार की सफलता का यही एक मात्र कारण है। शब्द चयन में उन्होंने यह ध्यान रखा है कि भाषा लयात्मक हो उठे। वे स्वयं लिखते हैं कि 'प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से काव्य नाटक में प्रयुक्त भाषा की लयपूर्णता की एक दूसरी विशेषता भी है जो आज के हमारे कर्मव्यस्त जीवन के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। xxxx छन्दोबद्ध होने के साथ ही काव्य नाटक की भाषा बिम्बात्मक और अलंकारमय होती है।'[3] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार कुमार भाषा-शिल्प के सजग प्रयोक्ता हैं। उनकी शैली में भी वैलक्षण्य, कान्तिमत्ता, अर्थवत्ता है और दर्शक-पाठकों को आकृष्ट करने की अपूर्व क्षमता है।

जानकी वल्लभ शास्त्री छायावादी युगीन काव्य शिल्प के समर्थक एवं प्रयोगधर्मी कवि हैं जिसका प्रभाव उनके गीतिनाट्यों में भी पर्याप्त रूप से पड़ा है। 'पाषाणतरण' में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। भावानुकूल शब्द-चयन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

1, 2— कवि(सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक)पृष्ठ० 212, 229
3— सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक—गिरिजाकुमार कुमार, पृष्ठ० 18

कंकण किंकिणि नूपुर धुन सुन पड़ी अचानक उस घड़ी।

नृत्य ताल उन्मद पद से कंपित गिरि मूर्ति अडिग खड़ी।[1]

ध्वन्यात्मक शब्दों के बर्बेली पदों का प्रयोग बहुत सराहनीय है —

धक् धक् करने लगा हृदय सम्मान नाथ का व्यर्थ ओह

सुरपति-विजयी सुन नरपति से हार अपार निरर्थ कहीं।[2]

कहीं कहीं क्रियाप्रधान शब्दों का उपयोग बिम्ब उपस्थित करने के लिए हुआ है —

टुक रुकती, झुकती, बल खाती, मृदु स्वर गाती नाचती,

निरख नैन नीरज से लोचन हँसती धीरज जाँचती।[3]

उपर्युक्त उदाहरण में क्रियात्मक बिम्बों के साथ आनुप्रासिकता का चमत्कार अपना अलग अस्तित्व रखता है। संगीतात्मकता नाद सौन्दर्य से प्रभावित है।

रुनझुन-रुनझुन-नूपुर धुन सुन सुन/जड़ तन बन जाता मन चेतन।[4]

'उर्वशी' की भाषा माधुर्य गुण प्रधान कोमलकान्त शब्दावली है जिसमें वर्णसाम्य, बाहुल्य है वेशभूषा ये पर्व स्वर्ण-कुण्डल मण्डित यह कम्बु कण्ठ/सौन्दर्य सरोवर का सौरभमय विमल अम्बु।

ये वासन्ती बाहें हृदय स्थल नन्दन वन/बहु वर्ण पर्ण बहु रंग सुमन कलरव गुंजन।

ऊर्मिल कटि तट सुख स्वप्नों का पिच्छिल पनघट/आत्म श्लाघा में निरत रत्न किंकिणि।[5]

भाषा में ध्वन्यात्मकता उत्पन्न करने के लिए नाट्यकार ने संगीत का सहारा लिया है —

कंकण खनक रहे हैं पर क्या करते खन खन?

कटि तट लटकी नहीं बज रही किंकिणि किन किन्।

रुनन-झनन नूपुर करते सुर ताल कहाँ क्या।

छिम, छिम, छिम, उन्मद मृदंग ध्वनि जब निकली।[6]

अनेक स्थानों में मुहावरों के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य बढ़ गया है।

शब्द न होगी मीठी तो अंगूर न क्या खट्टे होंगे?

मैं न कहूँगी वह किस केले के खट्टे खट्टे होंगे?[7]

कहीं कहीं कुछ शब्दों का प्रयोग खटकता है —

गूँज उठें तीनों रागिनियाँ छिले छिले पोचो पेड़ो।[8]

वैसे उर्वशी में प्रवाहमयता सर्वत्र दिखायी देती है।

आज गगन मगन झुके गौरव गिरि झूले

मरु का सरवर लहरे अमल कमल फूले।[9]

2, 3, 4, 5— मंगलचरण(पाण्डेय), क्रमशः पृ०सं० 22, 23, 22, 20

6, 7, 8, 9 — उर्वशी(पाण्डेय) क्रमशः पृ०सं० 37, 51, 40, 41

सारांश यह है कि उर्वशी की भाषा तत्सम प्रधान लघु समास पदावली है जिसमें माधुर्य, प्रसाद गुण के साथ लक्षणा, व्यंजना के प्रयोग से अर्थ में अभिनव कान्ति भरीगयी है।

'पाषाणी' की भाषा सरल है किन्तु शब्द प्रयोग की विशेषताऐं —

(1) हुई सचित इस रैखैकान्तिकता से परन्तु यह शान्ति
तिल तिल पर जल मानना धुँए की शीतलता ही शान्ति।[1]

(2) बस बस तप की मत बात करें, तप से तपसे मन ऊबा है।[2]

कहीं कहीं विवरणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है —

हल्के फुल्के उजले बादल रंग बिरंगे फूल
लाल लाल पीली पीली उड़ती कुंकुम की धूल।[3]

छोटे-छोटे अलंकार से युक्त भाषा बड़ी सजीव हो उठी है —

(1) चाटुकारिता बीन बजे तो ठगी रहे हिरनी बनी।
ज्ञान कम्बु जो हुआ निनादित तो उद्भ्रान्त बनें तनी।[4]

(2) यह विषलता आप चन्दन तरू बनीं या सहवास की।[5]

अनेक स्थानों में पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त है। योग सम्बन्धी एक स्थल द्रष्टव्य है —

ध्यान धारणा से समाधि से जीतमिले न पाये तुम
यह मन मेरे बी न वश हुआ अभि उसमें आये न तुम।[6]

तात्पर्य यह है कि पाषाणी की भाषा सरल मुहावरेदार अलंकार युक्त है।

'मंजरी' की भाषा में आनुप्रासिकता प्रधान तत्सम शब्दावली बहुला पदावली है —

स्वर्ण ताम्र पिञ्जरित आम्र की मंजु मंजरित शाखें।
पियें सरसि केसर अशोक की गुनगुन-गुनगुन मांखें।[7]

कहीं कहीं देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है —

(1) करते रहते अहा, घुटर घूँ मुग्ध प्रजा बलि जाए।[8]

(2) टटके टटके बात सरीखे सिन्धुवार के फूल।[9]

टवर्ग प्रधान भाषा कहींकहीं श्रुतिकटुत्व दोष उत्पन्न करती है

हुई बात क्या चौहम चोलों गए मुझे अटका कर।
मक्खी सी अंखि मटका कर मुख सिता झटका कर।[10]

1, 2, 3, 4, 5, 6—पाषाणी, पू0 क्रमशः पृ0सं0 —80, 83, 90, 99, 99, 100

7, 8, 9, 10 — मंजरी(पाषाणी) क्रमशः पृ0सं0 110, 107, 108, 135

लघु-समास-बहुला पदावली अनेक स्थानों पर मिलती है —

(1) वज्र कपाट सपाट वक्ष पर आहत, क्रन्दन माला।[1]

(2) चन्द्र तारकखचित नील वितान।[2]

कहना नहीं होगा कि मंजरी की भाषा में जहाँ प्रवाहमयता है वहीं नाट्यात्मकता है, सरस मिश्रित संश्लिष्ट बिम्बों की कल्पना है। प्रसाद माधुर्य, समन्वित भाषा में शब्द योजकता, शब्दों का सुरुचिय प्रयोग है।

'इरावती' की भाषा अन्य गीतिनाट्यों में भिन्न है। शब्दचयन में मधुरता है। शब्दों की प्रकृति संस्कृतोन्मुख है। वैसे अनेक स्थानों पर तद्भव शब्दों का प्रयोग है सुधि, बिसरे, सिंगार आग, पाखों, सात, पतली, भैया, रैनबसेरा, सपने।

(1) भस्म अंग का सिंगार, आग सजग नाग हार।[3]

(2) जहाँ नये नये सपनों का बनती रहती रैन बसेरा।[4]

तत्सम शब्दों की दृष्टि से इरावती अन्यगीतिनाट्यों की अपेक्षा अधिक समृद्ध है —

मेरुशिखर पर अंगाधर सा यह लहराता ज्वार
सीकर से आनन्द-सिन्धु के दशन वसन पर स्फार।[5]

छोटे-छोटे समास बहुला पदावली सर्वत्र दिखायी देती है —

(1) नृत्य-गीत, आनन्द कन्द उल्लास हास मय।[6]

(2) हिमकण-भये मधु-मुकुल के।[7]

भाषा में आलंकारिता प्रयास पूर्वक लायी गयी है —

(1) रक्त माँस की सुन्दरता पर ज्ञान ध्यान बलिहार
करम हँस वक वक रस बकता, चकित शान्त शृंगार।[8]

(2) शरद रजत मत हो हीरक मय हो न हेम हेमन्त।[9]

अनेक स्थानों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर अर्थ चमत्कार उत्पन्न किया गया है—

(1) सुरति निरति सम्भव आत्मा हो सकती साकार।
अजपा जाप नाम माला, अनहद ध्वनि पद शृंगार।[10]

वर्णमैत्री छायावाद की निजी विशेषता है और इरावती में इसका अधिक प्रयोग है

मन-अलि हृदय अवतंस सन्धि को उन्मुख।[11]

(2) विसुध सुधा वसुधा पर झरना चाहती।[12]

1, 2— उक्त मंजरी, क्रमशः पृ०सं० 110, 139

3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12— इरावती, क्रमशः पृ०सं० —5, 12, 77, 11, 21, 13, 24, [illegible]

(3) हैं कण्ठाग्र मुखाग्र हुए अब राजा राजकुमार।[1]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से वातावरण को सजीव बनाया गया है

(1) वेत्रवती के जल का कल-कल क्या हुआ।[2]

(2) घुम घुम मन किन्तु धधक उठती कामना अनन्त।[3]

जानकी वल्लभ शास्त्री बहुज्ञ गीतिनाट्यकार हैं। उन्होंने भाषा के लिए विभिन्न क्षेत्रों से शब्द ग्रहण किया है। संस्कृत, तत्सम शब्दों के प्रयोग में यह ध्यान रखा है कि शब्द कोमल, मसृण रूप में प्रयुक्त हों, उनमें संगीतात्मकता ध्वन्यात्मकता, प्रवाहमयता और लयता हो। तत्सम शब्दों के बीच बीच तद्भव शब्दों का प्रयोग कर भावों को सम्प्रेषित करने का प्रयास किया है। ये तद्भव भाव अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम सिद्ध हुए हैं और उनसे भावानुप्रासिकता की वृद्धि हुई है। प्रसाद, माधुर्य, ओज गुण समन्वित भाषा में कहीं कहीं अनायास, सहज रूप में, कहीं कहीं प्रयास पूर्वक अलंकारों का उपयोग किया है। व्यंजना, लक्षणा वक्रोक्ति के माध्यम से भाषा में जहाँ चमत्कार उत्पन्न किया गया है वहीं, उसमें अर्थगाम्भीर्य, कान्तिमत्ता भी है। वैसे अलंकृत भाषा के संबंध में उनके विचार है कि वस्तुतः भाषा की अलंकृति-अनलंकृति स्थिति सापेक्ष है और मुझे सन्तोष है कि मेरी अलंकृत भाषा अधिक आवेगपूर्ण है।[4] शास्त्री जी को संगीत का विशेष ज्ञान है जिसके कारण नाद प्रधान शब्द प्रयोग में वे बहुत सफल रहे हैं। इस ज्ञान के कारण भाषा में संगीतात्मकता है। कोमल मसृण भावों के अनुरूप राग-रागनियों का उपयोग कर तदनुरूप शब्द विन्यस्त हैं। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि भाषा शिल्प की दृष्टि से जानकी वल्लभ शास्त्री अच्छे, कुशल- सामर्थ्यवान् शब्द ज्ञाता एवं प्रयोक्ता हैं। भाषा में काव्यात्मकता है। नयी कविता के युग में छायावादी शिल्प - विधान को जीवित रखने में उन्हें स्मरण किया जायेगा क्योंकि इनके गीतिनाट्यों में प्रसाद जैसी बाहुल्य, वरन् इन्होंने शिल्प की दृष्टि से समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

'सुहाग-सरोवर' — लोक प्रेम गाथापरक गीतिनाट्य है, जिसकी भाषा में लोकधर्मिता अधिक है। इस गीतिनाट्य में तत्सम शब्दों का बाहुल्य होते हुए भी तद्भव एवं देशज शब्दों की उपेक्षा नहीं की गयी है और उनकी संख्या भी बहुत है। बात यह है कि कथा में लोकतत्व का मिश्रण होने के कारण गीतिनाट्यकार ने भाषा में भी तद्भव शब्दों का प्रयोग करके उस वातावरण को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया है।

1, 2, 3— इरावती, क्रमशः पृ० सं० 51, 25, 27

4— पाषाणी, पृ० सं० 7

प्रभु नयनन जो आँसु बरसा, यह जीवन-सरवर का पानी।
डूब गया क्यों खोया जिसने मन का मोती आँख का पानी।
मेघ मरूत् पानी के पीरन, चाहे सुरूज सागर के पानी
रूठ गया क्यों खोया जिसने मन का मोती आँख का पानी ॥[1]

तद्भव प्रधान भाषा कहीं कहीं ब्रज भाषा की सीमा का स्पर्श करती है –

मिलन होय एक बार पलकन धोऊँ पग पिया
कर सोलह शृंगार, चन्दन चिता सँवार के
निज कन्त के देश पिया मिलन चली गई।
धर जोगिन का वेष, मैं चली बिनु पी के।[2]

कहीं कहीं तद्भव शब्द तत्सम शब्दों के साथ इस प्रकार प्रयुक्त हुए है कि वे उनमें घुल-मिल गये है –

इस नगरी की राजकुमारी, अनिन्द्य सुन्दरी योजन गन्धा।
सकल कलों की कमल पाँखुरी इस नगरी की राजकुमारी।[3]

अनेक स्थानों में देशज शब्दों का प्रयोग हुआ, बरोठे, औंधा, दीया शब्द द्रष्टव्य है –

(1) गली कूचे आँगन कोठे बरोठे पर/ डर अब डोलती है।[4]
(2) बाज बन कर औंधा जाय।[5]
(3) आँचल में दीया संजोये।[6]

लघु समास बहुला पदावली इसकी अपनी विशेषता है –

(1) वन पर्वत-गिरि गुहा को/एकाकी लाँघते चले गये।[7]

(2) आँचल घूँघट/और सीमंत पर/अंगराग चन्दन सा।[8]

नाट्यकार ने भाषा को प्रभावी एवं वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए छोटे-छोटे पदों का प्रयोग किया है –

वृद्ध –निर्बलता/स्वार्थ/निजपरता/यथार्थ से/निष्क्रिय बनाकर।
और खींचकर कहीं/ ले गई तुम्हें/ उस गुफा में
बंद है/ जिसके सब द्वार / बन्द थे युगों से।[9]

कहीं कहीं क्रिया के अन्त में प्रयोग हुई है –

---

1 से 9 तक – सूर्यास्वरोवर, क्रमशः पृ० सं० — 12, 86, 40, 91, 95, 100, 64, 102, 84

त्यक्त/ पराजित/ निष्क्रिय/ अपराधी/अविवेकी

अब सन्यासी बन आये।[1]

अनेक स्थानों पर भाषा गद्यात्मक हो गयी है। किन्तु यह गद्य प्रयोग न तो प्रवाह में व्याघात उत्पन्न करता है न ही यह रूखा गद्य है —

जब राजा ने बन्दी किया था मुझे। केवल इस अभियोग पर

यह कहने पर/ कि राजा भी हमारी तरह व्यक्ति है।[2]

गीतिनाट्यों में वर्णनात्मकता एक दोष समझा जाता है क्योंकि गीतिनाट्य में जिस सघन क्षणों की तीव्रानुभूति का वर्णन होता है वह स्वयं अपने आप में काव्यात्मक होती है किन्तु सूखा-सरोवर में वर्णनात्मकता इस कौशल से प्रयुक्त है कि वह काव्यात्मकता का एक अंग प्रतीत होती है —

जिस दिन इस सिंहासन पर/अभिषिक्त हूँगा मैं/

नगरी की सारी प्रजा/ जय जय नाद से भर देगी व्योम को।[3]

प्रतीकात्मकता एवं आलंकारिता इस गीतिनाट्य की अपनी विशेषता है —

जिस क्षण सरवर सूख रहा था/ सुना और देखा था मैंने।

बन्द कमल रोये थे कैसे/ तड़पी थीं कलियाँ पत्तों पर

कुमुदिनी कुहकी थी कमलों से।[4]

सारांश यह है कि लक्ष्मीनारायण लाल के सूखा सरोवर की भाषा, सरल-व्यावहारिक, गद्यवत् एवं लोकव्यवहार के समीप की भाषा है, जिसमें तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों का कुछ सुप्रयोग है। प्रवाहमयता, माधुर्य प्रसादमयता, आलंकारिकता, उसकी विशेषताएँ हैं।

दिनकर भाषा शिल्प के अद्भुत ज्ञाता और प्रयोक्ता है। उर्वशी' काव्यात्म प्रधान गीतिनाट्य है जिसमें विज्ञानवाद, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, इत्यादि शास्त्रों का गम्भीर प्रभाव पड़ा है: जिसके कारण उर्वशी की भाषा भी इन क्षेत्रों में हुई नव्य खोजों से प्रभावित है। उर्वशी के अध्ययन के अनन्तर यह दृढ़ धारणा उत्पन्न होती है कि नाट्यकार दिनकर को हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार है और वे परमार्जित, व्याकरणशुद्ध एवं तत्सम निष्ठ भाषा प्रयोग के पक्षधर हैं। अनेक स्थानों में संस्कृतनिष्ठता दिखायी देतीहै।

मैं ही निविडऽस्तनाता, मुष्टिमध्यमा/मदिर लोचना, काम तुलिता नारी

प्रसाराचरण कर अंग/तोड़ू तम को उन्मत्त उभारती हूँ।[5]

1से 4 तक – सूखा सरोवर, क्रमशः पृष्ठ –107, 14, 52, 31

5– उर्वशी, दिनकर, पृ0 77

उर्वशी का भाषा शिल्प छायावाद युगीन काव्य शिल्प से बहुत प्रभावित है। बात यह है कि छायावाद में जिस रोमानी प्रेम के वायवीपन का वर्णन किया गया है, तदनुरूप शब्द विन्यस्त हुए हैं। यही स्थिति उर्वशी के साथ है। उसमें भी वायवी, वासनाप्रधान रति का वर्णन है, अतः नाट्यकार ने शब्द सौष्ठव के लिए छायावादी सर्णि को स्वीकार किया है।

रंगों की आकुल तरंग जब हम को कस लेती है।
हम केवल डूबते नहीं ऊपर भी उतराते हैं।[1]

उर्वशी में मूलतः व्यासशैली ही प्रयुक्त है, जिसमें छोटे-छोटे समास युक्त पदावली है —

अम्बर से ये कौन कनक प्रतिमाएँ उतर रही हैं।
उड़ी आ रहीं छूट कुसुम रागिनियाँ भटक गयी हैं।[2]

कुछ ही स्थलों में दीर्घसमासों के दर्शन होते हैं —

(1) हिमकण सिक्त कुसुम सम उज्ज्वल अंग अंग झलमल था।[3]
(2) समा गयी उर बीच अप्सरा सुख सम्भार -नताङ्गी।[4]
(3) मैं रूप-रंग-रस-गंध-पूर्ण साकार कमल।[5]
(4) तलातल अतल वितल पाताल छोड़।[6]

कहीं कहीं विशेषण प्रधान पदों के कारण समास बहुल चरण प्रयुक्त हैं जिसमें क्रिया कई चरणों के अन्त में प्रयुक्त हुई है —

कार्तिकेय सम शूर देवताओं के गुरु सम ज्ञानी
रवि सम तेजवन्त, सुरपति के सदृश प्रतापी मानी।[7]

इसके विपरीत कहीं कहीं स्वाभाविक रूप से क्रिया अन्त में आयी है। इसकेकारण भाषा प्रवाहमयी एवं आकर्षक हो उठी है —

रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा तृषा विश्वमय नर की।
विधु की प्राणेश्वरी आरती-शिखा काम के कर की।[8]

नाट्यकार ने ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग कर वातावरण को सजीव बनाया है —

(1) शान्ति शान्ति सब ओर किन्तु कणन कणन स्वन कैसा?[9]
(2) झलमल-झलमल सरस्सलिल वह ऊषा की लाली से।
(3) मेघमन्द्र घुम घुम ध्वनि जल धारा में घट भरने की।[10]

इसके अतिरिक्त नाट्यकार ने मुड़ान, रुए, ठठरी, बूटे, उपट, जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

---

1 से 10 तक — उर्वशी, (दिनकर)क्रमशः पृ०सं० —34, 2, 20, 21, 74, 74, 25, 8, 2, 106

(1) चमक रहे हों नील चीर पर बूटे ज्यों चांदी के।[1]

(2) योगी की साधना सिन्धु की नींद उचट जाती थी।[2]

(3) और चूमता रहता फिर सुन्दरता की ठठरी को।[3]

(4) अरी कुशाग्र क्या लाओगे? ला दे इस हृदय कुसुम को।[4]

आनुप्रासिकता के लिए उर्वशी स्मरणीय गीतिनाट्य है —

कमल कर्पूर कुंकुम से कुटज से।[5]

उर्वशी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है, काव्यात्मकता। नाट्यकार ने अलंकृत भाषा का प्रयोग सर्वत्र किया है —

(1) किन्तु जब कर देखता हूँ/कामनाएँ वर्तिका-सी बल रही हैं।
जिस तरह पहले पिपासा से विकल थीं/प्यास से आकुल अभी भी जल रही है।
रात भर मानों उन्हें दीपक सदृश जलना पड़ा हो।[6]

(2) यह प्रभात रसमयी बुद्धि का यह हिलोर चिन्तन की।
तुम्हें ज्ञात है मैं बहते बहते इसकी धारा में
किन लोकों किन गुह्य नभों में अभी घूम आया हूँ।[7]

आलंकारिकता के साथ नाट्यकार ने अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का सफल प्रयोग किया है। रसानुकूल भाषा के प्रयोग में नाट्यकार दिनकर बहुत सफल रहे। शृंगाररस के लिए श्रुतिमधुर पंचम वर्ण से संयुक्त अक्षरों का प्रयोग किया है —

मुख सरोज मुसकान बिना आभा विहीन लगता है।
भुवन मोहिनी श्री का चन्द्रानन मलीन लगता है।[8]

माधुर्य, प्रसाद, ओज गुण समन्वित भाषा बहुत ही आकर्षक है।

सारांश यह है कि उर्वशी की भाषा तत्सम शब्दों से पुष्ट अवसरानुकूल है जिसमें व्याकरण सम्मतता, रसानुकूलता, प्रवाहमयता, मधुरता, प्रभावोत्पादकता और काव्यात्मकता है। शब्द-चयन करते समय यह ध्यान रखा गया है कि उसमें शब्द मधुर रूप में प्रयुक्त हों, कुरूप एवं अरुचिकर शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। शब्द विधान रुचिकर, मनोरम एवं लालित्यपूर्ण है। शब्द मैत्री एवं अर्थ विशेष में शब्दों का प्रयोग नाट्यकार दिनकर की निजी विशेषता है। पात्रों के मनोगत भाव सरलता, स्पष्टता, के साथ व्यक्त हुए हैं। विभिन्न पात्रों से उच्चरित भाषा का स्वरूप एक ही है। भाषा में रसानुकूलता का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। रस की व्याख्या करते समय तदनुरूप शब्द प्रयुक्त हुए हैं। शृंगार करुण रसों के लिए

---

1 से 8 तक — उर्वशी, (दिनकर) पृष्ठ पृष्ठ0-1, 9, 12, 93, 38, 39, 69, 6

माधुर्य गुण सम्पन्न शब्दों का वीर रौद्र रसाभिव्यक्ति के लिए द्वित्व, कटु वर्णों का प्रयोग हुआ है। एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि उर्वशी की भाषा अलंकार प्रधान संस्कृत गर्भित तथा काव्यात्मक भाषा है।

'संशय की एक रात' – में नाट्यकार राम को विभाजित व्यक्तित्व वाला प्रदर्शित करना चाहता है। कवि ने कथ्य को संवेदनीय बनाने के लिए जिस माध्यम को स्वीकार किया है वह अभीष्ट भावों के व्यंजन में पूर्ण तथा सफल रहा है। नाट्यकार ने सुसंस्कृत, परिमार्जित स्वरूप युक्त शब्दों से भाषा का ताना-बाना बुना है। नामधातुओं का प्रयोग नाट्यकार ने अनेक स्थान पर किया है –

(1) विश्वासे/प्रभु विश्वासे/अपने बन्धु मित्रों के/पौरुष को।[1]

(2) इनकी वास्तविकता को/ कभी चुनौता ही नहीं गया।[2]

(3) सत्य के भिन्न अस्तित्व को/ निकषना चाहते हो।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों में विश्वासे, चुनौता, निकषना तो स्वीकार किया जा सकता है, निमति रहे जैसे शब्द अग्राह्य हैं –

दुर्ग निमति रहे/ सीता मुक्त बनाते।[4]

संस्कृत प्रत्ययों में मेहता को क्त बहुत प्रिय है। संशय की एक रात में याचित पैर, संकल्पित प्रज्ञा, उत्सर्गित इच्छा, प्रज्ञित, अनाश्रित, जैसे शब्द बहु प्रयुक्त हैं –

'इन याचित पैरों में/ संकल्पित प्रज्ञा है
सर्वंशी निष्ठा है/ उत्सर्गित इच्छा है।[5]

अनेक स्थानों में शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग किया गया है। इस प्रवृत्ति को अच्छा नहीं कहा जा सकता है। प्राचीन काल में छन्द, के आग्रह के कारण शब्दों को विकृत किया जाता था किन्तु आज मुक्त छन्द में लिखी गयी रचनाओं में ऐसा करना ठीक नहीं है। शायद शब्द-विकृत की प्रवृत्ति प्रयोगवाद की रचनाओं में यदा कदा कहीं मिलती है, जिससे लेखक प्रभावित प्रतीत होता है–

(1) श्रेष्ठ भावों की प्रतीती के लिए।[6]

(2) महाकाल बैठे अब/ खाली रहे इतीहास।[7]

इसी तरह अभीयान(पृ018) अनायकता(पृ046) प्रयुक्त है। पुत्र प्रिय को पुत्रप्रयी(पृ065), विरहिणी को विरहणी(पृ020) मालूम को मालुम(पृ035) अपाय को अपायी(पृ021) बनाना

---

1 से 7 तक संशय की एक रात, क्रमशः पृ0सं0 –18, 49, 54, 4, 18, 10, 17

इसी मनोवृत्ति का परिणाम हैं। 'पृथुव्मन' कवि निर्मित शब्द कहा जा सकता है।

गरम सलाखों से/प्रत्येक पृथुव्मन रेङलिखी है।[1]

अर्थ चमत्कृति के लिए अनेक स्थानों पर विरोधाभासपूर्ण पद-योजना का प्रयोग हुआ है

(1) हम भी/ऐसे ही दुर्भाग्यपूर्ण सौभाग्यी युग के चिन्तक हों।[2]

(2) मेरी अस्वीकृता स्वीकृति का क्या होगा?[3]

अनेक स्थानों पर देशज शब्दों का मिश्रण इस ढंग से किया गया है कि वे खटकते नहीं हैं—

(1) सँवारत आकाश/ नैनों में लिए।[4]

(2) पोर-पोर/छोर-छोर देता है/निष्ठा को।[5]

(3) हमने राक्षस रच देखे।[6]

(4) बंग सा बेधि बिन गैनि।[7]

संशय की एक रात में लक्षणा एवं व्यंजना का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की पंक्तियाँ सुभाषित प्रतीत होती है —

(1) रजतशिखर की नींव में सोया अँधेरा।[8]

(2) परिस्थितियाँ धेनु हैं/ दुहो इनको/ निष्ठुर अँगुलियों से दुहो इनको।[9]

(3) युद्ध/मंशा नहीं/ एक दर्शन है राम।[10]

भाषा पात्रानुकूल है उसमें सफल बिम्ब उपस्थित करने की क्षमता है। सारांश यह है कि संशय की एक रात की भाषा तत्सम प्रधान है, जिसमें तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा को पौराणिकता और समसामयिकता के बीच की भाषा कह कर श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इसकी निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है (1) नरेश मेहता क्लासकीय परम्परा की भाषा के समर्थक हैं। (2) इनकी भाषा में संज्ञा से क्रिया बनाने की नामधातु की प्रक्रिया है। (3) श्री नरेश मेहता की भाषा शब्दों के गुरुत्व और महिमा को अनुप्राणित होती है। (4) भाषा के स्तर पर कहीं कहीं तत्सम के संस्कार में तद्भव और तद्भव के संस्कार में तत्सम का प्रयोग दर्शनीय है, लेकिन जब संगठनात्मक परिवेश में देखते हैं तो लगता है कि यह विषमता नहीं, बल्कि कथ्य की सहज अनिवार्यता है।[11]

युद्धोपरान्त उत्पन्न ह्रासमान मूल्यों, विकृतियों को लेकर अनेक गीतिनाट्य लिखे गये हैं। 'एक कण्ठ विषपायी' उसी परम्परा की तरफ एक कड़ी है। दुष्यन्त कुमार उस भाषा के कट्टर पक्षपाती हैं जो हिन्दुस्तानी कहलाती है जिसमें उर्दू के शब्दों का अधिक प्रभाव

---

1 से 10 तक संशय की एक रात, क्रमशः पृष्ठ0 -65, 71, 84, 6, 13, 65, 87, 11, 46, 71

11- संशय की एक रात, भूमिका- लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ0 24

है, साथ ही वह बोलचाल की भाषा है, 'एककण्ठ विषपायी' में भाषा के दो स्तर हैं। प्रथम प्रकार की वह भाषा है, जो स्तोत्र शैली में संस्कृतमयी रचना कही जा सकती है —

वरुण का स्वर — देव देव महादेव लौकिकोत्तार प्रभो,
प्रभुम त्वामीश्वरं शंभु जानीमः कृपया तव
किं मोहयसि नःतात मायया परया तव
दुर्जेयया सदा पुंसा महिम्ना परमेश्वर।[1]

कहीं कहीं खड़ी बोली में तत्सम शब्दों का इस प्रकार प्रयोग किया है कि वे संस्कृतनिष्ठ रचना प्रतीत होते हैं —

कुबेर — हे सर्वाभिप्रवर्तक/धाता, प्रभितामय, हे ओंकार/हे वषट्कार
हे स्वाकार/त्रिगुणात्मक, निर्गुण/प्रकृति-पुरुष से परे शंभु
हे सकल-प्रजापतियों के स्रष्टा नमस्कार।[2]

दूसरे प्रकार की भाषा बोलचाल की है जिसमें शब्द-विन्यास सरल उर्दू मिश्रित हैं

दक्ष — शंकर/शंकर वह जिसने घर की परम्परा तोड़ी है
वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है।
जिसके कारण/ मेरा माथा नीचा है सारे समाज में
मेरे ही परकीतिमि रूप में आये।[3]

बीच बीच में तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है —

(1) वैसे ही आप भी दुखी हैं/ अपने घर की सोन चिरैया उड़ जाने पर।[4]
(2) बासी कुछ उक्तियाँ/ वे ही पिटी पिटाई बातें।[5]
(3) आह शोक ने मुझे/ अचीन्ही स्थितियों से जोड़ दिया।[6]

नाट्यकार ने समास शैली के स्थान पर व्यास शैली का प्रयोग किया है जिसमें गद्यात्मकता अनेक स्थानों पर मिलती है किन्तु वह गद्य रूखा नहीं है —

भृत्य — प्रभु/ राजकुमार सुलभ ने/ अपने निजी कक्ष के द्वार बन्द कर,
अबोल्क चिड़िया को बन्दी बना लिया है
कहने पर भी/ अनपेक्षित नहीं करते हैं।[7]

भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है — वातावरण केअनुकूल होना। युद्धोपरान्त देश की क्या स्थिति होती है, नाट्यकार के शब्दों में देखिए —

सर्वहत — सारे नगर में ताजा/जमा हुआ रक्त है/
और सड़ी हुई लाशें हैं/मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं।

1से 7 तक एककण्ठ विषपायी, क्रमशः पृ०सं०—72-73, 75-76, 11, 21, 22, 71, 15,

क्षतविक्षत तन हैं/ और उन पर भिन्नाते हुए

चील और गिद्धों के झुण्ड/ और मक्खियाँ हैं।[1]

रसानुकूल भाषा लिखने में नाट्यकार बहुत सफल है। वीर रौद्र रसानुकूल भाषा का उदाहरण प्रस्तुत है —

शंकर जागो कात्यायनी/वद्रघाती सर्वाधिक/घमड घाकपादोदर,

कुंडी प्रमथ भयानक/कपालिका कूष्माण्ड।[2]

बिम्बधर्मिता इसकी भाषा की अपनी विशेषता है। नाट्यकार ने इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है जो बिम्ब उभारने में पूर्णसफल हैं —

द्वारपाल— जैसे ही महाराज/क्रोधातुर/महादेव शंकर पर रोष व्यक्त करते/

यज्ञ मण्डप में घुसे/वैसे ही अनायास/भगवती के पास/विद्युत सी कौंध गई

भस्म हो गया उसमें/ सुन्दर सर्वांग चन्द्र गौर वर्ण/और दूसरे ही पल

भगवती सती का अधजुलसा शव/सामने पड़ा था।[3]

तात्पर्य यह है कि 'एक कण्ठविषपायी' की भाषा चलती, बोलचाल की है जिसमें तत्सम शब्दों के साथ उर्दू शब्दों का खुल कर उपयोग है। भाषा मुहावरेदार, अलंकृत है जो रसानुरूप परिवर्तित होती रही है। ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण समन्वित भाषा में प्रासंगिकता, बिम्बधर्मिताऔर काव्यात्मकता के साथ प्रवाह भयता है।

अज्ञेय शब्द प्रयोग के धनी और पण्डित हैं। शब्द में कितने अर्थ छिपे हो सकते हैं, यह उन्हें भली प्रकार ज्ञात है। इसीलिए उन्होंने प्रयोगवादी काव्यधारा में भिन्न भाषा का प्रयोग कियाहै'उत्तरप्रियदर्शी' में भिन्न भाषा का प्रयोग है। इसमें शब्द संस्कृत-निष्ठ, परिमार्जित है — मैं बद्ध निष्करुण अनुल्लंघ्य, मेरे शासन में

दया घृण्य, महाव्रत, निष्कम्पित।[4]

समास बहुल भाषा अनेक स्थानों पर मिलती है —

(1) यों रत्न-प्रभु हो रस पुष्प प्रभवा हो।[5]

(2) ~~ओ सौध शिखर के स्वर्ण-कलश रक्ताभिन स्नान।~~[6]

कहीं कहीं दीर्घ समास बहुल पदावली मिलती है —

(1) ओ सौध शिखर, के स्वर्ण-कलश रक्ताभिन स्नान।[7]

(2) ओ जन जन के घर घर के हिताशुभ।[8]

बीच बीच में तद्भव शब्दों का प्रयोग कोमलता-वृद्धि में सहायक हुआ है।

1-2-3— एककण्ठ विषपायी, पृ० सं० क्रमशः— 45, 81, 35

4से 8 तक —उत्तरप्रियदर्शी, क्रमशः पृ०सं०—46, 23, 36, 36, 37

कब घर घर की धूम शिखाओं का सोंधापन/ये आँखें आँजेगा?

× × × × ×

नवल-नीहार, धुला उजला दुलार/ कब होगी?कब?[1]

अनेक स्थानों पर क्रियाप्रधान चरण मिलते हैं —

गूँजि, गूँजि, गूँजि/बढ़ो गर्मो नाचो ज्वालाओं?

रेचन, टूटन-तड़पन/गूँजि नाचो/नाचो नाचो नाचो।[2]

उपर्युक्त क्रिया बहुल पदावली से वातावरण सजीव बनाया गया है। वर्ण मैत्री के उदाहरण 'उत्तरप्रियदर्शी' में बहुत मिलते हैं।

मैली धारयित्री धूल उजली तारयित्री धूप का/यह मिश्र वर्णी रंग।[3]

सारांश यह है कि उत्तरप्रियदर्शी की भाषा संस्कृतनिष्ठ शब्द बहुला है। जिसमें बीच बीच तद्भव शब्दों का प्रयोग कान्ति, बढ़ानेमें सहायक सिद्ध हुआ है। लघु दीर्घ समासयुक्त भाषा में तीन गुणों का समावेश है। लक्षणा व्यंजना से युक्त शब्दावली सजीव, मूर्त बिम्ब उपस्थित करने में पूर्ण क्षम सिद्ध हुई है।

भारतभूषण अग्रवाल आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काम करते थे अतः उन्हें रेडियों की शक्ति, सीमा, एवं सामर्थ्य का भलीप्रकार ज्ञान था। 'अग्निलीक' की भाषा में इस बात का ध्यान रखा गया है कि उसमें शब्द उस प्रकार के प्रयुक्त हों, जो सरल होते हुए भी नूतन अर्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मूर्त बिम्ब भी उपस्थित कर सकें। भाषा तत्सम प्रधान है —

जिन्होंने मुझे अतीत के नियति कुण्डल में/ शब्दों में पाश से जकड़ा है।

वे ही मेरे कृत्यों के दायी है।[4]

इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि वाल्मीकि का प्रथम श्लोक भी यथावसर उद्धृत है —

'मा, निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समा।

यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।[5]

नाट्यकार ने तत्सम शब्दों के बीच में तद्भव एवं देशज शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। तावड़तोड़, चिलम, बनोवास, पछनारे- छिपलने, कमाते, भेंट, सरसप, कलेवा, शब्द प्रयुक्त है -

(1) लो इस बात के किनारे कुछ चिलम लें।[6]

(2) बनोवास देते समय इतना तो सोचते।[7]

(3) मन को छिपलने मत दो।[8]

---

1 से 3तक उत्तरप्रियदर्शी, क्रमशः पृ०सं० 32-49, 50   4 से 8तक अग्निलीक-63, 37, 11, 16, 32

(4) मेरी सास ने मेरी भेंट भर कर मुझे रोका था।[1]

इसकी भाषा में मुहावरों का इस ढंग से प्रयोग हुआ है कि उनका अपना अस्तित्व समाप्त हो गया है और वे नाट्यकार की पंक्तियाँ लगती हैं —

(1) मैं अपने इस दर्द को झूठा कैसे कह दूँ/ जो मुझे खाता ही रहता है।
    कलेजे पर पत्थर रखकर/ मैं तो इसे भूल ही चुका था।[2]

(2) पर अगर कहीं महारानी मिल जायें। तो मेरे मन से यह बोझ उतर जाय।[3]

कहीं कहीं ध्वन्यात्मक शब्द प्रयुक्त हुए हैं —

(1) ये भेरियाँ, यह चिंघाड़ यह घमघमाहट/ बहन, यह क्या माया है।[4]

(2) सब झंझट छू मन्तर/ यह देखो यो छू ऊ ऊ ऊ ऊ।[5]

अग्निलीक की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है, सरलता एवं पात्रानुकूलता। राम सीता आदि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप शब्द प्रयुक्त हैं। इस गीतिनाट्य में सीता विद्रोहिणी मुखरा नायिका हैं। उसे आत्म स्वावलम्बन प्रिय है। आत्म सम्मान को ठेस लगने पर कह उठती हैं —

सीता — जानते हैं गुरुदेव/महाराज क्या कहते हैं? उन्होंने मुझ पर बड़ी कृपा करके
    यह निश्चय किया है/ कि मैं उनके साथ जाऊँ/ और अश्वमेध यज्ञ के लिए एकत्र
    ऋषियों, साधुओं, पण्डितों, राजपुरुषों और प्रजाजनों के सामने
    अपनी पवित्रता सिद्ध करूँ/ मैं अयोध्या की महारानी, राम की परिणीता
    मैं आँखों में आँसू भरकर/आँचल पसार कर/अपने स्वामी के चरणों पर सिर रखकर
    अपने पुत्रों की सौगन्ध खाकर कहूँ/ कि मैं पवित्र हूँ
    और यह लोकापवाद मिथ्या है/ हाय, यह सुनने के पहले मेरे प्राण क्यों न निकल गये।[6]

इसकी शैली व्यास प्रधान है —

    कहने को ये निर्लिप्त हैं/ पर राजकीय कार्यों पर/राजनीतिक गतिविधि पर
    ये सदा पैनी दृष्टि रखते हैं।[7]

किन्तु एकाध स्थानों पर समास शैली के दर्शन होते हैं —

    प्रजा की व्यवस्था तो इन्होंने /क्रोध लीन ऋषियों पर/योग लीन साधुओं पर
    ग्रन्थलीन पण्डितों पर/और भोग-मुग्ध वानरों पर छोड़ रखी है।[8]

अग्निलीक की भाषा गद्यात्मक है। यह गद्यात्मकता प्रायः सभी स्थानों पर मिलती है।

---

1 से 8 तक अग्निलीक — क्रमशः पृष्ठ — 48, 15, 22, 28, 35, 42, 53, 54

किसी एक अपढ़ नासमझ प्राणी ने/क्रोध की झोंक में कुछ अकथ्य कह डाला/
और इन्होंने आनन-फानन में मुझे घर से निकाल दिया।[1]

नाट्यकार ने शब्दों को तोड़कर इस प्रकार प्रयुक्त किया है कि अलंकार के साथ अर्थ चमत्कार भी प्रकट हुआ है -

देवी --जाओ जाकर घर विश्राम करो।

चरण विष राम-विश्राम[2]

विश्राम को विष-राम रूप में प्रयुक्त कर प्रत्युत्पन्न मतित्व के साथ चमत्कार प्रगट हुआ है। इस गीतिनाट्य में वर्णनात्मकता का आधिक्य है किन्तु इस वर्णनात्मकता की सबसे बड़ी विशेषता है— काव्यात्मकता। मा निषाद प्रतिष्ठां वाले श्लोक के सम्बन्ध में नाट्यकार ने किस सरलता से व्यंजना, लक्षणा का उपयोग किया है -

चरण —— अहेरी पूछता है/ ओ रे अकेले पक्षी/ तू मेरे तीर से कैसे बच गया।
अपने साथी के संग तू भी क्यों नहीं मरा/तो पक्षी कहता है -
तेरी बात का उत्तर पीछे दूँगा/ पहले तू यह बता
डाकू को यह जादू का ज्ञान कहाँ से मिला/जिसे ओढ़ कर कर वह कवि बन गया।[3]

सारांश यह है कि अग्निलीक की भाषा सरल, तत्सम प्रधान उर्दू मिश्रित बोलचाल की है। शब्द चयन इस प्रकार से हुआ है कि भाषा की शक्ति प्रभावशाली हो उठी है। मुहावरे अभिधा लक्षणा व्यंजना से उसमें नयाअर्थचमत्कार उत्पन्न हुआ है। अलंकृति के आग्रह से इसकी भाषा मुक्त है। बिम्बों का सफल प्रयोग हुआ है। कहना नहीं होगा कि काव्यात्मकता उत्पन्न करने के लिए नाट्यकार ने न तो एक स्थान पर कठिन शब्दों का प्रयोग किया है, नहीं उसने अलंकारों के बोझ से किसीको प्रभावित किया है। यह कहना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है, काव्यात्मकता की अन्तर्धारा सर्वत्र प्रवाहित होती रहती है।

संवाद-योजना :—

गीतिनाट्यों के तत्व विवेचन करते समय हमने भाषा और संवादों का विवेचन कि- एक साथ किया है। अतः यहाँ संक्षिप्त रूप में संवादों का विवेचन किया जा रहा है।

वस्तुतः साहित्य कीअन्य-विधाओं में साहित्यकार बीच बीच मेंउपस्थित होकर, पाठक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए अपने विचार, कथा या विकास या अन्य वस्तु वर्णन कर सकता है, किन्तु नाटकों में नाट्यकार को ऐसा अवसर नहीं सुलभ है अतः वह अपना कथ्य पात्रों

1-23 :— अग्निलीक, क्रमशः पृष्ठ 51, 54, 54

के माध्यम से कहता है। गीतिनाट्यों के सभी संवाद काव्यात्मक होते हैं जिनका विभाजन इस प्रकार हो सकता है (1) कथावस्तु को विकसित करने वाले संवाद — जिसमें दो पात्र वार्तालाप करते हुए आगे, या मध्य की कथा की सूचना देते हैं। (2) चरित्र चित्रित करने वाले संवाद। (3) गुणों के आधार पर — संक्षिप्त क्षिप्र गतिशील एवं नाटकीय संवाद (4) काव्यात्मक संवाद (5) स्वगत संवाद एवं आकाशभाषित संवाद।

<u>(1) कथावस्तु कोविकसित करने वाले संवाद :—</u>

(1) करुणालय' में नौका स्तब्ध हो जाने पर माँझी का कथन कथावस्तु को विकसित करता है—

प्रभो स्तब्ध है नाव, न हिलती है/ अहे देखो तो इसको क्या है, हैं हो गया।[1]

(2) अनघ में निखाल का कथन कथावस्तु को विकसित करता है —

आज एक मतवाला दुष्ट, पुष्कुचायक के घर हो रुष्ट
बोला तुम सुर साधु चरित्र। तो मन का गृह करो पवित्र।
रक्त-नेत्र करके हुंकार। उस पर करने चला प्रहार।[2]

(3) मत्स्यगन्धा :— में सुद्ध और मत्स्यगन्धा के संवाद में महाराज शान्तनु के मूर्छित होने की घटना का उल्लेख है—

शुद्ध — आज महाराज लौट आये मृगया से तभी/ सुना गया बेसुध हैं संज्ञा-हीन विक्षत।

मत्स्यगन्धा — (चौंककर) कैसे यह हुआ कैसे .....?

सुद्ध — कहते हैं मृगया में/सिंह ने प्रवेग किया आक्रमण भारी एक
वीरमहाराज थे असावधान उस काल।[3]

(4) राधा में विशाखा के कथन में उस घटना का उल्लेख है जिसमें कृष्ण-प्रेम के कारण माँ उसे दण्डित करती है —

सखी उस दिन घूम फिरकर देर से लौटी जभी घर/बैठ माता ने पकड़कर भर्त्सना
की कँप गया मन। आज निशि भर धुप अँधेरी कोठरी में अन्न-जल बिन/मार
कोड़ों की लगाई प्रात तक चीत्कारमिताये।[4]

(5) उन्मुक्त' में गुणधर और पुष्पदन्त के संवाद से शत्रु के आक्रमण की कथा विकसित हुई है—

गुणधर — आओ पुष्पदन्त आओ, होगा पता तुमको/सत्य यह है क्या, शत्रु सेनाएँ
उमड़के/सौम्यद्वीप तट तक आ गई हैं?

पुष्पदन्त — तुमने/यह जो सुना है, वह ही यथापुराना है/सौम्य द्वीप तो है —

(सभी प्रतीक अगले पृष्ठ पर देखिए)

व्यस्त नाम अब उसका/और कुछ हो गया है।[1]

(6)'द्रौपदी' मेंयुधिष्ठिर और कुन्ती संवाद में पाँचों पाण्डव का द्रौपदी के पति बनने की घटना उल्लिखित है –

कुन्ती – पारायण व्रत है प्रिय पुत्रों और मैं।xxxx तुम पाँचों भ्रात आपस में बाँट लो।
युधिष्ठिर– मात, माता, यह तुमने क्या कह दिया/बाहर आओ, अर्जुन को आशीष दो।[2]

(7)'सृष्टि का आखिरी आदमी' – के अधिकांश संवाद कथावस्तु को विकसित करने वाले हैं –

उद्घोषक– नष्ट हो गया/ सब कुछ आखिर नष्ट हो गया।लाखों बरसों से,
कण-कण तृण-तृण पर जो निर्माण हुआ था/ नष्ट हो गया।[3]

(8)'अन्धायुग' – में प्रहरियों के वार्तालाप से विजयोपरान्त युधिष्ठिर के नैराश्य की घटना वर्णित है –

प्रहरी(1) यह है किरीट/चक्रवर्ती सम्राट का।
प्रहरी(2) धारण करना इसको/छोड़ दिया है।
प्रहरी(1) जब से/अपशकुन होने लगे हैं हस्तिनापुर में।
प्रहरी(2) नीचे रख दो इसको/आते हैं महाराज।[4]

(9)'सौवर्ण' में पुरूष सांस्कृतिक विनाश की घटना का वर्णन करता है –

भ्रान्ति, विप्लवों, द्व कूटों, गूढ़ संघर्षों से
त्रस्त, क्षुब्ध, युग-आन्दोलित अब धरा चेतना
भूमि कंप शत दौड़ रहे हों द्व मानस में।[5]

(10)'पाषाणी' में अहल्या और मल्लिका के संवाद में अहल्या जन्म की कथा कही गयी है कि निराश माता-पिता को गौतम कीशर्त कितनी सुखदायक सिद्धहुई –

मैं केवल तप के बल से सकता हूं शत शत सन्तान।
यदि यह ही सन्तान मुझे दो सहर्ष कर दान
आतुर मात-पिता आप ही बोल उठे 'स्वीकार'।[6]

पिछले पृष्ठ के प्रतीक — 1– कफ़ालाय, पृ0 14, 2– अन्या, पृ0 47-48
3– मत्स्यगन्धा, पृ0 86, 4– राधा, पृ0 105

1-उन्मुक्त, पृ0 21, 2– द्रौपदी, (त्रिपथगा) पृ0 84 3– एकांकी विविध, पृ0 195
4– अन्धायुग, पृ0 115, 5– सौवर्ण, पृ0 20 6– पाषाणी, पृ0 80

(10)'संशय की एक रात' में राम एवं नील के संवादों से छाया आगमन की घटना वर्णित हुई है —

नील— पूरब के सेतु बुर्ज पीछे/ एक अद्भुत छाया/दीपक की लौ-सी

राम— छाया?/कैसी?/किसकी छाया?

नील— यह तो पता नहीं देव/ लेकिन वह छाया/निश्चय ही माया है।[1]

(12)'इरावती' में अग्निमित्र और राजगुरू के संवादों से इरावती के जीवन की घटनाओं को व्यक्त किया गया है —

राजगुरू — निष्कासित हो धर्म संघ से जब सौन्दर्य आक्रान्त

शिप्रा में था ऊब-डूब होता तब यही कृतान्त।[2]

<u>(2) पात्रों का चरित्र बताने वाले संवाद :—</u>

नाटकों में नाट्यकार को पात्रों के संबंध में कुछ कहने का अवसर नहीं होता है, अतः वह पात्रों के माध्यम से ही उनके गुण-दोषों का विवेचन करता है।

(1)'अनघ' में मघ के चरित्र को कुछ लोग इन शब्दों मे व्यक्त करते हैं —

मुखिया — अजी वह मघ है अच्छा सनकी/जिसे तन की सुध है न मन की।[3]

(2)'पंचवटी प्रसंग' में सीता लक्ष्मण के संबंध मे कहती हैं —

सीता — कितना सुबोध है/ आज्ञा पालन के सिवा कुछ भी नहीं जानता।

× × × × ×

राम — पाये हैं इसने गुण सारे मा सुमित्रा के।[4]

(3)'मत्स्यगन्धा' — में मत्स्यगन्धा और अनंग के संवाद में अनंग का चरित्र प्रस्फुटित हुआ है—

मत्स्यगन्धा— ऐसे सुकुमार आप

अनंग— चन्द्र में प्रसाद-सा।[5] (विश्वामित्र और दो भावनाट्य पृ062-63)

(4)'विश्वामित्र' — में मेनका और उर्वशी के संवाद से उनका तपस्वी रूप उजागर हुआ है —

मेनका — ज्योति पुंज यह तीन तपोनिधि कौन है/ जीवित मृत्यु समान शून्य निस्पन्द मौन

उर्वशी— हाँ हाँ आया याद कर रहे हुई है/करते विश्वामित्र घोर तप विपिन में।[6](वही, 16)

(5)'राधा' — विशाखा के संवाद में कृष्ण की रूप-माधुरी का प्रभाव वर्णित है —

राधा— कौन सा माधुर्य लेकर धरा पर उतरा कि उसने

बना डाला जगत् पागल व्यथित कर डाला हृदय री।[7] (वही: पृ0105)

(6)'उन्मुक्त' — में पुष्पदन्त और गुणधर के संवाद उनके चरित्र के द्योतक है —

गुणधर — ठीक है/ होगा परिणाम अन्त में क्या/ यह सोचा है

1-संशय की एक रात, पृ033-34, 2-इरावती, पृ052, 3-अनघ, पृ017, 4-पारिजात, पृ0217-18

क्या हम हरा सकेंगे लौह सैन्य दल को।

पुष्पदन्त सोचने का किसको/अवकाश अब कहाँ/निश्चित है वीरों का/एक ही सुपरिणाम।[1]

(7)द्रौपदी — में कर्ण-द्रौपदी के संवाद में कर्ण आत्म प्रशंसा निम्न शब्दों से करते हैं —

कर्ण— मैं निष्कलंक मैं निर्भय मैं अपराजित/ मैं सदा धर्म पर दृढ़ जैसे ध्रुवतारा।[2]

(8)स्नेह या स्वर्ग— में जयन्त औरअजेय के संवाद उनके व्यक्तित्व के बताने वाले हैं —

अजेय — मरना ही मानवों की अपनीमहानता है।

जयन्त(फिर अट्टहास करके) मरना महानता है

अजेय — हाँ हाँ हाँ महानता/मृत्यु बिना जीवन विरह और व्यर्थहै।[3]

(9)रजतशिखर — में युवती और सुव्रत के संवाद में उनके चरित्र का उद्घाटन हुआ है-

युवती— मैं इन पर बचपन से ही ममता रखती हूँ/ पर ये मुझ को नहीं समझते।

सुव्रत — प्रयत्वान तुम इन्हें नहीं दे सकी,कदाचित/हृदय समर्पण करना तुमको इष्ट नहीं था।[4]

(10)सृष्टि की साँझ' में सेनापति एवं महामात्य के कथोपकथन में सेनापति का आक्रोश व्यक्त हुआ है —

महामात्य —सेनानायक/ कल्याण सृष्टि का है इसमें/ हम आज्ञाओं का वहन करें।

सेनानायक—कल्याण सृष्टि का/कभी नहीं खण्डित होगा/यदि अनय धरा से उठ जाये।[5]

(11)अन्धायुग— में विदुर और गान्धारी के संवाद में कृष्ण का प्रभु रूप उभरा है —

विदुर - प्रभु है वे?

गांधारी— कभी नहीं

विदुर— उनकी गति में ही/प्रवाहित है सारे इतिहासों की/ सारे महानों की दैवी गति।[6]

(12)उर्वशी' (शास्त्री) में सुकेशी और चित्रलेखा केसंवाद से पुरूरवा की शूरवीरता व्यक्त हुई है —

चित्रलेखा — राजर्षि निडर हैं तेजस्वी हैं शूर हैं। पर असुर शूर जितना उतना ही क्रूर है

सुकेशी— बाहुबल मनोबल और आत्मबल का सागर/सीमित मति से तू है असीमता नाप रही।[7] (पाषाणी, पृ0 35)

(13)सूखा सरोवर में नगर निवासियों के बीच वार्तालाप में राजा का कायर रूप उभराहै-

संन्यासी — धूम-धूम सब सूख गया/ तभी भागा राजा नगरी का/हाय उसे क्या

प्र0व्यक्ति— तभी तो राजा चुप था इतना/ कहाँ कुछ बोला तब से

ती0व्यक्ति— हम रोते वह रोता भी नहीं था।[8](सूखासरोवर, पृ0 40)

1-उन्मुक्त, पृ0 23, 2- त्रिपथगा, पृ0 80, 3- स्नेह या स्वर्ग, पृ0 57 [illegible],
4-रजतशिखर, पृ019-20, 5- सृष्टि की साँझ, और अन्य काव्यनाटक, पृ076-77
6-अन्धायुग, पृ024

(14) उर्वशी' में सुकन्या और उर्वशी के संवाद से उर्वशी का मातृत्व रूप उभरा है—

सुकन्या— लो छाती से लगा जुड़ाओ इसके तृषित हृदय को।

× × × ×

उर्वशी— अरी जुड़ाना क्या इसको? ला दे इस हृदय-कुसुम को

लगा वक्ष से स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती हूँ।[1]

(15) एक कण्ठ विषपायी' में दक्ष और वीरिणी के कथोपकथन से शंकर का देवत्व रूप प्रकट हुआ है —

दक्ष — पर शंकर तो/ खुद को महादेव कहता है।

वीरिणी— सभी लोक कहते हैं स्वामी/ केवल कहने भर से उनकी/अपनी महिमा बढ़ जाती है।[2]

(16) अग्निलीक' में सीता-वाल्मीकि संवाद में सीता का स्वाभि रूप व्यक्त हुआ है —

वाल्मीकि — देवि क्या हुआ देवी? तुम स्वप्न तो नहीं देख रही हो?

सीता — हाँ अब तक स्वप्न ही देख रही थी/ आज पहली बार चेत हुआ है?

हाय / मैं इतनी अंधी क्यों हो गयी?[3]

(3) संक्षिप्त एवं नाटकीय :—

(1) तीसरा चोर — कुछ है तुम्हारे पास।

मय— मत करो यह आयास।[4]

(2) पहला — भाई अराल, भाई अराल

कराल — है तेरे तो कुछ अजब ढंग

अराल— कैसे?[5]

(3) सीता — देखो नाथ, आती है नारी एक

राम— बैठो भी, आने दो।[6]

(4) मत्स्यगन्धा— हाय तुम, अरे तुम

अनंग (हँसकर) मैं अनंग विश्वरंग।[7]

(5) राधा — तुम मुझे मानो न मानो मैं सदा हो

विशाखा— अरी राधे।[8]

1-उर्वशी, पृ० 93 2— एककण्ठ विषपायी, पृ० 13, 3— अग्निलीक पृ०

4—अनघ, पृ० 12, 5— सीता, पृ० 38, 6— पंचवटी प्रसंग(परिमल) पृ० 23।

7-मत्स्यगन्धा, पृ० 90 (विश्वामित्र और दो भावनाट्य) 8— वही, पृ० 135

(6) शिल्पी — बुनने का दिखाओ बेटी

शिष्या — बड़े हर्ष से।[1]

(7) दूसरा — कौन दिखलाई दिया?

पहला (धीरे से) पूछो मत उनसे।[2]

(8) अजेय (अत्यन्त आकुल होकर) किन्तु प्रेम ...... (मौन हो जाता है)

प्रभाकर — है या नहीं यह इसका पता?[3]

(9) युवती — कैसा है दुर्भाग्य

सुव्रत — मसि की दुर्बलता का।[4]

(10) शासक — सेनापति ...

वैज्ञानिक — कहने दो मुझको

शासक — सेनापति। बन्दूकें[5]

(11) प्रहरी1 (जल्दी से) वह देखो।

प्रहरी2 (धवले) क्या है?[6]

(4) वाक्यात्मक संवाद —

(1) सान्ध्य नीलिमा फैल रही है, प्रान्त में/सरिता के निर्मल विधु बिम्ब विकास है
औ नभ में धीरे धीरे है चढ़ रहा। प्रकृति सजाती आगत-पतिका रूप को।[7]

(2) वह भी जीवित पर मृत सा है। आठ पहर कहता रहता है
है न प्रियंगुलता में यह छवि। हरिणी में वह दृष्टि कहां है।[8]

(3) अंगना की भृकुटि सा लघु धनु धरे वहीं समुपस्थित हुआ सा पंचशर
गगन में छवि लेख सी नव ऊर्मिकी उस सभा में कल्पना जाग्रत हुई
रूप छवि उर सहमी ही नेत्र से चन्द्र ने देखा स्तिमित हो हँस उठे
और सुस्वागत कहा आमन्त्रिया निकट अपने अनुग्रह उपहार दे।[9]

(4) शुक्ल पक्ष नवमी के शशि का सौम्य पार्श्व मुख
मौन मधुरिमा, अभिजात्य गरिमा में मंडित।[10]

(5) ये कर्ण स्वर्ण कुण्डल-मण्डित। यह कण्ठ कम्बु/सौन्दर्य सरोवर का नीरजमय विमल अम्बु
ये वासन्ती वक्ष। हृदयस्थल नन्दन वन/बहुवर्ण पर्ण, बहुरंग सुमन कलरव-गुंजित।[11]

1-शिल्पी, पृ0 17, 2- उन्मुक्त, पृ0 110, 3- स्नेह या स्वर्ग, पृ0 11,
4- रजतशिखर, पृ0 24 5-सृष्टि का आखिरी आदमी, पृ0 (एकांकीविविधा) पृ0 189
6-अन्धायुग, पृ0 52 7-करुणालय, पृ0 11, 8-मेघदूत (संगम) पृ0 42 9-मदनदहन, 82
10-सौवर्ण, पृ0 12, 11-पाषाणी, पृ0 37,

(6) वसुधा-कुटुम्ब मान समद्रष्टा समरूप/ अद्भुत अनूप रहा नेता रहा जग का।
माना वह कालकृत कर्म था तुम्हारा पर/एक शिष्य के लिए एक शिष्य का विनाश।[1]

(7) दुरभिसन्धि पथ पर प्राणों के अश्व ये/युग की दुर्दम श्वासों की वल्गा खींच-
खींच रहे हैं मेरा स्मृति रथ शून्य में/ लक्ष्यहीन उद्भ्रान्त न जाने कौन दिशा।[2]

(8) जिस क्षण सरवर सूख रहा था/सुना और देखा था मैंने
बन्द कमल सोये थे कैसे/तड़पी थी कलियाँ पत्तों पर
कुमुदनी हुलकी थी कमलों से/ हंसिनि रोई थी हंसा से।[3]

(9) अप्रतिहत यह अनल,दग्ध हो इसकी दाहकता से
कुंज-कुंज से जग हुए कोकिल क्रन्दन करते हैं।
घूर्णि चक्र आँसू पुकार झंझा प्रवेग उद्वेलन
करते रहते सभी रात भर दीर्घ विदीर्ण तिमिर को।[4]

(10) कालचक्र घूमता रहे, युग बदलें, बीतें/संसारों के बने मिटें आवर्त असंख्य
सृष्टि लय,स्फार,संकुचन हों इतने।[5]

(5)स्वगत एवं आकाश भाषित संवाद :—

हिन्दी गीतिनाट्यों में स्वगत का प्रयोग बहुत हुआ है। अधिकांश गीति-नाट्यों में नाट्यकार ने पात्रों की मनोव्यथा को उद्घाटित कर उन्हें अभिनव व्यक्तित्व से सम्पन्न निदर्शित किया है। करुणालय, सीता, अनघ, पंचवटी प्रसंग, विश्वामित्र, स्नेह या स्वर्ग, उर्वशी, संशय की एक रात, एककण्ठ विषपायी, और इरावती के स्वगत कथन बहुत महत्वपूर्ण हैं? उर्वशी और अग्निलीक में स्वगत कथन लम्बे और काव्यात्मक हैं। प्रमुख स्वगत कथनों के उदाहरणों का उल्लेख निम्न है —

(1) शूर्पणखा(स्वगत) यहाँ तो ये तीन हैं/एक से हैं एक सुन्दर/साथ में एक नारी भी
× × × × ×
साँवरे का अधर-मधुपान कर/सुख से बिताऊँ दिन।[6]

(2) रोहित(स्वगत) पिता परमगुरु होता है आदेश भी,
× × × ×
कहो रही क्या कभी सहायक पाप है।[7]

(3) राम(स्वगत) कितनी बार /कितनी साँझ/इस सिन्धुवेला तट/कितनी
छोटे शंख सी/ यहीं वायु में कहीं गिर/खो गयी है।[8]

1-गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण, पृ0102, 2-सुधासरोवर, पृ031, 4-उर्वशी, पृ045
2 'अशोकवन-बन्दिनी' पृ 1
5-उत्तरप्रियदर्शी, पृ024, 6-एक पंचवटी-प्रसंग, पृ0232,-33, 7-करुणालय, पृ017से19
8-संशय की एक रात, पृ0 3 से 7, ~~8—एककण्ठ विषपायी, पृ0 7।~~

(4) शंकर (स्वगत) [illegible] आह, शोक ने मुझे/अचीन्ही स्थितियों से जोड़ दिया।
महाशून्य के अन्तराल में/निपट अकेला छोड़ दिया।[1]

(5) इरावती (स्वगत) रक्त-माँस की सुन्दरता पर/ज्ञान ध्यान बलिहार
परमहंस-पथ बन रस बरसता/चकित शान्त शृंगार।[2]

(6) देवी (स्वगत) पवित्र अश्व की सैन्य-यात्रा/दिग्विजय का अभियान।[3]

आकाशभाषित का प्रयोग— करुणालय, स्नेह या स्वर्ग, उर्वशी एवं संशय की एक रात में हुआ है, जिसमें करुणालय, स्नेह या स्वर्ग के उदाहरण दिए जा रहे हैं —

(1) रोहित (आकाश को देखकर)

अरे कौन, यह? छाया-सी है इन्द्र की
कायरता का अरि, प्रतिमा पुरुषार्थ की/बड़ी कृपा आकाश-विहारी देव की
हुई कि दीन करता प्रणाम है भक्ति से/देव आप यदि हैं प्रसन्न तो
धन्य है।[4]

(2) संशय (आकाश की ओर ताकता हुआ)

हे श्री सुरेन्द्र सुत, हाय! यह क्या हुआ?
क्या हुआ? तुम्हारे कृपापात्र पर सहसा/कुछ वज्रदारुण हा, अकरुण दैव-सा
घोर घात से भी घोर, उग्र, उत्पात क्यों/आज जब जागा मैं अहो, क्या
क्या विचारता?[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी गीतिनाट्यों की भाषा के तीन स्तर हैं। प्रथम स्तर के अन्तर्गत करुणालय, तीला, अनघ, द्रौपदी, कर्ण, इत्यादि रचनाएँ आती हैं। जिनमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता है। इन गीतिनाट्यों की भाषा में न तो ब्रजभाषा की सहज मधुर, संगीतमयता, आनुप्रासिकता एवं लयात्मकता , न ही छायावाद युगीन मधुरता एवं ध्वनि वर्ण योजना है। अपितु इन गीतिनाट्यों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषा सम्बन्धी सिद्धान्त व्यवहृत हुआ है। जिसमें खड़ीबोली की रूक्षता परिष्कार कर अभिधा प्रधान शब्द प्रयुक्त हैं।

द्वितीय स्तर के गीतिनाट्यों में पंचवटी प्रसंग, शिल्पी, अप्सरा, मत्स्यगन्धा राधा, पाषाणी, उर्वशी (शास्त्री), उर्वशी (दिनकर) इरावती प्रमुख हैं। जिनमें एक तरफ कोमल कल्पना की सुकुमारता और मधुर भावों की विवृत्ति है, तत्सम प्रधान कोमल शब्दावली है, तो दूसरी ओर बिम्बधर्मिता, अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है। जिसमें मानवीकरण को प्रमुख किया गया है। इनकी भाषा क्लिष्ट, साधारण, जनोपयोगी नहीं है।

1- एक कण्ठ विषपायी, पृ० 71, 2- इरावती, पृ० 11, 3- अग्निलीक, पृ० 30, 4- करुणालय 20
5- स्नेह या स्वर्ग, पृ० 50

तृतीय स्तर के गीतिनाट्यों में सृष्टि की साँझ, संघर्ष, कवि, अन्धायुग, मदन दहन, सूखासरोवर, संशय की एक रात, एक कण्ठ विषपायी, और अग्निलीक है। जिनमें सहजता स्वाभाविक है। शब्दों को भावानुकूल प्रस्तुत किया गया है। भाषा में प्रवाह लाने के लिए मुक्त छन्द एवं अतुकान्त छन्द प्रयुक्त हैं। जिससे भाषा कहीं कहीं गद्यात्मक हो गयी है। क्योंकि इन गीतिनाट्यकारों ने भाषा सम्प्रेषण को अधिक प्रधानता दी है। अतः रचनाओं में न तो अलंकारों का मणिकुट्टिम प्रयोग हुआ है, न ही प्रयोगवाद का अनगढ़ एवं रूखापन है अपितु भाषा प्रवाह में शब्द अपना बेडौलपन विस्मृत कर गये हैं।

सम्वादों में नाटकीयता, वचनवक्रता, क्षिप्रता, एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व की दृष्टि से तारा, मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र, स्वप्न सत्य, अन्धायुग, सृष्टि की साँझ, पाषाणी, उर्वशी संशय की एक रात, इरावती, बहुत ही सुलझी रचनाएँ हैं। कहना नहीं होगा कि समग्र गीतिनाट्यों के शिल्प विधान पर विहंगम दृष्टि डाली जाय तो तारा मत्स्यगन्धा, स्वप्नसत्य कवि, सृष्टि की साँझ, अन्धायुग, सूखा सरोवर, उर्वशी, एक कण्ठ विषपायी, और इरावती सशक्त रचनाएँ हैं।

षष्ठ अध्याय

गीतिनाट्यों में बिम्ब एवं

प्रतीक योजना

षष्ठ अध्याय

गीतिनाट्यों में बिम्ब एवं प्रतीक योजना

कहना नहीं होगा कि काव्यमें जिस तीव्रानुभूति की विवृत्ति होती है, उसके आस्वादन के विभिन्न मापदण्डों की कल्पना होती रही है। आधुनिक युग के समालोचकों ने नयी कविता की व्याख्या हेतु रस सिद्धान्त को अस्वीकार, सिद्ध रस के अन्त की घोषणा कर दी है, वहीं उन्होंने काव्यास्वादन हेतु बिम्ब की स्वीकृति दी है। कारण यह है कि समय के परिवर्तन के साथ साथ काव्य के उपकरण भी परिवर्तित होते हैं। रूढ़ परम्परा विषय-वस्तु भावगत प्रवृत्तियाँ यहाँ तक कि काव्य का मूल भूत विषय प्रतिपादन तक परिवर्तित हो जाता है। परन्तु बिम्ब सदैव विद्यमान रहता है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।"[1]

बिम्ब की महत्ता बताने के लिए यह कहा गया है कि जीवन में अनेक ग्रन्थों का निर्माण करने की अपेक्षा केवल एक बिम्ब निर्माण करना कहीं अधिक अच्छा है।[2] बिम्ब अनुभूति और भाव से उत्पन्न होने वाली सत्ता है, जिसका विधान कल्पना है। काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।[3]

ऐन्द्रियता, संवेगात्मकता, ताजगी और स्मृत्युद्बोधन की शक्ति उसकी प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं। बिम्ब की आधारभूत विशेषताओं के कारण उन्हें कई वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। राबिन स्केल्टन ने इनको दस भागों में विभक्त किया है— साधारण, अमूर्त तात्त्विक, अस्पष्ट, मिश्रित, संश्लिष्ट, निष्काम, संश्लिष्ट, निष्काय, निष्काय-संश्लिष्ट एवं मिश्रित निष्काय बिम्ब, मिश्रित निष्काय।[4]

डा० नगेन्द्र ने बिम्बों को पाँच वर्गों में विभक्त किया है —

(1) ऐन्द्रिकता के आधार पर — दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य और रस्य।

(2) सर्जक कल्पना के आधार पर — स्मृत और कल्पित।

(3) लक्षित और उपलक्षित।

(4) प्रेरक अनुभूतियों के आधार पर — सरल, मिश्र, जटिल और समाकलित

(5) खण्डित बिम्ब।[5]

1-दि पोयटिक इमेज,—सी०डे०लेविस पृ०17 3— काव्यबिम्ब, डा०नगेन्द्र, पृ० 5
2-बेकहट न्यू-एजरा पाउण्ड-उद्धृत-दि पोइटिक इमेज-सी०डे०लेविस, पृ० 25
4- दि पोयटिक पैटर्न, राबिन स्केल्टन पृ० 90-91, 5— काव्यबिम्ब, डा०नगेन्द्र, पृ०17

डा०सुशीलाशर्मा ने स्रोतों के आधार पर संवेदनों के आधार पर, भावों के आधार पर, बिम्बों की प्रकृति के आधार पर, अभिव्यक्ति के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण किया है। चूंकि डा०शर्मा का वर्गीकरण किसी हद तक सभी आधारों को लेकर चला है, अतः आलोच्य गीतिनाट्यों से उसी आधार पर बिम्बों के उदाहरण दिये जा रहे हैं —

(1) स्रोतों के आधार पर — इसके अन्तर्गत नाट्यकार ने जिन क्षेत्रों से बिम्बों का चयन किया है उनका उल्लेख होगा जिसमें जलीय, आकाशीय, पार्थिव, वायव्य, तैजस, जीवजन्तु संबंधी एवं समय संबंधी क्षेत्र प्रमुख हैं।

(क) जलीय — इसके अन्तर्गत सागर, कमल, तरंग, नदी, तालाब इत्यादि आते हैं जिनके उदाहरण निम्न हैं —

(1) मलयानिल ताड़ित लहरों में प्रेम से। जल में ये शैवाल जाल हैं डूबते।[2]

(2) सजल कमल से मंजुल मुख हैं। दृग युग जिनके दल हैं।[3]

(3) लौटाओ अनंग यह वेदना समुद्र सी/सीमा हीन अन्तहीन, मनहीन, प्राणहीन।[4]

(4) बेधती पीयूष-धारा मेघ से होकर समुच्छित। मदमती आकाश से उन्मुक्त उतरेगी धरा पर। और जीवन में अनाहत-सुरभि सी भरती हृदय को।"[5]

(5) ज्वार उठने से सिन्धु उत्तोलित होता है/उठने लगी त्यों जन-सिन्धु में भी ऊर्मियाँ।[6]

(6) जिस तरह बाढ़ के बाद उतरती गंगा/तट पर तज जाती विफूल शव असहाय
वैसे ही तट पर तज अश्वत्थामा को/इतिहासों ने कुछ नया मोड़ अपनाया।"[7]

(7) उजले कमल छत्र-सा जिनका/तन की छाया का मण्डल है।[8]

(8) गुरुचे अंग कमल डंठल से।[9]

(9) हैं देवि खिल रहा मुख सूखा बदनाम नमित ज्यों सान्ध्य-कमल।[10]

(10) इस नगरी की राजकुमारी/अनिन्द्य सुन्दरी यौवन गंधा
सहस्र दलों की कमल पांखुरी।"[11]

(11) मेरी यात्रा/ छोटे सीपी शंख सी/यहीं बालू में कहीं गिर भी गयी है।[12]

(ख) आकाशीय :— इस प्रकार के बिम्बों को आकार देने के लिए गीतिनाट्यकार सूर्य, चन्द्रमा नक्षत्र, तारों का उपयोग करता है —

1-तुलसीसाहित्य में बिम्ब योजना, पृ० 17—18 2— करुणालय, पृ०11,
3-लीला, पृ० 74, 4-मत्स्यगन्धा, पृ० 92 5— राधा, पृ० 108 6-स्नेहयास्वर्ग, पृ080
7-अन्धायुग, पृ046, 8— इन्दुमती, (धूप के धान) पृ० 114, 9—उर्वशी, पृ048
10-मायावी, पृ० 82, 11—पुष्प-सरोवर, पृ० 40, 12— संशय की एक रात, पृ07

(1) बन स्वच्छ नभ नील अरूण रवि रश्मि की।

सुन्दर माला पहन मनोहर रूप में।[1]

(2) मुख पर उत्सुकतापूर्ण कान्ति/करती है सुधांशु की प्रकट भ्रान्ति।*[2]

(3) गगन-सा आप यहाँ तक रीत।

कि सब हो तुममें भरा प्रतीत।[3]

(4) नष्ट भ्रष्ट तारिका सी घूमती प्रकाश लिए।[4]

(5) और खिलाता है कुमुद-सा स्वयं ही विधु-प्रिय निरख कर।[5]

(6) मत्त कलभ से शैल सानु पर क्रीड़ा करते मेघ मनोहर।[6]

(7) कुछ वृक्षों के हरित मौलि पर कुछ पत्तों से छनकर।

छाँह देख नीचे मृगांक कीकिरणें लेट गयी है।[7]

(8) मेघों जैसे केश लटकते नीचे/हिम पर ऐसे फिसल रहे हैं

जैसे मध्यान्ह मेघरा पर/ तार तार हो कँपती-कँपती/निशा गिर पड़े।[8]

(9) सुर धनु के सोपान मेघ-वाहन पर ज्यों आरूढ़।

विद्युन्माला से सजते हो गया इन्द्र मन मूढ़।[9]

<u>(ग) पार्थिव</u> — इसके अन्तर्गत वे पदार्थ आते हैं जिनका चयन नाट्यकार ने पृथ्वी से संबंधित वस्तुओं से किया हो, जैसे — वृक्ष, लता, घास, पर्वत, खनिज पदार्थ इत्यादि —

(1) यह गिरी ताड़ सा ताड़तुल्य/उर विशाल मजीठ-पहाड़ तुल्य।[10]

(2) फूलत कुसुम-सी सुरभि मत्त यह कालिका।*[11]

(3) मधुर वृन्त पर स्वर्ग-कुसुम-सी/खिली हुई जो अपलक लोचन।[12]

(4) धरती की मिट्टी से ही तो/ निकला था/कवि उर का अंकुल/ जो पला बढ़ा/

इस धरती पर।*[13]

(5) सभी दुखी थे, सभी मलिन मुख/डरे-डरे से काँप रहे पीले पत्तों से।[14]

(6) चमक रही थी नग्न कान्ति वसनों से छनकर तन की

हिमकण सिक्त, कुसुम सम उज्ज्वल अंग अंग झलमल था।**[15]

1-करूणालय, पृ018, 2- लीला, पृ0 52, 3- अनघ, पृ092, 4-मत्स्यगन्धा, पृ089
5-राधा पृ0 103, 6- मेघदूत, (संगम) पृ02 7-उर्वशी, पृ051, 8-एककण्ठविषपायी 45
9-लीला, पृ057 10- विश्वामित्र, पृ0 45, 11- मेघदूत, पृ0 2 12- कवि, पृ0216
13-मदनदहन, पृ0 65, 14-उर्वशी, पृ0 20

(4)

वायव्य :— इनके अन्तर्गत वे शब्द आते हैं, जिनका सम्बन्ध वायु से होता है —

(1) छिन्न भिन्न शत छिद्र खण्ड मैं से उड़ जाती
वाष्पतुल्य अपयश न फिर से बढ़ने पाती।[1]

(2) कौरव-वधुएँ/ मन्थर मन्थर गति से।
सुरभित पवन-तरंगों सी चलती थी।[2]

(ख) तैजस :— इनके अन्तर्गत उन शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो अग्नि से संबंधित हैं—

(1) धूम रहित तुम अग्निशिखा की ज्वाल हो।[3]

(2) किन्तु जाने और कुछ क्या सदा कोई सुरचता-सा।
हृदय को अंगार - सा तिल-तिल जलाता बुझाता रहा।[4]

(3) मैं अपनी वृद्ध अखियों पर/सत्य धारण करूँगा/अग्निमाल-सा।[5]

(4) सान्ध्य अग्नि ज्यों दीपित होती। लेकर तेज और दिनकर से
नाभिनेय रघु अज से जन्मे।[6]

(5) क्रोध महापुरुषों को यद्यपि होता नहीं अकारण, तो भी/शान्त क्रोध होता है तत्क्षण
जैसे अग्निधधकती रहकर धीरे-धीरे बुझ जाती है।[7]

(6) सीखना होगा मुझे यह ज्ञान भी/ एक नारी से कि जो सौन्दर्य की
चमकती जीवन शिखा है आग की।[8]

(7) सुप्रभात की दीप-शिखा सी तुझे लहकती देख
मैंने पूछा अग्निमित्र क्या कोई देव विशेष।[9]

(8) ये आँसू नहीं है गुरुदेव ये अंगारे हैं/ यह मेरे जीवन की आग है,
जो मेरे भीतर धधक रही है।[10]

(छ) जीव-जन्तु सम्बन्धी :— इस प्रकार के बिम्बों को रूप देने के लिए नाट्यकार पशु, पक्षी, जीव जन्तुओं का वर्णन करता है —

(1) बाल किशोर रीछ बन जाऊँ, चीते की छलाँग मारूँ
कहो सुअर सा सीधा भागूँ, जल-थल में न कहीं हारूँ।[11]

(2) शत्रु पर ज्यों सिंह सा झपटता है लखनलाल।[12]

(3) श्वान क्षत सम चाट-चाट कर रूधिर लिया।[13]

1-उन्मुक्त, पृ093, 2-अन्धायुग, पृ012 3-तारा, (मधुबन) पृ062, 4-राधा, पृ0133
5- अन्धायुग, पृ0113 6-इन्दुमती, पृ0114, 7-मदन दहन, पृ085,
8-अशोक वन बन्दिनी, पृ022, 9- इरावती, पृ042, 10-अग्निलीक, पृ044
11-सीता, पृ012, 12-पंचवटीप्रसंग, पृ0218 13-विश्वामित्र, पृ0 28

(4) क्षत विरोध की शिखर तरंगों में भुजंग-सा
आलोड़ित हो अद्भुतफन शत फुत्कारें भर
गरल फेन बहु उगल अचेतन के नरकों।[1]

(5) पिघली हुई नदी आगे बढ़ती जाती है/मोटे साँपों जैसी लाखों जीभ पसारे।[2]

(6) रेंग रहे हैं इस जमीन पर कीड़ों जैसे।[3]

(7) मैंने मरोड़ दिया/ अपने इस धनुष को/ कुचले हुए साँप-सा।[4]

(8) खा रहा है जिसे उसका गर्व ही/चाटता निज घाव को ज्यों श्वान हो।[5]

(9) देखो वह आ रहा है। भागता चला आ रहा है
उन्मत्त घायल हिरन जैसा, जिसकी हिरनी मारी गयी हो।[6]

(10) यह बालू वाली जानकी/उस फाल्गुनी आकाश को/पुनः लौटा दे/जो कि
मिथिला आम्र कुंजों पर/झुका था/एक नीले हंस-सा।[7]

(11) जन हीन नगर/चिड़ियों के नुचे हुए पंखों-सा
सारे घर/सारा क्रम छिन्न भिन्न।[8]

<u>(ज)समय एवं ऋतु सम्बन्धी</u> :— इसके अन्तर्गत समय एवं ऋतु वर्णन आता है —

(1) नव वसन्त में जब यह कुसुमित था हुआ
तब तो अलि शुक और सारिका नीड़ में
कोमल कलरव सदा किया करते अहो।[9]

(2) शरद आ गई शरद आ गई। नभ में शिश मुख बिम्ब छा गया
तरूओं में नव जीवन छाया। नदियों में निर्मल जल आया।[10]

~~(3)~~ इसके अतिरिक्त नाट्यकारों ने मानव जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं का उल्लेखकर बिम्बों को उपस्थित करने का प्रयास किया है —

<u>मानव शरीर सम्बन्धी</u> :—

(1) भर्त्सना कटु व्यंग्य निर्वासन तथा अभिशाप सारे।
फिसे छाले पके क्षत की तरह बहती आ रही थी।[11]

1-अप्सरा(शिल्पी) पृ0104, 2-सृष्टि का आखिरी आदमी(स्वामी मिथिया) पृ0199
3-लोकदेवता, पृ086 4-अन्धायुग, पृ033 5-अशोकवन बन्दिनी, पृ014, 6-कुआ सरोवर 41
7-संशय की एक रात, पृ04-5, 8-नलकण्ठविषपायी, पृ047, 9-करूणालय, पृ021-22
10- मेघदूत, पृ042(संगम)। ~~11-[illegible], पृ0[illegible]~~, 12-राधा पृ0 124

(2) धंध के हुए पहाड़ ध्वस्त टूहों वाले/जली देह में उभर पड़े दीखे वे छाले।
बहुविस्फोटक जनित गड्ढ के कितने नीचे/उन घावों ने नयन अचानक मेरे खींचे।[1]

(3) सलिल बाष्प से सिंचित वह नगरी तब दीखेगी कैसी
मुक्ता जाल ग्रथित अलकों के शोभित नवयुवतीजैसी।"[2]

(4) कायर अश्वत्थामा/शेष हूँ अभी तक।जैसे रोगी मुर्दे के। मुख में शेष रहता है
गंदा कफ /बासी थूक/शेष हूँ अभी तक मैं।[3]

(5) कोई भी पल पीड़ा का होता नहीं/मानों मुर्दा एक पड़ा हो भूमि पर।[4]

मानवजीवन सम्बन्धी :—

(1) जैसे तेज धारी किसी / कोमल मृणाल को/
ऊपर से नीचे तक चीर जाय/ चरम त्रास से उस बेहद गहरे क्षण में।
कोई मेरी सारी अनुभूतियों को चीर गया।[5]

(2) बालू धँसे बाल से / हम क्यों विवश हो जातेरहे।[6]

(2) संवेदना के आधार पर :— प्रायः सभी बिम्ब इन्द्रिय संवेद्य होते हैं क्योंकि मूर्त विधान के लिए इन्द्रियों की आवश्यकता पड़ती है। संवेदना के आधार पर चाक्षुष, स्पर्श, श्रावण, आस्वाद, घ्राणपरक इत्यादि रूप में विभक्त किया जा सकता है।

(क)चाक्षुष — इनमें ऐसे शब्द विधान का प्रयोग होता है जिनमें चक्षुरेन्द्रिय का आश्रय लिया जाता है।

(1) सुगठित शरीर उन्नत ललाट। आजानुबाहु वक्ष-कपाट
कोदण्ड लिए बाँधे निषंग। करते हैंमन्थन मान भंग।[7]

(2) देखा यह कपोत-कण्ठ। बाहु वल्ली कर सरोज।
उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि। नितम्बभारचरण सुकुमार।[8]

(3) अष्टमी के चन्द्रमा की फाँक ऐसी शुभ्र आँख।'[9]

(4) दृढ़ प्रशस्त भुज भुजा अविचल गठित कलेवर
उत्तरीय चिर परिचित झूल रहा कंधों पर
विस्तृत वक्ष विशाल स्कन्ध-ज्यों पुरुष सिंह हो।[10]

(5) वह कौन। जो मेघमय आसमान से/उतर रही
नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह/छाँह-सी अम्बर पथ से चली।[11]

1-उन्मुक्त, पृ097, 2- मेघदूत, पृ041, 3- अन्धायुग, पृ0 35, 4-[illegible] 29
संशय की एक रात 6 लीला 6। पंचवटी प्रसंग 2
5-अन्धायुग, पृ0 31, 6-~~[illegible]~~ पृ0 ~~62~~, 7- ~~साकेत~~, पृ0 ~~133~~, 8-~~अन्धायुग, 113~~
9-~~[illegible]~~, पृ0 ~~114~~, 10- ~~[illegible]~~, पृ0 ~~85~~, 11-~~[illegible]~~, पृ0 ~~22~~

(6) लेकिन ये कुछ अजब लोग हैं। इनके हाथ पाँव छोटे हैं
माथा धँसा हुआ अन्दर को। पेट बढ़ा है आगे निकला।[1]

(7) उन्नत ललाट/ श्वेत केशी/आजानुबाहु।[2]

(8) तन रोचनागौर घनसार विरचित। बरालकेशी नितम्बगुर्वी
मृगांक मुख पर छाई अरुणिमा।[3]

(9) मुण्डित सिर मस्तक पर टीका फीका मंगलतारा।
वज्र कपाट सपाट वक्ष पर अक्षत चन्दन माला।[4]

(10) मधुरधूम सी लहराती अलकावली/और प्रतीक्षा से लम्बे घन केश हैं।
चिन्ता सी गुलझटें बुझ सी म्लान रज।[5]

(11) इन कपोलों की ललाई देखतीहो/ और अधरों की हँसी यह कुन्द सी जुही कलीसी।
गौर चम्पक यष्टि-सी यह देह श्लथ पुष्पाभरण से/ स्वर्ण की प्रतिमा कला के
स्वप्न-सचि में ढली-सी।[6]

(12) मेरे राष्ट्र की टूटी हुई/अपमानित पताकाएँ/ नग्न अंगोंकी शोभा यात्रा-सी जा
रही है/जले औ खण्डित भवन/जिह्वा हीन किसमिस सरीखे/काढ फैलाये खड़े हैं।[7]

(13) वृष कन्धर, उत्लम्बबाहु/उन्नत ललाट, भ्रू बंके/नासिका दर्पस्फीत, उरवज्र/
नेत्र-अंगारक।[8]

<u>(ख)स्पर्शपरक :—</u> ताप, शैत्य, मृदुल, कठोरता इत्यादि के लिए स्पर्शपरक बिम्बों का प्रयोग होता है।

(1) जो निज श्वास निकलते हैं, अंग उन्हीं से जलते हैं।[9]

(2) मरुभूमि सी थी जगह/उड़ती उत्तप्त धूलि झुलसाती थी शरीर।[10]

(3) रक्त-सा उबाल देती देह का छनन-छन।[11]

(4) झुलस गयी उस स्वयम्वरा की धृणा के/व्यंग्य वचन के झोंके के उत्ताप से।[12]

(5) अब यह जलते हुए लोहे की सलाखों-सा/ मेरी पसलियों में धँसता है।[13]

(6) एक ही आशा मरुस्थल की तपन में/ ओ सजल कादम्बिनी सिर पर तुम्हारी छाँह है।[14]

(7) मरुस्थलों की/गरम जलती हवाओं की भाँति/असत्वारित /अवांछित।[15]

1-सृष्टि का आखिरी आदमी, पृ0182, 2— अन्धायुग, पृ023, 3—कनुमती, पृ0116,
4-मंजरी, पृ0110, 5—ओपवनवासिनी, पृ035, 6'— उर्वशी, पृ038
7-संशय की एक रात, पृ073, 8— उत्तरप्रियदर्शी, पृ027, 9—अनघ, पृ0 125
10-पंचवटी, पृ0225, 11-मत्स्यगन्धा, पृ089, 12- कर्ण, पृ017, 13-अन्धायुग, पृ022

(ग) श्रावण :— इनमें ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे ध्वन्यात्मकता का बोध हो।

(1) बरस पड़े विध्वंस पिण्ड सौ-सौ यानों से /सुना सभी ने बधिर हुए जाते कानों से
उनका क्या मैं कहूँ-घोष-दुर्घोष भयंकर/प्रेतों का-सा अट्टहास शत-शत प्रलयंकर।[1]

(2) शंख मृदंग तूर्य का वादन/ज्यों मेघों का मंगल गर्जन।[2]

(घ) आस्वादपरक :— कटु, मधुर, इत्यादि भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप शब्दों का प्रयोग कर बिम्ब उपस्थित किया जाता है।

(1) अथवा होकर चकोर कुसुम नैशगन्ध/पीता रहूँ सुधा इन्दु-सिन्धु से बरसती हुई।[3]

(2) दूध सा मीठा धवल निश्छल बनाया कौन विधि ने।[4]

(3) नैनों में लिए/भीगते बैठे रहे खारी हवाओं में।[5]

(4) कब घर-घर की धूम मिठासों का सोंधापन/ये आँखें आँजेगा।[6]

(च) घ्राणपरक :— गन्ध आदि के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसके प्रत्यक्षीकरण के लिए नाक की आवश्यकता पड़े।

(1) आह क्या दिखाई/ उसकी दूषितगन्ध नासिका में उठ छाई।[7]

(2) और शव के झोंकों में/कुछ भुने माँस की बदबू-सी है।[8]

(3) जल रहे अभी भी धू-धूकर/उड़ती कैसी दुर्गन्धि आह/कैसी सड़ांध।[9]

(4) इतना कुरूप/अंग-अंग गला कोढ से/रोगी कुत्तों सा दुर्गन्ध युक्त।[10]

(5) अणु-अणु से कमल की गन्ध आ रही थी/हाथों में मेंहदी रची थी।
ऊँगली में चन्दन की बास थी।[11]

(6) तन में रसभिनी की धारा/मिट्टी की मृदु सोंधी सुवास।[12]

(3) प्रकृति के आधार पर :— बिम्ब प्रयोक्ता की यह गहनतम चेष्टा होती है कि उसके बिम्ब मूर्त रूप में प्रगट हों अतः वे मूर्त से मूर्त, अमूर्त से मूर्त, मूर्त से अमूर्त एवं अमूर्त से अमूर्त की अभिव्यक्ति करते हैं।

(क) मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति :—

(1) वक्र-सी भ्रुकुटि लोल नैन मन सरिता सी।[13]

(2) उजली चाँदनी कफ़न सी/जग के शव को आकर ढँकती है।[14]

14-सृष्टि की साँझ 56
1-उन्मुक्त, पृ048, 2-नन्दुमती, पृ0 116, 3- पंचवटी प्रसंग, पृ0220,
4- राधा पृ0 103, 5-संशय की एक रात, पृ06, 6- उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 32
7-उन्मुक्त पृ0 67, 8-सृष्टि का आखिरी आदमी: पृ0183, 9-सृष्टि की साँझ, पृ0 37
10-अंधायुग, पृ098, 11-सूखा सरोवर, पृ0101, 12-उर्वशी, पृ044, 13-सत्यगन्धा, 67

(3) उसकी आँखों के कोटर से दोनों साबित गोले/कच्चे आमों की गुठली जैसे उछल गए।[1]

(4) वह स्वयम्बरा दीप शिखा-सी/चलती थी जिस नृप को तजकर।[2]

(5) मैनका की भ्रुकुटि-सा लघु धनु धरे वहीं समुपस्थित हुआ आप पंचसर।[3]

(6) समा गयी उर बीच अप्सरा सुख सम्भार नता-सी।
पर्वत के पंखों में सिमटी गिरि मल्लिका लता-सी।[4]

(7) नील जल में तैरते-से दीप। तिमिर सागर के सुनहले द्वीप।[5]

(ख) अमूर्त से मूर्त :—

(1) मानों विश्वराग ही शरीर धर आया हो।[6]

(2) अगम महिमा, सिन्धु सी है कौन पावे पार।[7]

(3) नींद आयी सकुचती ज्यों नवप्रिया का गात।[8]

(4) क्रान्ति दौड़ती दावानल सी [9]

(5) ज्ञान क्रिया के सम्पुट से हैं ओंठ दो।[10]

(6) जब वे चलते हैं तो लगता है उत्साह का समुद्र उमड़ा आ रहा है।[11]

(ग) मूर्त से अमूर्त :—

(1) जीवन नौका मृदुल हृदय की आस-सी।[12]

(2) जैसा काव्य प्रयोग कला का देव द्वार यह।
मौन प्रार्थना-सा पृथ्वी की उठा गगन को।[13]

(3) कर रहा अकेला पार्थ मृत्यु-सम क्रीड़ा।[14]

(4) पुष्प रेणु भूषित सब के आनन यों दमक रहे हैं।
कुसुम बन गयी हों जैसे चाँदनियाँ सिमट-सिमट कर।[15]

(5) मैं सौरभ-सा बसा हुआ था, तेरे फुल्ल कमल में।[16]

(घ) अमूर्त से अमूर्त :—

(1) गौरव से होता पूर्ण दिगन्त है, जो परिमल-सा फैल रहा आकाश में।[17]

इसके अतिरिक्त पौराणिक एवं साहित्यिक बिम्बों को मान्यता प्राप्त हुई है —

1-अन्धायुग, पृ079, 2-इन्दुमती, पृ0 120, 3-अवन्ध्यन, पृ082, 4-उर्वशी पृ021
5- इरावती, पृ0 68, 6-मत्स्यगन्धा, पृ0 64, 7-करुणालय, पृ0 38, 8-इन्दुमती, पृ0115
16-इरावती, पृ029 17, -करुणालय, पृ012
9-स्वप्न और सत्य, पृ064, 10-आलोकवन चन्दिनी, पृ036, 11-अग्निलीक, पृ029
12-विश्वामित्र: पृ013, 13-शिल्पी, पृ028, 14-कर्ण(त्रिपथगा) पृ012, 15-उर्वशी, पृ02

पौराणिक बिम्ब :— इसके अन्तर्गत पुराणों में विश्रुत पात्रों को लेकर बिम्ब उपस्थित करने का प्रयास किया जाता है।

(1) मान्धाता सम सदा दिवसमय राज्य करो तुम
भूप भगीरथ-सदृश कीर्ति भाण्डार भरो तुम।[1]

(2) एक कंकाल मात्र जर्जर-रस हीन। वह तो है स्वर्ग भ्रष्ट पतित त्रिशंकु जैसा।[2]

(3) अमृत छलकते हलाहल का विषम घट/दानव से छल कपट ईर्ष्या मद लिए।
देवों से आकण्ठ विलासी वासना।नारी में ही दीख रही अंगार सी।[3]

(4) मनोभूमि पर उतरे थे श्रीराम मनुज की/मनश्चेतना को विदेह कर देह धीतिसे।[4]

(5) स्वयम्बरा बन खड़ी गुंठित धरा चेतना/प्रकट हो रहे मनोनील में लोकपुरुषनव।
जीर्ण मान्यताओं का जर्जर चाप तोड़ने/नव जीवन की श्री शोभा को वरने के
हित आकुल चंचल आज पुनः जन धरणी का मन।[5]

(6) जब यह तेरा यंत्र अचानक ही अनियंत्रित/भस्मासुर-सा स्वयं भभक बैठा।[6]

(7) देखि चन्द्रमुख पर किस चिन्ता का घिरा राहु।[7]

(8) सामने उदधि-सा कुरुक्षेत्र फैला है।करना है हमको फिर से उसका मंथन।[8]

(9) पुण्यतोय गंगा के तट पर शैलराज से निःसृत जिसकी।
पावन धारा सगर सुतों हित, बनी स्वर्ग सोपान पंक्ति सी।[9]

(10) शत सहस्र फन खोल पुनः निद्रित निश्चेतन/मनोराग की वंशी के स्वर संकेतों पर
नाच उठेगा कर विराग के प्रति विरक्त मन।[10]

(11) जगती की सुषमाएँ बटोर/एडन के सुन्दर उपवन में/जिस प्रथम पुरुष आदम की
रचना की थी धरती माता ने/क्या ये सब भी/ उस आदम के ही बेटे हैं।[11]

(12) अब कोई जिन्दा नहीं बचा/सारी नगरी लाक्षागृह जैसे पिघल गयी है।[12]

(13) अधोमुखी लघु स्वर्ग सम्प्रदायों में सीमित।
लटके हैं अगणित त्रिशंकु से बहुमत पोषक।[13]

(14) अंधी गांधारी-सी शत बुननों की जननी।[14]

(15) और पी गया मेरा जीवन सुख उदधि/वह अगस्त्य है कौन नहीं मैं जानती।[15]

1-सीता, पृ022, 2— मत्स्यगन्धा, पृ0 86, 3— विश्वामित्र, पृ0 47, 4—शैलपी, पृ029
5-अप्सरा, पृ0 104, 6,—उन्मुक्त, पृ0 88, 7— द्रौपदी, पृ0 73, 8—कर्ण पृ0 12
9-मेघदूत, पृ0 41, 10-रजतशिखर, पृ0 23 11— कवि, पृ0227, 12—सृष्टि का आ0, पृ0196
13-स्वप्न और सत्य, पृ0 78 14-दिग्विजय पृ097, 15—लोकायतनवन्दिनी, पृ0 4

(16) दूसरी बार होगा/सागर का मन्थन अब/यदि यह बाधा हे सिन्धु
अगस्त्य के आचमन-सा सोखोगे।[1]

(17) दैया रे दैया यहाँ कहाँ गोपाल चरावति गैया है?
जब भी मेरे ब्रज में बिकड़ी अनगिनत तुम्हारी गैया है।[2]

साहित्यिक बिम्ब :—

(1) देख रहे ही हो/शरीर की सीमाएँ तुम/मन की सीमाएँ देखोगे, तो रो देगे
विरहाकुल हो/कभी रामगिरि पर रोते हैं/प्रियदर्शन के लिए तड़प कर रह
जाते हैं/कोई साधन नहीं कि निज उफनाते उर को/भेज सकें प्रणयाकुल उर तक
प्राण प्रिया के। मेघों से विनती करते हैं/अर्घ्य चढ़ाकर कुटज कुसुम का/ले जाने को
प्रेम-संदेशा।"[3]

(2) सूक्ष्म सुषुम्ना के तारों से झीनी-झीनी/बिनी चेतना सुघर चदरिया स्वच्छ आपने।[3]

(3) सुरति निरति सम्भव आत्मा हो सकती एकाकार।
अजपा जाप नाम माला, अनहद ध्वनि पद -श्रृंगार।[5]

(5) अहेरी पूछता है/ ओ रे अकेले पक्षी/ तू मेरे तीर से कैसे बच गया।
■ अपने साथी के संग तू भी क्यों नहीं मरा/ तो पक्षी कहता है —
तेरी बात का उत्तर पीछे दूँगा/पहले तू यह बता-डाकू को वह जादू का शाल
कहाँ से मिला/जिसे ओढ़कर वह कवि बन ■ गया।[6]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पंत, उदयशंकर भट्ट, धर्मवीर भारती, शिवनाथ कुमार दिनकर, जानकी वल्लभ शास्त्री, के बिम्ब बहुत आकर्षक एवं सफल हैं।

प्रतीक योजना :—

जब भाषा अविवृत अनुभूतियों को सघनता के कारण अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ, पंगुता पाती है तब वह ऐसे सूक्ष्म, अमूर्त, रहस्यात्मक रूप को प्रकट करने के लिए प्रतीकों का आश्रय लेती है। डा० नगेन्द्र का कथन है कि 'प्रतीक एक प्रकार के रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है।'[7] वास्तव में प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो कि अदृश्य(अगोचर या अप्रस्तुत)विषय का

1-शीत की एक रात, पृ0 17, 2- इरावती, पृ0 18, 3- लौह देवता, पृ0 90
4- स्वप्न सत्य, पृ0 74 5- इरावती, पृ0 21, 6- अग्निलीक, पृ0 38
7- काव्यबिम्ब, पृ0 78

प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है, अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत, विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत, विषय द्वारा करता है।[1] कहना नहीं होगा कि कवि अनभिव्यक्त भावों के सम्प्रेषण हेतु प्रतीकों का आश्रय लेता है। ये प्रतीक संस्कृति, सभ्यता, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, जलवायु, प्रकृति एवं परिस्थितियों से विकसित होते हैं। हिन्दी गीतिनाट्यों में कोई क्रम-बद्ध प्रतीक नहीं है अतः नाट्यकार के अनुसार उपलब्ध प्रतीकों का संक्षिप्त विवेचन उपस्थित किया जा रहा है।

जयशंकर प्रसाद ने जय, मूर्खता, सुख-दुख, क्रूरकर्म तथा ज्ञान के लिए क्रमशः अरुण(पृ014) पिशाच(पृ023) छाया-धूप(पृ022) चाण्डाल(पृ034) तेज(पृ0 38) का प्रयोग किया है।

(1) वह वीभत्स पिशाच छा लिया चाहता/जब अपना ही ग्रास। (करुणालय, पृ023)

(2) जहाँ न छाया भी मिलती है धूप।' (करुणालय, पृ0 22)

(3) मैथिलीशरण गुप्तने लीला में तुच्छता के लिए धूल(पृ023) भावनाओं के लिए लहरें (पृ029) पुत्र के लिए दीप(पृ0 31) विचार समूह के लिए आँधी(पृ0 54), यौवन के लिए ऊषा(पृ0 80) अनघ में अज्ञान के लिए काला वस्त्र(पृ0 8) कोमलता के लिए कुसुम(पृ028) का प्रयोग किया है —

(1) करनी है क्या धूल उन्हें सोने की लंका। (लीला, पृ023)

(2) भाग्य वृक्ष के सुफल दीप है गेह के। (लीला-पृ031)

(3) आयी जो यह आँधी प्रचण्ड/ उड़ जावेगा यह जलद खण्ड। (लीला, पृ0 54)

(4) यह एक काला वस्त्र। (अनघ, पृ0 8)

निराला ने पंचवटी प्रसंग में गम्भीरता के लिए समुद्र (परिमल, पृ0215) शक्तिपुंज के लिए सिन्धु, सूर्य तारा-ग्रह इत्यादि(पृ0 219) हृदय के लिए कमल का उल्लेख किया है—

(1) देख कर कौतुक तब खिले हुए कमल फूल
गले डाल लेते हैं मोतियों की माला एक(परिमल, पृ0 221)

~~(2)~~ भगवती चरण वर्मा ने यौवन के लिए पराग(तारा, पृ056) अन्तर्द्वन्द्व के लिए भूचाल(पृ062), चंचल भावनाओं के लिए लहरें, शरीर के लिए नौका एवं हृदय के लिए आकाश(पृ064) का प्रतीक उपस्थित किया है —

1- हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ0 47।

(1) विकसित कुसुम पराग सदा रहता नहीं।(तारा, पृ056)

(2) उपल पुष्प हो तुम भीषण कृपाल हो।(तारा, पृ061)

उदयशंकर भट्ट ने चाँदनी के लिए हँसी(मत्स्यगन्धा-पृ062) अभिमान के लिए भूधर(विश्वामित्र, पृ025) चंचल मनोवृत्ति के लिए तितली(पृ029)अज्ञान-ज्ञान के लिए अँधेरा उजाला(राधा, पृ0 98)यौवन के लिए ऊषा(पृ0100) निराशा एवं हृदय के लिए अमावस्या एवंआकाश(पृ0 138) इत्यादि का प्रयोग किया है —

(1) और नव हास का विलास लिए फैला जब(विश्वामित्र और दो भावनाट्य-पृ062)

(2) मेरे तप का नव चुम्बी भूधर(वही, पृ0 25)

(3) मन अँधेरे में उजेले की रहा कर आस क्यों।(पृ098)

(4) सतत पश्चार से निराशा-सा अमा-सा आकाश मेरा(वही, पृ0138)

प्रतीकों के प्रयोग में सुमित्रानन्दन पंत बहुत कुशल हैं। कथावस्तु, पात्र,सभी प्रतीकात्मक हैं। पंत के गीतिनाट्यों की घटनाएँ प्रतीकात्मक हैं अतः नाट्यकार ने इनकी अभिव्यक्ति के लिए सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया है, जिसके कुछ उदाहरण निम्न है —

(1) तेरा यह शिशुओं का उल्लास व्यर्थ है।(शिल्पी, पृ015)

(2) पृथ्वी का पैगम्बर बन हल आया। नवल सभ्यता का प्रभात संग लाया।(शिल्पी42)

(3) सम्मुख रजत सरोवर/पर्वत की बाँहों में जैसे बँधा हुआ है(शिल्पी)पृ094)

(4) आज नए रावण उपजे हैं नैये राम का/युग अभिवादन करने को शतमुख शीशों से

(5) देवासुर संग्राम क्षेत्र है मनव मन(रजतशिखर पृ024)

(6) उफ़ किसने जीरा कोमल कदली स्तम्भों को ।स्वर्ण कन्दुकों को लूटा।(वही, पृ029)

(7) मँडरा रहे विहँग भीम धूमकि क्षितिज में।(सौवर्ण, पृ018)

(8) भाग रहा मन बहिर्जगत के जलते मरू में।
मृग मरीचिका पीड़ित वह जल छाया मोहित(सौवर्ण, पृ020)

(9) दिव्य स्वाति के पी-पी रटते प्यासे चातक।(सौवर्ण, पृ0 24)

(10) सद्गुरू से चूनर रँगवा ज्यों की त्यों रख दी।(सौवर्ण, पृ074)

तात्पर्य यह है कि शोषण के लिए शिशुओं का उल्लास, आध्यात्मिक संदेश वाहक के लिए पैगम्बर, आध्यात्मिक केन्द्र के लिए रजत सरोवर, भोगवादी सभ्यता के पोषक के लिए रावण, पाप-पुण्य के लिए देवासुर-संग्राम नारी अंगों के लिए कदली स्तम्भ एवं स्वर्ण-कन्दुक, वायुयान के लिए विहँग, आदर्श प्रेमी के लिए चातक एवं शरीर के लिए

चादर का प्रयोग बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ है।

सियाराम शरण गुप्त 'उन्मुक्त' को प्रतीकात्मक गीतिनाट्य बनाना चाहते थे: इसीलिए द्वीपों के नाम, घटनाएँ प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित किया है। पात्रों की मूल-प्रवृत्ति को भी प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया है। जीवन के प्रवाह को नदी रूप में (उन्मुक्त पृ0 24) क्षुधा के लिए दैत्य(पृ0123) अहिंसक के लिए मृत्युंजय(पृ0165) का प्रयोग किया है —

(1) तेरे तीखे तीक्ष्णदन्त घहरह संघर्षित/पीस रहे हैं एक साथ नारी नर बच्चे।
आवट्ट में जो पड़े बचे, अथवे कि बचे।' (उन्मुक्त, पृ0123)

श्रीसिद्धनाथ कुमार भी प्रतीकों के प्रयोग में सजग रहे हैं। उन्होंने हृदय के लिए नभ, दुःख के लिए ज्वाला, स्त्रियों के लिए सीता-सावित्री, मशीन के लिए प्रेत, साधारण व्यक्ति के लिए गोबर एवं होरी का उल्लेख किया है —

(1) जीवन की ज्वाला में जलते/सपने में लेकर आग था(सृष्टि की साँझ और0पृ0211)

(2) मानवता की जननी श्रद्धा/सीता/सावित्री, अनुसूया/फुटपाथों पर जा रही चली।
(वही, पृ0 228)

(3) काले इस्पात प्रेत के दाँत ये/ जो अट्टहास करता रहता है।(वही, पृ0231)

(4) गौतम ईसा, पैगम्बर गाँधी की/सन्तानों के उर में/यह घृणा द्वेष।(वही233)

(5) यह यंत्र भयंकर/पीकर अग्निज्वाल/
बुनता है वस्त्र मनोहर/पांचाली के चीर की तरह।(वही, पृ094)

(6) भले राय साहब राजा साहब।कोसों की दूरी/ कर लें तय पल भर में/
लेकिन होरी औ गोबर बेचारे अब भी/डेढ़ कोस घण्टे कीही गति से चलते हैं।
(वही, पृ0 99)

श्रीधर्मवीर भारती सफल प्रतीकों केप्रयोक्ता हैं।'अन्धायुग' में घटनाएँ एवं पात्र प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत हुए हैं।'सृष्टि का आखिरी आदमी' के सभी पात्र प्रतीकात्मक हैं। अपार दुःख के लिए समुद्र, विकृति मनोवृत्ति के लिए अन्धी गुफा(अन्धायुग, पृ035) मन के लिए बछिया, एवं युद्ध की विभीषिका के लिए सर्प एवं आग का प्रयोग किया है —

(1) सहसा यह उगा कोई बाँध टूट गया है/
कोटि-कोटि योजन तक दहाड़ता हुआ समुद्र/मेरे वैयक्तिक अनुमानित सीमित जगको/
लहरों की जिह्वा जिह्वाओं से निगलता हुआ/
मेरे अन्तर्मन में पैठ गया।(अन्धायुग, पृ0 27)

(2) मैं हूँ युयुत्सु/ मैं उस पहिए कीतरह हूँ।
जो पूरे युद्ध के दौरान में रथ में लगा रहा।
पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था/
और मैं अपनी उस धुरी से उतर गया हूँ। (अन्धायुग, पृ0 74)

(3) गेहूँ की बालों में सर्प फुफकारेंगे।
नदियों में बह-बह कर आयेगी पिघली आग/(वही, पृ0 93)

श्री जानकी वल्लभ शास्त्री छायावादी शिल्पविधान से प्रभावित नाट्यकार हैं अतः उनकी नाट्य रचनाओं में युगानुरूप प्रतीकों का प्रयोग हुआ है — जैसे —

(1) ये लहरें दुर्वार तपोवन/ मत बन पारावार(पाषाणी, पृ0 77)
(2) मेरे मन का गगन जलाती बेध बरी यह भाप। (वही, पृ0 79)
(3) बिना कटीली डाली के क्या/खिलते पाटल फूल कभी-भी। (पृ0117)
(4) यह पूर्ण पात्र मेरा निरखो देने या लेने आयी हूँ। (इरावती, पृ017)
(5) क्या खूब उठ रही एक आँधी सी है। (वही, पृ0 17)
(6) सोये नाग जाग जायेंगे, झकोरो मत चन्दन डाल। (पृ022)

कहना नहीं होगा कि उद्दाम कामनाएँ लहर, बाष्प-धूम, कटीली डाली एवं पाटल दुःख-सुख पात्र हृदय, आँधी अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल ने 'सूखा सरोवर ' को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। व्यक्ति ही सरोवर है। उसकी संस्कृति मर्यादा ही पानी है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए नाट्यकार ने पात्रों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ प्रतीक द्रष्टव्य है —

(1) पानी का घट है सरोवर/छन में फूट सकता है/छन में सूख सकता है। (पृ013)
(2) आँचल के दीया से/पलकों के गंगाजल
माथे के घूँघट से/ लो आरती है मेरी तुम्हें(सूखा सरोवर, पृ0 81)

प्रेम के लिए दीपक, आँसु के लिए गंगाजल, समर्पण के लिए आरती का प्रयोग हुआ है।

रामधारी सिंह दिनकर ने उर्वशी की प्रतीकात्मकता को स्वीकार कर उसे सनातन पुरुष एवं नारी की समस्या के रूप मे चित्रित किया है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए नाट्यकार ने प्रतीकों का सहारा लिया है —

(1) पहनेगी कंचुकी क्षीर से क्षण-क्षण गीली गीली।
नेह लगायेगी मनुष्य से देह करेगी ढीली। (उर्वशी, पृ0 12)
(2) पर तुम कहो क्या आगे की पूर्ण चन्द्र जब आया।
अचल रहा अथवा मर्यादा छोड़ सिन्धु लहराया।' (वही: पृ0 20)

उक्त उदाहरण में मातृत्व के लिए क्षीर एवं उर्वशी के लिए चन्द्र तथा पुरूरवा के लिए सिन्धु प्रतीकात्मक रूप में आये हैं। नाट्यकार दिनकर ने धार्मिक , सामाजिक, मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया है और उन्हें पर्याप्तसफलता प्राप्त हुई है।

नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात(में राम, लक्ष्मण, विभीषण, सीता, हनुमान को प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित किया है। अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने पौराणिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का आश्रय लिया है —

(1) उस आस्था तक/ जो वासुदेव थी/ पर अब सर्प वृक्ष है/
संशय खण्डित। (संशय की एक रात, पृ03।)

~~(2)~~ उक्त उदाहरण में वासुदेव(पीपल का वृक्ष) पवित्र, एवं आस्थावान् आस्था का प्रतीक है। इसी तरह से ज्वार भावोद्वेलन के रूप में आया है —

चन्द्र देखते ही ज्वार वाला सिन्धु(संशय की एक रात, पृ0)

श्री दुष्यन्त कुमार ने 'एक कण्ठ विषपायी' को युद्धोत्तर ह्रासमान संस्कृति का प्रतीकात्मक गीतिनाट्य बनाना चाहते थे अतः उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक,क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया है- कुछ उदाहरण निम्न हैं —

(1) बहुत बड़ा यज्ञ हो चुका है यहाँ/बहुत बड़ी आहुतियाँ/
उसमें हुई हैं/(एककण्ठ विषपायीः पृ0 83)

(2) ऐसा भी क्या मोह/ कि शव को चिपटाए फिरते हैं तन से।(वही, पृ0 83

(3) हमारे व्यक्तित्व के लहलहाते हुए/खेतों से होकर/
दक्ष ने बहुत पगडंडियाँ बनायी।(वही, पृ0 110)

उपर्युक्त उदाहरण में त्याग, बलिदान, जर्जरित, रूढ़िग्रस्त मान्यताओं एवं कामनाओं के लिए क्रमशः यज्ञ, शव एवं लहलहाता खेत प्रयुक्त है।

अज्ञेय ने धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग, उत्तर प्रियदर्शी' में एकाध स्थलों में किया है जैसे एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें ज्ञान के लिए आलोक शब्द प्रयुक्त हुआ है —

(1) करूणा फूटी/ आलोक झरा/ गत शोक हुआ(उत्तरप्रियदर्शी)

श्री भारत भूषण अग्रवाल ने 'अग्निलीक' में निर्द्वन्द्व के लिए जानवर, वंश परिवार के लिए वृत्त, भावोद्वेलन के लिए आग निष्ठा एवं पुत्र-प्रेम के लिए चादर तथा दीपक का प्रयोग किया है —

(1) इनसे तो ये जानवर ही अच्छे हैं।(अग्निलीक, पृ0 12)

(2) अपने वृत्त से निष्कासित और विछिन्न।(वही, पृ0 33)

(3) यह मेरे जीवन की आग है/ जो मेरे भीतर धधक रही है।(अग्निलीक, पृ044)

(4) पर अब मैंने वह चादर उतार फेंकी है,
और वह दीपक फूंक मार कर बुझा दिया है।(वही, पृ0 55)

कहना नहीं होगा कि गीतिनाट्यकारों ने प्रतीकों का प्रयोग कर अर्थ सौरस्य में सहायता की है। प्रायः सभी क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया गया है। बिम्ब एवं प्रतीक योजना की दृष्टि से तारा, मत्स्यगन्धा, रजत शिखर, स्वप्न एवं सत्य, अंधायुग, कवि, सृष्टि की सांझ, पाषाणी, उर्वशी(दिनकर) संशय की एक रात, सूखा सरोवर, इरावती एवं अग्निलीक प्रमुख रचनाएँ हैं।

सप्तम अध्याय

गीतिनाट्यों में नाटकीयता

सप्तम अध्याय

गीतिनाट्यों में नाटकीयता

गीतिनाट्य के तत्वों का सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए अभिनय सम्बन्धी जिन बातों का उल्लेख किया गया है, उन्हीं के आधार पर आलोच्य गीतिनाट्यों की अभिनेयता पर विचार किया जा रहा है।

(1) करूणालय :—

वैदिक साहित्य में उपलब्ध शुनःशेफ, रोहित, हरिश्चन्द्र आदि से सम्बन्धित घटनाओं का संकलन कर तात्कालिक, बलि-कर्म, हिंसा-क्रूरता पर व्यंग्य करने के लिए इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। हरिश्चन्द्र का नौका-विहार, आकाश-गर्जन, पुत्र के बलिदान के लिए राजा का तत्पर होना, रोहित का कानन पलायन, अजीगर्त से बलि के लिए शुनःशेफ का क्रय, बलिदान के अवसर पर पुत्रों सहित विश्वामित्र का आगमन, सुव्रता द्वारा रहस्योद्घाटन एवं करूण-क्रन्दन से शुनःशेफ का मुक्त होना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। कथावस्तु अधिक विस्तृत नहीं है। प्रसाद ने विरोधी भावनाओं से पूर्ण घटनाओं का विन्यास कर नाटकीयता उत्पन्न करने का प्रयास किया है, किन्तु उसमें उन्हें सफलता अधिक नहीं मिल सकी। क्योंकि उनका समुचित विस्तार नहीं हो सका है। आकाशवाणी जैसे अप्राकृतिक एवं चमत्कारिक तत्वों की योजना की गयी है। इसी तरह वसिष्ठ पुरोहित द्वारा शुनःशेफ के वध को अस्वीकार करना, आकाश गर्जन, विश्वामित्र का प्रवेश, सुव्रता का रहस्योद्घाटन, रोचक और नाटकीयता उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हैं। एकाध स्थलों को छोड़ कर शेष घटनाएँ अभिनेय हैं।

इसमें आठ पुरूषपात्र एवं दो स्त्री पात्रें जिसमें हरिश्चन्द्र, रोहित, विश्वामित्र, प्रमुख हैं। रंगमंच पर पात्रों की भीड़ नहीं है अतः इस दृष्टि से करूणालय सफल गीतिनाट्य है। छोटे-छोटे संवाद, नाटकीयता उत्पन्न करने में समर्थ हैं। प्रथम दृश्य में हरिश्चन्द्र द्वारा प्राकृतिक सुषमा का विस्तृत वर्णन अपेक्षित है क्योंकि इससे अभिनय में बाधा उत्पन्न होती है। कोकिल कण्ठी पुरूष ही अपने सशक्त अभिनय एवं वाणी से दर्शकों को अभिभूत कर सकेगा।

मंचविधान :— करूणालय में पाँच दृश्य हैं। प्रथम दृश्य नौका विहार का है, जो नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्जित दृश्य है। इसका प्रदर्शन रंगमंच में नहीं हो सकता है। इसी तरह प्रसाद ने पंचम दृश्य में वध वर्जित दृश्य का उल्लेख किया है। मैं समझता हूँ कि जिस करूणा की अनुभूति के लिए इस दृश्य की योजना की गयी है, उसका मंचन सफलता पूर्वक हो सकता है। अन्त में उसका वध होता भी नहीं है। दो पर्दों से पूरा रंगमंच व्यवस्थित कर करूणालय का

अभिनय कराया जा सकता है। रंगमंच कैसा हो, उसकी कल्पना रंग प्रयोक्ता पर छोड़ दी गयी है। कि वह सुविधानुसार उसको बना सके। द्वितीय दृश्य कानन का, तृतीय दृश्य अजीगर्त के आश्रम का चतुर्थ दृश्य राज दरबार का और पंचम दृश्य मण्डप का है। रंगप्रयोक्ता एवं निर्देशक को अपनीकल्पना के अनुसार इनका विधान करना पड़ेगा।

गीतिनाट्यकार ने कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों का उल्लेख किया है जैसे — सरयू में नाव पर जल-विहार करते हुए महाराज हरिश्चन्द्र का सहचर बन्धों सहित प्रवेश(पृ०11) आकाश को देख कर (पृ०20), रोहित जाता है(पृ०20), प्रवेश करके ऋषि-पत्नी मुँह ढाँप लेती है और भीतर चली जाती है और अजीगर्त कुछ सोचने लगता है-(पृ०24), मार खाने के भय से खेत छोड़कर शुनःशेफ भागता हुआ आता है,(पृ०25), शुनःशेफ का अजीगर्त की ओर सकरूण देखते हुए रोहित के साथ प्रस्थान(पृ० 26), प्रसाद ने रोहित के अतिरिक्त अन्य किसी पात्र की वेश-भूषा का वर्णन नहीं किया है। अजीगर्त कहताहै-

"स्वर्ण खचित यह किरीटमणि है कह रहा,
यही वस्त्र बहुमूल्य बताता विभव को।"[1]

प्रसाद ने आकाश-भाषित को शब्दतोली में प्रयोग किया है अंत में भरतवाक्य का भी प्रयोग हुआ है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि करूणालय प्रारम्भिक रचना होने के कारण रंगमंच केअनुकूल ही है। स्थान स्थलों के दृश्य-विधान में कठिनाई होगी। कथावस्तु में नाटकीयता होने के कारण इसका मंचन सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

लीला :—

इस गीतिनाट्य में राम के बाल-जीवन एवं विवाह तक की घटनाएँ विन्यस्त हैं। राम का आखेट करना, विश्वामित्र का दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना, सुमित्रा एवं कौशल्या की पुत्र-विषयक चिन्ता, ताड़कावध, जनकपुर के राजोद्यान में ऊर्मिला, सीता आदि बहनों का पुष्पचयन, धनुर्भंग, परशुराम-लक्ष्मण संवाद में राम विवाह की घटनाएँ वर्णित है। प्रायः सभी घटनाएँ दृश्य रूप में ही हैं। कुछ सूच्य रूप में उल्लिखित है जैसे — विश्वामित्र के सन्दर्भ में हरिश्चन्द्र की दानिनिष्ठा, राम-लक्ष्मण का जनकपुर प्रस्थान, अहिल्योद्धार, स्वयम्बर सभा में धनुष उठाने में राजाओं की असमर्थता इत्यादि। घटनाओं के सृजन में मौलिकता है किन्तु उसमें नाटकीयता बहुत कम ही है। इसमें पन्द्रह पुरूष एवं आठ स्त्रियाँ हैं। उनके चरित्र में नाटकीयता नहीं है। रंगमंच पर पात्रों की भीड़ नहीं लगती है। छोटे-छोटे सरल, क्षिप्र, संवाद अभिनय में बहुत सफल हैं।

1- करूणालय, प्रसाद, पृ० 23

दृश्य-विधान :—

लीला में नौ दृश्य हैं। प्रारम्भ में आशीर्वाद , मंगल कामना, प्रभु स्तुति है। गुप्त जी ने स्थानों का उल्लेख किया है। दूसरा दृश्य प्रान्तर, तीसरा तथा चौथा अयोध्या का राज-भवन, पाँचवाँ वन-मार्ग, छठा अयोध्या राजभवन, सातवाँ जनकपुर का राजोद्यान, आठवाँ जनकपुर का राजमार्ग, नवाँ दृश्य जनकपुर धनुशाला से सम्बन्धित है। इस प्रकार एक दृश्य वन से सम्बन्धित है और दूसरा राजभवनों से। इन्हीं दृश्य विधानों से सारा कार्य चलाया जा सकता है। इन दृश्य में समानुपात का ध्यान नहीं रखा गया है। कुछ दृश्य अपेक्षाकृत छोटे हैं— जैसे — पहला और छठा। सातवाँ दृश्य सबसे लम्बा है। दृश्यों की संयोजना निर्देशक की कल्पना पर छोड़ दी गयी है। झूला झूलने का भी दृश्य अंकित किया गया है। गुप्त जी नेपथ्य का उपयोग किया है। जैसे (नेपथ्य में— यह कौन है रहा अभिधान)लीला पृ0 53)। के समय निर्देशक से अपेक्षा है कि वह पर्दे के पीछे से इस वाक्य को कहलाये।

अनघ :—

अनघ में महात्मा गौतम बुद्ध के साधनावतार की कथावस्तु है जिसमें उनके ग्राम सुधार, लोकोपकार, जनसेवा का विस्तृत उल्लेख है तथा शासन के कोप का वर्णन तथा सुरभि के प्रयासों से मुक्ति की घटनाएँ दृश्य रूप में निबद्ध हैं। घटनाएँ बहुत तथा अनावश्यक हैं। कथावस्तु लम्बी हो गयी है, जिससे अभिनय में शिथिलता आ जातीहै, साथ ही साथ नाटक लम्बा हो गया है जिससे दर्शकों का मन ऊब उठता है। घटनाओं में नाटकीयता की सम्भावना सीमित है, अतः अभिनेयता की दृष्टि से इसकी कथावस्तु मंद एवं नीरस तथा बोझिल है। एकाध घटनाएँ दृश्य हैं — जैसे सुर द्वारा मघ पर वार करना तथा मघ के गायों की चोरी होना तथा गृहदाह।

अनघ में 18 पात्र पुरुष तथा पाँच स्त्री पात्र हैं। इसमें पुरुषों की संख्या अधिक एवं स्त्रियों की संख्या कम है। अनेक स्थानों पर पात्रों की भीड़ रंगमंच पर एकत्रित हो गयी है। पूरे दृश्य में उनसे एक या दो वाक्य कहलाये गये हैं — जैसे दूसरे दृश्य चौपाल में अनेक मनुष्य मघ की निन्दा में संलग्न हैं। एक दो पात्र वार्तालाप करते हैं, शेष मौन रहते हैं। मघ एवं सुरभि के चरित्र तो अच्छे बन पड़े हैं, शेष का वर्णन कर काम चलाया गया है। अतः चरित्र की दृष्टि से अनघ अच्छा गीतिनाट्य नहीं है।

अनघ में अनेक स्थान पर छोटे-छोटे संवाद हैं किन्तु कुछ एक स्थलों पर लम्बे हैं। सरल, गद्यात्मक एवं काव्यात्मक दोनों प्रकार के संवाद मिलते हैं। दृश्य तीन में माँ, दृश्य चार में सुरभि, दृश्य सात में मघ, दृश्य नौ में रानी, दृश्य दस में सुकुल, मुखिया का कथन

एक, दो पृष्ठ तक चलते हैं जो अस्वाभाविक लगते हैं।

अनघ में दृश्यों एवं अंकों का विभाजन नहीं है। अलग-अलग स्थानों का उल्लेख किया गया है। इन्हें दृश्य माना जा सकता है, इसमें सत्रह दृश्य हैं, अरण्य, चौपाल, मघ का घर, उद्यान, वट-छाया, मघ का घर, चबूतरा, ग्राम-भोजक का घर, मधुवन, मुखिया और चौपाल, उद्यान का एक भाग, एकान्त, मेंड, दण्ड-गृह कारागार मगध-राजधानी, न्याय सभा। इन दृश्यों में मगध-राजधानी, मेंड, कारागार, दण्ड-गृह अत्यन्त छोटे हैं, अरण्य, वट-छाया, मुखिया और चौपाल दृश्य अत्यन्त विस्तृत हैं। दृश्यों के अवयव में क्रम नहीं है, जिससे पट-परिवर्तन शीघ्र होता है। इस प्रकार इसमें 3 पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि इसके कुछ दृश्य ग्राम, कुछ जंगल एवं कुछ राज-भवन से सम्बन्धित हैं। नेपथ्य का उपयोग गीतिनाट्यकार ने 2 स्थानों पर किया है। "जियो मनुष्यों जियो, जियो। सुर बन जाओ सुरा पियो(पृ0 32) के कथन के समय निर्देशक से अपेक्षा है कि वह नेपथ्य से उक्त वाक्य कहलवाये। गुप्त जी ने अनघ में आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है — जैसे — इधर-उधर देखकर(पृ08)पास जाकर(पृ09) पूजन करता है(पृ010) नमस्कार करके(पृ024) चौंककर(पृ031) चकित भाव से(पृ039) सुरभि चौंकती है(पृ091) दृश्य सज्जा के लिए गीतिनाट्यकार ने कोई रंग-संकेत नहीं लिखा है। निर्देशक स्थान के अनुसार अपनी कल्पना का प्रयोग कर दृश्य की सजावट कर सकता है। इसमें मंगलाचरण है जिसे नन्- नान्दी की संज्ञा दी जा सकती है। कुल मिल कर यह कहा जा सकता है कि इस गीतिनाट्य का अभिनय तो हो सकता है किन्तु उसका खासा प्रभाव दर्शकों पर नहीं पड़ेगा क्योंकि घटनाओं का बाहुल्य है और उनमें नाटकीयता कम ही है।

<u>पंचवटी प्रसंग :—</u>

शूर्पणखा के विरूपीकरण से सम्बन्धित घटनाएँ इसमें हैं। सभी घटनाएँ सरस हैं। किन्तु उनमें नाटकीयता नहीं है। बात यह है कि गीतिनाट्य में जिस क्रिया-प्रतिक्रिया की आवश्यकता होती है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है। बीच-बीच में व्यष्टि-समष्टि, ईश्वर माया का वर्णन अनाटकीय तथा कथावस्तु को अभिनेय बनाने में व्याघात उत्पन्न करता है। सीमित पात्र, सरस एवं काव्यात्मक संवाद है। इसमें पाँच दृश्य हैं जिनके शीर्षक नहीं दिये गये। बीच-बीच में आंगिक, वाचिक, आहार्य अभिनयों का उल्लेख है। काव्यात्मकता भी अभिनेयता में बाधक होगी। रंग-संकेतों का अभाव है। इसलिए अभिनय की दृष्टि से रचना असफल कही जा सकती है।

तारा :—

इसमें बृहस्पति-पत्नी तारा बृहस्पति एवं चन्द्रमा के प्रणय-प्रसंग की घटनाएँ हैं। तारा की अतृप्ति, चन्द्रमा के प्रति आकर्षण, प्रणय एवं शाप की घटनाएँ बड़ी सजीव, कौतूहल पूर्ण, एवं आकस्मिकता से परिपूर्ण हैं। क्रियात्मक घात-प्रतिघात, नाटकीयता, उत्तास्यद्भाव की दृष्टि से तारा सफल गीतिनाट्य है। सरल कथावस्तु होने के कारण इसका अभिनय सरलता से हो सकता है। बृहस्पति, तारा एवं चन्द्रमा इसमें तीन पात्र हैं। अतः अभिनय की दृष्टि से पात्रों की भीड़ नहीं है। संवाद, सरल, प्रवाहपूर्ण, संक्षिप्त हैं जिनसे रहस्य एवं आकस्मिकता बनी रहती है। संवाद की दृष्टि से यह रचना बहुत सशक्त है।

तारा में कुल चार दृश्य हैं। चारों दृश्य आश्रम से सम्बन्धित हैं। सारी घटनाएँ एक ही पर्दे में दिखायी जा सकती हैं। वातावरण के निर्माण निर्देशक स्वयं कर सकता है। रंग-संकेतों का सर्वथा अभाव है। पात्रों के प्रवेश, प्रस्थान की सूचना बीच बीच में दी गयी है। सार यह है कि इस गीतिनाट्य में रंगमंच की सज्जा का उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी घटना-क्रम में इतनी प्रवाहमयता कौतूहलता के साथ नाटकीयता है कि दर्शकों का मन मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता है।

मत्स्यगन्धा :—

काम का प्राबल्य, सामाजिक भय एवं अतृप्त काम का कारुणिक अन्त मत्स्यगन्धा की प्रमुख घटनाएँ हैं। मत्स्यगन्धा का प्रकृति-प्रेम अनंग का आगमन, पराशर का नदी पार करना, रति-प्रस्ताव, सत्यवती का विधवा होना दृश्य घटनाएँ हैं, सत्यवती के पति का घायल होना सूच्य रूप में बताया गया है(पृ086) घटनाओं के चयन में नाटकीयता है। कौतूहलता, जिज्ञासा, आकस्मिकता, चरमसीमा जैसे तत्वों को अपनाकर कथाप्रवाह को सरल, गतिशील एवं अभिनेय बनाया गया है। चतुर्थ एवं पंचम दृश्य की कथावस्तु में काफी अन्तराल है क्योंकि पंचम दृश्य में मत्स्यगन्धा सत्यवती के रूप में दिखाई पड़ती है। इसमें मत्स्यगन्धा, वृद्ध, अनंग पराशर पात्र हैं। मत्स्यगन्धा प्रमुख है। रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं लगती है। संवाद काव्यात्मक होते हुए भी रंगमंचीय हैं। छोटे, सरल, प्रवाहयुक्त संवाद पाठक को आकृष्ट करने में पूर्ण सक्षम हैं। इन संवादों से घटनाओं का विकास एवं मत्स्यगन्धा के आन्तरिक भावों का उद्-घाटन हुआ है।

मत्स्यगन्धा में छह दृश्य हैं। प्रथम से लेकर चतुर्थ दृश्य गंगा के तट से पंचम एवं षष्ठ दृश्य राजभवन से सम्बन्धित हैं। दृश्यों के आकार में क्रम का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। प्रारम्भ में में वे बड़े तथा क्रमशः छोटे होते गये हैं। दूसरा और चौथा दृश्य बहुत छोटे हैं। तृतीय दृश्य को छोड़कर शेष सभी अभिनेय हैं। तृतीय दृश्य नाव सम्बन्धी है, जिसका

अभिनय रंगमंच में सम्भव नहीं है।(नाव में पराशर ऋषि बैठे हैं, मत्स्यगन्धा नाव चलाती है, सब ओर शान्ति है, केवल कभी छपछप की ध्वनि सुनाई दे जाती है।)[57] इसी तरह इस दृश्य में रतिवर्णन में अश्लीलता को बचाने के लिए गीतिनाट्यकार रंगमंच में अंधेरा कर देता है, केवल ध्वनियों के माध्यम से नाटकीयता उत्पन्न की जाती है। गीतिनाट्यकार ने स्थान एवं समय का उल्लेख किया है — जैसे — पहला दृश्य गंगा का किनारा, संध्या समय, दूसरा दृश्य प्रदोष समय तीसरा दृश्य सूर्यास्त समय, चौथा दृश्य नदी के किनारे पाँचवा दृश्य संध्या समय राजभवन, छठा दृश्य समय सायंकाल स्थान राजभवन है। कहीं-कहीं गीतिनाट्यकार ने रंग — संकेतों का उल्लेख किया है — जैसे — पंचम दृश्य "सत्यवती क्रीड़ा-उद्यान में स्फटिक शिला-तल पर बैठी वीणा बजा रही है। सामने फुहार जल से कण आकाश में पवन पर नाच कर आस पास में गिर रहे हैं। सूर्य की अस्तोन्मुख रश्मियाँ अपने सौन्दर्य से उद्यान की लताओं, तरूओं कलियों, कुसुमों और पानी के स्रोत को रंगीन कर रही है।[58] कहीं कहीं नाट्यकार ने वातावरण की रचना निर्देशक कीकल्पना पर छोड़ दिया है — जैसे — पहला दृश्य में नदी के किनारे उपवन में पुष्प चयन का है, जिसमें निर्देशक अपनी रूचि के अनुसार दृश्य सजा सकता है।

मत्स्यगन्धा को अभिनेय बनाने के लिए नाट्यकार ने आंगिक अभिनयों —धातीहुई (पृ057), फूल चुनती हुई ठहर कर(पृ0 58), फूल चुनतीहुई आगे बढ़ जाती है(पृ062), हँसकर(पृ0 90) सात्विक अभिनय — जागती सी चेतन होकर(पृ0 66), घबरा कर(पृ70) उत्सुकता से, लम्बा नाट्य (पृ088), प्रसन्न होकर(पृ083), मूर्छित हो जाना(पृ093), एवं आहार्य — जटाओं की गठरी लादे नाभि तक लम्बी दाढ़ी फहराते हुए एक ऋषि सामने खड़े हैं(पृ0 70) बिखरे हुए बाल हैं और अस्तव्यस्त वस्त्रांचल(पृ0 88), इत्यादि का उल्लेख किया है। निष्कर्षतः मत्स्यगन्धा ह का कथानक सरल, नाटकीय एवं आकर्षक है जिसका अभिनय देखने में काफि ऊबँगी नहीं, क्योंकि लगभग 30-40 मिनट में इसको अभिनीत किया जा सकता है। पात्रों की भीड़ नहीं, अभिनेय संवाद, सरल प्रवाही भाषा तथा स्थान-स्थान पर रंगमंचीय संकेत दिये गये हैं। नाव सम्बन्धी दृश्य विचारणीयहै।

<u>विश्वामित्र :—</u>

विश्वामित्र और मेनका का प्रणय प्रसंग इसका मुख्य विषय है। विश्वामित्र की तपस्या, मेनका की पुरूष को नचाने की प्रतिज्ञा, विश्वामित्र का कामातुर होना, दोनों का मिलना, शकुन्तला का जन्म, ऋषि को प्रेम के मिथ्यात्व का ज्ञान होना एवं तप हेतु शकुन्तला का परित्याग इसकी घटनाएँ हैं। सभी घटनाएँ दृश्य हैं। कथा का प्रारम्भ तो नाटकीयतापूर्ण ओजपूर्ण है किन्तु मध्य भाग में कथा-प्रवाह मन्द पड़ जाता है, नाटकीयता का ह्रास होने लगता है

है। दर्शक भी ऊबने लगेंगे जैसे विश्वामित्र का समाधि के बाद कामातुर होना, व्यर्थ का प्रलाप न तो स्वाभाविक लगता है नही इसमें रोचकता है। इस घटना को देखकर दर्शक के मन में वितृष्णा पैदा होगी। उनके लम्बे उन्मत्त प्रलाप को रंगमंच पर अधिक देर नहीं सुना जा सकता है। दर्शकों को यह यह प्रलाप रसव्याघात उत्पन्न करेगा। इसी तरह विश्वामित्र और मेनका का मिलन के बाद बारह वर्ष की घटनाओं को लुप्त कर आगे का घटनाक्रम वर्णित है। दर्शक इतने लम्बे अन्तराल की घटनाओं को जानना चाहते हैं किन्तु न तो दृश्य न ही सूच्यरूप में इसका वर्णन है। अतः समय एवं स्थान तथा क्रिया-व्यापार का समन्वय इसमें नहीं है। इस गीतिनाट्य का अन्त भीनाटकीय नहीं है। अबोध बालिका का परित्याग कर ऋषि का तप हेतु चला जाना प्रभावान्विति में बाधक होता है। इस प्रकार इस गीतिनाट्य का कथानक सरल एवं गतिशील होते हुए भी रंगमंच की दृष्टि से बहुत अधिक सफल नहीं है।

विश्वामित्र मेनका, उर्वशी, शकुन्तला तथा सूक्ष्म रूप में कामना इसके पात्र हैं, जिसमें विश्वामित्र और मेनका प्रमुख हैं। विश्वामित्र के अहं को प्रदर्शित करने के लिए प्रारम्भ में जिन गर्वोक्तियों का आश्रय लिया गया है, आगे वे व्यर्थ सिद्ध होती हैं और विश्वामित्र का कामातुर होना न तो मनोविज्ञान की दृष्टि से उचित है, न ही प्रभाव की दृष्टि से। इसी तरह शकुन्तला को देख एकदम बिना किसी संघर्ष के उन्हें प्रेम के मिथ्यात्व का बोध होता है, यह चारित्रिक दृष्टि अच्छा नहीं है। रंग मंच पर दर्शक उनके चारित्रिक विकास से सहमत नहीं हो पायेगा। इस गीतिनाट्य के संवाद कहीं-कहीं छोटे हैं, एकाध स्थलों के संवाद लम्बे हो गये है। एक ही पात्र का रंगमंच पर अधिक देर तक कुछ कहना रंगमंच की दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता है। जैसे दृश्य चार में विश्वामित्र का उन्मत्त वार्तालाप साढ़े पाँच पृष्ठों का है, जो अरुचिकर एवं अनाटकीय है। इसे प्रदर्शन के समय संक्षिप्त करना पड़ेगा। इसी तरह से अन्तिम दृश्य में विश्वामित्र का कथन चार पृष्ठों का है, जिसमें क्रिया व्यापार का अभाव है। अतः संवाद की दृष्टि से यह गीतिनाट्य रंगमंच के बहुत अधिक अनुकूल नहीं कहा जा सकता है।

इस गीतिनाट्य में सात दृश्य हैं जिनमें पहला दृश्य सबसे बड़ा और दूसरा सबसे छोटा है। सभी दृश्य रंगमंच पर आसानी से अभिनीत किए जा सकते हैं। एक ही पर्दे से काम हो सकता है। अधिक साज सज्जा की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। एक वर्जित दृश्य की योजना की गयी है — मेनका 'एकदम ऋषि का आलिंगन करके आँखें बन्द कर लेती है(पृ041) इसी तरह द्वितीय दृश्य(पृ022) में भौंरों को पुष्प पर टूटना अंकित है, जिसका रंगमंच पर प्रदर्शन नहीं हो सकता है। मंच सज्जा के लिए उदय शंकर भट्ट ने कहीं कहीं संकेत किया है जैसे — प्रथम दृश्य(पृ011) समय — सायंकाल'हिमालय की तलहटी में देवदारु वृक्ष के नीचे

हिमासन पर विश्वामित्र तप कर रहे हैं।" द्वितीय दृश्य(पृ022) आकाश में पूर्ण चन्द्रमा निकल आया है, सम्पूर्ण भूमि हरी-भरी हो गयी है। वृक्ष पौधे लताएँ लहलहा उठी हैं। 'स्थान स्थान पर नाट्यकार ने पात्रों के वेश-विन्यास के अतिरिक्त आकार 'नाभि के नीचे तक लटकती दाढ़ी, बिखरी हुई जटाएँ, अंग में एक मात्र कौपीन, प्रदीप्त और उग्र मुख मण्डल(पृ011) कायिक — विश्वामित्र की ओर देखकर (पृ012), चारों ओर देखकर, मेनका की ओर देखते हैं(पृ0 25) नाचतीहुई (पृ0 29) मेनका प्रकट हो जाती है, ऋषि आलिंगन को बढ़ते हैं (पृ0 31) आँख खोल कर (पृ0 36) इधर उधर घूमकर(पृ0 37), वाचिक — गाती हुई (पृ0 26, 33), एवं सात्विक — कुछ सोचकर(पृ012) क्रोध से (पृ0 27) बेचैन होकर (पृ0 34), पागल से होकर (पृ0 35) आवेग और उल्लास से (पृ0 42), कठोरता से(पृ0 46) इत्यादि अभिनयों का उल्लेख किया है। कहना नहीं होगा कि विश्वामित्र का कथानक सरल, रंगमंचीय, सीमित पात्र छोटे-बड़े संवाद तथा अभिनयों का उल्लेख कर नाट्यकार ने इसे अभिनेय बनाने का प्रयास किया है। थोड़े परिवर्तन से इसे रंगमंचीय बनाया जा सकता है।

<u>शिल्पी :</u>—

इसमें शिल्पी के अन्तःसंघर्ष को व्यक्त करने वाली घटनाओं का विन्यास किया गया है। शिल्पी द्वारा मूर्ति बनाने का प्रयास, दर्शकों के समक्ष शिल्पी की शिष्या का गांधी रवीन्द्र, पटेल, की मूर्तियों पर लम्बा प्रवचन, किसी देवालय में मूर्ति की प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजा का औचित्य, नवीन जागतिक संघर्षों, परिस्थितियों के अनुसार शिल्पी द्वारा मूर्तियों का निर्माण कृषकों द्वारा उसकी कला की प्रशंसा आदि घटनाएँ हैं।इसमें सूक्ष्म घटनाएँ भी वर्णित हैं, जैसे- द्वितीय दृश्य में मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा, कीर्तन भजन आदि(पृ0 31) इस गीतिनाट्य में कथातन्तु बहुत विरल है। वर्णन अधिक है। विचार प्रधान वर्णन होने के कारण कथाप्रवाह में जटिलता उत्पन्न हो गयी है। इसमें कौतूहलता, आकस्मिकता एवं नाटकीयता का नितान्त अभाव है, इसे रंगमंच पर नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है क्योंकि घटनाएँ सूक्ष्म हैं, प्रतीकात्मक हैं, जिसे देख दर्शक ऊब जायेगा। इसमें पात्र व्यक्ति नहीं है। शिल्पी, शिष्या, दार्शनिक, ग्रामीणजन और जननायक हैं। किसी का भी चरित्र ठीक प्रकार से अंकित नहीं किया गया है। इस गीतिनाट्य में संवाद लम्बे, नीरस, दार्शनिक सिद्धान्तों का बोध कराने वाले तथा अरंगमंचीय हैं।

शिल्पी में तीन दृश्य हैं। दृश्यों का मंचीकरण सरलता से हो सकता है। पंत ने रंग संकेतों का उल्लेख किया है। प्रथम दृश्य 'शिल्पी' का कला-कक्ष जिसमें विविध प्रकार की मूर्तियाँ रखी हैं। शिल्पी की शिष्या मूर्तियों को झाड़-पोंछ कर अल्मारियों में सजा रही है।

दृश्य शिल्पी पर्दे की आड़ में एक नवीन प्रतिमा के निर्माण में संलग्न है।[1] द्वितीय दृश्य — विशाल मनोरम देवालय का दृश्य सन्ध्या का समय मंदिर आरती के समारोह से जगमगा रहा है, बाहर का प्रांगण अतिथियों से खचाखच भरा हुआ है, मंगल वाद्यों के साथ कीर्तन चल रहा है।[2] इस प्रकार रंगमंच की दृष्टि से शिल्पी सफल गीतिनाट्य नहीं है। यद्यपि उसका मंचन किया जा सकता है, किन्तु उसमें अपेक्षित प्रभाव नहीं रहेगा क्योंकि तीव्र क्रिया-प्रतिक्रिया का अभाव है। यहाँ एक बात स्मरणीय है कि गीतिनाट्य के मंचन के दो माध्यम हैं। रंगमंच और रेडियो। दोनों माध्यमों की अपनी सामर्थ्य है। शिल्पी रंगमंच पर उतना सफल नहीं हो सकता है। पंत जी ने इसका प्रणयन रेडियो की दृष्टि से किया है। इसमें स्थान-स्थान पर ध्वनि योजना की व्यवस्था की गयी है। ध्वनि में वह सामर्थ्य होती है कि वह पात्रों के उच्चारण के उतार चढ़ाव से नाटकीयता एवं प्रभावान्विति उत्पन्न कर सकती है। शिल्पी का प्रसारण भी हो चुका है। पंत जी ने शिल्पी में ध्वनि के माध्यम से नाटकीयता उत्पन्न करने का प्रयास किया है —' ध्वनि प्रभाव द्वारा आशा का निराशा में परिणत होना(पृ0 15), अन्तः संघर्ष द्योतक ध्वनि प्रभाव(पृ0 17) नेपथ्य से वादित संगीत स्वर(पृ0 34) इत्यादि संकेतों से ध्वनि प्रभाव (साउण्ड-इफेक्ट) का प्रयोग किया है, बीच बीच में रंगमंचीय बनाने के लिए पर्दों का प्रयोग पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान का उल्लेख किया है।

<u>अप्सरा :—</u>

कलाकार की सौन्दर्य चेतना से सम्बन्धित इस गीतिनाट्य की कथावस्तु है। कलाकार स्वर्गिक सुषमा पर मुग्ध हो जाता है। उसे सांसारिक भेद भाव, ऊँच-नीच का ज्ञान होने पर, मानव की हित-चिन्ता सताती है। और वह नवीन आध्यात्मिक दर्शन की कल्पना करता है। वह अपनी कल्पना के अनेक चित्र अंकित करता है। इस प्रकार प्रतीकात्मक कथानक में कथावस्तु बहुत सूक्ष्म है। घटनाओं की प्रखरता का अभाव है, सूक्ष्म घटनाएँ हैं, वर्णनात्मकता का प्राबल्य है अतः इसके मंचन में दर्शकों को न तो कौतूहल मिलेगा न ही आकर्षकता। क्रिया व्यापार के अभाव के कारण रंगमंच में इसका दर्शन अनुकूल प्रभाव नहीं डाल सकेगा। इसके पात्र अपना निज का व्यक्तित्व नहीं रखते अतः उनका नाम न देकर अप्सरा, कलाकार नाम दिया गया है। संवादों में काव्यात्मकता का बाहुल्य है। जनसाधारण में लोकप्रिय होने वाले जिन संवादों की आवश्यकता होतीहै उनका अप्सरा में अभाव है।

1- शिल्पी, पृष्ठ संख्या 13

2- वही, पृष्ठ संख्या 27

इसमें चार दृश्य हैं। भावोद्वेलन, मानसिक-संघर्ष, उन्मेष, रूपान्तर इन दृश्यों के नाम दिये गये हैं। सभी दृश्य अवयव की दृष्टि से समान हैं। इन दृश्यों को रंग-मंच पर उपस्थित किया जा सकता है। रंग सज्जा का उल्लेख पंत ने सभी दृश्यों में किया है जैसे प्रथम दृश्य' मनः क्षितिज की ऊर्ध्व चेतना में हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान मौन बैठा है। सामने भावनाओं की स्वर्ण शुभ्र श्रेणियाँ, विचारों के रजत कुहासे को चीर कर निखर रही हैं। आकाश से प्रेरणाओं की लहरियों द्वारा मंद मधुर स्वप्न वादक संगीत गुंजरित हो रहा है।[1] द्वितीय दृश्य —'जीवन की हरी-भरी घाटी : पृष्ठभूमि में आरोहण करता हुआ मन का सोपान रजत धूमिल गिरि शृंगमा दिखायी दे रहा है। नीचे अतल अवचेतन अंधकार में काली घटाएँ अनेक कुत्सित आकृतियाँ धर कर उमड़ रही हैं।[2] तृतीय दृश्य – कल्पनाओं का स्वर्णिम छाया-सेतु इन्द्रधनुष की तरह धरती आकाश के बीच टँगा है, जिसके ऊपर खड़ा कलाकार ऊपर को देख रहा है।[3] चतुर्थ दृश्य ' प्रभात के प्रकाश से स्वर्णिम जन धरणी का प्रांगण : लता प्रतानों की एक छोटी सी पर्णकुटी के द्वार पर खड़ा कलाकार नव प्रभात की शोभा को देख रहा है।[4] इस प्रकार इसके रंग संकेत सरल होते हुए भी रूपक एवं प्रतीकों का सहारा लेने के कारण क्लिष्ट प्रतीत होते हैं, जिनका मंचन कुशल एवं कल्पना जीवी निर्देशक ही कर सकता है। इस गीतिनाट्य की रचना रेडियो की दृष्टि से की गयी है, जिसके कारण वातावरण को विश्वसनीय एवं घटनाओं में नाटकीयता लाने के लिए ध्वनि का व्यापक प्रयोग किया गया है जैसे — आवाहन सूचक वाद्य संगीत जो मानसिक संघर्ष द्योतक संगीत में परिणत हो जाता है(पृ0 97) वैराग्य सूचक वाद्य-संगीत(पृ0 99), युग परिवर्तन सूचक वाद्य संगीत (पृ0 100) इन वाद्य संगीत ध्वनियों का चयन एवं पृष्ठभूमि के रूप में उनका प्रयोग निर्देशक को करना पड़ेगा। यद्यपि रेडियो में प्रसारित होने के लिए इसकी रचना की गयी है, तथापि कथावस्तु की जटिलता एवं सूक्ष्मता के कारण उस क्षेत्र में भी वह उतना लोकप्रिय नहीं हो सकेगा, जितना होना चाहिए। अत्यधिक काव्यात्मकता भी प्रभावान्विति में बाधक होगा। रंगमंच की दृष्टि से यह नितान्त उबाऊ रचना है।

<u>राधा</u> :—

इसमें कृष्ण के प्रति राधा का आकर्षण, उनकी विकलता, समर्पण और राधा कृष्ण का मिलन चित्रित किया गया है। सभी घटनाएँ दृश्य रूप में हैं, एकाध घटनाएँ दृश्य

---

1 से 4 तक :— शिल्पी, क्रमशः पृ0 93, 98, 102, 105

रूप में कही गयी है – जैसे राधा एवं कृष्ण का प्रथम दर्शन।[1] विशाखा को कृष्ण-प्रेम से विमुख करने के लिए माँ की प्रताड़ना, कोड़ों की मार, ग्वालिनों का अभियोग[2] राधा के श्वसुर द्वारा उसका अपमान, राधा के पति का उससे अनुनय करना,[3] कृष्ण को अक्रूर का लेने आना[4] इत्यादि। मूल घटना-क्रम बहुत स्थूल नहीं है। राधा के आन्तरिक विचारों का आधिक्य है। अतः कथानक सूक्ष्म होने के कारण इसे रंगमंच में बहुत अधिक सफलता नहीं मिल सकेगी। घट-नाओं में नाटकीयता अवश्य है किन्तु वर्णनात्मकता के कारण कथा-प्रवाह मन्द एवं शिथिल हो गया है। कृष्ण का उपदेश और अन्त में राधा के निर्वाण के बाद कृष्ण के लम्बे कथन से नाट-कीयता क्षीण हो जाती है, और रंगमंचीय-प्रभाव दर्शकों को सम्मोहित करने में असमर्थ सिद्ध होगा।

राधा में राधा, विशाखा, कृष्ण, चन्द्रवली और नारद पात्र है। इसमें राधा का चरित्र ही प्रमुख रूपसे अंकित है। रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं लगती है। सभी पात्र रंगमंच में क्रियाशील है। राधा के संवाद लम्बे अधिक हैं इनकी भाषा भी सामासिक और तत्सम प्रधान है। नारद के द्वारा अनेक श्लोक भी कहलाये गयेहैं। लम्बे, संवाद उतनी नाटकीयता नहीं उत्पन्न करते हैं। रंगमंच में छोटे, व्यंग्यात्मक मार्मिक संवाद अधिक सफल होते हैं और राधा में इसका अभाव है। एक से दो पृष्ठ तक के संवाद अनेक स्थानों में है।

राधा में चार दृश्य हैं। चारों दृश्य उपवन या कुंज के हैं अतः इनको एक ही काले पर्दे से प्रदर्शित किया जा सकता है। सभी दृश्य रंगमंचीय है। एकाध स्थलों में कठिनदृश्यों की अवतारणा की गयी है – जैसे द्वितीय दृश्य में 'गायें भागी चली आ रही हैऔर आकर कृष्ण के पास खड़ी हो गयी हैं चुप। बछड़े, जोकुछ गायों के पीछे दौड़ रहे, रंभा भी रहे थे। आकर एकदम चुप हो गये हैं।[5] सभी दृश्यों का अवयव लगभग समान है। रंगमंच की सज्जा के लिए नाट्यकार ने विस्तृत रंग संकेत लिखे हैं, जिनमें वातावरण को सजीव बनाने के लिए प्राकृतिक दृश्यों का सहारा लिया गया है तथा प्रकाश व्यवस्था का भी उल्लेख है। समयानुसार ही रंग-संकेत लिखे गये हैं। प्रथम दृश्य का समय प्रातः आठ बजे है तदनुरूप रंग संकेत निम्न उल्लिखित है –' वर्षा के दिन हैं, सूर्य भी निकला है, और पश्चिम की ओर से सघन घटा तूफान की तरह उठ रही है। बीच-बीच में इधर-उधर छाये बादलों में स्वप्न की सत्यता की तरह सूर्य निकल आता है और यमुना के नीले जल पर तैर कर सूरज मुखी की तरह पीला कर देता है। निकुंज में सब ओर पुष्पों, वृक्षों , लताओं पौधों ने स्नान करकेअपनी

1से 5 तक विश्वामित्र और दो भावनाट्य :- क्रमशः पृ0 संख्यायें- 102, 106, 126-27, 134, 110

स्वाभाविक कान्ति को धारण कर लिया है।[1] द्वितीय दृश्य में रात्रि का समय है। भट्ट जी ने रंग संकेत इस प्रकार लिखा है —' उसी निकुंज में यमुना का तट। वर्षा के बाद सब कुछ धुल-सा गया है। सब ओर हरियाली दिखायी दे रही है। मोगरा, बेला, मालती, गुलाब के फूल खिले हुए हैं। यमुना के किनारे वट का एक वृक्ष है, जिसकी सघन छाया में पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रकाश छन-छन कर गिर रहा है।[2] उदय शंकर भट्ट ने कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों का उल्लेख किया है —जैसे पास जाकर(पृ० 104), खुली हँसी हँसकर(पृ० 107), अट्टहास कर (पृ० 112), हाथ जोड़े खड़ी रहती है(पृ०117)पैरों पर गिर पड़ती है(पृ० 133), आश्चर्य से(पृ० 108), भूली हुई सी (पृ० 119),तन्मयता से (पृ०125), घबरा कर(पृ० 132), उद्वेग की अधिकता से मूर्छित हो जाती है(पृ०134) चकित होकर(पृ० 139), दुख से (पृ० 144) 'कृष्ण का रूप उस समय के आकाश के समान स्वच्छ और मधुर सिर पर मुकुट, पीठ तक लहराते हुए बाल जो काली रेशमी डोरी से बाँध किये गयेहैं। प्रशस्त ललाट, चमकता मुख, उभरी नुकीली नाक रेखा फूट रही है। कमर में फेंटा कसा हुआ पीला तथा रेशमी वस्त्र।[3] नाट्यकार ने नेपथ्य का भी उपयोग किया है,जैसे- 'कोई नेपथ्य से कहता हुआ सुनाई देता है —'भूल री सब भूल राधा, क्यों चली उस ओर उस पथ।' के समय निर्देशक को यह वाक्य कहलाना चाहिये।[4] इसी तरह से प्रकाश-व्यवस्था का उल्लेख भट्ट ने किया है —कृष्ण और राधा का रूप अन्धकार में एक हो जाता है और राधा कृष्ण की प्रतिच्छवि उसी अँधेरे में दिखायी पड़ती है।[5] ऐसे अवसर पर अन्धकार कर केवल एक प्रकाशवृत्त से इस प्रतिछाया का अंकन किया जा सकता है। सार यह है कि इसमें भावात्मक घटनाओं का प्राबल्य होनेके कारण नाटकीय घात-प्रतिघात से युक्त रंगमंचीय घटनाओं का अभाव है, फिर भी कथा, सीमित पात्र, संवाद एवं अभिनय कीदृष्टि से यह गीतिनाट्य अभिनेय हो सकता है।

उन्मुक्त :—

युद्ध और शान्ति कीसमस्या को लेकर यह गीतिनाट्य लिखा गया है। कुसुम द्वीप पर शत्रुओं का आक्रमण, पुष्पदन्त और गुणधर का युद्ध-विषयक वितर्क, युद्ध,कुन्तला का प्रयास, गुणधर का विद्रोह करना, द्वीप की पराजय, पुष्पदन्त का अहिंसक बनना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। कुछ घटनाओं को नाट्यकार ने दृश्य रूप में उल्लिखित किया है जैसे लौह द्वीप के सेनानियों द्वारा ताम्रद्वीप को ध्वस्त करना, कुसुमद्वीप के साथ लौहद्वीप का

1- विश्वामित्र और दो भावनाट्य,पृ० 97

2, 3, 4, 5।— वही, पृ० क्रमशः 109, 109, 110, 139, 150

युद्ध, हताहत वीरों की अन्त्येष्टि, हेम द्वीप की रानी मालिनी का दुर्भाग्यपूर्ण अन्त, गुणधर द्वारा शतघ्नी का चलाना, गुणधर का घायल सैनिक की शुश्रूषा करना, कुसुम द्वीप का आत्म समर्पण, पुष्पदन्त द्वारा गुणधर को मरणदण्ड की आज्ञा सुनाना इत्यादि। इसकी कथा युद्ध-प्रधान है। सभी घटनाएँ युद्ध-बहुल होने के कारण नीरस, रूखी और ऊबा देने वाली है। रंगमंच में इनका अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ेगा। कुछ ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके मंचन से पाठकों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा — जैसे — पुष्पदन्त का बिना किसी सम्बन्ध के अभिषेक बनना, जबकि युद्ध में वह पराजित हो गया है। घटनाक्रम में तारतम्य न होने के कारण इसके मंचन से वह प्रभावान्विति नहीं उत्पन्न हो सकेगी, जो गीतिनाट्य के लिए आवश्यक है। नाटक की कथा बहुत लम्बी है, जिसके मंचन से दर्शक ऊब जायेगा क्योंकि इसके मंचन में कई घण्टे लगेंगे। घटनाओं के वर्णन में आकस्मिकता न होने के कारण यह रंगमंच की दृष्टि से ठीक नहीं रहेगा।

उन्मुक्त में चार स्त्री एवं सात पुरुष-पात्र हैं। पुष्पदन्त गुणधर एवं मृदुला का चरित्र विशेषरूप से अंकित किया गया है। अवतरण, अलिन्द, घोषणा, रणक्षेत्र, मृदुलालय, रणस्थल, शुश्रूषालय, शिविर, ध्वंस, एकान्त, संचालन, शिविर, शयन-कक्ष, बन्दी, विज्ञप्ति पराभव, उन्मुक्त, कुल 17 दृश्य हैं। इस प्रकार इसमें दो प्रकार के दृश्य हैं — भवन एवं युद्ध-क्षेत्र। जिनके मंचन के लिए दो पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी। सभी दृश्य अभिनेय हैं। दृश्य रूप में प्रदर्शित युद्ध की घटनाएँ कुशल और धैर्य अभिनेता से ही अभिव्यक्त हो सकेंगी। रंग-संकेत का नितान्त अभाव है। लेखक ने एक स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी भी दृश्य के सज्जा का उल्लेख नहीं किया है। दृश्य नौ-ध्वंस में रंग संकेत इस प्रकार है —' मृदुलालय का अग्र भाग आग्नेय वृष्टि से बुरी तरह आक्रान्त हो गया है। दीवारें पृथ्वी पर गिरकर सबकी सब ईंटा और चूने के ढूहों में प्रधान पथ तक फैली हैं, विपर्यस्त, विध्वस्त।[1] नाट्यकार ने कायिक वाचिक, सात्विक एवं आहार्य का कम ही उल्लेख किया है। 'हाथ में मशाल की तलवार लिए हुए सैनिकों की वेश-भूषा में बालक अन्धार का प्रवेश(पृ055), चौंकता हुआ निकल जाता है(पृ058) अन्धार का प्रस्थान(पृ060), कपड़े की एक गाँठ देती है(पृ064), आँखों से आँसू झरते हैं (पृ0113), छिन्न वस्त्र पहने हुए एक वृद्धा लकड़ी टेकती हुई आती है(पृ060), इसने लम्बे दीर्घकाय नाटक में अभिनयों के संकेत का अभाव रंगमंच की दृष्टि से बहुत खलता है। कहीं-कहीं समूचे दृश्य में एक ही पात्र का कथन है, जिसमें घटनाओं का वर्णन है, जिसका अभिनय कठिन ही है। सार यह है कि उन्मुक्त का कथानक सरल होते हुए भी इसमें नाटकीयता का

1- उन्मुक्त, पृ0 103

अभाव है, वर्णनात्मकता एवं लम्बे संवादों के कारण इसका मंचन सफल नहीं होगा क्योंकि लम्बा होने के साथ ही साथ दर्शकों को आकृष्ट करने वाली एक भी घटना, क्रिया व्यापार नहीं है। ऐसे अभिनेता जिन्हें रंगमंच का पर्याप्त ज्ञान हो, अभिनय कुशल हो, स्वर के उतार चढ़ाव में नाटकीयता ला सकें, इस गीतिनाट्य को रंगमंच पर उपस्थित करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं फिर भी दर्शक इसे पसन्द करेंगे, इसमें सन्देह रहेगा।

द्रौपदी :—

द्रौपदी को केन्द्र बिन्दु बनाकर इस गीतिनाट्य का ताना, बाना बुना गया है। उसका स्वयंम्बर, मायामय महल में सुयोधन का अपमान, द्यूत में युधिष्ठिर की पराजय, द्रौपदी का अपमान, महाभारत युद्ध के बाद पाण्डवों का हिम-समाधि लेना, इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। इस गीतिनाट्य का कथा-पट बहुत लम्बा है किन्तु नाट्यकार ने बड़े कौशल से इन घटनाओं का चयन कर शेष घटनाओं का उल्लेख मात्र भी किया है। सारी घटनाएँ द्रौपदी के चतुर्दिक घूमती हैं। अनेक घटनाएँ सूच्य रूप में उल्लिखित हैं। जैसे द्रुपद का अपमान, महाभारत युद्ध के समय अर्जुन का मोह, युद्ध इत्यादि। कथा सरल नाटकीय एवं रंगमंचीय है। इस गीतिनाट्य में दो स्त्री नौ पुरुष एवं दास-दासियाँ आदि पात्र-पात्रियाँ हैं। रंगमंच में सभी पात्र गतिशील रहते हैं। द्रौपदी की आन्तरिक व्यथा का अच्छा उद्घाटन हुआ है। नाट्यकार ने उसकी प्रतिहिंसा चित्रित कर उसके कृत्यों का औचित्य सिद्ध किया है, इस गीतिनाट्य के संवाद छोटे, सरल पात्रानुकूल है। रंगमंच में सफलता दिलाने का श्रेय संवादों को ही मिलना चाहिए।

इस गीतिनाट्य में दस दृश्य हैं। प्रथम पंचम एवं नवम दृश्य में कथावस्तु का अभाव है। केवल समवेत गान से पृष्ठभूमि उपस्थित की गयी है। प्रथम, पंचम सप्तम एवं नवम् दृश्य बहुत छोटे हैं। दृश्यावयव का भी ध्यान नहीं रखा गया है। सारा कथानक राजभवन से संबंधित है। अतः थोड़े परिवर्तन से एक ही पर्दे में सारी घटनाएँ अभिनीत हो सकती हैं। रंग-संकेतों के अभाव मे निर्देशक को अपनी कल्पना से ही वातावरण को उपस्थित करना पड़ेगा। पात्रों के लिए अभिनय संबंधी क्रियाओं का उल्लेख नहीं है, यहाँ तक कि पात्र प्रवेश-प्रस्थान भी नहीं लिखा गया है अतः निर्देशक को पूर्वाभ्यास कराते समय पात्रों की क्रिया का अभ्यास कराना पड़ेगा। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्रौपदी का कथन रंगमंचीय है, जिसको उपस्थित करने का श्रेय निर्देशक को होगा। रेडियो में प्रसारित करने के लिए नाट्यकार यथावसर ध्वनि योजना का उल्लेख करता है। किन्तु श्री भगवती चरण वर्मा ने यह भी नहीं किया है।

कर्ण :—

कर्ण की वैयक्तिक चरित्रगत विशेषताओं को अंकित करने के लिए इस गीतिनाट्य का प्रणयन हुआ है। कर्ण का कौरवसेना का सेनापति बनना, शल्य का सारथी बनना अर्जुन से कर्ण का युद्ध, कर्ण की पराजय एवं धर्म द्वारा उसके दान की परीक्षा इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। बीच-बीच में द्रौपदीस्वयंवर, कुन्ती का कर्ण से वरयाचना, इन्द्र द्वारा उससे कवच-कुण्डल की याचना सम्बन्धित घटनाएँ विन्यस्त हैं। नाट्यकार ने स्मृति के रूप में पुनर्दृश्यावलोकन-पद्धति से उक्त घटनाओं का वर्णन कर कथा-प्रवाह को सरल, नाटकीय एवं रहस्यात्मक बना दिया है, जिससे रंगमंच में उसका प्रभाव बहुत अच्छा पड़ेगा। कर्णजन्म की घटना सूच्यरूप में वर्णित है। इसमें सुयोधन, कर्ण, शल्य, इन्द्र, कृष्ण, अर्जुन, धर्म, वाचक पुरुष और द्रौपदी, कुन्ती स्त्रीपात्र हैं। कर्ण प्रमुख पात्र है, जिसके लिए अनेक घटनाओं का सर्जन किया गया है। उसकी प्रतिष्ठा के लिए नाट्यकार ने जिन तथ्यों का सहारा लिया है वे नाटकीय एवं रंगमंच में सफल होंगे। इस गीतिनाट्य के सभी संवाद सरल, छोटे, नाटकीय हैं, अतः अभिनय में सहायक होंगे। लम्बे संवादों का इसमें अभाव है।

इस गीतिनाट्य में नौ दृश्य हैं। यद्यपि नाट्यकार ने इनको अलग, अलग नहीं लिखा किन्तु बीच बीच में दृश्य परिवर्तन का उल्लेख है। अन्तिम दृश्य लगभग 10 पृष्ठों का है, शेष तीन पृष्ठों के हैं। प्रथम दृश्य सबसे छोटा, एक ही पृष्ठ का है। गीतिनाट्यकार ने दृश्यावलोकन का ध्यान नहीं रखा है। प्रारम्भ में दृश्य बड़े और अन्त में छोटे होने चाहिए किन्तु यहाँ प्रारम्भ में छोटा और अन्त में बड़ा हो गया है। सम्पूर्ण दृश्य राजभवन और युद्ध स्थल से संबंधित हैं जिन्हें दो पर्दों से अभिनीत किया जा सकता है। इस गीतिनाट्य में अनेक ऐसे दृश्य हैं जिनको नाट्यशास्त्र में वर्जित दृश्य कहा गया है। जैसे तृतीय, पंचम, सप्तम एवं नवम् दृश्य में रंगमंच में रथारूढ कर्ण और शल्य का वर्णन है, जिसका प्रदर्शन रंगमंच में सम्भव नहीं है। ऐसा लगता है कि ऐसे दृश्यों को लिखते समय नाट्यकार ने ऐसी ध्वनियों का प्रयोग किया है, जिसे दूर पीछे बैठा दर्शक सुन नहीं सकता है — जैसे बाण चलने का स्वर(पृ॰ 20) दृश्यों के लिए रंग संकेत नहीं है। ध्वनियों के प्रयोग का उल्लेख अवश्य है अतः निर्देशक को तदनुसार वाद्य यंत्रों का प्रयोग करना चाहिए — जैसे गम्भीर और करुण संगीत,[1] दूर पर प्रातः कालीन धीमा कोलाहल और शंखों का उठता हुआ नाद, शंख की गम्भीर आवाज[2] रथ-स्वर तथा-ध्वजाओं और तुरही के स्वर[3] शंख और घण्टे का स्वर[4] इत्यादि। गीतिनाट्यकार ने पात्रों के लिए आंगिक, वाचिक, सात्विक इत्यादि अभिनयों का उल्लेख नहीं किया है।शायद

1-से 4 :— त्रिपथगा, पृ॰ 11, 12, 16, 22

वे इसे रेडियो पर प्रसारित करने हेतु प्रस्तुत करना चाहते हैं। निर्देशक को स्वयं अपनी कल्पनानुसार अभिनयों का पूर्वाभ्यास कराना पड़ेगा। सारतः यह कहा जा सकता है कि वर्ग जितना रंगमंच में सफल हो सकता है उतना ही रेडियो पर।

स्नेह या स्वर्ग :—

इन्द्र पुत्र जयन्त एवं अजेय, स्नेहलता से प्रेम कर विवाह करना चाहते हैं, दोनों अपने अपने सहायक सुचित्र एवं प्रभाकर को भेजते हैं किन्तु स्नेहलता दोनों के प्रस्तावों को अस्वीकार कर स्वेच्छया निर्णय देने की बात कहती है। अजेय स्नेहलता की इच्छा से उसे अपने घर ले जाता है, जिससे कुपित होकर जयन्त युद्ध का आह्वान करता है अन्त में इन्द्र के हस्तक्षेप स इस समस्या का निर्णय स्नेहलता के वरण से होता है। वह अजेय का वरण करती है। इस प्रकार इस गीतिनाट्य का कथानक सरल नाटकीय एवं क्रिया व्यापारों में आकस्मिकता से पूर्ण है। दर्शकों के मन में आगे की घटनाओं के जानने की उत्सुकता बनी रहतीहै।

इस गीतिनाट्य में पाँच पुरूष एव चार स्त्रियाँ है जिसमें अजेय और स्नेहलता का चरित्र महत्वपूर्ण है। अजेय, वीर, भावुक, प्रेमी है और स्नेहलता स्वच्छन्द युवती है। ह उसके संघर्ष, क्रिया-प्रतिक्रिया, का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण कर नाट्यकार ने रंगमंचीय बनाने का पूर्ण प्रयास किया है।

इस गीतिनाट्य के संवाद पात्रानुकूल, सरल एवं स्वाभाविक हैं। एकाध स्थानों का छोड़कर सभी संवाद छोटे हैं। कहीं-कहीं लम्बे संवाद हैं किन्तु ये रंगमंच के लिए बाधक नहीं है जैसे (पृ07 में) अजेय का कथन(पृ0 50) में अजय का स्वगत कथन इत्यादि।आकाश भाषित का भी उपयोग हुआ है। जैसे दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में अजय का कथन आकाश भाषित है —

"हे श्री सुरेन्द्र सुत हाय, यह क्या हुआ/ क्या हुआ तुम्हारे कृपापात्र पर सहसा-(पृ050)" सेठ गोविन्द दास को नाट्य कला का ज्ञान कुछ अधिक ही है। रंगमंच केअनुसार उन्होंने सम्पूर्ण गीतिनाट्य को अंकों एवं दृश्यों में विभक्त किया है। इस गीतिनाट्य में 3 अंक हैं, जिसमें क्रमशः चार-चार दृश्य हैं तथा अन्त में उपसंहार के रूप में एक दृश्य की अवतारणा की गयी है। प्रथम अंक का प्रथम दृश्य स्वर्ग मेंजयन्त के भवन का अलिन्द, द्वितीय दृश्य पृथ्वी पर अजेय के गृह का एक कक्ष, तृतीय दृश्य अजय के उद्यान, चतुर्थ दृश्य अजेय का गृह, द्वितीय अंक का प्रथम दृश्य अजय काउद्यान , द्वितीय दृश्य अजय का पूजा-गृह , तृतीय दृश्य अजेय का घर चतुर्थ दृश्य स्वर्ग मेंमहेन्द्र का प्रासाद-कक्ष, तृतीय अंक का प्रथम दृश्य पृथ्वी पर एक मार्ग, द्वितीय दृश्य आकाश में एक विमान, तृतीय दृश्य समुद्र तट चतुर्थदृश्य

अक्षय का भवन, उपसंहार समुद्र तट से संबंधित है। इस प्रकार गीतिनाट्यकार ने पृथ्वी और स्वर्ग के दृश्यों का उल्लेख किया है। स्वर्ग के दृश्य राजभवन या आकाश से और पृथ्वी के दृश्य उद्यान, भवन, या समुद्र तट से संबंधित हैं। इन घटनाओं को अभिनीत करने के लिए 3 पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी, प्रथम में राजभवन, द्वितीय पृथ्वी के भवन एवं उद्यान एवं तृतीय पर्दा समुद्र के दृश्यों को दिखलाने वाला होना चाहिए। इन दृश्यों का मंचन सरलता पूर्वक हो सकता है। एकाध दृश्य अनभिनेय है जैसे प्रथम अंक का तृतीय दृश्य विमान अवतरण से संबंधित है। जिसका मंचन नहीं हो सकता है। इन दृश्यों में समरूपता का ध्यान नहीं रखा गया है। कुछ दृश्य बहुत लम्बे हैं जैसे प्रथम अंक का तृतीय दृश्य सत्रह पृष्ठ का, द्वितीय अंक का प्रथम दृश्य 13 पृष्ठों का है। इसी तरह कुछ बहुत छोटे हैं जैसे प्रथम अंक का प्रथम दृश्य चार पृष्ठों, तृतीय अंक का तृतीय दृश्य दो पृष्ठों का है। उपसंहार की रचना भी अनावश्यक प्रतीत होती है क्योंकि उसे पूर्ववर्ती दृश्य में रखना कसावट एवं प्रभाव की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होता। नाट्यकार ने स्थान के अतिरिक्त समय का भी उल्लेख किया है – प्रातःकाल, मध्यान्ह एवं सन्ध्या समय के लिए प्रकाश व्यवस्था निर्देशक की कल्पना पर छोड़ दिया है। नेपथ्य का भी उपयोग किया गया है। प्रत्येक दृश्य के बाद नाट्यकार ने लघु यवनिका पात का उल्लेख करना नहीं भूला है। सेठ गोविन्ददास ने इसे रंगमंचीय बनाने के लिए कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनयों का उल्लेख किया है। जैसे – ऊपर अंगुली उठाकर (पृ० 11), आकाश की ओर देखकर (पृ० 13) दोनों पीछे की ओर मुड़कर अपने सामने देखने लगती है (पृ० 19), स्नेहलता कोई उत्तर न देकर सिर झुका लेती है (पृ० 21), सुचिता उठकर चलती है। स्नेहलता और चपला भी उठकर उसे पहुँचाने जाती है और कुछ देर में लौट आती है (पृ० 25) चौकी पर बैठकर (पृ० 30), स्नेहलता की ओर संकेत कर (पृ० 44), वाचिक, चपला हँसती है, स्नेहलता भी (पृ० 14), रुककर कुछ रूखे स्वर से (पृ० 23), मुस्कराकर (पृ० 33), गम्भीरता से (पृ० 39) और अधिक क्रोध से (पृ० 45), फिर अट्टहास करके (पृ० 57), ऊँचे स्वर में (पृ० 61), वाचिक एवं अत्यन्त आकुल होकर (पृ० 11), यद्यपि धीरे से (पृ० 11), आश्चर्य से (पृ० 14), उत्साह से (पृ० 20), अप्रसन्नता से (पृ० 25), उत्तेजित होकर (पृ० 33), अमेय की आँखें भर आती है (पृ० 46), सात्विक तथा वेशभूषा का उल्लेख किया है – काली कबरी पर है किरणों किरीट की/ लोल गोल गण्डों पर कुण्डलों की कान्ति है। उन्नत उरोजों पर जगमग हार हैं/और क्षीण कटि पर कैसी चारु किंकिणी।[1] सहसा प्रकट होकर होकर, जो दिव्याभूषणों से सज्जित कवच और

1- स्नेह और स्वर्ग, पृ० 17

हीरलाल धारण किये हैं(पृ052), निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सेठ गोविन्द दास को रंगमंच की सामर्थ्य एवं सीमा का पर्याप्त अनुभव था। उन्होंने इस प्रकार की कथावस्तु का चयन किया है, जिसकी घटनाओं में क्रियाशीलता हो, वर्णनात्मकता का अभाव हो और नाटकीय क्षणों का भरपूर उपयोग है। रंगमंच में पात्र निष्क्रिय नहीं रहते हैं। संवाद सरस, प्रभावशाली एवं भाषा सरल है साथ ही गीतिनाट्यकार ने विस्तृत अभिनयों का उल्लेख किया है।समय एवं स्थान के अनुसार रंगसज्जा निर्देशक को करनी पड़ेगी।

<u>मेघदूत :—</u>

महाकवि कालिदास के मेघदूत को आधार बनाकर पंत ने इसगीतिनाट्य की रचना की है। प्रिया के प्रति आसक्ति, कुबेर का शाप, यक्ष का विरह और अन्त में मिलन इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। घटना-क्रम सीधा-सीधा एवं सरल है। यक्ष उसकी प्रिया एवं कुबेर इसके पात्र हैं। संवाद सरल छोटे एवं अभिनेय हैं। इसमें एक बड़ा दृश्य तथा एक छोटा अन्तर्दृश्य है। सूत्रधार बीच बीच की कथा जोड़ता चलता है। इससे रंगमंच में रस व्याघात अवश्य होगा। इसी तरह से काव्यगान या वाद्यस्वर से मेघदूत के संस्कृत श्लोकों को कहलाया गया है, इसके कारण दर्शक रसानुभूति नहीं कर सकेगा। रंगसज्जा संकेत एवं पात्रों के लिए किसी प्रकार का अभिनय उल्लेख नहीं किया है। पंत ने इसे रेडियो के प्रसारण हेतु लिखा था और इसका प्रसारण हुआ भी है। अतः नाट्यकार ने शब्द-चित्र उपस्थित करने में सम शब्दों का चयन, ध्वनि वाद्ययंत्रों का उपयोग किया है। स्वरों केआरोह-अवरोह से नाटकीयता उत्पन्न की गयी है।

<u>रजतशिखर :—</u>

एक युवक का प्रकृति-प्रेम, युवती के प्रेम को प्राप्त करने में युवक का असफल होना, सुब्रत द्वारा उसके मन का विश्लेषण करना तथा उसके मन का उदात्तीकरण कर पार्थिव कुछ द्वन्द्वों से पीड़ित मानव समाज को पुनः स्थापित करने के लिए युवकका आत्म-समर्पण करना, इस पुण्य कार्य के लिए युवती का सहयोग देना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। पंत जी ने इसे प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित किया है। इस गीतिनाट्य मेंघटनाओं का अभाव है। सूक्ष्म घटनाएँ रंगमंच में प्रदर्शित नहीं की जा सकती है। घटनाओं को सूक्ष्म रूप में वर्णित कर वर्णनात्मकता को बढ़ाया किया है। नाटकीयता एवं क्रियाव्यापार का अभाव होने के कारण इसे अभिनीत करना कठिन है। इसमें पात्रों का नाम नहीं है वे युवक-युवती, मनोविश्लेषक राजनीतिज्ञ है। किसी पात्र का चरित्र ठीक से अंकित नहीं हुआ है। संवाद की दृष्टि से यह गीतिनाट्य मंचोपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। क्लिष्ट भाषा, लम्बे कथन, इसे अरंगमंचीय बनाते हैं।

दर्शक रूखे संवादों को सुनकर रीर्धा में ठहरेगा ही नहीं और इसके मंचन का प्रयास व्यर्थ कहा जायेगा। नाट्यकार ने इसको अंकों, दृश्यों में विभक्त नहीं किया है, न ही पात्रों के लिए क्रियाओं अभिनय संकेतों रंग सज्जा संबंधी संकेतों का उल्लेख किया है। इस प्रकार इसका मंचन ऊबाऊ, असफल रहेगा। इसे रेडियो की दृष्टि से लिखा गया है इसीलिए इसमें कोई दृश्य नहीं है, केवल वाद्य -यन्त्रों की सहायता से अन्तराल उत्पन्न किया गया है।स्त्री-पुरूष स्वरों के माध्यम से घटनाओं का वर्णन तथा टोन के उतार-चढ़ाव से नाटकीयता उत्पन्न की गयी है। जटिल कथानक होने के कारण इसे उस क्षेत्र में भी लोकप्रियता प्राप्त हुई होगी, इसमें सन्देह है।

कवि :—

कल्पना-विहारी कवि अपनी कविता में धरती के सुख-दुःखों का वर्णन करे या स्वेच्छया अपनी अनुभूतियों का, इस विषय वस्तु को केन्द्र बिन्दु बना कर कवि की घटनाओं का ताना-बाना बुना गया है। कल्पना रूपी अप्सरा पर उसका मोहित होना,जीवन द्वारा कवि को धरती के गीत गाने का उपदेश देना, कवि का अन्तर्द्वन्द्व एवं कल्पना के सहयोग से उसका जन जीवन से अपना संबंध स्थापित करना इस गीतिनाट्य की प्रमुख विशेषता एवं घटनाएँ हैं। इसमें क्रिया व्यापार की बहुलता नाटकीयता, कथावस्तु की सरलता है। प्रारम्भ से कौतूहल, रहस्यात्मकता के दर्शन होते हैं, इसका रंगमंच में प्रदर्शित करना सफल कहाजायेगा।

कवि, कल्पना, जीवन प्रमुख पात्र हैं। कुछ पुरूष,स्त्री एवं बालक भी हैं। रंगमंच में इनकी भीड़ नहीं रहती है। कोई पात्र रंगमंच में अधिक देर तक निष्क्रिय नहीं रहता है। इसके संवाद, सरल, संक्षिप्त एवं कथावस्तु को विकसित करने के साथ पात्रों की आन्तरिक दशा की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। तृतीय दृश्य में कवि का कथन लम्बा अवश्य है किन्तु अन्तर्द्वन्द्व को प्रदर्शित करने के लिए उसकी आवश्यकता थी, अतः उसका स्वगत आलाप व्यर्थ नहीं है, साथ उससे रस व्याघात नहीं हुआ, अपितु चमत्कार अवश्य उत्पन्न होगा। तृतीय दृश्य में पुरूष स्त्री, किसान, मजदूर, विद्वानों ने मुख्य रूप में संवादों के माध्यम से जिस वातावरण को उत्पन्न किया गया है वह नाटकीय हो उठा है।

इसमें तीन दृश्य हैं। क्रमशः प्रथम दो दृश्य छोटे और अन्तिम दृश्य सबसे लम्बा है। तीनों दृश्यों का रंगमंच प्राकृतिक परिवेश से युक्त उल्लिखित हुआ है। नाट्यकार ने स्थान के साथ समय का भी उल्लेख किया है। प्रथम दृश्य सन्ध्या एवं अन्तिम दोनों प्रभातकालिक हैं। एक बड़े पर्दे में सारा नाट्य अभिनीत हो सकता है। एक छोटा पर्दा तथा नेपथ्य की रचना आवश्यक होगी। क्योंकि पट परिवर्तन शीघ्रता से न करा कर कथाक्रम के अनुरूप पात्रों को प्रविष्ट करा घटनाओं को आगे बढ़ाता है। नाट्यकार ने रंग सज्जा के संकेत भी लिखे हैं —

प्रथम दृश्य 'सरिता के किनारे एक ऊँचे टीले पर बैठा हुआ कवि कुछ चिन्तित भाव से सोच रहा है। उधर सरिता के उस पार क्षितिज के कुछ रंगीन बादलों की रेखाएँ नव-नव चित्रों का निर्माण कर रही हैं। दो श्यामल बादलों की धारियों के बीच सन्ध्या-तारा चमक रहा है। नीचे सरिता का जल कल-कल की कल मन्द मन्द मधुर ध्वनि के साथ बह रहा है। बगल के मधुमय कुंज में पक्षियों का कलरव सुनायी पड़ रहा है।[1] द्वितीय दृश्य एक छोटा सा कुंज। प्रभात की सुनहली किरणें झुरमुटों से होती हुई भीतर आ रही हैं। वृक्षों की पत्तियाँ और लताएँ पवन के साथ धीरे धीरे हिल रही है। रह रह कर पक्षियों का कलरव सुनायी देता है।[2] तृतीय दृश्य 'प्रभात का समय। सूर्य की किरणें चारों ओर बिखरी दिखलायी देती हैं। पक्षी नीड़ों से कलरव करते हुए चले जा रहे हैं।[3] इन रंग संकेतों की समीक्षा करने पर पता चलेगा कि प्राचीन काल के साधनों के अनुसार पक्षियों का कलरव एवं नदी का कल कल शब्द पीछे दर्शक को सुनाया ही नहीं जा सकता था और पर्दे पर अंकित चित्रध्वनि नहीं कर सकते हैं अतः इन्हें अनभिनेय कहा गया है। किन्तु आज ध्वनि विस्तारक यन्त्र तथा अन्य वैज्ञानिक उपकरणों से सम्भव हो गया है। निर्देशक को मेहनत अवश्य करनी पड़ेगी। रेडियो के माध्यम से इन ध्वनियों की उपस्थिति भली प्रकार हो सकती है। नाट्यकार ने अभिनय में सरलता के लिए यथास्थान संकेतों का भी उल्लेख किया है। जैसे उसी समय स्वर्णिम अंचल का छोर उड़ाती हुई दूर से छाया की भाँति एक नारी मूर्ति आती दिखायी देती है। कवि विस्मय से उस ओर देखता है।xxx वह नारी मूर्ति कल्पना कवि के सम्मुख आ धीरे से बैठ जाती है। और उसकी ओर भावुक दृष्टि से देखती है। कवि चकित रह जाता है। दोनों की आँखें मिल जाती हैं। कवि का रोम-रोम एक विचित्र उमंग से भर जाता है(पृ0206), मुस्कान के साथ (पृ0207) कवि के गीत गाते समय ही जीवन अस्तव्यस्त दशा में कुंज में आता है और उसे गाते हुए देखकर पीछे रूक जाता है(पृ0 214), कवि उस ओर देखकर प्रमुदित होता है (पृ0222) उसके पैरों में सहसा एक काँटा गड़ता है। वह खड़ा हो जाता है(पृ0224), दूर से हृदय-विदारक हाहाकार चीत्कार की ध्वनि सुनायी पड़ती है(पृ0225), कुछ दूर पर एक ओर से कुछ अर्द्धनग्न पुरूष, स्त्रियाँ और शिशु गाते हुए आते हैं। उनके शरीर की हड्डियाँ उभरीहुई दिखलायी पड़ती है, उनके केश रूखे-सूखे हैं, मुख पर विकृति की अनेक रेखाएँ खिंची हुई हैं(पृ0 226)[4] इस प्रकार गीतिनाट्यकार ने संक्षिप्त रूप में कायिक, वाचिक, सात्विक

1-से 3 तक सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक-क्रमशः पृ0 205, 212, 223

4- कोष्ठकों में अंकित पृ0संख्या सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक से उद्धृत है।

और आहार्य का उल्लेख कर इसे रंगमंचोपयुक्त बनाने का प्रयास किया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कवि घटना-सारल्य, कथा-प्रवाह एवं नाटकीयता, सरस संवाद एवं स्वगत अपवादों को छोड़ कर मंचोपयुक्त दृश्यों की अवतारणा कर इसे रंगमंचीय बनाया है और यह मंच में दर्शकों को मुग्ध कर सकेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

<u>सृष्टि का आखिरी आदमी :—</u>

धर्मवीर भारती ने विप्लव, शासक द्वारा उसका दमन, वैज्ञानिक का विद्रोह, मुर्दा का जाग्रत होकर प्रलयाग्नि को रोकना, ध्वंसावशेष में नवीन सृष्टि की कल्पना से सम्बन्धित घटनाओं का विन्यास इस गीतिनाट्य में किया है। सारा घटना प्रवाह युद्ध एवं विप्लव से संबंधित है: अतः क्रिया-व्यापार बहुत तीव्र है। अनेक घटनाओं को सूच्य रूप में कहा गया है, जैसे रात्रि के समय तारों में किसी व्यक्ति का घूमा जाना, सैनिकों द्वारा विप्लव का दमन, जनता का भगना, सृष्टि में प्रलय आ जाना इत्यादि। घटनाएँ एवं वातावरण युद्ध का प्रधान होने पर भी नाटकीयता एवं घात-प्रतिघात का प्राबल्य होने के कारण इसमें दर्शकों को आकृष्ट करने की पूर्ण क्षमता है।

घटना बाहुल्य होने के कारण इसमें पात्रों के चरित्र को बहुत महत्व नहीं दिया गया है। पात्रों के नाम पर उद्घोषक भीड़ का एक युवक, शासक, वैज्ञानिक, भीड़ सेना, इत्यादि। इसके संवाद लम्बे हैं जिसके कारण रंगमंच में अपेक्षित प्रभाव नहीं उत्पन्न हो सकेगा।

इसमें एक ही दृश्य है। सारी घटनाएँ एक ही समय, एक ही स्थान पर घटित होती है, जिसके कारण संकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह हुआ है। अनभिनेय दृश्यों की योजना की गयी है — जैसे युद्ध, विप्लव आदि। रंगमंचोपयुक्त साज-सज्जा का उल्लेख नहीं है क्योंकि लेखक ने इसे रेडियो की दृष्टि से लिखा है अतः ध्वनि योजना का विस्तृत उल्लेख है जैसे किसी विशेष राजाज्ञा के समय होने वाली तुरही शंख और नक्कारे की आवाज xxxx चौराहे पर बहुत से व्यक्तियों का शोर(पृ० १८१), कुछ घुटते हुए और सिसकियों जैसे स्वर में भीड़ की आवाज, उन्हीं स्वर में जैसे मंत्र-मुग्ध सब कह रहे हों (पृ० १८३) सहसा भीड़ के स्वर को चीरकर फौजी बैण्ड बज उठता है और शोर को कुचलता हुआ सैनिक घोड़ों की टापों का स्वर आता है(पृ० १८४), सैनिक कवायद की ध्वनि, बिगुल की आवाज, बादल की गरज(पृ० १८५), गोलियों की धाँय-धाँय। उसके बाद खामोशी मरघट जैसा सन्नाटा(पृ० १८६), सेनाओं के स्वाई होने की आवाज(पृ० १९२), सहसा गड़गड़ाहट और भयानक विस्फोट। धरती के चटखने, तूफानों के पागल घोड़ों जैसे दौड़ने, व इमारतों, के ढहने का भयानक शोर, उसी में भाग-दौड़ चीख-पुकार, मार्मिक करुण-रोदन, (पृ० १९५), नदी का भयानक घर्र घर्र और उसमें

घुली-मिली सियारों के रोने की आवाज(पृ0 197)[1] इस प्रकार समूचा गीतिनाट्य छोटी-छोटी ध्वनियों के उल्लेख से भरा दिखायी देता है। ऐसा लगता है कि धर्मवीर भारती को रेडियो की सामर्थ्य का बोध भली प्रकार है क्योंकि धीमी ध्वनि, या नदी की ध्वनि या तो पीछे बैठा दर्शक सुन नहीं सकेगा या उसका सुनाना रंगमंच पर सम्भव नहीं है। रेडियो के माध्यम से धीमी से धीमी ध्वनि का उच्चारण सहजता से हो सकता है। नाट्यकार ने यथास्थान नाटकीय अभिनयों का उल्लेख किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि सृष्टि का आखिरी आदमी रंगमंच की अपेक्षा रेडियो पर अधिक सफल हो सकता है।

सृष्टि की साँझ :—

युद्ध और शान्ति की समस्या को लेकर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। तृतीय विश्वयुद्ध जीतने के उन्माद में महामात्य और सेनानायक प्रलाप कर रहे हैं। जिसे अजय रोकता है। वे दोनों आश्चर्य में आकर अजय से युद्ध में सम्मिलित होने का कारण पूछते हैं। अजय ध्वस्त संस्कृति की महत्ता का मूल्यांकन करता हुआ, शान्ति-स्थापना हेतु युद्ध की अनिवार्यता का उल्लेख करता है। वह भविष्य में सृष्टि रचना का स्वप्न देखता है, जिसे रेखा से पूरा कराना चाहता है। और सेनानायक रेखा के कारण उसे गोली मारता है किन्तु अन्त में वह बचकर रेखा का प्रेम प्राप्त करता है। इस प्रकार यह गीतिनाट्य क्रिया-व्यापार, घात प्रतिघातों से विकसित होता है। घटनाएँ नाटकीय एवं रहस्यपूर्ण तथा आकस्मिकता से पूर्ण होने के कारण रंगमंचीय हैं।

इसमें सेनानायक, अजय, महामात्य पुरुष और रेखा तथा आमन्त्र कौपात्र हैं। रंगमंच में कोई भी पात्र निष्क्रिय नहीं रहता है। अधिक भीड़ न होने के कारण इस गीति-नाट्य को रंगमंचीय माना जा सकता है, यद्यपि पात्रों के चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

इस गीतिनाट्य की भाषा सरल है। संवाद छोटे एवं नाटकीय हैं। अनेक स्थानों पर संवाद लम्बे होगये हैं किन्तु लम्बे संवाद रसव्याघात नहीं उत्पन्न करते क्योंकि शब्दों से चित्र उपस्थित किये गये हैं। वर्णनात्मकता होने पर भी उनमें भूतकाल के चित्र अंकित हुए हैं अतः लम्बे संवाद अनाटकीय नहीं हैं। अजय के कथन लम्बे हैं किन्तु रसानुभूति कराने में क्षम हैं। संवादों से नाटकीयता को पर्याप्त बल मिला है।

इस गीतिनाट्य में अंकों का उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु पाँच दृश्य परिवर्तन हैं। इन दृश्यों में अवधि का ध्यान रखा गया है अर्थात् क्रमशः छोटे होते गये हैं। इन बड़े दृश्यों के अतिरिक्त दो छोटे दृश्य हैं एक स्मृति दृश्य के रूप में द्वितीय दृश्य के मध्य में एवं दूसरा

स्वप्न द्वारा तृतीय दृश्य के मध्य में है, जिन्हें क्रमशः रेखा और सेनानायक देखते हैं। इन पाँचों दृश्यों में स्थान का उल्लेख नहीं है अतः एक ही पर्दे से इसे अभिनीत किया जा सकता है। एक छोटा पर्दा भी आवश्यक होगा, अन्तराल के दृश्यों को प्रदर्शित करने के लिए। नेपथ्य की रचना का उल्लेख नाट्यकार ने किया है। दृश्य परिवर्तन के लिए लेखक ने वाद्यसंगीत का सहारा लिया है- जैसे दृश्य वाद्यसंगीत से आरम्भ होता है(पृ० 35),वाद्यसंगीत से दृश्य परिवर्तन(50), इत्यादि। इन दृश्यों में समय का भी उल्लेख नहीं है। पूरा गीतिनाट्य तृतीय विश्वयुद्ध के बाद का है। अतः वातावरण के निर्माण के लिए निर्देशक को अपनी कल्पना का सहारा लेना पड़ेगा, ताकि दृश्य विनाश से संबंधित प्रतीत हो। कायिक एवं वाचिक,सात्विक अभिनय का उल्लेख यत्र-तत्र हुआ है — जैसे — जोर की अट्टहास(पृ० 35) व्यंग्य की हल्की हँसी हँसते हुए(पृ० 39) कुछ निकट आकर (पृ० 54), ऊँघते हुए (पृ० 64) इत्यादि साथ ही नाट्यकार ने वाद्यसंगीत से वातावरण को विश्वसनीय बनाया है जिसका उल्लेख बीच बीच में करता चलता है। प्राचीन रंगमंच में दूराह्वान को अनभिनेय एवं वर्जित कहा गया है। इसमें भी इसका प्रयोग(पृ०54) हुआ है किन्तु आज का रंगमंच इतना विकसित हो गया है कि अब बहुत से दृश्य अनभिनेय नहीं रहे। एक बात अवश्य खटकती है कि सिद्धनाथ कुमार जैसे कुशल गीतिनाट्यकार से पात्रों के निर्देश हेतु अभिनयों का उल्लेख कैसे छूट गया है। रेडियो के लिए भी उन अभिनयों का उल्लेख आवश्यक होता है, यद्यपि उसमें ध्वनियों के ही अभिनय टोन के उतार-चढ़ाव का विशेष महत्व है। अन्त में इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह गीतिनाट्य रंगमंच पर बहुत अधिक सफल रहेगा।

लौह देवता :——

इसमें यान्त्रिक सभ्यता के उद्भव एवं विकास की कहानी विन्यस्त है।स्त्री-पुरुषों की लौह-देवता की आराधना, पुजारी द्वारा स्वर्ण खण्डों के बदले में लौह शक्ति की याचना उसका उपयोग एवं पुजारी तथा श्रमिक वर्ग में संघर्ष और जन समूह इस संघर्ष के मूल में स्थित विकृति को नष्ट करने का संकल्प लेते हैं। इसकी सभी घटनाएँ दृश्य हैं, केवल एकाध घटनाएँ सूच्य हैं जैसे शीला के पुत्र का मरण, स्वचालित यंत्रों का आविष्कार। सभी घटनाएँ नाटकीय और कौतूहल पूर्ण हैं। क्रियात्मक घात-प्रतिघात से यहाँ कथावस्तु विकसित हुई है वहीं उसका अंतिम अधिक प्रभावशाली है। लौहदेवता का वरदान के लिए तत्पर होना एवं भीड़ का विद्रोह बहुत ही नाटकीय स्थल हैं।

इसमें पात्र व्यक्ति नहीं साधारणतः जाति है। कुछ पुरुष, कुछ स्त्रियाँ और पुजारी के साथ लौहदेवता उल्लिखित हैं। मंच पर भीड़ को एकत्रित करना कुछ अस्वाभाविक

लगता है क्योंकि ये सभी निष्क्रिय हैं अतः उनका एकत्रित करना ठीक नहीं है। शेष पात्र सक्रिय हैं। पात्रों की दृष्टि से इसका मंचन कुछ कठिनाई इसलिए उत्पन्न करेगा कि अनावश्यक कुछ लोग एक दो वाक्य बोल कर पूरे दृश्य में चुपचाप खड़े रहेंगे।

इस गीतिनाट्य के संवाद आकर्षक, व्यंग्यात्मक एवं छोटे, हैं, जिनका उच्चारण सरलता से हो सकता है। संवाद घटनाओं के सूचक हैं। लम्बे संवाद कहीं नहीं है अतः इस दृष्टि से यह रंगमंचीय है।

इसमें पाँच दृश्य हैं। दृश्यांकन का ध्यान रखा गया है। अन्तिम दृश्य सबसे छोटा है। दृश्यों में किसी स्थान विशेष का उल्लेख नहीं है। अतः एक ही पर्दे से इसे अभिनीत कियाजा सकता है। एक छोटे पर्दे की आवश्यकता अवश्य पड़ेगी साथ ही नाट्यकार ने नेपथ्य का भी उल्लेख किया है। दृश्य परिवर्तन के लिए अवसरानुकूल वाद्य-यंत्रों का उपयोग किया है। यवनिका पात का उल्लेख नहीं है। छोटा पर्दा गिराकर संगीत से दृश्य परिवर्तित किया जा सकता है -- जैसे वाद्य संगीत से दृश्य प्रारम्भ होता है। जन समूह लोकदेवता की प्रतिमा के सम्मुख खड़ा होकर वन्दना का गीत कर रहा है(पृ0 89), वाद्य संगीत द्वारा दृश्य परिवर्तन वाद्य-संगीत द्वारा ही दीर्घकाल समाप्ति की व्यंजना हो जाती है(पृ0 92) इस प्रकार नाट्य कार ने समय परिवर्तन की सूचना संगीत से दी है। रंगमंच की सज्जा निर्देशक योजनानुसार करना पड़ेगी क्योंकि नाट्यकार ने इसका उल्लेख नहीं किया है। इसी तरह से इसमें अभिनयों के उल्लेख का अभाव है। इसे रेडियो से प्रसारित कराने हेतु लिखा गया है अतः इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग है जिससे शब्द-चित्र उपस्थित हो सके, साथ ऐसी ध्वनियों का उपयोग हुआ है, जिससे दीर्घकालिक समयापन की सूचना तथा वातावरण की सृष्टि हो सके। नेपथ्य का उपयोग इसी दृष्टि से हुआ है जैसे ट्रैक्टर की ध्वनि, जल धारा की ध्वनि(पृ0 93) मशीनों की आवाज(पृ0 94) मोटर, हवाई जहाज, टेलीफोन की ध्वनियाँ सुनवायी गयी हैं। सारतः यह कहा जा सकता है कि इस गीतिनाट्य का थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर रंगमंच पर मंचन कराया जा सकता है, वैसे यह रेडियो शिल्प की दृष्टि से अच्छा गीतिनाट्य है।

संघर्ष :--

इसमें कलाकार पंकज का आन्तरिक संघर्ष व्यक्त है। वह व्यक्तिगत भोग-विलास या कला साधना में किसे चुने, यही इसका विषय है। वह अपनी कृतियों को अनश्वर मानकर परिवार का निषेध करना चाहता है किन्तु उसकी पत्नी वेला और पुत्र मोहन का आकर्षण उसे विचलित करते हैं। मोहन बीमार है उसे दवा उपलब्ध नहीं है। वेला की आवश्यकताएँ अतृप्त हैं। पंकज का मन उसे भविष्य का दृश्य दिखाता है, जिसमें उसकी कृतियों को शाश्वत कहा गया

है। जिनका संरक्षण किया जाता है किन्तु भूकम्प आ जाने से सब लोग भाग जाते हैं, मूर्तियाँ नष्ट हो जाती है और मन के समझाने पर आवेश में आकर मूर्ति पर हथौड़ा चलाकर खण्डित कर देता है किन्तु पुनः साधना में तत्पर हो जाता है। इस प्रकार इस गीतिनाट्य में आन्तरिक व्यथा का उद्घाटन किया है। कथावस्तु सरल है किन्तु रंगमंच की दृष्टि से इसका कथा-तन्तु बहुत सूक्ष्म है, क्योंकि प्रारम्भ में उसका अन्तर्द्वन्द्व काफी दूर तक चलता है। सभी घटनाएँ दृश्य हैं। घटनाएँ में चढ़ाव-उतार है जिसके कारण नाटकीयता बनी रहती है।

इसमें पंकज, बेला, मोहन, कुछ लोगों का समूह इत्यादि पात्र है जिसमें पंकज का चरित्र महत्वपूर्ण है। इसमें मन में चल रहे द्वन्द्व का चित्रण बहुत अच्छा हुआ है। यही द्वन्द्व इसे नाटकीयता प्रदान करता है जिसका अभिनय कुशल, सजग अनुभवी कलाकार ही कर सकता है। इस गीतिनाट्य के संवाद सरल, क्षिप्र, नाटकीय आरोह-अवरोह से युक्त है। कहीं भी लम्बे संवाद नहीं है। अतः रंगमंच में इनका अभिनय रुचिकर रहेगा।

इसमें अंकों का विभाजन नहीं है। एक ही बड़ा दृश्य है जिसमें तीन स्मृति दृश्य है। प्रथम स्मृति दृश्य मोहन की बीमारी, द्वितीय दृश्य बेला और पंकज का प्रणय-प्रसंग है। तृतीय दृश्य में भविष्य का दृश्य है, जिसमें पंकज की कला की अनश्वरता का उल्लेख है। इस प्रकार नाट्यकार ने पुनर्दृश्यावलोकन(फ्लैश बैक स्टाइल) ढंग से एक ही दृश्य में तीन दृश्यों का समावेश कर रंगमंच को नवीन पद्धति प्रदान की है। सिनेमा में यह पद्धति बहुत ही लोकप्रिय है जिसका प्रयोग रेडियो एवं रंगमंच पर किया गया है। कुशल निर्देशक ही ऐसी व्यवस्था कर सकता है, जिससे ये दृश्य अलग न प्रतीत हों। मात्र स्मृति दृश्य ही लगें, क्योंकि प्रारम्भ से अन्त तक कलाकार सोचता रहता है। उसका मन बारम्बार रूप धारण कर आता रहता है, जिसका अभिनय दिखलाना कठिन है। एक दूसरे व्यक्ति को इस ढंग से प्रस्तुत करना कि दर्शक उसे कलाकार का मन मान ले। नाट्यकार ने इसे रेडियो की दृष्टि से लिखा है, अतः स्मृति दृश्यों का प्रसारण बड़ी सरलता से हो सकता है। इसमें ध्वनियों का सहारा लेकर दृश्यों का प्रारम्भ एवं समापन तथा वातावरण उपस्थित किया है। रेडियो में तो स्मृति दृश्यों के प्रारम्भ से मूल घटना में व्याघात नहीं प्रतीत होगा, किन्तु रंगमंच में अभिनीत होने पर शायद कुछ व्याघात प्रतीत हो जिसे निर्देशक अपनी कुशलता से दूर कर सकता है। ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से नाटकीयता उत्पन्न की गयी है जिसके लिए वाद्य संगीत का आश्रय लिया गया है जैसे — वाद्य संगीत से दृश्य प्रारम्भ। छेनी और हथौड़ी से मूर्ति गढ़ने की खट्खट् खट्खट् आवाज(पृ0 109) करुण संगीत के साथ एक स्मृति-दृश्य प्रारम्भ होता है(पृ0 115) हँसते हुए(पृ0 118) कुदाल और फावड़े चलाने की आवाज(पृ0 124) आँधी तूफान, भूकम्प आदि की भयंकर ध्वनियाँ दूर से धीरे धीरे उठ कर तेज हो जाती है। इस प्रकार गीतिनाट्य

कार ने कायिक, सात्विक, और आहार्य अभिनयों का उल्लेख नहीं किया है। केवल वाचिक का उल्लेख यत्र तत्र ही किया है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यह गीतिनाट्य रंगमंच में निर्देशक की कुशलता से ही सफलता प्राप्त कर सकेगा, जबकि रेडियो में यह बहुत प्रभावी सिद्ध होगा।

<u>अन्धायुग :—</u>

महाभारत युगीन घटनाओं का के परिवेश में अश्वत्थामा को केन्द्र बिन्दु बनाकर इस का ताना-बाना बुना गया है। अश्वत्थामा की घुटन, घृणा, विद्वेष, प्रतिहिंसा, रक्तपात अविवेक, का चित्रण करने के लिए नाट्यकार ने अनेक घटनाओं का सर्जन किया है, जिसमें दुर्योधन की पराजय, धृतराष्ट्र की चिन्ता, अश्वत्थामा की विकृति का जन्म, युयुत्सु की ग्लानि, गान्धारी का शाप, अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग, एवं उसकी कुरूपता, धृतराष्ट्र का वन प्रस्थान, युयुत्सु एवं कृष्ण की मृत्यु प्रमुख हैं। मुख्य घटनाओं के अतिरिक्त बीच बीच की घटनाएँ कथागायन या संवादों के माध्यम से सूच्यरूप में ही उल्लिखित हैं। जैसे — कौरव-वधुओं की चूड़ी उतारना, कृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदेश देना, दुर्योधन की पराजय, युधिष्ठिर का अर्द्ध-सत्य-कथन, दुर्योधन का सरोवर-तल-वास, विजयोन्मत्त पाण्डवों का शिविर प्रत्यागमन, द्वन्द्व युद्ध में भीम का अन्याय, दुर्योधन द्वारा अश्वत्थामा को सेनापति बनाना, अश्वत्थामा द्वारा धृष्टद्युम्न का वध, अश्वत्थामा द्वारा पाण्डवों के शिविर में आग लगाना, कृष्ण द्वारा भ्रूण रक्षा इत्यादि। विचार कर देखें तो पता चलेगा कि इस गीतिनाट्य में कथावस्तु में एकतानता, गत्यात्मकता एवं सघनता है। क्रियात्मक घात-प्रतिघात से जिन सघन क्षणों की अभिव्यक्ति इसमें हुई है, वे नाटकीय हैं। क्रिया-व्यापार की शीघ्रता प्रभावान्विति उत्पन्न करती है। आकस्मिकता तनाव इसे रंगमंचीय बनाते हैं। दर्शक कथावस्तु में व्याप्त रहस्यात्मकता से प्रभावित होकर स्तब्ध रह जाते हैं।

इस गीतिनाट्य में अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, कृतवर्मा, संजय, वृद्ध याचक, विदुर युधिष्ठिर, कृपाचार्य, युयुत्सु, गूँगा भिखारी, व्यास, बलराम, कृष्ण, दो प्रहरी पुरुष पात्र एवं एक स्त्री पात्र गान्धारी है जिसमें अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र युयुत्सु, गान्धारी प्रमुख हैं। पात्रों की मनःस्थितियों का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य से अश्वत्थामा की आस्था कुण्ठित हो गयी है और उसके मन में ऐसी मनोग्रन्थि पैदा होगयी है जिससे उसके मन में आशा-निराशा शोक-ग्लानि भर गयी है और वह अपराध-ग्रन्थि, हत्या करके ही सन्तुष्ट होती है। युयुत्सु की यही दशा है। कौरव होकर उसने पाण्डवों का पक्ष लिया जिससे बाद में उसे अपमान सहना पड़ता है। पात्रों के चतुर्दिक जिन घटनाओं का जाल बिछाया गया है, उससे उनके चारित्रिक विकास का ज्ञान दर्शकों को होता है। रंगमंच पर कोई भी पात्र

निष्क्रिय नहीं है। यदि वह निष्क्रिय होने लगता है तो कुशल नाट्यकार ने वहीं से उसका प्रस्थान दिखाया है।

अन्धायुग में संवाद पात्रानुकूल हैं। एकाधी स्थलों मेंसंवाद लम्बे हैं – जैसे – अश्वत्थामा का स्वगत कथन(पृ0 33), अन्तराल(पृ0 72), में वृद्ध याचक का कथन आदि। शेष संवाद छोटे और गत्वर हैं। वातावरण के अनुकूल अनास्था, कुण्ठा, क्षोभ, आक्रोश व्यक्त करने के लिए संक्षिप्त एवं अव्यवस्थित वाक्य-विन्यास युक्त संवाद प्रयुक्त हैं। कथोपकथन में नाटकीयता, कुतूहलता, लाने के लिए गीतिनाट्यकार ने प्रश्नवाचक उक्तियों, विस्मयादिबोधक चिन्हों का प्रयोग किया है, कहीं अधूरे शब्द लिखकर आगे बिन्दियाँ रख दी हैं –(1)प्रहरी द्वन्द्व युद्ध में ......। राजा ...'/ दुर्योधन ...'। पराजितहुए(पृ0 60) (2) बलराम – नहीं। नहीं। नहीं। तुम कुछ भी कहो कृष्ण (पृ0 61) व्यंग्य प्रधान संवाद मनोयोगयुक्त हैं। स्वगत कथन, कथागायन से नाटकीय औत्सुक्य जाग्रत हुआ है। यद्यपि इसकी भाषा कहीं कहीं दार्शनिकता के कारण क्लिष्ट हो गयी है तथापि उसमें लयात्मकता, आरोहावरोह के कारण वह नाटकीय है।

यह गीतिनाट्य पाँच अंकों में विभक्त है जिसके शीर्षक भी लिखेगयेहैं :– कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्धसत्य, गांधारी का शाप, विजय एक क्रमिक आत्महत्या इत्यादि। प्रारम्भ में स्थापना – अन्धायुग और समापन–प्रभु की मृत्यु नामक शीर्षक भी उल्लिखित हैं। बीच में तृतीय अंक के बाद अन्तराल है जिसे नाट्यकार ने पंख, पहिए और पट्टियाँ नाम दिया है। अंकों में अवयव का ध्यान ही रखा गया है। प्रथम दो दृश्य अपेक्षाकृत छोटे, तृतीय एवं चतुर्थ दृश्य बड़े, अन्तिम छोटे हैं। समापन भी छोटा है। सबसे छोटा अन्तराल पाँच पृष्ठ का है। स्थापना में मंगलाचरण कहकर प्राचीन परिपाटी का अनुधावन किया गया है। सारा घटनाक्रम दो स्थलों का है – राजभवन, कौरवनगरी वन। अतः एक बड़ा पर्दा और दो छोटे-छोटे पर्दों से सारा नाटक अभिनीत हो सकता है। स्वयं धर्मवीर भारती ने इस संबंध में लिखा है –'समस्त कथावस्तु पाँच अंकों मेंविभाजित है। बीच में अन्तराल है। अन्तराल के पहिले कार्यों को लम्बा मध्यान्तर दिया जा सकता है। मंच विधान जटिल नहीं है। एक पर्दा पीछे स्थायी रहेगा।उसके आगे दो पर्दे रहेंगे। सामने का पर्दा अंक के प्रारम्भ में उठेगा और अंक के अंत तक उठा रहेगा। उस अवधि में एक ही अंक में जो दृश्य बदलते हैं, उनमें बीच का पर्दा उठता गिरता रहता है।"[1] नाट्यकार ने अंकों को दृश्यों में भी विभक्त

1- अन्धायुग, पृष्ठ 4 निर्देश

किया है। इसमें 15 दृश्य हैं। दृश्यों में समानुपातिक अवयव का ध्यान नहीं रखा गया है। सबसे अधिक दृश्य चतुर्थ अंक में है। स्थापना और समापन में एक एक दृश्य है। कुछ दृश्य बहुत छोटे हैं, कुछ बहुत बड़े जैसे प्रथम एवं द्वितीय अंक का द्वितीय दृश्य, तृतीय अंक के दोनों दृश्य एवं पंचम अंक का प्रथम दृश्य बहुत बड़े और चतुर्थ अंक का तृतीय दृश्य तथा पंचम अंक का द्वितीय दृश्य सबसे छोटे हैं। इन दृश्यों में कुछ वर्जित एवं अनभिनेय दृश्य हैं जिनको केवल रेडियो से ही प्रसारित किया जासकता है। जैसे प्रथम अंक (पृ0 14 में रंगमंच में गूंगों का प्रवेश, द्वितीय अंक(पृ0 32) में दूराह्वान, (पृ0 43) में वध, तृतीय अंक के अन्त में(पृ068) काक-उलूक युद्ध, पंचम अंक में(पृ0 112) में दावाग्नि का फैलना इत्यादि। दूराह्वान तो आज वर्जित और अनभिनेयनहीं रह गया। ध्वनि-विस्तारक यंत्र की सहायता से दूराह्वान सुनाया जा सकता है। इसी तरह से काक-उलूक युद्ध को प्रतीकात्मक वेश-रचना(दो व्यक्तियों में एक को कौआ और दूसरे को उलूक की वेश रचना कराकर) से रंगमंच में उपस्थित कराया जा सकता है। दृश्यों का परिवर्तन कथागायन से किया गया है। यद्यपि भारती ने एक अंक में पुनः पुनः पट-परिवर्तन कराया है, तथापि एकाध अपवाद को छोड़ करकहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आयी है। केवल चतुर्थ दृश्य में चार बार पट-परिवर्तन हुआ है। मूल दृश्य के बीच में छोटा पर्दा उठाकर आगे की घटनाएँ प्रदर्शित की गयी हैं बाद में छोटे पर्दे को गिराकर मूल दृश्य को आगे बढ़ाया गया है। इसमें पीछे के पर्दे को प्रकाश या अन्धकार में रखकर रंगशिल्पी की उपयुक्तता के लिए दोहरे पट(ड्राफ्टस्क्रीन) की व्यवस्था है। इसे रंगमंच में थोड़ी कुशलता से ही दिखाया जा सकता है। वस्तुतः इस तरह के दृश्य सिनेमा में बहुत प्रभावी होते हैं। चतुर्थ अंक में ऐसा हुआ है। यद्यपि इस पुनः पट परिवर्तन से अस्वाभाविकता आ गयी है, तथापि इससे जो नाटकीयता उत्पन्न होती है, उसके सार्थक स्तब्ध रह जायेगा- जैसे पर्दा उठने पर गान्धारी बैठी हुई दीख पड़ती है xx(पृ0 79) पीछे का पर्दा हटने लगता है, आगे का प्रकाश बुझने लगते हैं(पृ013) नेपथ्य में गला घोंटने की आवाज(पृ043) नेपथ्य में पाण्डव-वधुओं का क्रन्दन सुनाई पड़ता है(पृ0 94) नेपथ्य में गर्जन(पृ0105)इत्यादि। रंगमंच की सज्जा के लिए नाटककार ने विशेष संकेत नहीं लिखे हैं। प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था की सजगता से ही इसका मंचन सुगमता एवं सफलतापूर्वक हो सकता है। कुशल निर्देशक अपने सहायक द्वारा प्रकाश को नियंत्रित कर यथावसर उसका उपयोग कर सकता है जैसे सहसा स्टेज पर प्रकाश धीमा हो जाता है(पृ013) प्रकाश तेज होने लगता है(पृ0 14) स्टेज पर अँधेरा(पृ0 27), अँधेरा-केवल एक प्रकाश-वृत्त अश्वत्थामा पर जो टूटा धनुष हाथ में लिए बैठा है(पृ033) स्टेज पर केवल दो प्रकाश-वृत्त नृत्य करते हैं(पृ0 43) स्टेज पर मकड़ी के जाले जैसी प्रकाश-रेखाएँ(पृ073) गान्धारी और संजय पर प्रकाश पड़ता है(पृ0 83) आगे का प्रकाश पुनः बुझ जाता है(पृ0 84) तेज गड़गड़ाहट

प्रकाश, फिर अँधेरा(पृ0 92) इत्यादि। इन निर्देशों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धर्मवीर भारती ने कथा में नाटकीयता, पात्रों की मनोवृत्ति, शारीरिक विकृति को स्पष्ट करने के लिए प्रकाश की योजना की है। इससे वातावरण बहुत सजीव हो उठा है। इसके साथ ही नाट्यकार ने ध्वनि की भी योजना की है। ऐसे अवसरों पर निर्देशक से अपेक्षा है कि वह इन ध्वनियों का उपयोग करे जैसे — तीन बार तूर्यनाद(पृ011) आँधी की ध्वनि कम होने लगती है(पृ0 14) कुछ देर पूर्व से गूँजके हाँफने की भयावह आवाज हो रही है, जो सहसा तेज हो जाती है(पृ057) सहसा अन्तःपुर में भयंकर आर्तनाद(पृ059) पाण्डवों की समवेत हर्षध्वनि और जयकार सुन पड़ती है(पृ060) रथ की ध्वनियाँ तेज हो जाती है(पृ0 75) शोक सूचक संगीत(पृ0 85) दूर कहीं शंख ध्वनि पुनः कई विस्फोट दूर कहीं विस्फोट (पृ090) नेपथ्य में आर्तनाद। लगातार भिन्न विस्फोट (पृ091) ज्वाला मुखियों की सी गड़गड़ाहट (पृ0 92) भयानक आर्तनाद (पृ0 93) बंसी की एक तान हिचकियों की तरह तीन बार उठ कर टूट जाती है(पृ0122) धर्मवीर भारती ने पात्रों की वेश-भूषा संबंधी उल्लेख कम ही किया है। ~~कायिक, वाचिक, सात्विक अभिनयों की विस्तृत सूची अन्धायुग में उपलब्ध है।~~

(1)कायिक, वाचिक, सात्विक अभिनयों की विस्तृत सूची अन्धायुग में उपलब्ध है। (1)कायिक दाईं ओर और बाईं ओर बरछे और ढाल लिए दो प्रहरी है, जो वार्तालाप करते हुए पेंडुलम की भाँति से स्टेज के आरपार चलते हैं(पृ012) एक प्रहरी कान लगा कर सुनता है दूसरा सीढ़ी पर हाथ रखकर आकाश की ओर देखता है(पृ013) विदुर उनकी ओर बढ़ते हैं(पृ017) घुटनों पर हाथ रखकर (पृ019) प्रहरी कुल्हाड़ी लाकर देता है(पृ025) पद पीटता है(पृ0 35) छिपता है(पृ0 36) अश्वत्थामा आक्रमण करता है। गला दबोच लेता है, कृतवर्मा के बन्धन में छटपटाता हुआ(पृ0 37) उनके कन्धों से शीश टिका देता है(पृ038) दाँत पीसता हुए चौंकता है, कृपाचार्य अश्वत्थामा को बिठाकर उसका कमरबन्द ढीला करते हैं(पृ0 43) विदुर से संकेत कर पानी माँगता है(पृ048) इत्यादि इसके अतिरिक्त पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान भी उल्लिखित है।
(2)वाचिक — चीख कर (पृ037) व्यंग्य से (पृ0 44) सहसा वह चीख उठता है(पृ058) दोहराते हुए(पृ0 62) डाँटकर(पृ063) पाठ करते हुए(पृ079) रुक-रुक कर जरा जोर से (पृ083) अश्वत्थामा विकट अट्टहास करता है(पृ0 94) कटु हँसी हँस कर (पृ0 95) हृदय विदारक स्वर में (पृ0 99) रोते हुए(पृ0101) इत्यादि। वाचिक — अभिनयों का उल्लेख धर्मवीर भारती ने इसीलिए विशेष रूप से किया है कि उन्हें यह अपेक्षा[1] थी कि रंगमंच में

1- अंधायुग, निर्देश— पृ0 5

पात्र इसे या तो कविता की तरह पढ़ेगा या फिर गद्य की तरह। वस्तुतः इसे गद्य-पद्य के बीच की टोन से पढ़ना चाहिए। रेडियो में तो वाल्युम, आउट-टोर , ओवर टोन , ओवर लैपिंग टोन्स की सुविधा रहती है अतः वाचन वाचक इसे प्रभावी ढंग से प्रसारित कर सकता है किन्तु रंगमंच में मंजा अभिनेता ही उतार-चढ़ाव वाली टोन का सहारा लेकर अपनी आन्तरिक मनोव्यथा, घृणा, विद्वेष, प्रतिहिंसा व्यक्त कर सकता है।

(3)सात्विक – भयभीत हो उठाना, पृ014) आकुलता से(पृ0 59) उल्लास से(पृ0 69)विह्वल होना मूर्छित हो जाती है(पृ085) क्रोध से आरक्त मुख(पृ0 91) स्तब्ध रहकर(पृ096) रोपड़ती है(पृ097) इत्यादि। निष्कर्ष रूप में इतना कहा जा सकता है कि अन्धायुग का इति वृत्त उलझा हुआ नहीं है। घटनाएँ तनाव, एवं आकस्मिकता से पूर्ण होने के कारण रंगमंचीय है। मनोवेगों की अभिव्यक्ति का प्राबल्य होने के कारण पात्रों की भीड़ रंगमंच में नहीं रहती है। छोटे, सरल, क्षिप्र, चुस्त एवं व्यंग्यात्मक संवाद काव्यमय होने के साथ ही साथ नाटकीय एवं रंगमंचीय है। पात्रों का स्वगत कथन उनकी उद्विग्न मनःस्थिति के आरोहावरोह का आलोड़न-विलोड़न करता है अतः ये संवाद, लम्बे एवं काव्यात्मक होते हुए भी अरूचिकर नहीं है। दृश्य-विधान सरल एवं रंगमंचीय है। रंगमंच के लिए पर्याप्त एवं उपयुक्त पट-परिवर्तन पटाक्षेप, पट-उत्थान, ध्वनि, प्रकाश, कायिक, वाचिक आदि अभिनयों का संकेत इसे पूर्णतः रंगमंचीय बनाता है जिसकी स्वीकृति धर्मवीर भारती के इस कथन से की जा सकती है"मूलतः यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया था। यहाँ यह उसी मूल रूप में छापा जा रहा है।[1] उसके बाद इसे रेडियो से प्रसारित किया गया वहाँ उसे अपार सफलता मिली। स्वयं भारती जी ने लिखा है —"अन्धायुग की मूल पाण्डुलिपि के समस्त मंच-संकेतों के साथ दृश्यकाव्य के रूप में ही लिखी गयी थी। आकाशवाणी के उपयुक्त वह हो सकती है, इसका दूर-दूर तक ख्याल नहीं था। एक दिन जब श्री सुमित्रानन्दन पंत ने प्रस्तावित किया कि इसे वे आकाशवाणी पर प्रस्तुत करना चाहते हैं और स्वयं इसका निर्देशन करेंगे तो मुझे आश्चर्य हुआ।[2] इसका प्रसारण बड़ा सफल रहा। इसके साथ ही रंगमंच में यह कई बार अभिनीत हुआ जिसे मंचन के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता मिली। थोड़े-बहुत परिवर्तन से इसे खुले मंचवाला लोकनाट्य रूप में अभिनीत किया जा सकता है। निःसन्देह अभिनेयता, रंगमंच, रेडियो की दृष्टि से अन्धायुग हिन्दी गीतिनाट्य में प्रकाश-स्तम्भ है।

1- अन्धायुग, पृ05 निर्देश,

2- पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 13

<u>इन्दुमती :—</u>

कालिदास के रघुवंश में वर्णित इन्दुमती-स्वयम्वर से मूलकथा लेकर इस गीति-नाट्य की रचना हुई है। अज-इन्दुमती सौन्दर्य वर्णन, स्वयम्वर सभा में सुनन्दा द्वारा विभिन्न राजाओं का परिचय और इन्दुमती द्वारा उन्हें अस्वीकृत करना, अज-वरण एवं विवाह की घटनाएँ हैं। इस प्रकार इस गीतिनाट्य में कथावस्तु जहाँ एक ओर सरल है वहीं दूसरी ओर सूक्ष्म है और रंगमंच में वर्णनात्मकता का आधिक्य है। कथानक में नाटकीयता न होने पर भी रंगमंचोपयुक्त है।

अज, इन्दुमती सुनन्दा प्रमुख पात्र हैं। स्वयम्वर के समय रंगमंच में छह राजाओं की उपस्थिति का उल्लेख है। ये सभी निष्क्रिय है। अतः पात्रों की दृष्टि से यह अरंगमंचीय नहीं कहा जा सकता है। इसके संवाद सरल व्यंजनात्मक हैं। लम्बे संवाद नहीं हैं। प्रारम्भ के कथन के लिए एक वाचक की आवश्यकता अवश्य पड़ेगी। भाषा भी सरल एवं काव्यात्मक है। इसमें स्वयम्वर सभा का दृश्य मूल है जिसके लिए एक पर्दे की आवश्यकता होगी। बीच में दो विलयन हैं किन्तु दृश्य तो एक ही है। रंगसंकेत, अभिनयों का अभाव है अतः इसके लिए अभिनेता को अपनी कल्पना के अनुसार अभिनय करना होगा। यह रेडियो की दृष्टि से भी लिखा गया होता तो ध्वनिसंकेत अवश्य लिखे होते। सारतः सूक्ष्म कथानक, पात्रों के क्रियात्मक अभिनयों से शून्य यह गीतिनाट्य रंगमंच में बहुत जल्दी समाप्त हो जायेगा जिसका अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ेगा। थोड़े बहुत परिवर्तन से इसे रेडियो से प्रसारित कराया जा सकता है।

<u>मदनदहन :—</u>

सन्त्रासित देवताओं की विकलता, तारकासुर के वध के लिए ब्रह्मा की भविष्यवाणी, कामदेव का दर्प, समाधिस्थ शंकर को जगाने के लिए वसन्त का आह्वान, पार्वती द्वारा शंकर की अर्चना, शंकर के मन में कामोद्भव एवं कुपित होकर कामदेव को क्षार करना, तथा रति विलाप प्रमुख घटनाएँ हैं। घटनाएँ सरल, नाटकीय संघर्ष से पूर्ण है। ब्रह्मा, बृहस्पति, वरुण इन्द्र, कामदेव शंकर एवं रति इसके पात्र हैं, जिनमें काम का चरित्र विशेष रूप से चित्रित हुआ है। रंगमंच में पात्रों की भीड़ तो नहीं है किन्तु बृहस्पति वरुण निष्क्रिय पात्र हैं। इसके संवाद सरल एवं छोटे हैं। लम्बे संवादों का अभाव है।

इसमें एक ही दृश्य है किन्तु सूत्रधार के द्वारा दो स्थानों का उल्लेख हुआ है। स्वर्गलोक एवं शंकर का आश्रम। ~~सूत्रधार के द्वारा दो स्थानों का उल्लेख हुआ है।~~ सूत्रधार के उल्लेख से स्वर्ग को ही वसन्तश्री संयुक्त शंकर का आश्रम बना दिया गया है। कायिक, वाचिक सात्विक अभिनयों का उल्लेख नहीं है। रंगमंच में तो निर्देशक कीकल्पना ही उसे उपस्थित कर

कर सकती है। यह रेडियो से प्रसारित होने के लिए लिखा गया है।

सौवर्ण :—

संक्रमणकालिक मानव मूल्यों के विघास को विषय बनाकर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। हिमालय स्तवन के बाद देव देवी द्वारा धरती की कुरूपता, हिंसा उत्पीड़न की भावना का उल्लेख है। हिमालय की घाटी में चिन्तन करता हुआ क्रान्त द्रष्टा मानव के भविष्य की कल्पना करता है, जिसमें जागतिक दुःख द्वन्द्व नहीं होंगे नयी आध्यात्मिक चेतना का जन्म होगा। इस प्रकार यह गीतिनाट्य जटिल, दार्शनिक है। रंगमंच में घटनाओं के अभाव है। वर्णन के द्वारा नाटकीयता उत्पन्न की गयी है। अतः कथा की दृष्टि से यह जटिल, नीरस एवं अरंगमंचीय है। सौवर्ण पात्र व्यक्ति नहीं स्वर हैं। देव देवी, स्वर्दूत, स्वर्दूती सौवर्ण, इत्यादि का चरित्र अंकित नहीं है। घटनाओं के अभाव में पात्र कथन करेंगे। अभिनय की दृष्टि से उनका मुख भावशून्य रहेगा। आध्यात्मिक - विचारों का प्रतिपादन होने के कारण इसके संवाद दार्शनिक, दुरूह, काव्यात्मक एवं जटिल हैं, जिनसे रसानुभूति करना असम्भव सा है। पंत जी की भाषा विशिष्ट साहित्यानुरागी व्यक्तियों के लिए है। रंगमंचोपयुक्त नहीं है।

इसमें एक ही दृश्य है। स्थान एवं क्रियाव्यापार का संकलन बहुत अच्छा हुआ है। रंगमंच की दृष्टि से मंच सज्जा, प्रकाश, व्यवस्था, पात्रों के लिए अभिनय संकेतों का अभाव होने के कारण, असफल कहा जा सकता है। पंत ने रेडियो प्रसारण के लिए इसे लिखा है अतः स्थान-स्थान पर वाद्य-यन्त्रों का उपयोग तथा ध्वनियों की सूचना उल्लिखित है। जैसे युगान्तर सूचक वाद्य-संगीत — डमरू ध्वनि के साथ नेपथ्य से उद्घोष(पृ० 19) प्रसन्न वाद्य-संगीत (पृ०15) शंख-ध्वनि और मंत्रोच्चार(पृ० 16) इत्यादि। सारतः यह गीतिनाट्य मंच में तो असफल है और मेरी दृष्टि से रेडियो में भी बहुत अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है।

स्वप्न और सत्य :—

आदर्श और यथार्थ के बीच संघर्ष को विषय बनाकर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। कलाकार प्राकृतिक सुषमा में मुग्ध है। उसी समय उसके मित्र उसे यथार्थ के धरातल के कटु अनुभवों की जानकारी कराते हैं। कलाकार उनके साथ न जाकर निद्रा मग्न हो जाता है जिसमें उसका अवचेतन उसे स्वर्ग ले जाता है, जहाँ उसे सूर कबीर, तुलसी, मीरा, की ध्वनियाँ सुनायी देती है, किन्तु जगने पर उसे सांसारिक द्वन्द्वों का अनुभव होता है, और कलाकार दलितों मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है। यही इसकी कथावस्तु है, जिसमें घटनाओं का अभाव है। दृश्य घटनाएँ कम है, सूच्य अधिक हैं। वर्णनों के द्वारा ही

नाटकीयता उत्पन्न की गयी है।

इसके भी पात्रों में मांसलता नहीं है। वे प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित हुए हैं। अतः उनका चरित्र नगण्य है। इसमें कहीं छोटे, कहीं बड़े संवाद हैं। संवाद तत्सम-प्रधान काव्यात्मक भाषा में है अतः साधारण दर्शक की रसानुभूति में व्याघात उत्पन्न होगा।

इसमें तीन दृश्य हैं। अन्तिम दो दृश्य स्वप्न-दृश्य हैं। रंगमंच की दृष्टि से इसमें स्थान और समय के साथ रंगसंकेत भी उपलब्ध है जैसे— प्रथम दृश्य — सन्ध्या का समय एक तरुण कलाकार या रंग बक्ष कलाकार दीवार पर लगी काली तख्ती पर रंगीन खड़ियों से पतझर का रंगीन चित्र बना रहा है।[1] स्वप्न दृश्यों में संगीत की ध्वनियों का उल्लेख है। पात्रों के प्रवेश, वाचिक, अभिनयों का भी यत्र तत्र उल्लेख है। यह गीतिनाट्य पंत के अन्य गीतिनाट्यों से सरल रंगमंचीय है। प्रकाश एवं ध्वनि का विस्तृत उपयोग यह सिद्ध करता है कि यह भी रेडियो प्रसारण के लिए लिखा गया होगा। इसे अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली होगी।

विविधवय :—

वैज्ञानिक द्वारा अन्तरिक्ष यात्रा उसकी कथावस्तु है। खेचर का यान का आकाश भ्रमण , पृथ्वी की परिक्रमा पूरी कर अवतरण की तैयारी, नील-अग्नि की चुनौती, विशाम्बर द्वारा प्रबोधन और खेचर का सकुशल अवतरण उसकी घटनाएँ हैं। घटनाएँ सरल, नाटकीय हैं। इसमें दो पुरुष एवं एक स्त्रीपात्र है। पात्र व्यक्ति नहीं हैं। अनेक ध्वनियों को पात्र बनाया गया है। संवाद छोटे, नाटकीय एवं काव्यात्मक हैं। इसमें एक ही दृश्य है। प्रारम्भ में मंगलाचरण है। रंगमंच में विमान संचरण अनभिनेय है। ध्वनि-संकेतों का उल्लेख है जैसे — प्रोपेलर के उड़ने की ध्वनि[2] मेघ गर्जन तथा वज्रनिपात का घोर रव[3] इत्यादि। यह रेडियो के लिए लिखा गया है अतः रंगमंचोपयुक्त घात-प्रतिघात से नाटकीय घटनाओं का अभाव है। रंगमंच में इसका प्रदर्शन अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल सकेगा।

उर्वशी :—

राक्षस से उर्वशी की रक्षा, उर्वशी की विरहव्यथा, विदूषक का रम्भा से पत्र प्राप्त कर पुरूरवा को सूचित करना, उर्वशी का नृत्य एवं भरत-मुनि का शाप देना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। राक्षस द्वारा उर्वशी का अपहरण रम्भा का पत्र लाना सूक्ष्म घटनाएँ हैं। घटनाएँ सरल एवं नाटकीय हैं। पुरूरवा, विदूषक, भरत मुनि, रम्भा, चित्रलेखा, सुकेशी, मेनका

1से 3 तक — सौवर्ण, पृ0 57, 94, 10।

उर्वशी इसके पात्र हैं। पुरूरवा एवं उर्वशी का चरित्र अच्छे अंकित हुए हैं। रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं लगती है। सभी पात्र क्रियाशील हैं। संवाद छोटे, सरल गत्यात्मक तथा कुछ लम्बे हैं। किन्तु अस्वाभाविक नहीं हैं। क्योंकि राजा के मन में उर्वशी के प्रति प्रेम की गहराई जानने हेतु उसका कथन स्वभावतः लम्बा हो गया है।

इसमें चार दृश्य हैं। सभी दृश्य समान अवयव के हैं। प्रथम दो दृश्य स्वर्ग के तृतीय राजोद्यान एवं चतुर्थ स्वर्ग हैं। अतः एक ही पर्दे से काम चलाया जा सकता है। रंग-मंच की सज्जा के लिए संकेत नहीं दियेगये हैं। केवल तृतीय दृश्य में राजोद्यान एवं चतुर्थ में मन्दार की छतनार छाँह का उल्लेख किया गया है। सभी दृश्य अभिनेय हैं। नाट्यकार नेआंगिक — दाँत पीसकर(पृ034) ताली बजाकर (पृ0 36) दूर से ढूँढती, झाँकती मेनका आती है (पृ049) मेनका दौड़कर चरणों से लिपट जाती है(पृ052) वाचिक — दूर सुदूर से आती नारी कण्ठ की आर्त पुकार (पृ033) व्यंग्य की हँसी हँसकर(पृ0 34) कुटिल हास्य के साथ (पृ0 35) रूक-रूक कर रसीले स्वर से (पृ0 36) स्वर में हास्यास्पद नाटकीयता(पृ045) सात्विक — सहमता-सकुचता हुआ(पृ0 45) अचम्भे में पड़कर (पृ049) झुँझलाकर(पृ050) अश्रु गद्‌गद कण्ठ से (पृ0 53) आदि अभिनयों का उल्लेख किया है। बीच बीच में वाद्य यन्त्रों का सहारा लिया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उर्वशी में यद्यपि रंग संकेतों का बहुत अभाव है तथापि निर्देशक की कुशलता से इसे रंगमंच में आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है।

<u>गंगावतरण :—</u>

गंगा के आनयन को केन्द्र बना कर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। भगीरथ का संकल्प, अप्सराओं का तपस्या में व्याघात, ब्रह्मा का प्रसन्न होकर नारद के परामर्श से गंगा को धरती के लिए छोड़ने हेतु तत्पर होना, शंकर द्वारा गंगा का धारण करना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। घटनाएँ सरल, नाटकीय, एवं गतिशील हैं। सूत्रधार के द्वारा घटनाओं को जोड़ा गया है। भगीरथ, ब्रह्मा, नारद, शंकर, उर्वशी, रम्भा, इसके पात्र हैं। भगीरथ का दृढ़ संकल्प वाला व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं रहती है। इसके संवाद नाटकीय, सरल एवं रंगमंचीय है। प्रारम्भ में सूत्रधार का कथन लम्बा हो गया है।

इसमें तीन दृश्य हैं। दृश्यावयव का ध्यान नहीं रखा गया है। तृतीय दृश्य सबसे बड़ा सात पृष्ठों का है और द्वितीय दृश्य सबसे छोटा दो पृष्ठों का है। भगीरथ का तप करना दृश्यरूप में है। सूत्रधार पहिले संकल्प की बात कहता है फिर सहज स्वाभाविक स्वर में कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाता है। अच्छा एवं नाटकीय तो यह होता कि स्वयं भगीरथ रंगमंच में तपस्या

लीन होकर अपने संकल्पों की पुनरावृत्ति करता। एक ही पर्दे में सारा नाटक अभिनीत हो सकेगा। रंगमंच की सज्जा का कोई उल्लेख नहीं है। यत्र-तत्र पात्रों की कुछ क्रियाओं का उल्लेख है। अतः यह कहा जा सकता है कि इसका मंचन बहुत अधिक सफल नहीं हो सकेगा।

<u>पाषाणी :—</u>

अहल्या शाप की कथा इसमें विन्यस्त है। गौतम का आश्रम के प्रति मोह, अहल्या और गौतम का प्रेमालाप, अहल्या का स्वप्न, कुपित गौतम का शाप इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। अहल्या जन्म की कथा, सूक्ष्मरूप में वर्णित है। घटना-प्रवाह सरस एवं नाटकीय है। स्वप्न में इन्द्र का आना रहस्य उत्पन्न करता है। गौतम अहल्या और मल्लिका पात्र हैं। अहल्या की अन्तर्व्यथा को मुखरित किया गया है। मंच में पात्रों की भीड़ नहीं लगती है। पात्र क्रियाशील हैं।

इसमें तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य सबसे छोटा और अन्तिम सबसे लम्बा है। तीनों दृश्य आश्रम से संबंधित हैं। अतः एकही पर्दा से सारा गीतिनाट्य अभिनीत हो सकता है। स्थान, समय और क्रिया व्यापार का समन्वय बहुत ही अच्छे ढंग से हुआ है। सन्ध्या से प्रारंभ होकर रात्रि के अन्तिम प्रहर तक की कथा इसमें विन्यस्त है। रंगमंचीय संकेत भी दिये गये हैं— प्रथम दृश्य वाद्य-संगीत के पश्चात् अवसाद भरे स्वर में कुटी के द्वार से अहल्या का गीत सुनायी देता है। सांझ का समय। आश्रम द्रुमों पर पक्षियों का कोलाहल। दूर एक कोने से हवन करते हुए किसी ऋषि का गम्भीर स्वर(पृ० 77) द्वितीय दृश्य डेढ़ पहर रात बीत चुकी है। महर्षि गौतम थके पाँवों से कुटीर-प्रांगण में प्रवेश करते हैं। पृ082) तृतीय दृश्य — आधी रात का सन्नाटा। बाहर झींगुरों की झंकार। दूर कहीं पपीहा पुकारता है(पृ089) नाट्यकार ने कायिक — टुक रुक कर(पृ080) प्रस्थान(पृ082) अलस अंगड़ाई के साथ(पृ083) एक झटके के साथ(पृ085) आँखें चमक कर खड़ी हो जाती है(पृ086) जल्दी-जल्दी लौट आकर (पृ095) वाचिक — अतिरिक्त हँसी हँस कर (पृ079) मधुर व्यंग्य से(पृ084) चीखकर (पृ० 92) गिड़गिड़ाकर(पृ० 94) फिसफिसाकर(पृ097) सिसक कर(पृ099) सात्विक —— विस्मय से(पृ085) निश्चिन्त भाव से(पृ086) कुपित होकर (पृ० 89) गद्गद स्वर से(पृ० 95) क्षोभ और आक्रोश से उसकी साँस फूल रही है(पृ095) कुण्ठित कण्ठ से(पृ० 96), व्यथित होकर(पृ097) मूर्छित हो जाते हैं(पृ099) इत्यादि अभिनयों का उल्लेख किया है। कहना नहीं होगा कि सरस नाटकीय तनाव पूर्ण घटनाओं का विन्यास कर छोटे-छोटे संवादों का प्रयोग तथा यथावसर रंगसंकेतों का उल्लेख कर जानकी वल्लभ शास्त्री ने इसे रंगमंचीय बनाया है।

<u>मंजरी :—</u>

इसकी कथावस्तु रामलोचन से प्रभावित है। राजा रानी का प्रणय प्रसंग, भैरवानन्द योगी का चमत्कार प्रदर्शन हेतु अद्वितीय तरुणी का आह्वान, राजा का मुग्ध होना, रानी द्वारा उसे बन्दी बनाना, राजा द्वारा द्वार खटखटाना, मूर्छित होने पर मंजरी का पश्चात्ताप राजा के मंजरी के साथ परिणय की तैयारी मंजरी का अन्तर्द्वन्द्व एवं आत्महत्या जिसे सुनकर भैरवानन्द भी समाप्त हो जाता है, राजा का वियोग इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। सभी घटनाएँ सरल हैं। घटनाएँ गतिशील एवं क्रिया व्यापार प्रभावान्विति से पूर्ण हैं। घटनाओं में नाटकीयता, आकस्मिकता है जिससे दर्शक रहस्याकुल हो उठता है।

इसमें राजा भैरवानन्द, विदूषक, एवं रानी, मंजरी कृष्णा कमला, दो सखियाँ चेटियाँ प्रमुख हैं। इस प्रकार रंगमंच में पात्रों की भीड़ नहीं रहती है। तृतीय दृश्य में कुछ चेटियाँ अवश्य निष्क्रिय हैं। क्योंकि वह कुछ वाक्य बोलकर खड़ी रहती है। उनका प्रस्थान उल्लिखित नहीं है। शेष पात्र सक्रिय हैं। इसके संवाद सरल स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल हैं। द्वितीय दृश्य(पृ०119-121) में मंजरी का संवाद दो पृष्ठों का, इसी तरह से पंचम दृश्य में उसका कथन लम्बा है। शेष संवाद रसानुभूति कराने में समर्थ हैं। संवादों से नाटकीयता उत्पन्न हुई है।

यह गीतिनाट्य पाँच दृश्यों का है। इसमें दृश्यावयव का ध्यान रखा गया है। अ अर्थात् प्रारम्भ के दृश्य बड़े और अन्त में छोटे हैं। सभी दृश्य राज-भवन से संबंधित है। रहस्य उत्पन्न करने के लिए तत्त्व का प्राकट्य दिखाया गया है। इसी तरह से पंचम दृश्य में(पृ० 139) मंजरी की आत्महत्या वर्जित दृश्य है। कुछ अप्राकृतिक तत्वों का सहारा लिया गया है। अचानक आँधी, अन्ध, बादल गरजना, बिजली कड़कड़ाना(पृ० 139) इत्यादि। शेष दृश्य अभिनेय हैं। मंच सज्जा संकेत का अभाव है। वाचिक अभिनयों का विशेष उल्लेख है — सस्मित सलज्ज स्वर से(पृ०106) भैरवानन्द अट्टहास करता है(पृ०111) गिड़गिड़ाकर (पृ०113) मंजरी आक्रुष्ट स्वर में(पृ० 120) इत्यादि यत्र तत्र वाद्य-यन्त्रों की सहायता से वातावरण सजीव बनाया गया है। कहना नहीं होगा कि मंजरी की कथावस्तु सरल नाटकीय एवं रंगमंचीय है। यद्यपि नाट्यकार ने मंच संकेतों का उल्लेख नहीं किया है तथापि थोड़े-परिवर्तन से इसे रंगमंच में सफलतापूर्वक उपस्थित किया जा सकता है।

<u>अशोक वन-बन्दिनी :—</u>

इसमें सीता का पश्चात्ताप, त्रिजटा-प्रबोध, राक्षसियों द्वारा उसे त्रास, रावण आगमन, उसका प्रणय-निवेदन, सीता की दृढ़ता मन्दोदरी की सहायता, राक्षसियों द्वारा सीता को त्रास देना, मंदोदरी के समक्ष सीता द्वारा राम-प्रेम की सफलता बताना एवं मंदोदरी का प्रभावित होना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। स्वयम्बर सभा में रावण की पराजय, अरन्ध्रुवकन्याय

शूर्पणखा-अंगच्छेदन, हनुमान का लंका-आगमन, सूक्ष्म घटनाएँ हैं। इसका घटना-प्रवाह जटिल नहीं है। राक्षसियों द्वारा त्रास देने में कौतूहल तथा तनाव की स्थिति से नाटकीयता उत्पन्न होती है। इसमें रावण सीता, त्रिजटा, मन्दोदरी, एवं राक्षसियाँ पात्र हैं। सीता की दृढ़ता राम-निष्ठा, का अच्छा चित्रण हुआ है। रंगमंच में पात्रोंकी भीड़ नहीं लगती है। सभी पात्र सक्रिय हैं। इसके संवाद कहीं छोटे एवं कहीं बड़े हैं। छोटे संवाद सरल, क्षिप्र व्यंग्यात्मक एवं कौतूहल से पूर्ण हैं। लम्बे संवाद पात्र की मनःस्थिति को द्योतन कराते हैं। वैसे संवादों की आवश्यकता भी पड़ती है। इनसे अंक रसव्याघात नहीं अनुभव करेगा।

इसमेंदो दृश्य हैं। प्रथम बड़ा एवं द्वितीय छोटा है। दोनों दृश्य उद्यान से संबंधित हैं। एक ही पर्दा से काम चलाया जा सकता है। स्थान समय एवं क्रिया-व्यापार का इसमें अच्छा संकलन हुआ है। सारी घटनाएँ अशोक वन में ही घटित होती हैं। अन्तिम दृश्य रात्रि के अन्तिम प्रहर का है। रंगमंच की सज्जा निर्देशक को करनी पड़ेगी — जैसे — अशोकवन में सीता को चारों ओर से घेरे राक्षसियाँ बैठी हैं। उद्यान का सुन्दर दृश्य(पृ01) पात्रों के अभिनय, केलिए नाट्यकार ने कहीं कहीं संकेत लिखे हैं — आकर (पृ07) जानकी से(पृ0 8), सब मिलकर डराती त्रास देती है, कोई हिलाती है कोई सिर के बाल पकड़ कर खींचती है (पृ011) अट्टहास करके(पृ015) धीरे धीरे कठोरता से (पृ016) रावण खड्ग उठाकर मारने लगता है, उसी समय सरमा प्रवेश करके (पृ023) इत्यादि। नेपथ्य का भी उपयोग नाट्यकार किया है। सारांश यह है कि यह गीतिनाट्य रंगमंच की अपेक्षा रेडियो में अधिक सफल होगा। रंगमंच में भी इसका मंचन असफल नहीं होगा।

गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण :—

महाभारत युद्ध में दुर्योधन की चिन्ता एवं द्रोण से मन लगाकर युद्ध करने का आग्रह, उन पर पक्षपात का आरोप कर उन्हें उत्तेजित करना, द्रोण की ग्लानि इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। द्रुपद कथन, एकलव्य प्रसंग सूक्ष्म रूप मेंउल्लिखित हैं। मूल घटनाएँ बहुत सूक्ष्म हैं। रंगमंच में द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व का निरूपण मार्मिक ढंग से हुआ है। किन्तु रंगमंच मेंद्रोण निष्क्रिय रहता है।इसके संवाद भी लम्बे हैं। अभिनय संकेतों का अभाव है। अतः यह कहा जा सकता है कि इसका कथानक सूक्ष्म, पात्र निष्क्रिय, संवाद लम्बे, एवं रंगसंकेतों का अभाव होने के कारण इसे रंगमंच में उपस्थित नहीं किया जा सकता है। यह तो रेडियों के लिए ही लिखा गया है, क्योंकि छाया के रूप में उनका मन उपस्थित होता है, जिसे ध्वनि माध्यम से अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है। रंगमंच की दृष्टि से यह असफल है।

सूखा-सरोवर :—

अचानक सरोवर का सूख जाना, नगर-निवासियों की व्याकुलता, संन्यासी की चिन्ता, छोटे राजा एवं बड़े राजा के बीच द्वन्द्व, बड़े राजा का सन्यासी बन राज भवन छोड़ना, राजकुमारी एवं पुरुष का प्रणय-प्रसंग किन्तु मिलन न होने के कारण उसका पागल होना, जल लौटने की शर्त के ज्ञात होते ही पागल का बलिदान होना, जलागमन इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। वृद्ध का कारावास सेवन, राजकुमारी का डोला मैनापुर के राजा के पास भेजना, पुरुष द्वारा उसकी रक्षा, राजकुमारी द्वारा आत्महत्या करना सूक्ष्म घटनाएँ हैं। इसकी घटनाओं में आकस्मिकता, तनाव एवं कौतूहल है। क्रियाओं के घात-प्रतिघात से नाटकीयता उत्पन्न की गयी है। क्रिया-व्यापार सरल एवं गतिशील है। रंगमंच में घटनाओं से जिस प्रभावान्विति की सृष्टि की जाती है, सूखा-सरोवर पूर्ण क्षमतावान है।

इसमें संन्यासी, वृद्ध पुरोहित, पागल, छोटा राजा, बड़ा राजा, सरोवर देवता नगरी के कुछ लोग एवं सैनिक तथा राजमाता, राजकुमारी पात्र हैं। रंगमंच में पात्र गतिशील हैं। जब पात्र निष्क्रिय होने लगते हैं तो नाट्यकार बड़ी कुशलता से उनका प्रस्थान करा देता है।

इसमें छोटे बड़े संवाद हैं। छोटे संवाद गतिशील व्यंग्यात्मक, अर्थ गाम्भीर्य से युक्त हैं। कहीं कहीं बहुत छोटे संवाद हैं। लम्बे संवाद पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करते हैं। उनसे रंगमंच में रस-व्याघात नहीं उत्पन्न होता है।

इसमें तीन अंक हैं। प्रथम दो अपेक्षाकृत छोटे और अन्तिम सबसे बड़ा है। इसमें दृश्यविधान पर ध्यान नहीं दिया गया है। इसकी सभी घटनाएँ दृश्य हैं। रंगमंच में अनभिनेय दृश्य नहीं है। एकाध स्थलों में कुछ कठिनाई अवश्य होगी जैसे सरोवर में जल का आना, जिसे नल की सहायता से मंचित किया जा सकता है। इसमें दो स्थानों की घटनाएँ व्यंजित हैं। सूखा सरोवर का किनारा एवं राजप्रासाद। अतः दो पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी। नाट्यकार ने रंग संकेत का उल्लेख किया है — जैसे दूसरा अंक —' मंच पर राजप्रासाद के प्रकोष्ठ का दृश्य उपस्थित होता है। पीछे बीचों-बीच एक सिंहासन रखा हुआ है। दायीं-बायीं ओर दो सैनिक उसकी रक्षा में पहरा दे रहे हैं(पृ047)।

नाटक को वातावरण को सजीव बनाने के लिए नाट्यकार ने प्रकाश एवं ध्वनि योजना की व्यवस्था का उल्लेख किया है। जैसे —'क्षीण संगीत की भूमिका से धीरे धीरे पर्दा खुलता है। पर समूचे दृश्य पर अंधकार की इतनी पर्तें पड़ी हुई है कि मंच पर प्रायः कुछ नहीं दीखता, चारों ओर अजब सन्नाटा, जैसे श्मशान की काली रात हो।xx धीरे धीरे दृश्य पर धूमिल सा प्रकाश फैलता है और मंच का सारा दृश्य स्पष्ट होने लगता है।[1] धीरे धीरे

1- सूखा सरोवर पृ0 11-12

मंच का सारा प्रकाश बढ़कर सूने सरोवर की ओर चला जाता है और वहाँ एकाएक एक तीव्र आलोक फैलता है। ऊपर से तूफान का गर्जन और वायु के थपेड़ों से सारा वातावरण भर जाता है। उस बीच कभी- कभी एक काँपती हुई प्रकाश की रेखा संन्यासी और शरणागत राजा प्रजा के ऊपर पड़ती है।[1] नाट्यकार ने पात्रों के लिए अभिनयों का उल्लेख किया है — जैसे— (1)कायिक — छिपता हुआ(पृ0 14) घूमता हुआ, खींच कर सामने लाता हुआ(पृ015), वृद्ध का हाथ पकड़कर (पृ017) आगे बढ़कर (पृ023) राजा के संग सब लोग सरोवर से नत-मस्तक होते हैं(पृ0 33) लड़खड़ाता हुआ(पृ042) वाचिक — व्यंग्य से (पृ0 23) डाँटता सा(पृ025) चीख कर(पृ051) भारी स्वर में (पृ0 55) रहस्य स्वर से(पृ057) अट्टहास करता है(पृ0 60) कड़े स्वर में (पृ075) सात्विक — चकित एक दूसरे को देखते रह जाते हैं (पृ0 19) घबरा कर(पृ0 38) काँपता हुआ पर क्रोध से(पृ0 59) चिन्ता में (पृ0 71) रूँधे कण्ठ से (पृ0 77) रो पड़ती है(पृ0 78) एकाएक दर्द से कराह उठती है(पृ0 96) इत्यादि।इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान की सूचना अंकित है। कहना नहीं होगा कि सूखा सरोवर का कथानक सरल, घटनाएँ नाटकीय, आरोहावरोह सिक्त एवं नाट - कीयता है, पात्रोपयुक्त वातावरण, तथा अभिनय उल्लेख इसे रंगमंचीय बनाता है। कुशल अभिनेता एवं निर्देशक इसे अच्छे रूप में प्रस्तुत कर पाठकों को आकृष्ट कर सकेंगे। यद्यपि यह नाटक लम्बा है, तथापि घटना-प्रवाह के कारण उनका मन लगा रहेगा।

उर्वशी :—

पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम प्रसंग को केन्द्र बनाकर दिनकर ने उर्वशी की रचना की है। सूत्रधार एवं नटी द्वारा ज्योत्स्ना की मोहकता का वर्णन, स्वर्ग से मेनका,सहजन्या, रम्भादिक अप्सराओं का आगमन एवं उर्वशी की व्याकुलता का वर्णन है। उर्वशीऔर पुरूरवा के मिलन को दासी निपुणिका से सुनकर महारानी औशीनरी दुखित होती है । उर्वशी एवं पुरूरवा गन्ध मादन पर्वत पर एक वर्ष विहार करते हैं। उर्वशी अपने पुत्र को जन्म देकर उसे सुकन्या च्यवनाश्रम में छोड़कर पुरूरवा के पास चली जाती है। पुरूरवा का स्वप्न में संन्यासी बनना, सुकन्या सहित आयु का पिता से मिलन, उर्वशी का स्वर्गगमन, पुरूरवा का क्षोभ एवं प्रारब्ध द्वारा प्रबुद्ध होने पर पुत्र को सिंहासनारूढ़ कर कानन प्रस्थान इत्यादि प्रमुख घटनाएँ हैं। राक्षस से उर्वशी की रक्षा, उर्वशी एवं पुरूरवा का प्रथम मिलन, सुकन्या-च्यवन प्रणय-प्रसंग पुरूरवा स्वप्न - वर्णन भरतशाप कीघटनाएँ सूक्ष्म रूप में वर्णित हैं। तृतीय अंक को छोड़कर शेष कथा-प्रवाह गतिशील है। घटनाएँ सरल नाटकीय एवं प्रभावान्विति से पूर्ण हैं। तृतीय अंक में कथावस्तु शिथिल एवं अनाटकीय है, जिसमें वर्णनात्मकता का आधिक्य है।

1- सूखा सरोवर पृष्ठ संख्या 34

इसके पात्र पुरूरवा, महामात्य, विदूषक, आयु, सभासद एवं सहजन्या, रम्भा मेनका, उर्वशी, सुकन्या, औशीनरी, चित्रलेखा, निपुणिका, मदनिका, दासियाँ हैं। सूत्रधार एवं नटी का भी उल्लेख है। इस प्रकार यह गीतिनाट्य स्त्री पात्र बहुल गीतिनाट्य है। पुरूरवा एवं उर्वशी का चरित्र मार्मिक ढंग से चित्रित हुआ है। प्रथम अंक में पात्रों की भीड़ है। उस समय एकाध पात्र निष्क्रिय खड़े रहते हैं। जैसे सहजन्या का प्रथम कथन और दूसरे कथन में दो पृष्ठों का अन्तर है(पृ0 4 एवं 7)।

इसमें एक तरफ छोटे संवाद हैं तो दूसरे तरफ लम्बे संवाद हैं। छोटे संवाद सरल, प्रभावी, गत्यात्मक एवं रहस्यपूर्ण तथा नाटकीय हैं। लम्बे संवाद पात्रों की मनःस्थिति के द्योतक हैं। अनेक स्थानों पर संवाद अरंगमंचीय हो गये हैं। तृतीय अंक में अनेक संवाद जहाँ कल्पनात्मक एवं भावात्मक है, वहीं ये रंगमंच के लिए अनुपयुक्त हैं। पुरूरवा(पृ036-42) के कथन सर्वाधिक लम्बे हैं जो रंगमंच के लिए रंगानुकूल नहीं हैं।

इसमें पाँच अंक हैं। अंकानुपात का ध्यान नहीं रखा गया है क्योंकि द्वितीय दृश्य सबसे छोटा और तृतीय दृश्य सबसे बड़ा है। अन्तिम दृश्य भी शेष दृश्यों से बड़ा ही है। अंक दृश्यों में विभक्त नहीं हैं। एक अंक में एक ही दृश्य हैं। नाट्यकार ने स्थलों का उल्लेख किया है। जिसमें प्रथम, द्वितीय एवं पंचम दृश्य प्रासाद एवं उद्यान से, तृतीय गन्धमादन पर्वत तथा चतुर्थ अंक च्यवनाश्रम से सम्बंधित हैं। अतः निर्देशक को मंच में दो पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी। एक राजप्रासाद एवं उद्यान को चित्रित करने वाला तथा दूसरा गन्धमादन पर्वत से संबंधित, जिसे थोड़े बहुत परिवर्तन से च्यवनाश्रम में परिवर्तित किया जा सकता है। सभी घटनाएँ रंगमंच में अभिनीत हो सकती है। तृतीय अंक में वर्जित एवं अनभिनेय दृश्य है, जहाँ उरपीड़क आलिंगन कोशिथिल करने एवं अधरपुर को कठोर चुम्बन से आबद्ध करने का आग्रह है(पृ0 50) मंच सज्जा का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है- जैसे - राजा पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के समीप एकान्त पुष्पकानन, शुक्ल पक्ष की रात, नटी और सूत्रधार चाँदनी प्रकृति की शोभा का पान कर रहे हैं।[1] द्वितीय अंक प्रतिष्ठानपुर का राजभवन, पुरूरवा की महारानी औशीनरी अपनी दो सखियों के साथ।[2] नाट्यकार ने पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान का उल्लेख यत्र-तत्र किया है- चित्रलेखा का पहुँचती है(पृ013) कंचुकी का प्रवेश(पृ028) आदि। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं पात्रों के लिए अभिनयों का भी उल्लेख है। नेपथ्य (पृ0116) का भी उपयोग है। समस्त गीतिनाट्यों पर विहंगम दृष्टि डालने पर इस बात का आश्चर्य होता है

1- तथा 2 — उर्वशी, पृ0 1, 19

कि इतने लम्बे नाटक में पात्रों के अभिनयों, ध्वनिसंकेतों, रंगमंच- साजसज्जा के उल्लेख का अभाव है। यह न तो रेडियो प्रसारण की दृष्टि से लिखा गयाहै, न ही रंगमंच की सीमाओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है। वस्तुतः यह नाटक के अनुरूप नहीं है क्योंकि मात्र पात्रों के संवाद ही लिख देने से कोई काव्य, नाटक नहीं बन सकता है और उर्वशी में जिस वर्णनात्मक एवं काव्यात्मकता का प्राधान्य है, वह उसे नाटकों की सीमा के बाहर रखता है। मूलतः यह काव्य है, वाह्यावरण इसे नाटक सिद्ध करता है। रंगमंच में इतनी सघन काव्यात्मकता की आवश्यकता नहीं होती है। कथावस्तु सरल होते हुए भी घटना-प्रवाह में नाटकीयता कम ही है। अतः रंगमंच में इसका प्रदर्शन होने पर अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल सकेगा।

संशय की एक रात :—

राम कथा में अघटित प्रसंग को लेकर इस गीतिनाट्य की रचना की गयी है। युद्ध और शान्ति की समस्या को लेकर राम के अन्तर्द्वन्द्व को विषय बनाया गया है। सेतु बन्ध के बाद रावण के दरबार से दूत असफल होने पर राम यह निर्णय नहीं ले पा रहे हैं कि सीता के लिए युद्ध उचित है या नहीं। लक्ष्मण का उत्साह, नील द्वारा माया का उल्लेख, राम का छाया रूप में दशरथ, एवं जटायु से संवाद, दशरथ द्वारा राम का प्रबोधन, युद्ध-परिषद् की बैठक, हनुमान द्वारा युद्ध का समर्थन विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्त में युद्ध का निर्णय सर्वमान्य होना, इत्यादि इसकी संक्षिप्त कथा है। घटनाओं में मौलिकता होने के साथ ही साथ नाटकीयता है। क्रिया व्यापार गतिशील, सरल एवं रंगमंचीय है। तनाव, अन्तर्द्वन्द्व ने घटनाओं में आकस्मिकता का संयोग कर उसे आकर्षक बनायाहै।

इसमें राम, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, दशरथ, जटायु, नील, जाम्बवन्त, नल, सुग्रीव इत्यादि पुरूष पात्र हैं। इसमें राम, लक्ष्मण, विभीषण का चरित्र विशेष रूप से अंकित है। सभी पात्र सक्रिय हैं। अन्तर्द्वन्द्व के समय चिन्तन में कहीं कहीं शिथिलता अवश्य आ गयी है। इसमें एक तरफ छोटे तथा दूसरी तरफ लम्बे संवाद हैं। छोटे संवाद सरल, क्षिप्र, एवं रंगमंचीय है। लम्बे संवाद पात्रों की मनोवृत्ति के द्योतक हैं। उनकी अन्तश्चर्या की अभिव्यक्ति के लिए लम्बे संवाद स्वाभाविक हैं। राम लक्ष्मण एवं विभीषण के कथन लम्बे हैं।

इसमें चार अंक हैं। चारों के शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। इसमें अन्तिम दृश्य सबसे छोटा है। सारी घटनाएँ सेतुबन्ध तट पर तथा युद्ध शिविर में घटित होती है। समय और स्थान का उल्लेख नाट्कार ने किया है जैसे — रामेश्वर का सिन्धु तट।— रूपहली सन्ध्या हो रही है(पृ03) चतुर्थ वर्ग — प्रत्युत्पन्नता, शिविर के मचान से उजयाबा स्पष्ट है(पृ0 83) इस प्रकार ~~xxxxxxxxxxxxxxxx~~ इसमें सिन्धु तट एवं शिविर के मंचन हेतु एक ही पर्दा की

आवश्यकता पड़ेगी। द्वितीय दृश्य में एक अन्तर्दृश्य(पृ० 36) है। नाट्यकार ने पात्रों के प्रवेश प्रस्थान का उल्लेख किया है जैसे लक्ष्मण का प्रवेश (पृ08) कुछ क्षण में नील का पदार्पण(पृ033) शेष लोग चले जाते हैं। उपरान्त छाया और राम ही रह जाते हैं। छाया थोड़ी दूर तक राम के साथ जाती है(पृ० 41) स्थान स्थान पर ध्वनियों से वातावरण सजीव बनाया गया है। कहना नहीं होगा कि इसके कथानक में वह उतार-चढ़ाव अनुरूप तनाव, रहस्यात्मकता एवं आकस्मिकता है जिसकी अभिव्यक्ति गीतिनाट्य में होती है। पात्र रंगमंच में क्रियाशील हैं। संवाद लम्बे हैं। यद्यपि इस दृष्टि से यह अभिनेय है किन्तु नाट्यकार ने अभिनयों का उल्लेख नहीं किया है। रेडियो से प्रसारित करने पर भी अनेक स्थानों में ध्वनियों की आवश्यकता पड़ेगी। शायद लेखक इसे खण्ड-काव्य जैसे लिखना चाहता रहा होगा, किन्तु उसका रूप गीतिनाट्य जैसा बन गया। निष्कर्षतः यह रंगमंच में असफल नहीं कहा जा सकता है।

एक कण्ठ विषपायी :—

दक्ष द्वारा शंकर को अपमानित करने के लिए उन्हें तथा सती को यज्ञ में न आमंत्रित करना, सती का आत्मदाह, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण के समक्ष भृत्य सर्वहत का उन्माद वर्णन, शंकर का क्रोध करना, वरुण-कुबेर का प्रवेश, शंकर का स्वर्ग पर आक्रमण युद्ध परिषद् का आह्वान, विष्णु द्वारा सती के शव का खण्डन एवं शंकर का शान्त होना, इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। शंकर द्वारा सती को मोहित कर विवाह करना, राजकुमार सुलभा द्वारा अपने कमरे में एक पक्षी का वध करना, यज्ञ-यज्ञ में सती का आत्मदाह, पत्नी-वियोग शंकर का स्वर्ग की सीमा पर आक्रमण करना शंकर का वापस लौटना गौण घटनाएँ हैं। युद्धोत्तर ध्वंसमान दृश्य, संकट एवं विकृति संस्कृति का दिग्दर्शन हेतु जिन घटनाओं का चयन किया गया है, वे सरल, सजीव, एवं तनाव से पूर्ण हैं। नाटकीय उतार-चढ़ाव के कारण क्रिया व्यापार में प्रभावान्वितिहै।

इसमें सर्वहत, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, दक्ष, वरुण, कुबेर, शेष, द्वारपाल, अनुचर, दो सिपाही, पुरुष एवं दीक्षित्री स्त्री पात्र हैं। इनमें सर्वहत, शंकर का चरित्र विशेष रूप से अंकित हुआ है। द्वितीय दृश्य में पात्रों की भीड़ रंगमंच में हो गयी है। ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र, सर्वहत, कुबेर, उपस्थित हैं। प्रारम्भ में विष्णु निष्क्रिय से लगते हैं उनके दो कथनों में लगभग छह(पृ042-47) पृष्ठों का अन्तर है। शेष स्थानों में पात्र सक्रिय हैं।

प्रायः सभी स्थानों में संवाद छोटे हैं। सर्वहत के कथन कुछ अवश्य लम्बे हैं। किन्तु नीरस और अरमणीय नहीं हैं। छोटे संवाद सरल, गतिशील अर्थगाम्भीर्य से युक्त एवं नाटकीय हैं।

इसमें चार अंक या दृश्य हैं। प्रथम दो दृश्य राजभवन, तृतीय कैलाश पर्वत एवं चतुर्थ स्वर्ग लोक में ब्रह्मा के कक्ष से संबंधित दृश्य है। इस प्रकार दो पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी। राज-प्रसाद एवं स्वर्ग से संबंधित तथा दूसरा कैलाश पर्वत को चित्रित करने वाले दृश्य। इन दृश्यों में तृतीय छोटा एवं चतुर्थ सबसे बड़ा है। नाट्यकार को रंगमंच की सीमा का पर्याप्त अनुभव है क्योंकि अनभिनेय दृश्यों(सती का आत्मदाह) (यज्ञ विध्वंस, एवं शंकर का आक्रमण तथा सती के शव को काटकर तीर्थों में प्रतिष्ठित करना इत्यादि) को सूच्यरूप में वर्णित किया है। सभीघटनाएँ रंगमंच में मंचित की जा सकती है। सती के शव को कन्धे में रखना, शव का सीने से लगाना(पृ0 80-81) रंगमंच में अपेक्षित प्रभाव नहीं उत्पन्न करेगा। इस दृश्य से शंकर का मोह प्रगट किया गया है।

मंच की साज सज्जा का निर्णय निर्देशक पर छोड़ा गया है — जैसे — स्थान प्रजापति दक्ष का राजकीय गौरव केअनुकूल सुसज्जित निजी कक्ष(पृ0 11) द्वितीय दृश्य— स्थान प्रजापति दक्ष का वही कक्ष किन्तु उसकी साज-सज्जा अस्तव्यस्त है और सारी वस्तुएँ टूटी फूटी हैं(पृ0 41) तृतीय दृश्य — स्थान हिम मण्डित कैलास-पर्वत का एक शिखर(पृ0 71) इत्यादि नाट्यकार ने नेपथ्य का उपयोग किया है — जैसे तभी नेपथ्य से शंकर स्तुति के स्तोत्र सुनायी देते हैं(पृ072) नेपथ्य से उभरता हुआ कोलाहल तेज हो जाता है(पृ0101) नाट्यकार ने मंच में प्रकाश एवं ध्वनि की व्यवस्था का उल्लेख कर इसे मंचोपयोगी बनाने का प्रयास किया है— जैसे — और प्रकाश केमिलयन के साथ परदा गिरता है(पृ0 37) मंच में प्रकाश व्यवस्था द्वारा उदास वातावरण की सृष्टि होती है(पृ0 43) मंच के एक कोने में प्रकाश पड़ता है (पृ0 83) डमरू की आवाज उभर कर धीरे धीरे मंद पड़ जातीहै(पृ091) प्रकाश व्यवस्था द्वारा मंच पर भयंकर एवं भव्य वातावरण की सृष्टि होती है(पृ0125) नाट्यकार ने यथा-वसर पात्रों केप्रवेश-प्रस्थान को नाटकीय बनाने के साथ ही साथ उनके अभिनय के लिए संकेतों का उल्लेख किया है — जैसे कायिक — झुक कर प्रणाम करते हुए(पृ0 23) आकाश की ओर देखते हुए उंगली उठाकर (पृ0 33) अचानक वीरिणी भूमि पर बैठ जाती है और सिर एक ओर ढुलक जाता है(पृ0 35) भूमि पर चारों ओर देखकर (पृ0 46) दाँयाँ हाथ उठाकर (पृ0 63) कन्धा कंधे पर पीछे की ओर झुका हुआ सती का मुख अपने सामने कर लेते हैं (पृ072) इत्यादि। वाचिक — क्रूर हँसी हँसते हुए (पृ0 15) आत्मीयता से फुसफुसाहट के स्वर में (पृ0 49) आवेश में चिल्लाते हुए (पृ055) फटकारते हुए(पृ077) स्वर कसकर (पृ078) सिसकते हुए(पृ087) गरज कर(पृ089) इत्यादि। सात्विक — आवेश में (पृ025) रुंधे कण्ठ से (पृ0 26) आश्चर्य से (पृ056) घृणा से (पृ0 75) गहरी पीड़ा से (पृ075)

घबरा कर (पृ० 88) इत्यादि। सार यह है कि एक कण्ठ विषपायी की घटनाएँ नाटकीय, संवाद सरल एवं कौतूहल पूर्ण तथा पर्दा का उत्थान-पतन, पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान, मंच व्यवस्था के साथ अभिनयों का उल्लेख इसे रंगमंचीय बनाता है। रंगमंच में यह निश्चय ही सफल रहेगा।

उत्तर प्रियदर्शी :—

पूर्व जन्म में एक मुट्ठी धूल के बदले गौतम बुद्ध ने अशोक को राजेश्वर होने का आशीर्वाद देते हैं। अशोक का सम्राट बनना, नरक बनवाने का आग्रह, नरक बनवाकर उसमें घोर की नियुक्ति, उस नरक की सीमा में भिक्षु का आगमन, घोर द्वारा उसे पीड़ित करना, भिक्षु का अनासक्त रहना, जिसे देखने के लिए स्वयं सम्राट का आना, नरक में त्रास पाना, एवं भिक्षु द्वारा उपदिष्ट होना तथा अशोक का बौद्धधर्म में दीक्षित होना इत्यादि घटनाएँ इसमें विन्यस्त हैं। पुर्नजन्म, प्रेत उपद्रव, भिक्षु का ताड़न दृश्य घटनाएँ हैं। इस प्रकार मूल कथा बहुत संक्षिप्त है। घटना प्रवाह सरल एवं नाटकीय है।

इसमें अशोक घोर, मंत्री, भिक्षु प्रमुख हैं। कथावस्तु की घटनाओं के तारतम्य के लिए संवादकों का प्रयोग किया गया है। इसके संवाद, सरल बहुत संक्षिप्त एवं नाटकीय हैं।

इसमें एक ही दृश्य है। सभी घटनाएँ एक ही स्थान में घटित हैं। इसके लिए दो (एक बड़ा और दूसरा छोटा) पर्दे की आवश्यकता पड़ेगी। राजभवन एवं नरक के दृश्य को अंकित करने के लिए। मंचसज्जा का उल्लेख स्वयं नाट्यकार ने किया है — शुद्ध नाट्यधर्मी। पीछे दीवार, दीवार के पार पेड़ तरू और मंदिर कलश की सांकेतिक झलक। दीवार के सामने स्तम्भ के ऊपर पद्मपीठ। यवनिका नहीं होगी। यदि विभाजन सम्भव हो तो मंच के मध्य में चार अंगुल ऊँचा एक चौकोर तख्त बनाया जा सकता है। (पृ०10) पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान एवं मंच दृश्यावर्तन का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। वाद्य संगीत द्वारा वातावरण को सजीव बनाया गया है। नेपथ्य का भी उल्लेख नाट्यकार ने किया है। इस प्रकार नाटकीय घटनाओं सरल संवादों एवं मंचीय साज सज्जा- मंच, पात्रों की वेश-भूषा ध्वनि इत्यादि का उल्लेख इसे पूर्णतः रंगमंचीय बनाता है। इसका आरंभन नयी दिल्ली में त्रिवेणी कला संगम के खुले रंगमंच में 6 मई 1967 को निष्पन्न हुआ था।

इरावती :—

अग्निमित्र और इरावती के प्रणय-प्रसंग की घटनाएँ इसमें विन्यस्त हैं। इरावती का महाकाल मंदिर में गायन, राजभवन में नर्तन, अग्निमित्र का आकृष्ट होना, इरावती को राज्याश्रय मिलना, मालविका के कारण इरावती का संन्यस्त होना इसकी प्रमुख घटनाएँ हैं। इसमें

इरावती का नालन्दा के बौद्ध-विहार से अपूर्व रूप ज्वाला के कारण निष्कासन, उसका उज्जयिनी प्रवेश, संगीत-शिक्षा एवं आत्महत्या हेतु शिप्रा में कूदना तथा राजा गुरु द्वारा प्राण-रक्षा की घटनाएँ सूच्य रूप में वर्णित हैं। इस प्रकार इसमें घटना क्रम सूक्ष्म है। कथाप्रवाह मन्द है। घटनाओं में नाटकीयता कम है। गायन-नर्तन से संबंधित अधिक दृश्य हैं।

इसमें अग्निमित्र, राजगुरु, भिट, वैद, नर्मसचिव, एवं पुरुष एवं इरावती, कावेरी, मालविका, प्रमुख स्त्री पात्र हैं। रंगमंच में सभी पात्र गतिशील हैं। पात्रों की दृष्टि से यह रंगमंचीय है। इसमें छोटे बड़े दोनों संवाद हैं। संवादों की भाषा विशिष्ट भाषा ज्ञान रखने वालों के लिए है। साधारण दर्शक के लिए भाषा दुरूह रहेगी। लम्बे संवाद नीरस नहीं कहे जा सकते किन्तु बिम्बविधान, काव्यात्मकता के कारण लोकप्रिय नहीं होंगे।

इसमें तीन अंक हैं। अंकों को दृश्यों में विभक्त किया गया है। प्रथम अंक में चार दृश्य, द्वितीय अंक में दो दृश्य एवं तृतीय अंक में दो दृश्य हैं। इस प्रकार दृश्यों की संख्या प्रारम्भ की अपेक्षा कम ही है। दृश्यावयव की दृष्टि से प्रथम अंक का तृतीय एवं तृतीय अंक के प्रथम दृश्य बड़े एवं तृतीय अंक का द्वितीय दृश्य सबसे छोटा है। इस प्रकार दृश्यावयव का ध्यान नाट्यकार ने रखा है। इसमें दो स्थानों के दृश्य हैं। प्रथम अंक के दृश्य महाकाल के मन्दिर, अलिन्द एवं कुंज से तथा द्वितीय एवं तृतीय अंक के दृश्य विदिशा के राज भवन अन्तःपुर आदि से संबंधित है। अतः मंदिर एवं राज-प्रासाद चित्रित करने वाले दो पर्दों की आवश्यकता पड़ेगी। मंच सज्जा का ध्यान नाट्यकार ने रखा है — अंक एक दृश्य दो गन्धवती के तट से सटा हुआ मंदिर के सभा भवन सा एक विशाल पट-मण्डप।xxxx मंच के दोनों ओर वृन्द-वाद्य में प्रवीण कलावंत। सामने युवराज अग्निमित्र का स्वर्ण-सिंहासन।xxxदीपाधारों पर दिये जगमगा उठते हैं। मण्डप के बाहर विशाल मशालें उल्का उगलने लगती है(पृ012), नाट्यकार ने शास्त्रीय संगीत का सहारा लेकर वातावरण को अनुकूल बनाया है। कायिक अभिनय — धीरे धीरे बाहर की ओर बढ़ती हुई (पृ08) ठिठक कर (पृ09)दाएँ - बाएँ देखते हुए(पृ010) कपोतमिति रचकर इरावती धीरे धीरे यवनिका के पीछे चली जाती है(पृ019) केश सहलाते हुए(पृ0 32) याचिक — व्यंग्य की हँसी हँसकर (पृ043) ठहाकर हँसती है - (पृ070) आदि के साथ नाट्यकार ने संगीत के स्वरों का आरोहावरोह संकेत उल्लेख किया है। वीणा के स्वरों का प्रयोग बहुत ही नाटकीय है। नेपथ्य(पृ0 82) का भी उपयोग हुआ है। सार यह है कि जानकी वल्लभ शास्त्री ने इरावती को अभिनेय बनाने के लिए सरल, क्रिया-व्यापार युक्त कथानक सरल, काव्यात्मक, संवाद तथा रंगमंच की विस्तृत सामग्री का उल्लेख किया है।

अग्निलीक :—

सीता के निर्वासन एवं भूमि-प्रवेश की घटनाएँ इसमें विन्यस्त हैं। राजपुरुष एवं रथवान का शीघ्रातिशीघ्र गमन, रथवान की व्यथा, देवी(सीता) की अन्तर्व्यथा, वाल्मीकि के समक्ष सीता का आक्रोश, अयोध्या न जाने का संकल्प, आवेश में धरा-प्रवेश, करुण एवं राम की व्यथा का वर्णन इसकी कथावस्तु है। अपवाद लगाकर सीता निर्वासन, रामाश्वमेध-प्रसंग लवकुशोत्पत्ति, स्वयम्वर, वनवास, हनुमान-सीता भेंट, रावण-वध, अग्निपरीक्षा, सूच्यरूप में वर्णित हैं। रंगमंच की दृष्टि से इसमें घटनाएँ सूक्ष्म हैं। वर्णनात्मकता के कारण कथा-प्रवाह मंद है किन्तु नाटकीयता एवं तनाव के कारण रस-व्याघात नहीं अनुभव होगा।

इसमें राम, राजपुरुष, रथवान, वरुण, वाल्मीकि, लव-कुश, एवं सीता, कौशिकी पात्र हैं। रंगमंच में पात्रोंकी भीड़ - सी लगती है। उपस्थित पात्र सक्रिय रहते हैं। इसमें छोटे- बड़े संवाद हैं। छोटे संवाद कौतूहल पूर्ण हैं। लम्बे संवाद पात्र की मनोव्यथा के विम्बजक हैं। सीता के लम्बे कथन(पृ0 44-52) अस्वाभाविक लगते हैं। यहाँ भावा-प्रवाहमयी होते हुए भी नाटकीयता की दृष्टि से क्षीण प्रभाव वाले संवाद हैं।

इसमें तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य छोटा और तृतीय सबसे लम्बा है। तीनों दृश्य वन या आश्रम से संबंधित हैं। अतः एक ही पर्दे से काम चलाया जा सकता है। प्रथम वन मार्ग, द्वितीय एवं तृतीय वाल्मीकि आश्रम को प्रदर्शित करने वाले दृश्य हैं। अनभिनेय दृश्यांश हैं। जैसे — प्रथम दृश्य में रंगमंच में रथ का चलना एवं धीरे-धीरे रुकना(पृ011) घोड़ों को खोलकर रथ को ऊँचा करना और घोड़ों को मैदान में चरने के लिए खोल देना(पृ012) रथमें घोड़े जोतना एवं चलाना(पृ022) इत्यादि। आजकल रंगमंच इतने लम्बे नहीं होते हैं कि उनमें पशु सहित सवारी का चलना दिखलाया जा सके। रंगमंच की सज्जा का उल्लेख मात्र ही है। उसकी व्यवस्थित रूप-रेखा नहीं प्रस्तुत की गयी। कहीं स्थान एवं समय का उल्लेख है —' वाल्मीकि आश्रम का एक कोना रात का आखिरी पहर है(पृ040) नेपथ्य का भी उल्लेख नाट्यकार ने किया है —' नेपथ्य से लव-कुश का आर्त स्वर आता है(पृ058) प्रकाश व्यवस्था के प्रति नाट्यकार सजग है। जैसे — थोड़ी देर के लिए मंच पर अन्धकार हो जाता है(पृ058) इस बीच मंच की प्रकाश-व्यवस्था से यह ध्वनित किया जाता है कि रात बीत रही है और सूर्य की किरणें फूटने लगी हैं (पृ062) इत्यादि। भारतभूषण अग्रवाल ने पात्रों के लिए अभिनयों का यथावसर उल्लेख किया है — जैसे कायिक — उतर कर ताल की ओर जल देता है(पृ012) रुककर(पृ 14) रुग्णावस्था में देवी एक शैया पर अधलेटी हैं(पृ0 23) हथेली पर फूँक मारने का अभिनय करता है(पृ035) वाचिक — फीकी हँसी हँसती हुई (पृ0 31) उच्च स्वर में बेसुरे ढंग से

गाता है(पृ037) सात्विक — अचानक कुछ झिझकता से (पृ012) अचानक चौंक कर(पृ032) रोता है(पृ039) वाल्मीकि की आँखें छलछला रही है(पृ058) इत्यादि। कहना नहीं होगा कि नाट्यकार इसे दृश्य काव्य बनाना चाहता था, अतः उसने नाटकीयता से युक्त घटनाएँ, एवं अभिनय संकेतों का उल्लेख किया है। ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था से वातावरण को अनुकूल बनाया है।

इसप्रकार अभिनेयता की दृष्टि से इन गीतिनाट्यों में विहंगम दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि वे ही गीतिनाट्य रंगमंच मेंसफल होंगे, जिनकी घटनाओं में द्वन्द्व, तनाव, आकस्मिकता, उतार-चढ़ाव एवं नाटकीयता है तथा क्रिया-व्यापार गतिशील है, जिनमें पात्रों की सीमित संख्या और वे सक्रिय हों। संवाद छोटे-सरल, भावात्मक, नाटकीय एवं अर्थगाम्भीर्य से सम्पन्न हों। अधिक लम्बे संवादों का अभाव हो। उनमें रंगमंचीय घटनाएँ हों, वर्जित, अश्लील या अनभिनेय दृश्यों का अभाव हो तथा कायिक वाचिक, सात्विक इत्यादि अभिनयों के साथ ही साथ मंचमें प्रकाश, ध्वनि, संगीत का विधिवत् उल्लेख हो। आलोच्य गीतिनाट्यों में से अनेक ऐसे गीतिनाट्य हैं जिनकी घटनाओं में विस्तार अधिक है। छोटी-छोटी बातों को चित्रित करने के लिए अनावश्यक घटनाओं की सृष्टि की गयी है। इन घटनाओं में तारतम्य भी स्थापित नहीं हो सका है। अलग-अलग स्थानों के नाम देकर घटना-क्रम निरूपित किया गया है जैसे अनघ, लीला उन्मुक्त। कुछ गीतिनाट्यों की कथावस्तु प्रतीकात्मक होने के कारण सूक्ष्म हो गयीहै। जैसे — शिल्पी, सौवर्ण, विश्वविजय, रजत शिखर इत्यादि। कुछ की घटनाएँ स्वाभाविक रूप से सुलझे जैसे पंचवटी-प्रसंग, राधा, द्रौपदी, कर्ण, सृष्टि का आखिरी आदमी, लौहदेवता, इन्दुमती, स्वप्न रहस्य, गंगावतरण, गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण, अग्निलीक इत्यादि। सघन क्षणों की अभिव्यक्ति एवं नाटकीयता की दृष्टि से तारा, मत्स्यगन्धा, कवि, सृष्टि की सांझ, अन्धायुग, सूखा सरोवर एक कण्ठ विषपायी एवं उत्तर प्रिय दर्शी प्रमुख है।

पात्रों की दृष्टि से प्रायः सभी गीतिनाट्य ठीक ही हैं। पात्रबहुल होने पर भी रंगमंच में उनकी भीड़ नहीं लगायी गयी है तथा वे निष्क्रिय नहीं हैं। संवाद की दृष्टि से प्रायः अधिकांश गीतिनाट्य सफल हैं। पंत, दिनकर एवं जानकी वल्लभ शास्त्री में संवाद कुछ क्लिष्ट हैं, क्योंकि उनमें तत्सम शब्दों का विशेष आग्रह है तथा भाषा भी काव्यात्मक अधिक होगयी है। लम्बे स्वगत कथन भी रसव्याघात उत्पन्न करते हैं।

ये गीतिनाट्य एकांकी से लेकर पूर्णकाय अनेकांकी तक हैं। कुछ रेडियो प्रसारण के लिए लिखे गये हैं। उनमें रंगमंच की सम्भावनाएँ कम ही प्रतीत होती है। दृश्यों मेंव्यवय

का ध्यान नहीं रखा गया है। कहीं कहीं वर्जित, एवं अनभिनेय दृश्यों को स्थान दिया गया है। अधिकांश गीतिनाट्यों में ध्वनि, मंचोपयुक्त साज-सज्जा, संगीत, वर्षा, प्रकाश-व्यवस्था का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार रंगमंच की दृष्टि से तारा, कवि, सृष्टि की सांझ, अन्धायुग, पाषाणी, सूना-सरोवर, एक कण्ठ विषपायी, एवं उत्तरप्रियदर्शी सफल एवं प्रभावी, गीतिनाट्य हैं।

अष्टम अध्याय

हिन्दी गीतिनाट्य : उपलब्धि

सीमा : तथा सम्भावनाएँ

अष्टम अध्याय

हिन्दी गीतिनाट्य : उपलब्धि सीमा और सम्भावनायें

हिन्दी गीतिनाट्य के सैद्धान्तिक विवेचन एवं उनके आधार पर प्रमुख गीतिनाट्यों का साहित्यिक विवेचन करने के उपरान्त यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि साहित्य की यह मौलिक विधा है और उसका विकासक्रम अपनी सीमाओं के अन्दर असन्तोषजनक नहीं है। गीतिनाट्य गीतितत्व मिश्रित ऐसा नाटक है जिसमें नाटकीय कथानक, पात्र की आन्तरिक मनोव्यथा का उद्घाटन बड़ी कुशलता से कियाजाता है अतः इसकी समीक्षा के लिए काव्य और नाटक के मिश्रण से निसृत नवीन समीक्षा पद्धति को अपनाना होगा।

हिन्दी गीतिनाट्य के विकासक्रम उपस्थित करते हुए मैंने यह निरूपित किया था कि यह भारतीय परम्परा से विकसित संस्कृत नाटक, जननाटक तथा पाश्चात्य गीतिनाट्यों से प्रभावित है, अतः करूणालय से लेकर अग्निलीक तक की विकासयात्रा कई दृष्टियोंसे महत्वपूर्ण है। संक्षेप में उसके विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कर उपलब्धि और सम्भावनाओं की चर्चा की जायेगी।

प्रारम्भिक स्थिति के गीतिनाट्य इतिवृत्त प्रधान पद्यात्मक हैं जिनमें एक तरफ वर्णनात्मकता है तो दूसरी तरफ घटनाओं मेंतनाव, आकस्मिकता या उतार चढ़ाव का अभाव है शिल्पविधान की दृष्टिसे भी ये नितान्त प्रारम्भिक युगकी रचनाएँ प्रतीत होती है जिनमें न तो भाषायिक चमत्कार ही है न ही बिम्ब प्रतीक के प्रयोग मेंआकर्षण। इनसे विकसित होने वाले गीतिनाट्यों की घटनाओं में गीतितत्व एवं अन्तर्द्वन्द्व का प्राधान्य तो है किन्तु नाटकीयता उपेक्षित रह गयी है। विकासकाल के गीतिनाट्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, इनकी कथावस्तु पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक एवं समसामयिक क्षेत्रों से गृहीत है। वस्तुविन्यास में गतिशीलता एवं प्रभावान्वित है। पात्रों के चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिक धरातल पर उपस्थित किया गया है, कथोपकथन काव्यात्मक, सरल, नाटकीय एवं व्यावहारिक हैं, प्रवाहमयता के लिए मात्रिक छन्दों से लेकर मुक्त छन्दों का प्रयोग है। रेडियो की दृष्टि से लिखे जाने के कारण इनकी भाषा में सरलता, मूर्तिमत्ता एवं बिम्बों का प्राधान्य है। काव्यत्व गीतितत्व एवं नाट्यत्व का समन्वय कर रेडियो एवं रंगमंचोपयुक्त गीतिनाट्यों की रचना समृद्धिकाल मेंहुई है। जिसकी सर्वोत्कृष्ट रचना अन्धायुग है। कथावस्तु के संगठन, पात्रों की गठन एवं आन्तरिक भावाभिव्यक्ति का मार्मिक अंकन, सुष्ठु संवाद योजना, बिम्ब योजना, प्रतीकात्मकता तथा अभिनयात्मकता की दृष्टि से यह कृति प्रकाश स्तम्भ है। इसके साथ अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ इस युग की देन हैं। जैसे सूखा-सरोवर, एककंठ विषपायी, संशय की एक रात, उत्तर प्रियदर्शी एवं अग्निलीक प्रमुख हैं।

इसी पृष्ठभूमि में गीतिनाट्यों की उपलब्धियों कीचर्चा की जा रही है।

हिन्दी गीतिनाट्यों की कथावस्तु की उपलब्धि के संबंध में इतना निश्चितरूप से कहा जा सकता ह कि एक ओर उसमें भावुकता है, रागात्मकता है तो दूसरी ओर जीवन से संबंधित समसामयिक समस्याओं के चित्रण का अभाव था किन्तु पंत एवं सिद्धनाथ कुमार ने वर्तमान जीवन की समस्याओं , द्वन्द्वों को विषयवस्तुबनाकर यह दिखाने का प्रयास किया है कि गीतिनाट्य इसके लिए भी उपयुक्त माध्यम है, जो कोरी रागात्मकता, भावात्मकता , और काल्पनिकता तक सीमित नहीं है।इनमें मानवीय भावनाओं की विसंगतियाँ, उनके यथार्थ चित्र अंकित किये गयेहैं। यद्यपि गीतिनाट्यों की घटनाओं में क्रिया व्यापार, प्रभावान्विति एवं नाटकीयता अपेक्षित रूप में कम ही है, तथापि उसकी उपलब्धियाँ नगण्य नहीं है।

पात्रों की दृष्टि से गीतिनाट्यों की उपलब्धि सन्तोषजनक है। इसमें पौराणिक , ऐतिहासिक, काल्पनिक, मनोवैज्ञानिक पात्रों के व्यक्तित्व को साकार किया गयाहै। ये पात्र वीर, त्यागी, सहिष्णु, दानी, उदार हैं तो दूसरी तरफ दुष्ट, कठोर एवं असद्वृत्तियों के प्रतीक हैं। कुछ व्यक्तित्व हीन पात्रों को भी मुखरित किया गया है। प्रारम्भिक युगीन पात्र प्राचीन परम्परानुमोदित प्रचित-प्रचित गुणों से युक्त है, किन्तु आगे चलकर आधुनिकसमस्याओं को चित्रित करने वाले प्रतीकात्मक पात्र भी विकसित हुए हैं। जिनमें मूल्यहीनता, कुण्ठा, निराशा, घृणा, विद्वेष युक्त पात्र भी हैं।

अन्तद्वन्द्व की दृष्टि से इन गीतिनाट्यों की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि संघर्षों से उत्पन्न उद्दाम कुण्ठा के उदात्तीकरण केलिए मनोविश्लेषण शास्त्रोक्त सभी मार्गों की व्यावहारिक व्याख्या उपलब्ध है। आज सत्यं विजयते का घोष व्यर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि पापी, शोषक दुराचारी व्यक्ति जीवन की भाग दौड़ में आगेहै तथा सत्यवक्ता, न्यायी, सदाचारी, पात्र पग पग पर संघर्षों का सामना कर पराजित होता, दुख प्राप्त करता है अतः उसके इड, इगो एवं सुपरइगो में संघर्ष होताहै। उदाहरण के लिए अंधायुग का युयुत्सु है, जिसने सत्य-पक्ष को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार कर पाण्डवों की ओर से महाभारत युद्ध में वीरता का प्रदर्शन किया किन्तु अपमान के अतिरिक्तउसे क्या मिला? इसी तरह से द्रौपदी एक रात में राम तथा एककण्ठ विषपायी में सर्वहत भी हैं।

संवादों की दृष्टि से प्रारम्भिक युगीन गीतिनाट्यों में आनुप्रासिकता एवं छन्दानुरोध था जिसकी बँधी-बँधायी परम्परा में नवीन ढंग से कुछ कहा ही नहीं जा सकता था। इन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विचारों को पहिले क्रमबद्ध रूप में लिख लिया गयाहै और बाद में स्त्री-पुरुषों के स्वरों में इन्हें बाँट दिया गया है किन्तु इस परम्परा का पालन बहुत अधिक दिनों तक नहीं हुआ। आगे चलकर प्रवाहमयता एवं लयात्मकता के लिए मुक्त छन्दों

का प्रयोग हुआ है, जिसमें बीच बीच में लय तोड़कर संवाद सौष्ठव में अभिनव कान्ति भरी गयी है। कहीं कहीं अभिव्यक्ति संकेत देने के लिए पदों की पुनरावृत्ति एवं प्रश्नवाचक चिन्ह प्रयुक्त हैं। भाषा की दृष्टि से तीन स्तर के गीतिनाट्य प्राप्त होते हैं — प्रथम स्तर में वर्णनात्मकता, अभिधा का प्राधान्य है, द्वितीय स्तर में तत्सम बहुलता, प्रांजलता, संस्कृत के प्रति विशेष आग्रह है, इनमें बिम्ब एवं प्रतीकों का व्यापक प्रयोग है पंत की रचनाएँ इस प्रकार की हैं। तृतीय स्तर की भाषा प्रयोग में यह ध्यान रखा गया है कि वह जनसामान्य की भाषा प्रतीत हो जिसे सुनकर सामान्य दर्शक अनुभव कर सके जिसेसा तो वह भी बोल सकता है। साराश यह है कि उक्त दृष्टियों से हिन्दी गीतिनाट्यों की उपलब्धियाँ उनकी वैयक्तिक संपत्तिहैं।

प्रत्येक कला किसी न किसी माध्यम से जुड़ती है जो कलाकार उस माध्यम से जितनी घनिष्ठता, तन्मयता , एकात्मकता स्थापित कर लेता है उसकी रचनाओं में उतनी ही सजीवता एवं प्रभविष्णुता आ जाती है। इस दृष्टि से हिन्दी के गीतिनाट्यों से निराशा ही हाथ लगती है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जब नाटक के क्षेत्र में अवतरित हुए हैं तो उनके गीतिनाट्यों में काव्यत्व बहुल तथा नाट्यत्व क्षीण दिखायी देता है। पंत उदयशंकर भट्ट एवं गिरिजाकुमार माथुर की रचाओं पर दृष्टिपात से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पंत और उदयशंकर भट्ट ने गीतिनाट्य के सैद्धान्तिक तत्वों का विस्तृत विवेचन किया है किन्तु उनके गीतिनाट्यों में उक्त तत्वों का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है।

यह बात सर्वविदित ही है कि नाटक में विविध कलाओं का संगम होता है, लेखन आंगिक अभिनय, पात्रों की वेशभूषा, वातावरण के लिए उपयुक्त दृश्यविधान, प्रकाश व्यवस्था, मेकअप करने वाले, रंगशाला का आकार प्रकार, पार्श्व संगीत आदि का ध्यान रखकर नाटक की रचना करनी पड़ती है, जिसका पालन करने में नाट्यकार असमर्थ प्रतीत होता है और वह मंचविधान में प्रश्नवाचक चिन्ह लगाता है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उपयुक्त रंगमंच की खोज प्राचीन काल से हो रही है, भरत से लेकर आज तक ऊपर वर्णित नाट्यांगों में परिवर्तनएवं परिवर्धन होता रहा है। कहना नहीं होगा कि हिन्दी में अव्यावसायिक रंगमंच का नितान्त अभाव है, अतः जब साहित्यिक गद्य नाटकों का मंचन नहीं हो पा रहा तो फिर गीतिनाट्य की क्या बात की जाय? इसीलिए हिन्दी के गीतिनाट्य पाठकों की सम्पत्ति बनते जा रहे हैं और नाट्यकार भी मंचन के लिए विशेष बल भी नहीं देता, परिणामस्वरूप गीतिनाट्यों की सीमा के सम्बन्ध में अनेक आलोचक शंकालु हो बैठे हैं कि उनका मंचन हो ही नहीं सकता है। इन पंक्तियों के लेखक का विनम्र निवेदन यह है कि अंधायुग और उत्तरप्रियदर्शी का मंचन हुआ है तो अन्य गीतिनाट्यों को क्यों नहीं अभिनीत किया जा सकता है? यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि कतिपय किंचित् परिवर्तन और परिवर्धन के

साथ इनके आरंभ में सफलता प्राप्त की जा सकती है। जैसा कि पाश्चात्य साहित्य में गीति-नाटकों का मंचन बहुधा होता रहता है। हिन्दी के गीतिनाट्यकारों को यह सुविधा न मिलने के कारण वे रेडियो का आश्रय ले बैठे हैं। कहना नहीं होगा कि रेडियो नाट्यकला ध्वनि पर आधारित है और रंगनाटक से बहुत भिन्न है, इसमें न तो भारी भरकम पर्दों से युक्त चाक-चिक्य प्रधान दृश्यों की योजना करनी पड़ती है न कायिक अभिनयों का उल्लेख करना पड़ता है। इसमें तो टोन एवं स्वरों के आरोहावरोह से नाटकीयता उत्पन्न की जाती है, साथ ही ध्वनियों के माध्यम से आँधी, वर्षा, मेघगर्जन, पशुपक्षियों की बोली, युद्ध इत्यादि, अनभिनेय दृश्यों को सहजरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः गीतिनाट्यकार को चाहिए कि वह सरल कथानक छोटे और भावाभिव्यंजक संवाद और कम पात्रों का प्रयोग करे। प्रारम्भिक और अन्त के पार्श्व संगीत में अन्तर रखे, साथ ही प्रभावध्वनि(साउण्ड इफेक्ट्स) की सहायता ले। इसके लिए जरूरी यह है कि उसे और अभिनेताओं को रेडियो नाट्यशिल्प की अच्छी जानकारी हो, क्योंकि यह बहुत स्वाभाविक है कि अभिनेता प्रसारण के समय गीतिनाट्य को या तो कविता की तरह पढ़ते हैं या गद्य जैसा वाचन करते हैं। वस्तुतः उन्हें विचार क्रम से आरोहावरोह पर आधारित संवादों का उच्चारण करना चाहिए। इस दृष्टि से भी हिन्दी गीतिनाट्य की उपलब्धि को सन्तोषप्रद माना जा सकता है। पंत, आरसी प्रसाद सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती और सिद्धनाथ कुमार के गीतिनाट्य आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं।

यद्यपि हिन्दी गीतिनाट्योंकी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं तथापि उसमें अनेक दुर्बलताएँ भी हैं, जो इसकी सीमाएँ कही जा सकती है। आज चित्रपट के विकास ने कममूल्य पर अधिक मनोरंजन देने का प्रयास किया है, जिसके कारण नाटकों एवं गीतिनाट्यों की लोक-प्रियता का ह्रास हुआ है, दर्शक उनसे उदासीन हुए हैं अतः इस अभाव की पूर्ति टेलीविजन ही कर सकता है। क्योंकि उससे सिनेमा जैसी वास्तविकता का भ्रम भी उपस्थित किया जा सकता है और गीतिनाट्यों का चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण भी हो सकता है। मैं समझता हूँ कि भविष्य में टेलीविजन के प्रचार और प्रसार के कारण उसकी सम्भावनाएँ साकार रूप लेंगी।

सहायक ग्रन्थ

आलोच्य ग्रन्थ

गीतिनाट्य का नाम	लेखक	प्रकाशक
करूणालय	जयशंकर प्रसाद	तृतीय संस्करण, भारतीभण्डार सं0 2018
लीला	मैथिलीशरण गुप्त	प्रथम संस्करण, साहित्यसदन चिरगांव, 2017
अनघ	मैथिलीशरण गुप्त	अष्टम सं0, साहित्य-सदन, चिरगांव, सं02014
पंचवटी प्रसंग	निराला (परिमल)	दशम सं0, गंगापुस्तक माला कार्या0लखनऊ 1966
तारा,	भगवतीचरण वर्मा (मधुकण) ओंकारबन्धु आश्रम प्रयोग सन् 1932	
मत्स्यगन्धा	उदयशंकरभट्ट (विश्वामित्र और दो भावनाट्य) प्रथम सं0-प्रतिभा प्र0दिल्ली	
विश्वामित्र	उदयशंकरभट्ट (विश्वामित्र और दो भावनाट्य) प्रथम सं0- वही,	
शिल्पी	पंत	प्रथम सं0, राजकमल प्रका0, दिल्ली, सन् 1952
अप्सरा	पंत (शिल्पी)	वही
राधा	उदयशंकर भट्ट (विश्वामित्र और दो भावनाट्य) प्रथमसं0, प्र0प्र0दिल्ली	
उन्मुक्त	सियारामशरण गुप्त	षष्ठसं0, साहि0सदन, चिरगांव, झाँसी, सं02026
द्रौपदी (त्रिपथगा)	भगवतीचरण वर्मा	प्र0सं0भारतीभण्डार, सवत् 2011
कर्ण (त्रिपथगा)	वही	वही
स्नेह या स्वर्ग	सेठगोविन्द दास	भारतीय विश्वप्रकाशन दिल्ली, सन् 1959
मेघदूत	पंत	संगमपत्रिका, वर्ष3 अंक49 सन् 1950
रजतशिखर	पंत	प्र0सं0राजकमल प्रका0दिल्ली, सं02008

कवि (सृष्टि की साँ और अन्य काव्य नाटक) सिद्धनाथकुमार, द्वि0सं0हिन्दी साहि0सं0पटना, 1979

सृष्टि का आखिरी आदमी (स्वकी विविध) कानपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1 (1967)

सृष्टि की साँझ (सृष्टि की साँझ और अन्य काव्यनाटक) सिद्धनाथ कुमार-द्वि0सं0हिन्दी साहि0संसार पटना, सन् 1970

लौह देवता	वही	वही
संघर्ष	वही	वही
अन्धायुग	धर्मवीर भारती	सु0सं0किताब महल इलाहाबाद, 1968
इन्दुमती (धूप के धान)	गिरिजाकुमार माथुर	सु0सं0भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1966
मदन दहन	उदयशंकर भट्ट	नयासमाज वर्ष5, खण्ड1, अंक8सन् 1952
सौवर्ण	पंत	द्वि0सं0भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् 1963
स्वप्न-सत्य	वही	वही
दिग्विजय	वही	वही

गीतिनाट्य का नाम	लेखक	प्रकाशक
उर्वशी(पाषाणी)	जानकीवल्लभ शास्त्री	द्वि0सं0लोकभारतीप्रकाशन इलाहाबाद 1967
गंगावतरण	वही	वही
पाषाणी	वही	वही
मंजरी	वही	वही
अशोक वन -बन्दिनी(अशोक वन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्क)	उदयशंकर भट्ट-	प्र0सं0भारती साहित्य मन्दिर- सन् 1959
गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण	वही	वही
सूखा सरोवर	लक्ष्मीनारायण लाल-	प्र0सं0भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् 1960
उर्वशी	दिनकर	सप्तम सं0उदयाचल राष्ट्रकवि दिनकरपथ, राजेन्द्रनगर पटना सन् 1975
संशय की एक रात	नरेश मेहता	द्वि0सं0पुस्तकायन प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद 1968
एक कण्ठ विषपायी	दुष्यन्तकुमार	प्र0सं0लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1963
उत्तरप्रियदर्शी	अज्ञेय	प्र0सं0अक्षरप्रकाशन दिल्ली/1967
इरावती	जानकीवल्लभ शास्त्री	प्र0सं0नवभारत प्रकाशन पटना, 1973
अग्निलीक	भारतभूषण अग्रवाल,	प्र0सं0 राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1976

सहायक – ग्रन्थ

संस्कृत

नाट्यशास्त्र भरत व्याख्याकार बाबूलाल शुक्ल, चौ0संस्कृत सं0, वाराणसी, प्र0सं0 2०2

दशरूपक धनंजय(व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास) चौखम्बा, 1955

साहित्यदर्पण विश्वनाथ(व्याख्याकार-डा0सत्यव्रतसिंह) चौ0विद्याभवन, द्वि0सं0 1963

नाट्यदर्पण रामचन्द्र गुणचन्द्र (व्याख्याकार-आचार्य विश्वेश्वर) प्र0सं0हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय दिल्ली, सन् 1961

काव्यप्रकाश मम्मट(व्याख्याकार-डा0सत्यव्रत सिन्हा) चौखम्बा, तृतीय संस्करण, 1965

हिन्दी :—

साहित्य समालोचना रामकुमार वर्मा द्वि0सं0साहित्यमन्दिर, लाहौर, 1938

छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य, डा0विश्वनाथ तिवारी, प्र0सं0वि0वि0प्रका0वाराणसी, 1968

आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डा0गणेशदत्त गौड़प्र0सं0प0पु0स0आगरा, 1965

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – सम्पादक डा0महेन्द्र भटनागर–प्र0सं0नवभारतीप्रका0।1969
काव्यदर्पण – रामदहिन मिश्र, प्र0सं0ग्रन्थमाला कार्यालय बाँकीपुर, सन् 1947
हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास–डा0शान्तिमलिक, प्र0सं0नेशनल पब्लिशिंग हाउसदिल्ली।1971
तुलसी-साहित्य में बिम्ब योजना–डा0सुशीला शर्मा, प्र0सं01972 कोणार्क प्रकाशन दिल्ली।
रामचरित मानस में अलंकार योजना–डा0वचनदेव कुमार–प्र0सं01971। हिन्दी साहित्य संसारपटना
काव्य बिम्ब डा0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967
हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा– द्वि0सं0 ज्ञानमण्डल वाराणसी
काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डा0शकुन्तला दुबे–हिन्दी प्रचारक संस्थान वारा0
हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन – डा0गिरीश रस्तोगी, प्र0सं0ग्रन्थम् प्रकाशन कानपुर।1967
अभिनव नाट्यशास्त्र – सीताराम चतुर्वेदी द्वि0सं0 किताब महल इलाहाबाद, 1964
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास–डा0दशरथ ओझा–तृ0सं0 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1961
नाट्यशास्त्र मार्गदर्शन–कृष्णकुमार गोस्वामी–एस0ई0एस0 एण्ड सन्स, दिल्ली, 1970
साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध–डा0नगेन्द्र–प्र0सं0नेशनल पब्लि0हा0 1968
आधुनिककविता में गीतितत्व –डा0सच्चिदानन्द तिवारी–प्र0सं0साहित्य साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।1964
हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास–डा0रामचरण महेन्द्र, प्र0सं0साहित्यप्रका0दिल्ली, 1958
हिन्दी एकांकी शिल्पी विधि का विकास—सिद्धनाथ कुमार–ग्रन्थम , कानपुर, 1966
हिन्दी गीतिनाट्य— डा0कृष्ण सिंह–प्र0सं0 भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, 1964
आधुनिक हिन्दी नाटक – डा0नगेन्द्र–च0सं0साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, सं0 2009
शिल्प और दर्शन — पंत–प्र0सं0रामनारायणलाल–बेनीमाधव प्रकाशक प्रयाग 1961
हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार –डा0रामचरण महेन्द्र, प्र0सं0सरस्वती पुस्तक सदन आगरा, सन् 1955
नाट्यसेतु — पंत— प्र0सं0 कौशाम्बी प्रकाशन इलाहाबाद संवत् 2025
हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव –डा0श्रीपति शर्मा, प्र0सं0विनोदपुस्तक मन्दिर आगरा।1961
शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, –डा0गोविन्द त्रिगुणायत–एस0चन्द एण्डकं0दिल्ली, 1974
पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त—डा0शान्तिस्वरूपगुप्त, अशोकप्रका0दिल्ली, तृ0सं0 1970
भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक — हजारी प्रसाद द्विवेदी–राजकमल, प्रकाशन।96
रससिद्धान्त —डा0 नगेन्द्र — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1964
रस -सिद्धान्त –स्वरूप विश्लेषण — डा0आनन्दप्रकाश दीक्षित, प्र0सं0राज0प्रका0दिल्ली, 1960
मुक्ति का रहस्य —लक्ष्मीनारायण मिश्र—तृ0सं0 साहित्यभवन प्रयाग।
गरीबी या अमीरी — सेठ गोविन्ददास — द्वि0सं0 हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1953

दीपदान —डा0रामकुमार वर्मा, प्र0सं0 भारती भण्डार सं0 2010

नाट्यकला मीमांसा — सेठ गोविन्ददास —सूचना तथा प्रका0संचालनालय म0प्र0 1961

हिन्दी नाटक — बच्चन सिंह— प्र0सं0 साहित्य भवन इलाहाबाद 1959

भारतीय नाट्य साहित्य — सम्पादक —डा0नगेन्द्र—सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समारोह समिति,दिल

समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि — डा0जयदेव तनेजा, प्र0सं0सामयिक प्रका0 1971

अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि— सुरेश गौतम—साहित्य प्रकाशन मालीवाड़ा दिल्ली, 1973

पश्यन्ती — धर्मवीर भारती, प्र0सं0 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1969

सृजन के आयाम — ज्वाला प्रसाद खेतान — प्र0सं0 विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, 1961

हिन्दी नवलेखन — रामस्वरूप चतुर्वेदी — प्र0सं0 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1960

नया हिन्दी काव्य और विवेचना — शम्भूनाथ चतुर्वेदी, प्र0सं0नन्दकिशोर एण्डसन्स वारा0 1964

अंग्रेजी :————

ऑन दि आर्ट ऑव पोएट्री — अरस्तू

एस्पेक्ट ऑव माडर्न ड्रामा — एफ.0डब्लू0 चैण्डलर, मैकमिलन कम्पनी 1920

वर्स ड्रामा — क्रिस्टोफर हैक्सले

ऑन पोएट्री इन ड्रामा — एच0जी0बार्कर

अरिस्टाटल्स — थ्योरी ऑव पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट्स— एस0एच0बूचर—डोवर पब्लिकेशंस 1951

दि आर्ट ऑव ड्रामा —रोनाल्ड पीकॉक फर्स्ट एडीसन, 1957 लन्दन।

एन असेसमेण्ट ऑव ट्वेण्टियथ सेंचुरी लिटरेचर — जे0आइजैक्स

दि थ्योरी ऑव ड्रामा — निकॅल — न्यू एडीसन — जार्ज जी0हारप एण्ड कम्पनी लिमि0 1931

ट्वेण्टियथ सेंचुरी क्रिटिकल एसे — एल स्वर क्रोम्बी

ब्रिटिश ड्रामा — ए0 निकॅल — फोर्थ एडीसन — जार्ज जी0हारप एण्ड कम्पनी लिमि0 1961

सिलेक्टेड प्रोज — टी0एस0इलियट — फेबर एण्ड फेबर लिमि0 लन्दन

ए डायलाग ऑन ड्रेमेटिक पोयट्री — टी0एस0 इलियट

वर्ल्ड ड्रामा — निकॅल फर्स्ट एडीसन — जार्ज जी0हारप एण्ड कम्पनी लिमि0 1949

टेलीविजन फेयराइट — डोनाल्ड विल्सन

दि थियेटर — जे0 डब्लू मेरिट

दि पोइटिक्स इमेज — सी0डे0 लेविस

मेकइट न्यू — एजरा पाउण्ड

दि पोइटिक्स पैटर्न — रॉबिन स्केल्टन

पत्र-पत्रिकाएँ :—

आलोचना — नाटयांक।
रूपाभ — नवम्बर, 1938
नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग10, अंक 3
साहित्य समालोचक — शिशिर-बसन्त — सं0 1982-83
राष्ट्रभारती — अगस्त , 1953
सरस्वती — जून, 1915
संगम — वर्ष3, अंक 49, वर्षा अंक — अगस्त 1950
नटरंग — अंक 7
नयासमाज — अगस्त 1952, वर्ष 5, अंक 2
आलोचना, जनवरी, 1956